॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

563

विश्वकर्मप्रकाशः

(वास्तुशास्त्रम्)

सम्पादक एवं हिन्दीटीकाकार

महर्षि अभय कात्यायन

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

विश्वकर्मप्रकाश

ISBN : 978-93-82443-72-8

प्रकाशक :
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के 37/117 गोपाल मन्दिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129
वाराणसी 221001
दूरभाष : (0542) 2335263
e-mail : csp_naveen@yahoo.co.in
website : www.chaukhamba.co.in

संस्करण : 2017
₹ 550

वितरक :
चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2 ग्राउण्ड फ्लोर, गली न. 21-ए
अंसारी रोड़, दरियागंज
नई दिल्ली 110002
दूरभाष : (011) 32996391, टेलीफैक्स : 23286537
e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

*

अन्य प्राप्तिस्थान :
चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. बंगलो रोड़, जवाहर नगर
पोस्ट बॉक्स न. 2113
दिल्ली 110007

*

चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पोस्ट बॉक्स न. 1069
वाराणसी 221001

मुद्रक :
डीलक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली,

उपोद्घात

इस पृथिवी पर सम्यक् रूप से अनुकूलन के साथ निवास बनाने की विद्या को वास्तुविद्या कहते हैं। 'समराङ्गणसूत्रधार' नामक वास्तुग्रन्थ में कहा गया है कि पृथ्वी मुख्य वास्तु है, उस पर जो उत्पन्न होते हैं, उनके निवास (आश्रय) हेतु जो प्रासादादि बनाये जाते हैं, वे भी (गौण) वास्तु कहे जाते हैं—

'भूरेव मुख्यं वास्तु तत्र जातानि यानिहि।
प्रासादादीनि वस्तूनि वस्तुत्वात् वास्तुसंश्रयात्॥'

'वास्तुविद्या' को ही वास्तुशास्त्र, शिल्पशास्त्र तथा स्थापत्यवेद भी कहते हैं। अंग्रेजी में इसे Architecture कहा जाता है। अंग्रेजी में यह शब्द सोलहवीं शताब्दी में लैटिन भाषा के Architectura शब्द से लिया जाता है जो कि वास्तव में संस्कृत के 'आर्किदक्षतौर्य' शब्द का अपभ्रंश है। यह शब्द आर्कि+दक्ष्+तौर्य से बना है। संस्कृत तौर्य का अर्थ शिल्प, चातुर्य, विद्या या कला आदि होता है। 'दक्ष्' धातु का अर्थ चतुरता प्रदर्शित करना तथा 'आर्कि' का अर्थ सूर्यपुत्र मनु होता है। इस शब्द का प्रयोग देवशिल्पी त्वष्टा के लिये भी हो जाता है, जिन्होंने मार्तण्ड सूर्य को काट-छाँटकर छोटा तथा सुन्दर बना दिया था, जिससे उनकी उग्रता में न्यूनता हो गयी थी और वे पृथ्वीवासियों के लिये सहन करने योग्य हो गये थे। इस प्रकार से जिस विद्या का प्रचार मनु के द्वारा मानव- कल्याण के लिये सूर्य की ऊर्जा का समुचित उपयोग करते हुए मानवों को पृथ्वी पर बसाने में किया गया, उसे 'आर्किदक्षतौर्य' अर्थात् विवस्वान् मनु की दक्षता की विद्या कहा गया। इसी शब्द से घिसकर लैटिन तथा अंग्रेजी के ऊपर लिखे दोनों शब्द बन गये हैं।

वेदों में वास्तुशास्त्र—संसार के सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद में गृह को वेश्म कहा गया है। गृह की प्राप्ति पुण्यों के फलस्वरूप होती है यह बात भी कही गयी है। इसी प्रकार वास्तोष्पति का भी उल्लेख किया गया है—

'भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्म परिष्कृतं देवमानेव चित्रम्॥'

—ऋग्वेद १०।१०७।१०

इसी प्रकार वास्तोष्पति से स्वास्थ्यप्रद गृह तथा उन्नतिशील गृहहेतु प्रार्थना की गयी है—

'वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान् त्स्वावेशो अनमीवे भवा नः।
यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥

वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो।
अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व॥
वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥'

—ऋग्वेद ७।५४।१-३

'अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन्।
सखा सुशेव एधि नः॥' (ऋ० ७।५५।१)

ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल में 'क्षेत्रपति' नामक देवता से प्रार्थना करते हुए गृह को अन्न भण्डार से युक्त बनाने की प्रार्थना करते हुए कहा गया है—

क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि।
गामश्वं पोषयित्वा स नो मृळातीदृशे॥
क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृळयन्तु॥
मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम्।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान् नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम॥

—ऋग्वेद ४।५७।१-३

अथर्ववेद में एक स्थान पर गृह के भीतर रहनेवाले दो देवों अग्नि तथा विष्णु से घर को रत्न एवं धन से पूरित करने की प्रार्थना करते हुए कहा गया है—

अग्नाविष्णु महि तद्वां महित्वं पाथो घृतस्य गुह्यस्य नाम।
दमे-दमे सप्त रत्ना दधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमा चरण्यात्॥
अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां वीथो घृतस्य गुह्या जुषाणौ।
दमे-दमे सुष्टुत्या वावृधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमुच्चरण्यात्॥

—अथर्ववेद काण्ड ७।२९।१-२

यहाँ गृह के लिये 'दम' शब्द का प्रयोग हुआ है। मन्त्र में प्रयुक्त दमे-दमे का अर्थ है घर-घर में। आजकल प्रचलित अंग्रेजी Domestic शब्द का मूल यह अथर्ववेद का 'दम' (घर) ही है, जो कि लैटिन में Domus तथा रूसी भाषा में दोम तथा दम ही लिखा तथा बोला जाता है। अंग्रेजी के Domicile, Domed, Domesticate, Domesticity, Domiciliary, Dominance, Dominant, Dominate आदि शब्दों का मूल 'संस्कृत' का 'दम' ही है।

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर गृह में विकृत संतान (जो बिना कानों की तथा बड़े शिर की उत्पन्न होती है अथवा अन्य विकृतियों के साथ जन्म लेती है) के न जन्म लेने की प्रार्थना करते हुए कहा गया है—

'न विकर्णः पृथुशिरास्तस्मिन् वेश्मनि जायते।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या॥'

—अथर्ववेद काण्ड ५।१७।१३

संहिताओं के अतिरिक्त शतपथ ब्राह्मण (१।७।३।७), तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण (१।७।८।१५ एवं ३।७।९।७) तथा आपस्तम्बश्रौतसूत्र (१३।२०) में वास्तुशास्त्र का उल्लेख मिलता है। स्मृतियों एवं पुराणों में वास्तुविद्या का विस्तारपूर्वक वर्णन है।

पुराणों में वास्तुशास्त्र—अग्निपुराण, मत्स्यपुराण, नारदपुराण आदि में भवन-निर्माण की विद्या बड़ी सूक्ष्मता तथा स्पष्टता के साथ वर्णित है। इस प्रकार अत्यन्त प्राचीनकाल से ही भारत में वास्तुशास्त्र का ज्ञान प्रचलित रहा है। अग्निपुराण में प्रासाद-निर्माण के विषय में बताते हुए कहा गया है कि सर्वप्रथम प्रसाद-निर्माण के लिये पृथ्वी की परीक्षा करनी चाहिये। जहाँ की मिट्टी का रंग श्वेत हो और घी की सुगन्ध आती हो, वह भूमि ब्राह्मण के लिये उत्तम होती है। इसी प्रकार क्रमशः क्षत्रिय के लिये लाल तथा रक्त जैसी गन्धवाली मिट्टी, वैश्य के लिये नीली और सुगन्धयुक्त मिट्टीवाली तथा शूद्र के लिये काली एवं मदिरा-जैसी गन्धवाली मिट्टी से युक्त भूमि उत्तम कही गयी है। पूर्व, ईशान, उत्तर अथवा सब ओर नीची और मध्य में ऊँची भूमि प्रशस्त मानी गयी है। एक हाथ गहराई तक खोदकर निकाली हुई मिट्टी यदि फिर उस गड्ढे में डाली जाने पर अधिक हो जाय तो वहाँ की भूमि को उत्तम समझना चाहिये। अथवा जल आदि से उसकी परीक्षा करें। हड्डी और कोयले आदि से दूषित भूमि का शोधन खोदकर, गायों को ठहराकर या बार-बार जोतकर करना चाहिये—

यदाधारादिभेदेन प्रासादेष्वपि पञ्चधा।
परीक्षामथ मेदिन्याः कुर्यात्प्रासादकाम्यया॥
शुक्लाज्यगन्धा रक्ता च रक्तगन्धा सुगन्धिनी।
पीता कृष्णा सुरागन्धा विप्रादीनां महीक्रमात्॥
पूर्वेशोत्तरसर्वत्र पूर्वा चैषां विशिष्यते।
आखाते हास्तिके यस्याः पूर्णे मृदधिका भवेत्॥
उत्तमां तां महीं विद्यात्तोयाद्यैर्वा समुक्षिताम्।
अस्थ्यङ्गारादिभिर्दुष्टामत्यन्तं शोधयेद् गुरुः॥
नगरग्रामदुर्गार्थं गृहप्रासादकारणम्।
खननैर्गोकुलावासैः कर्षणैर्वा मुहुर्मुहुः॥

(अग्निपुराण ९२।६-१०)

श्रीमद्भागवत-महापुराण में देवशिल्पी विश्वकर्मा द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के आदेश से समुद्र के भीतर द्वारकापुरी नाम से अत्यन्त दुर्गम नगर के निर्माण का वर्णन है, जिसमें

सभी वस्तुएँ अद्भुत थीं और जिसकी लम्बाई-चौड़ाई अड़तालिस कोस की थी। उस नगर की एक-एक वस्तु में विश्वकर्मा का विज्ञान (वास्तुशास्त्र) और शिल्पकला का नैपुण्य प्रकट होता था। उसमें वास्तुशास्त्र के अनुसार बड़ी-बड़ी सड़कों, चौराहों और गलियों का यथास्थान ठीक-ठीक विभाजन किया गया था—

इति सम्मन्त्र्य भगवान् दुर्गं द्वादशयोजनम्।
अन्तः समुद्रे नगरं कृत्स्नाद्भुतमचीकरत्॥
दृश्यते यत्र त्वाष्ट्रं विज्ञानं शिल्पनैपुणम्।
रथ्या चत्वरवीथिभिर्यथावास्तु विनिर्मितम्॥

(श्रीमद्भा० दशम स्कन्ध, अध्याय-५०)

मत्स्यपुराण में वास्तुशास्त्र के अठारह आचार्यों का नामोल्लेख करते हुए वास्तुपुरुष की उत्पत्ति का विवरण भी दिया गया है—

'भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा।
नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्षः पुरन्दरः॥
ब्रह्मा कुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग एव च।
वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्र बृहस्पतिः॥
अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशकाः।
संक्षेपेण उपदिष्टं यन्मनवे मत्स्यरूपिणा॥'

—मत्स्यपुराण अध्याय २५२। २-४

अर्थात् १. भृगु, २. अत्रि, ३. वसिष्ठ, ४. विश्वकर्मा, ५. मय, ६. नारद, ७. नग्नजित्, ८. विशालाक्ष, ९. इन्द्र, १०. ब्रह्मा, ११. कुमार (कार्तिकेय), १२. नन्दीश्वर, १३. शौनक, १४. गर्ग, १५. वासुदेव, १६. अनिरुद्ध, १७. शुक्राचार्य, तथा १८. बृहस्पति—ये अठारह वास्तुशास्त्र के उपदेशक विख्यात हैं। इन अठारह आचार्यों में से मनु (वैवस्वत) को प्रलयकाल में संक्षेप में मत्स्यरूपधारी भगवान् ने वास्तुशास्त्र का उपदेश दिया था। यहाँ इन वास्तुशास्त्रियों का ऐतिहासिक परिचय अति आवश्यक होने से द्रष्टव्य है—

भृगु—ये शुक्राचार्य के पिता भृगुवारुणि थे, ये अप्रतिम विद्वान् तथा अनेक शास्त्रों के ज्ञाता थे। इनको हिरण्यकशिपु की पुत्री दिव्या व्याही थी। ये ज्योतिषशास्त्र के भी विद्वान् थे।

अत्रि—इनका पूरा नाम अत्रिवारुणि था, ये वरुणदेव के तृतीय पुत्र थे। इन्होंने ज्योतिषशास्त्र का भी प्रवर्त्तन किया था।

वसिष्ठ—ये पराशर के पिता शक्तिवसिष्ठ थे। इन शक्तिवसिष्ठ के सम्बन्ध सुदास ऐक्ष्वाक से मधुर थे, परन्तु उनके पुत्र कल्माषपाद से बिगड़ गये थे। ये बाईसवें व्यास थे। जब इनका संघर्ष कल्माषपाद से हुआ तो उसने इन्हें जला दिया था।

कल्माषपाद को ही सौदास भी कहते हैं। जिसके वंशजों में ही सऊदी अरब का सऊद वंश हैं।

विश्वकर्मा—ये शुक्राचार्य के पुत्र थे, इन्हीं को त्वष्टा भी कहा जाता है। इन्हें वास्तुशास्त्र के साथ ज्योतिष का ज्ञान अपने पिता से प्राप्त हुआ था तथा कुछ ज्ञान इन्होंने बृहद्रथ से प्राप्त किया था। इनका वध इन्द्र द्वारा किया गया था। इनकी माता का नाम 'गौ' था, जो कि सोमप नामक पितृगणों की पुत्री थीं। त्वष्टा के तीन भाई और थे जिनके नाम वरुत्री, शण्ड तथा मर्क थे। ये असुरों में रहने के ही कारण असुर कहलाते थे।

मय—यह त्वष्टा (विश्वकर्मा) का तीसरा पुत्र था तथा इससे छोटी बहिन थी जिसका नाम 'सरण्यू' था, जो विवस्वान् (सूर्य) को ब्याही गयी थी। इसको ज्योतिष-शास्त्र तथा वास्तुशास्त्र का ज्ञान विवस्वान् से ही प्राप्त हुआ था। आजकल अमरीका महाद्वीप में जिस मय सभ्यता का उल्लेख मिलता है, वह इसी मय जाति की सभ्यता थी। इस जाति में अनेक वैज्ञानिक हुए हैं, जिन्हें 'मय' ही कहा जाता रहा है। महाभारत एवं रामायण के मय अलग-अलग व्यक्ति थे तथा उन्हें इस शास्त्र का ज्ञान परम्परागत रूप से प्राप्त होता रहा था। रावण का ससुर मय तथा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में यज्ञभूमि तथा उस काल में अन्य प्रासादों को बनानेवाले मय एक नहीं थे, परन्तु पण्डित भगवद्दत्तजी उन्हें एक ही मानते हैं। (भारतवर्ष का बृहद् इतिहास भाग १ पृष्ठ १४६)

नारद—देवर्षि नारद पूर्वजन्म में परमेष्ठी प्रजापति के पुत्र थे। पुनः वे दक्ष के पुत्र होकर जन्मे। उन्हें कश्यप का पुत्र भी माना जाता है। अतः नारद दक्षपुत्रों के भ्राता थे। जिस प्रकार नारद का जन्म एक पहेली है, उसी प्रकार उनकी दीर्घायु तथा बहुमुखी प्रतिभा भी एक पहेली है। इनके भानजे पर्वत नाभक ऋषि थे। ये ज्योतिष सामुद्रिक, वास्तु, संगीत, दर्शनशास्त्र इत्यादि अनेक विषयों एवं विद्याओं के ज्ञाता थे। नारदजी के ज्ञानोपदेश से बाद में ये परिव्राजक बन गये थे—

'यं कश्यपं सुतवरं परमेष्ठी व्यजीजनत्।
दक्षस्य दुहितरिदक्षशापभयान्मुनिः॥'

(हरिवंशपुराण १। ३। ९)

'विनाशसंशसी कंसस्य नारदो मथुरा ययौ।'

(हरिवंशपुराण २। १। १)

'नारदो मातुलश्चैव भागिनेयश्च पर्वतः।'

(महाभारत १२। ३०। ६)

नग्नजित्—इतिहास एवं पुराणों में ये गन्धारनरेश कहे जाते हैं। ये महाभारत युद्ध के दो सहस्राब्दी पूर्व अथवा ईस्वी सन् के पाँच सहस्राब्दी पूर्व विद्यमान् थे। आयुर्वेद के उपदेष्टा चरक एवं भेल के गुरु पुनर्वसु आत्रेय के समय में ये हुए थे।

विशालाक्ष—यह भगवान् शिव का ही नाम है। इनका समय निर्धारण नहीं हो सका है, परन्तु ये सर्वविद्याओं के प्रवर्त्तक माने जाते हैं।

इन्द्र—यह भी बहुत दीर्घायु थे। ये सप्तम युगीन व्यास थे इनके पिता प्रजापति परमेष्ठी कश्यप थे। यह सब देवों में कनिष्ठ थे। इनका जन्मकालीन नाम शक्र था। ये वैवस्वतयम के शिष्य थे उनसे इन्होंने इतिहास-पुराण का अध्ययन किया था। इन्होंने अनेक गुरुओं से अलग-अलग विद्याएँ सीखी थीं। ये आयुर्वेद, ज्योतिष, व्याकरण, वास्तुशास्त्र आदि अनेक विषयों के विद्वान् थे।

ब्रह्मा—इनका कालनिर्णय अशक्य है; क्योंकि इक्कीस प्रजापतियों को ब्रह्मा नाम से जाना जाता है। ये भी अनेक विद्याओं, शास्त्रों तथा वेदादि के लिये व्यास माने जाते हैं।

कुमार—इनका नाम स्कन्द एवं कार्तिकेय भी था, ये रुद्र नीललोहित शिव के पुत्र थे—

'अपत्यं कृत्तिकानान्तु कार्तिकेय इति स्मृतः।
स्कन्दः सनत्कुमारश्च सृष्टः पादेन तेजसः॥'

(हरिवंशपुराण १।१३।४३)

इनका समय-निर्धारण अशक्य है।

नन्दीश्वर—ये शिवजी के प्रमुख शिष्य एवं सेवक थे, इन्होंने अनेक प्रकार के तन्त्रों तथा विद्याओं का अध्ययन भगवान् शंकर (विशालाक्ष) से ही किया था। पर्वतीय स्थानों के भवन-निर्माण की विद्या में इन्हें विशेष दक्षता प्राप्त थी।

शौनक—शुनक ऋषि के पुत्रगण शौनक कहे जाते हैं।

गर्ग—आज से पाँच सहस्राब्दियों पूर्व विद्यमान थे। ये यदुवंश के पुरोहित थे। इनके शिष्यगण एशिया तथा यूरोप के अनेक भागों में थे। रूस का गार्ग्य प्रदेश ही आजकल जार्जिया कहलाता है। श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में इनके सम्बन्ध में लिखा है—

'गर्गः पुरोहितो राजन् यदूनां तु महातपाः।
ज्योतिषामयनं साक्षाद् यत्तद् ज्ञानमतीन्द्रियम्।
प्रणीतं भवता येन पुमान् वेदपरावरम्॥'

वासुदेव—ये श्रीकृष्ण वासुदेव थे, जिन्हें भगवान् श्रीकृष्ण के नाम से हम सब जानते हैं। ये वसुदेव के पुत्र होने से वासुदेव कहे जाते थे। इन्होंने सान्दीपनि गुरु के आश्रम में सम्पूर्ण विद्याओं का अध्ययन किया था। वास्तुशास्त्र के विशेष रहस्यों को इन्होंने विश्वकर्मा (त्वष्टा) के पुत्र मय से जान लिया था। इस बात का उल्लेख 'विश्वकर्मप्रकाश' (प्रस्तुत ग्रंथ) के अन्त में भी किया गया है। इन्होंने इसी विद्या के

आधार पर समुद्र में शत्रुओं के सुरक्षित द्वारकापुरी का निर्माण कराया था, जो कि राजधानी थी। ये आज से ५२०० वर्ष पूर्व विद्यमान थे।

अनिरुद्ध—यह वासुदेव कृष्ण के पौत्र तथा प्रद्युम्न के पुत्र थे। इनका गान्धर्व विवाह बाणासुर की पुत्री उषा के साथ हुआ था। ये महाभारत के युद्ध के कुछ काल के उपरान्त तक विद्यमान रहे थे। अनिरुद्ध को कोई भी योद्धा कितना ही बलशाली हो हाथों से पकड़ नहीं सकता था और न उन्हें कैद ही किया जा सकता था, इसीलिये उनका नाम अनिरुद्ध पड़ गया था।

शुक्राचार्य—इनका नाम उशना, काव्य तथा भार्गव भी था। इनका जन्म हिरण्यकशिपु के राज्यकाल में ही हो गया था। ये अनेक शताब्दियों तक जीवित रहे थे। ये भृगुवंशियों के शासक बनाये गये थे—

'भृगूणामधिपञ्चैव काव्यं राज्येऽभ्यषेचयत्।'

(वायुपुराण ७०।४)

ये दैत्यों (असुरों) के पुरोहित थे। इनके पुत्र त्वष्टा (विश्वकर्मा), वरुत्री, शण्ड तथा मर्क थे। त्वष्टा के पुत्र त्रिशिरा (विश्वरूप), वृत्र, मय आदि थे। इन्होंने पश्चिम के देशों में अपने राज्य को फैलाया और अफ्रीका में त्रिपुरनगर (त्रिपोली), वहीं लेबनान में बेरुत (वरुत्री) की नींव रखी। यूरोप में डेनमार्क (दानवमर्क), दनायु (डेन्यूब) आदि नाम आज भी इसका साक्ष्य दे रहे हैं। त्वष्टा के पुत्र मय के नाम पर अमेरिका में मय राज्य स्थापित हुआ। इन शुक्राचार्य (काव्य, उशना) के महत्त्व को दर्शाते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है—'कवीनामुशना कविः'। ये हिरण्यकशिपु से लेकर वृत्रासुर तक दैत्य राजाओं के पुरोहित रहे थे।

शुक्राचार्य अनेक विद्याओं एवं ज्ञान-विज्ञानों में निष्णात थे। वे तृतीय वेद व्यास के नाम से भी जाने जाते हैं। औशनस अर्थशास्त्र (शुक्रनीति) के साथ अनेक ग्रंथ उनके नाम से जाने जाते हैं। ज्योतिष ग्रंथों में उनके नाम के उद्धरण मिलते हैं। वे एक श्रेष्ठ वास्तुविद् थे। कब्बाला नामक एक संहिता ग्रन्थ भी उनके काव्यमाला नामक ग्रन्थ का ही नाम है, जो मिश्री (अरबी) तथा हिब्रूभाषाओं में किसी समय ज्योतिष एवं सामुद्रिक ज्ञान के लिये पूरे यूरोप में प्रसिद्ध हो गया था। पारसी धर्मग्रन्थ जेन्दाअवेस्ता (छन्दावस्था) इन्हीं की कृति है। ऋग्वेद के कुछ मन्त्र भी इनके द्वारा दृष्ट हैं। अथर्ववेद के अनेक सूक्त इनके नाम से हैं। ईरानी ग्रन्थों के अनुसार उशाकैकस (उशना काव्य) ईरानियों के अधिपति थे। उशना आयुर्वेद के भी कर्त्ता थे। सुश्रुतसंहिता (कल्प० १।७८) तथा अष्टांग हृदय (उत्तर० १।४०) में इनके विषनाशक औषध प्रयोगों का उल्लेख है।

बृहस्पति—इनको बृहस्पति अंगिरस कहते हैं। ये देवताओं के पुरोहित थे। इन्होंने वेदाध्ययन ब्रह्मा कश्यप से किया था तथा पुराणों का अध्ययन शुक्राचार्य से; परंतु

शुक्राचार्य की तामसी वृत्ति से इनका मतभेद हो गया था। अतः दोनों में संघर्ष चलता रहा। विवस्वान् तथा इन्द्र इन्हीं के शिष्य थे। राजा उपरिचरवसु भी बृहस्पति का यजमान तथा शिष्य था। ये चौथे वेदव्यास कहे जाते हैं, जिन्होंने वेदमन्त्रों के साथ व्याकरण, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण तथा वास्तुशास्त्र की रचना की थी।

वाल्मीकि रामायण में वास्तुशास्त्र की चर्चा—राजा दशरथ के समय में इस देश में वास्तुशास्त्र अपनी ऊँचाइयों को छू रहा था। अयोध्या नगरी के वास्तुकौशल की बानगी देखिये—

'आयता दश द्वे च योजनानि महापुरी।
श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा सुविभक्त महापथा॥
राजमार्गेण महता सुविभक्तेन शोभिता।
मुक्तपुष्पावकीर्णेन जलसिक्तेन नित्यशः॥
तां तु राजा दशरथो महाराष्ट्रविवर्धनः।
पुरीमावासयामास दिवि देवपतिर्यथा॥
कपाटतोरणवतीं सुविभक्तान्तरापणाम्।
सर्वयन्त्रायुधवतीमुषितां सर्वशिल्पिभिः॥'

—रामायण बालकाण्ड ५।७-१०

अर्थात् यह पुरी (अयोध्या) बारह योजन (६४ मील=लगभग ९६ कि०मी०) लम्बी तथा तीन योजन (१६ मील=२४ कि०मी०) चौड़ी थी। जिसमें सुविभक्त महापथोंवाले राजमार्ग थे, जिन पर प्रतिदिन जल का छिड़काव तथा पुष्पवृष्टि होती थी। उस पुरी में महाराज दशरथ इन्द्र की भाँति रहते थे। उसमें कपाट, तोरण, सुविभक्त अन्तरापण (बाजार) थे तथा सभी प्रकार के यन्त्र तथा आयुध थे। इसी प्रकार राजा दशरथ के द्वारा किये गये यज्ञ में शुल्बशास्त्र (यज्ञीय वास्तुशास्त्र) के अनुसार यज्ञशाला निर्माण की भी चर्चा मिलती है, जिसमें इक्कीस खम्भे तथा पक्की ईंटों से निर्मित यज्ञ-कुण्ड का विवरण है—

'कारिता सर्व एवैते शास्त्रज्ञैर्यज्ञकोविदैः।
शोभार्थं तस्य यज्ञस्य काञ्चनालङ्कृता भवन्॥
एकविंशति यूपास्त एकविंशत्यरत्नयः।
वासोभिरेक विंशद् भिरेकैकं समलङ्कृताः॥'

(बालकाण्ड १४।२४-२५)

'इष्टकाश्च यथान्यायं कारिताश्च प्रमाणतः।
चितोऽग्निर्ब्राह्मणैस्तत्र कुशले शिल्पकर्मणि॥'

(बालकाण्ड १४।२८)

रामायण में अन्य स्थलों पर भी ऐसे ही विवरण उपलब्ध होते हैं।

महाभारत में वास्तुशास्त्र की चर्चा—महाभारत में अनेक स्थलों पर वास्तु निर्माण का वर्णन मिलता है। हस्तिनापुर नगर का निर्माण, यादवों की राजधानी द्वारका का निर्माण तथा युद्ध से भागे दुर्योधन का पनडुब्बी (प्रायुव) नामक भवन में जलाशय के बीच में छिपकर निवास करना आदि ऐसी घटनाएँ हैं, जो उस समय की वास्तु-निपुणता को प्रमाणित करती हैं। यहाँ कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१) अपने शिष्यों के अस्त्र-कौशल का प्रदर्शन कराने के लिये आचार्य द्रोण ने रंगमण्डप तैयार कराया था। उसे तैयार करने में इन्होंने वास्तुशास्त्र का पूरा ध्यान रखा। उन्होंने रंगमण्डप के लिये एक समतल भूमि पसन्द की और उसका माप करवाया। उसमें वृक्ष या झाड़-झंखाड़ नहीं थे। वह उत्तर दिशा की ओर नीची थी। वक्ताओं में श्रेष्ठ द्रोण ने वास्तुपूजन देखने के लिये डिण्डिम-घोष कराकर वीर समुदाय को आमन्त्रित किया और उत्तम नक्षत्र से युक्त तिथि में उस भूमि पर वास्तुपूजन किया। तत्पश्चात् उनके शिल्पियों ने उस रंगभूमि में वास्तुशास्त्र के अनुसार विधिपूर्वक एक विशाल प्रेक्षागृह की नींव डाली—

भारद्वाजो महाप्राज्ञो मापयामास मेदिनीम्॥
समामवृक्षां निर्गुल्मामुदक्प्रस्त्रवणान्विताम्।
तस्यां भूमौ बलिं चक्रे तिथौ नक्षत्रपूजिते॥
अवघुष्टे समाजे च तदर्थं वदतां वरः।
रङ्गभूमौ सुविपुलं शास्त्रदृष्टं यथाविधि॥
प्रेक्षागारं सुविहितं चक्रुस्ते तस्य शिल्पिनः।

(महा० आदि० १३३।८-११)

(२) लाक्षागृह-प्रकरण से भी यह ज्ञात होता है कि महाभारत काल में वास्तुशास्त्र पर्याप्त समृद्ध था। दुर्योधन ने पुरोचन को चतुःशाल भवन बनाने की आज्ञा दी थी, जिसमें घी, तेल, चर्बी तथा मिट्टी में मिलाकर लाह का प्रयोग करने को कहा गया था—

तत्र गत्वा चतुःशालं गृहं परमसंवृतम्।
नगरोपान्तमाश्रित्य कारयेथा महाधनम्॥
शणसर्जरसादीनि यानि द्रव्याणि कानिचित्।
आग्नेयान्युत सन्तीह तानि तत्र प्रदापय॥
सर्पिस्तैलवसाभिश्च लाक्षया चाप्यनल्पया।
मृत्तिकां मिश्रयित्वा त्वं लेपं कुड्येषु दापय॥

(महा० आदि० १४३।८-१०)

(३) दैत्यशिल्पी मय के द्वारा तैयार किया गया युधिष्ठिर का अद्भुत सभाभवन भी वास्तुशास्त्र का श्रेष्ठ नमूना था। उसके निर्माण में वास्तुशास्त्र के सिद्धान्तों यथा— शिल्पी का सम्मान, मंगलानुष्ठान, ब्राह्मण-भोजन, दान तथा भूमि की माप आदि का सम्यक् पालन हुआ था—

तस्मै युधिष्ठिरः पूजां यथार्हमकरोत् तदा।
स तु तां प्रतिजग्राह मयः सत्कृत्य भारत॥

× × × ×

पुण्येऽहनि महातेजाः कृतकौतुकमङ्गलः॥
तर्पयित्वा द्विजश्रेष्ठान् पायसेन सहस्रशः।
धनं बहुविधं दत्त्वा तेभ्य एव च वीर्यवान्॥
सर्वर्तुगुणसम्पन्नां दिव्यरूपां मनोरमाम्।
दशकिष्कुसहस्त्रां तां मापयामास सर्वतः॥

(४) पर्वतों के मध्य बने दुर्ग में यदि किसी पर्वत का शिखर गिर जाता है, तो वास्तुशास्त्र के अनुसार वह अशुभ होता है। श्रीकृष्ण ने जब भीम और अर्जुन के साथ जरासंध की राजधानी गिरिव्रज में प्रवेश किया था, तो चैत्यक पर्वत के शिखर को गिरा दिया था। उस समय वेदज्ञ विद्वानों ने इन अपशकुनों की सूचना जरासंध को दी और इस अपशकुन के निवारणार्थ राजा को हाथी पर बैठाकर उसमें चारो ओर प्रज्वलित अग्नि घुमायी थी। राजा जरासंध ने भी अनिष्ट की शांति के लिये व्रत की दीक्षा ली और उपवास किया था—

एतस्मिन्नेव काले तु ब्राह्मणा वेदपारगाः।
दृष्ट्वा तु दुर्निमित्तानि जरासन्धमदर्शयन्॥
पर्यग्न्यकुर्वंश्च नृपं द्विरदस्थं पुरोहिताः।
ततस्तच्छान्तये राजा जरासन्धः प्रतापवान्॥
दीक्षितो नियमस्थोऽसावुपवासपरोऽभवत्॥

(महा० सभा० २१।२२-२३)

पालि-प्राकृत एवं अपभ्रंश आदि प्राचीन भाषाओं में वास्तुशास्त्र— भगवान् बुद्ध का वास्तविक जन्म समय कलियुग के १३१० वर्ष बीतने पर अर्थात् आज से लगभग ३८०० वर्ष पूर्व अथवा ईसासे १८०० वर्ष पूर्व हुआ था परन्तु आज जो उनकी जन्म-तिथि स्कूलों में रटाई जा रही है वह तो बारह सौ वर्ष अर्वाचीन है। उनके समय में भी वास्तुकला उन्नति पर थी। बौद्धकाल में २७ गणतन्त्र थे, उनकी राजधानियों के नगर भव्य रूप में बसे हुए थे। पाटली पुत्र नगर अनेक परकोटों से युक्त था। भिक्षुओं के लिये अनेक विहार तथा भगवान् बुद्ध की अस्थियों

पर अनेक स्तूप उस काल में बनाये गये। पालि भाषा में श्रीलंका तथा बर्मा आदि में कुछ ग्रन्थ-ज्योतिष आयुर्वेद तथा वास्तुशास्त्र पर भी लिखे गये। उत्तरकाल में भिक्षुओं के लिये अनेक गुफाओं का निर्माण भी हुआ। नालन्दा एवं तक्षशिला के विश्वविद्यालयों के वास्तु भी बौद्धकाल में ही बने। धनी गृहस्थ विशाल बौद्धविहार बनवाकर भिक्षुओं को दान कर देते थे। विमानवत्थु में भिक्षुओं को विहारदान का फल बताते हुए कहा है—

'सावत्थियं मय्हं सखी भदन्ते सङ्घस्सकारेसि महाविहारं।
तत्थपसन्ना अहमानुमोदि दिस्वाअगारं च पियञ्च मेतं॥'

(विमानवत्थुपालि १।४४)

जैन सम्प्रदाय के मन्दिरों के निर्माण के लिये प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं में वास्तु-ग्रन्थों की रचना हुई। प्राकृत में स्थपति को 'थवई' कहा गया है। संस्कृत में 'गौतमीयम्' तथा 'बौद्धमतम्' आदि ग्रन्थों की रचना की गयी।

विश्व को भारतीय वास्तुकला की देन—मिश्र के पिरामिडों में कुछ स्थलों पर वैष्णवतिलक लगाये हुए कारीगरों के चित्र खुदे हुए पाये गये हैं, जो इस बात के प्रमाण हैं कि उन पिरामिडों के निर्माता भारतीय ही थे। मुस्लिमतीर्थ मक्का में भी भारतीय वास्तुविदों ने विशाल मन्दिर बनाया था जिसमें हरिहरेश्वर विम्ब (चौकोर पत्थर) के साथ वर्ष के ३६० दिनों (सूर्य के अंशों) की प्रतीक ३६० मूर्तियाँ रखी गयी थीं। इटली की वेटिकन नगरी में आज भी बड़े-बड़े शिवलिंग खड़े हुए हैं। अमेरिका में पुरातत्त्व खुदाईयों में कुछ स्थलों पर गणेशजी की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। अफगानिस्तान की विशाल बुद्ध प्रतिमा भारतीय वास्तुकला का जीता जागता नमूना है। पूर्व के बौद्ध मन्दिरों पर भारतीय वास्तुकला का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

इस्लामिक आक्रमण से ग्रन्थों एवं वास्तुकला का नाश—इस्लामिक आक्रमणकारियों ने संस्कृत-पालि एवं प्राकृत के साथ अपभ्रंश एवं प्राचीन तमिल के ग्रन्थों को आग में जला दिया तथा मन्दिरों आदि को ध्वस्त कर दिया गया। अत: अब बहुत-सा उपयोगी साहित्य नष्ट हो गया है। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध वास्तुकलाविद् श्री ई०बी० हेवेल, जो ब्रिटिश शासनकाल में चेन्नई (मद्रास) तथा कोलकाता में वास्तुकला-सम्बन्धी विद्यालयों में प्रधानाचार्य थे, उन्होंने अपनी पुस्तक के प्रारम्भ में लिखा है—

'भारतीय कला की कुछ-कुछ किंकर्त्तव्यविमूढकारी भूलभूलैयों में अपना मार्ग प्रशस्त करनेवाला विद्यार्थी यूरोपीय लेखकों के वर्गीकरण तथा विश्लेषण द्वारा प्राय: सम्भ्रमित हो जाता है। इन सब गलत एवं भ्रान्त धारणाओं का मूल आधार एक

निश्चित विचार है—वह यह विश्वास है कि हिन्दू मस्तिष्क में सत्य-सौन्दर्य की भावना सदैव लुप्त रही है और भारतीय वास्तुकला में कुछ महान् है उसका सुझाव अथवा प्रथम परिचय विदेशियों द्वारा ही दिया गया है।'

'जब अरब लोग अपनी विजय-यात्रा पर चले तब उनके मूर्तिभंजक धार्मिक उन्माद के प्रथम शिकार पश्चिम एशिया के बौद्धों, मूर्तिपूजकों के मन्दिर और मठ ही थे.......वे मूर्तियों को चकना चूर करके शिल्पकलात्मक अलंकरण को विनष्ट करके खाली आलोंवाले भवनों (पूर्ववर्त्ती बौद्ध देवालयों) को जिनकी सुदृढ़ दीवारें ही शेष रह जाती थीं—प्राय: मस्जिदों में परिवर्तित कर दिया गया था।'

'बौद्धकला पूर्व शताब्दियों में सारे पश्चिमी एशिया में फैल चुकी है। बौद्ध-हिन्दूकला उस समय चरमोत्कर्ष पर थी जब भारत को मुहम्मदी आक्रमणों का प्रथम आघात पहुँचा था।' (विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय—ले०पु०ना० ओक १९८३ ई० पृ० ६३-६५)

वास्तुशास्त्र की शाखाएँ—यों तो वास्तुशास्त्रसंहिता ज्योतिष के अन्तर्गत है, परन्तु वह एक विशाल विषय है, अत: उसकी अनेक शाखाएँ हैं; जिनमें १. यज्ञीय-वास्तु (शुल्बशास्त्र), २. गृहवास्तु, ३. नगरवास्तु (अथवा ग्रामवास्तु), ४. प्रासाद-वास्तु (देवालय), ५. उद्यान (आरामवास्तु) तथा ६. जलाशयवास्तु मुख्य हैं। इन सभी के अतिरिक्त विमान विद्या तथा यन्त्रवास्तु भी दो विशेष शाखाएँ है।

वास्तुशास्त्र के स्वतन्त्रग्रन्थ—वास्तुशास्त्र पर देववाणी संस्कृत में सैकड़ों ग्रन्थ लिखे गये थे, जिनमें से बहुत कुछ जो भी बचे हैं वे चेन्नई, तिरुवनन्तपुरम् बड़ौदा मैसूर आदि के पौर्वात्य पुस्तकालयों में उपलब्ध हैं। इनमें से प्रमुख निम्न हैं—१. वास्तुमण्डन, २. गृहवास्तुसार, ३. निर्दोषवास्तु, ४. वास्तुचक्र, ५. वास्तुशास्त्र (भोजदेव), ६. वास्तुमंजरी, ७. वास्तुवाधिकार, ८. मानविज्ञान, ९. विश्वम्भरवास्तु, १०. प्रासादनिर्णय, ११. कुमारवास्तु, १२. आयादि लक्षण, १३. वास्तुविधि, १४. वास्तुरत्नावली, १५. वास्तुपद्धति, १६. वास्तुतिलक, १७. वास्तुसौख्यम् (टोडरमलकृत), १८. वास्तुविद्यापति, १९. विश्वकर्मप्रकाश, २०. मयमतम्, २१. मानसार तथा २२. वास्तुसूत्र उपनिषद्। इनमें से कुछ प्रकाशित भी हो चुके हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्बन्ध में—इस ग्रन्थ का नाम 'विश्वकर्मप्रकाश' है। ग्रन्थ के अन्त में दी गयी परम्परा के अनुसार वास्तुशास्त्र का उपदेश गर्ग ने पराशर को पराशर ने बृहद्रथ को तथा बृहद्रथ ने विश्वकर्मा को दिया था। विश्वकर्मा से यह वासुदेव श्रीकृष्ण तथा उनसे श्रीअनिरुद्ध को प्राप्त हुआ—

'इति प्रोक्तं वास्तुशास्त्रं पूर्वं गर्गाय धीमते।
गर्गात्पराशरः प्राप्तः तस्मात्प्राप्तो बृहद्रथः॥

बृहद्रथात् विश्वकर्मा प्राप्तवान् वास्तुशास्त्रकम्।
स विश्वकर्मा जगतीहिताय कथयत् पुनः॥
वासुदेवादिषु पुनर्भूलोके भक्तितोऽब्रवीत्।'

इस ग्रन्थ में चौदह अध्यायों में वास्तुशास्त्र का सर्वांगीण वर्णन है। ग्रन्थ के मूल पाठ को सम्पादित तथा यथासम्भव शुद्ध करके उसकी सरल हिन्दी व्याख्या की गयी है। आवश्यक स्थलों पर रेखाचित्र, चक्र तथा सारिणियाँ देकर विषय को यथासम्भव सरल तथा बोधगम्य बनाने की चेष्टा की गयी है। इस प्रकार यह संस्करण ज्योतिष एवं वास्तुशास्त्र के विद्यार्थियों, स्थपतियों तथा वास्तुविदों के लिये अतीव उपयोगी सिद्ध होगा, ऐसी अपेक्षा है।

या वा मानवधर्मत्वाद् या वा मद् दृष्टिदोषतः।
मुद्रणादौ त्रुटिर्जाता संशोध्या सा महाशयैः॥

दत्तात्रेयजयन्ती युगाब्द ५१०१

विदुषामनुचर—
अभय कात्यायन

●

—

विषयानुक्रमणिका

द्वितीयोऽध्यायः
समगृहादिनिर्माणाध्यायः

विषय पृष्ठाङ्क

विषय पृष्ठाङ्क

तृतीयोऽध्याय:
गृहवास्तुकालनिर्णयाध्याय:

चतुर्थोऽध्यायः
गृहादिनिर्माणाध्यायः

पञ्चमोऽध्यायः
शिलान्यासाध्यायः

षष्ठोऽध्यायः

प्रासादनिर्माणाध्यायः

सप्तमोऽध्यायः
द्वारनिर्माणाध्यायः

अष्टमोऽध्यायः
जलाशयकरणम्

नवमोऽध्यायः
वृक्षच्छेदनाध्यायः

विषय	पृष्ठाङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क

दशमोऽध्याय:

नवगृहप्रवेशाध्याय:

विषय	पृष्ठाङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क

एकादशोऽध्याय:

दुर्गनिर्माणाध्याय:

त्रयोदशोऽध्यायः

राजभवनवेधनिर्णयाध्यायः

चतुर्दशोऽध्यायः

द्विजातिवेधाध्यायः

●

॥ श्रीः ॥

श्रीविश्वकर्मप्रकाशः

(वास्तुशास्त्रम्)

प्रथमोऽध्यायः

भूम्यादिलक्षणाध्यायः

मङ्गलाचरणम्

जयति वरदमूर्तिर्मङ्गलं मङ्गलानां ;
जयति सकलवन्द्या भारती ब्रह्मरूपा।
जयति भुवनमाता चिन्मयी मोक्षरूपा ;
दिशतु मम महेशो वाङ्मयः शब्दरूपम्॥ १॥

हे मङ्गलों के भी मंगल वरदमूर्ति गणेशजी! आपकी जय हो। हे सर्वजन वन्दनीया ब्रह्मरूपा सरस्वती! आपकी जय हो। हे भुवनमाता चिन्मयी मोक्षस्वरूपा (पार्वतीजी)! आपकी जय हो। हे वाङ्मयस्वरूप महेश्वर! (आपकी जय हो) आप मुझे शब्दों के रूप (अर्थ) का निर्देश करें॥ १॥

टीकाकारकृतं मङ्गलाचरणम्

यक्षेश्वरं नमस्कृत्य बरहाग्रामे संस्थितम्।
विश्वकर्मप्रकाशस्य भाषाटीका करोम्यहम्॥ १॥
साहबदासगौडोऽहं वा अभयकात्यायनः।
दैवाज्ञानां हितार्थे च ब्रह्मविद्याश्रमे स्थितम्॥ २॥

ग्रन्थारम्भ का उद्देश्य

आब्रह्मभुवनाल्लोका गृहस्थाश्रममाश्रिताः।
यतस्तस्माद् गृहारम्भप्रवेशसमयं ह्यहम्॥ २॥

ब्रह्मलोकादि जितने लोक हैं सभी में रहनेवाले गृहस्थाश्रम में आश्रित होकर जीवन-यापन करते हैं। इसलिये मैं उस गृह में रहनेवालों के लिये गृहनिर्माणारम्भ तथा निर्मित गृह में प्रवेश आदि की विधियों का वर्णन (करता हूँ)॥ २॥

वास्तुशास्त्र की परम्परा

प्रवक्ष्यामि मुनिश्रेष्ठ शृणुष्वैकाग्रमानसः।
यदुक्तं शम्भुना पूर्वं वास्तुशास्त्रं पुरातनम्॥ ३॥

पराशरः प्राह बृहद्रथाय बृहद्रथः प्राह च विश्वकर्मणे।
स विश्वकर्मा जगतां हिताय प्रोवाच शास्त्रं बहुभेदयुक्तम्॥ ४॥

हे मुनिश्रेष्ठ! एकाग्रचित्त से सुनो, मैं आपको भगवान् शंकर द्वारा पूर्व में कहा गया प्राचीन वास्तुशास्त्र उपदिष्ट कर रहा हूँ॥ ३॥

इस वास्तुशास्त्र को भगवान् शंकर की कृपा से पराशर ने प्राप्त किया, फिर पराशर ने इस शास्त्र को बृहद्रथ को पढ़ाया, फिर बृहद्रथ ने इसे विश्वकर्मा को पढ़ाया। उन विश्वकर्मा ने जगत् के हित के लिये अनेक भेदों से युक्त वास्तुशास्त्र को मनुष्यों को पढ़ाया॥ ४॥

विमर्श—मत्स्यपुराण (२५२। २-४) में अठारह वास्तुशास्त्रियों का नाम मिलता है—

'भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा।
नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्षः पुरन्दरः॥
ब्रह्मा कुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग एव च।
वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्र बृहस्पतिः॥
अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशकाः।
संक्षेपेण उपदिष्टं यन्मनवे मत्स्यरूपिणा॥'

अर्थात् १. भृगु, २. अत्रि, ३. वसिष्ठ, ४. विश्वकर्मा, ५. मय, ६. नारद, ७. नग्नजित्, ८. विशालाक्ष, ९. पुरन्दर (इन्द्र), १०. ब्रह्मा, ११. कुमार (कार्तिकेय), १२. नन्दीश्वर, १३. शौनक, १४. गर्ग, १५. वासुदेव (कृष्ण), १६. अनिरुद्ध, १७. शुक्र तथा १८. बृहस्पति—ये अठारह वास्तुशास्त्र के उपदेशक प्रसिद्ध हो चुके हैं। इस वास्तुशास्त्र को मत्स्यरूपधारी भगवान् ने संक्षेप में उपदेशित किया था। आगे फिर वास्तुविद्या का सविस्तार वर्णन किया गया है, जिससे पता लगता है कि उस समय में वास्तुशास्त्र कितनी प्रगति पर था।

विश्वकर्मोवाच (वास्तुपुरुष की उत्पत्ति)

वास्तुशास्त्रं प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया॥ ५॥
पुरा त्रेतायुगे ह्यासीन्महाभूतं व्यवस्थितम्।
स्वाप्यमानं शरीरेण सकलं भुवनं ततः॥ ६॥
दृष्ट्वा विस्मयं देवा गताः सेन्द्रा भयावृताः।
ततस्ते भयमापन्ना ब्रह्माणं शरणं ययुः॥ ७॥

विश्वकर्मा ने कहा कि अब मैं लोकों के हित के लिये वास्तुशास्त्र का उपदेश करता हूँ॥ ५॥

प्राचीनकाल में त्रेतायुग की बात है उस समय एक महाभूत (विशालकाय प्राणी) उत्पन्न हुआ और अपने शरीर को सम्पूर्ण भुवन में लिटा दिया (सुला दिया)।

उसे देखकर देवता तथा इन्द्र अत्यन्त भयभीत तथा आश्चर्यचकित होकर ब्रह्माजी की शरण में गये॥ ६-७॥

ब्रह्माजी द्वारा देवताओं का भय दूर करना

भूतभावन भूतेश महद् भयमुपस्थितम्।
क्वयास्यामः क्व गच्छामो वयं लोकपितामह॥ ८॥
मा कुर्वन्तु भयं देवा विगृह्येतन् महाबलम्।
निपात्याधोमुखं भूमौ निर्विशङ्का भविष्यथ॥ ९॥

हे भूतभावन, भूतेश! महान् भय उपस्थित हुआ है, हम इस महान् भूत के कारण कहाँ जायें, कहाँ भाग जायें? हे पितामह! कुछ उपाय बतायें॥ ८॥

तब ब्रह्माजी बोले कि हे देवताओं आप लोग भयभीत न हों अपितु इस महाबली को आप लोग अधोमुख कर दें। अर्थात् अर्थ यह 'चित्त' लेटा है, इसे सब मिलकर पट कर दें तथा शंकारहित हो जायें॥ ९॥

देवों द्वारा वास्तुपुरुष को अधोमुख करना

ततस्तैः क्रोधसन्तप्तैः गृहीत्वा तं महाबलम्।
विनिक्षिप्तमधोवक्त्रं स्थितास्तत्रैव ते सुराः॥ १०॥

तब क्रोध से सन्तप्त होकर देवता लोगों ने उस महाबली को पकड़कर औंधेमुँह करके पटक दिया और वे उसी अधोमुख वास्तुपुरुष पर बैठ गये॥ १०॥

वास्तुपुरुष के जन्म की तिथि आदि का कथन

तमेव वास्तुपुरुषं ब्रह्मा समसृजत्प्रभुः।
कृष्णपक्षे तृतीयानां मासि भाद्रपदे तथा॥ ११॥
शनिवारेऽभवज्जन्म नक्षत्रे कृत्तिकासु च।
योगस्तस्यव्यतीपातः करणं विष्टिसंज्ञकम्॥ १२॥
भद्रान्तरेऽभवज्जन्म कुलिकेतु तथैव च।
क्रोशमानं महाशब्दं ब्रह्माणं समपद्यत॥ १३॥

इस वास्तुपुरुष को भाद्रमास के कृष्णपक्ष की तृतीया तिथि को दिन शनिवार कृत्तिका नक्षत्र, व्यतीपात योग तथा विष्टिकरण (भद्रा) में ब्रह्माजी ने उत्पन्न किया था। इसका जन्म कुलिक वेला में हुआ था, उसने चिल्लाते हुए ब्रह्माजी से कहा॥ ११-१३॥

वास्तुपुरुष की ब्रह्माजी से प्रार्थना

चराचरमिदं सर्वं त्वया सृष्टं जगत्प्रभो।
विनापराधेन च मां पीडयन्ति च सुराः भ्रशम्॥ १४॥

वास्तुपुरुष ने कहा कि हे जगत्कर्त्ता! आपने इस सम्पूर्ण चराचर जगत् को रचा है तथा मुझे भी रचा है, फिर ये देवता मिलकर मुझे क्यों पीड़ित कर रहे हैं?॥ १४॥

ब्रह्माजी का वास्तुपुरुष को वरदान

वरं तस्मै ददौ प्रीतो ब्रह्मा लोकपितामहः।
ग्रामे वा नगरे वापि दुर्गे वा पत्तनेऽपि वा॥ १५॥
प्रासादे वा प्रपायां च जलोद्याने तथैव च।
यस्त्वां न पूजयेन्मर्त्यो मोहाद्वास्तुनरश्च भोः॥ १६॥
अश्रियं मृत्युमाप्नोति विघ्नस्तस्य पदे पदे।
वास्तुपूजामकुर्वाणस्तवाहारो भविष्यति॥ १७॥

तब ब्रह्माजी ने प्रीतिपूर्वक उस वास्तुपुरुष को वरदान देते हुए कहा कि हे वास्तुपुरुष! ग्राम निर्माण, नगर निर्माण, बस्ती निर्माण अथवा दुर्ग (किला) बनाते समय अथवा पत्तन (व्यापारिक नगर) बनाते समय अथवा भवन, प्रपा (प्याऊ=पौसरा, पौशाला=पानी की टंकी, नल, जल प्रदाय योजना आदि), जलाशय, उद्यान आदि के निर्माण से पूर्व जो तुम्हारी पूजा नहीं करेंगे उनकी निर्धन रहकर मृत्यु होगी तथा पग-पग पर उन्हें विघ्न-बाधाएँ आयेंगी। इन अवसरों पर जो वास्तुपूजा नहीं करेगा, वह हे वास्तुपुरुष! तुम्हारा आहार बन जायेगा॥ १५-१७॥

वास्तुपूजा के अवसरों का वर्णन

इत्युक्त्वान्तर्दधे सद्यो देवो ब्रह्मविदां वरः।
वास्तुपूजां प्रकुर्वीत गृहारम्भे प्रवेशने॥ १८॥
द्वाराभिवर्त्तने चैव त्रिविधे च प्रवेशने।
प्रतिवर्षं च यज्ञादौ तथा पुत्रस्य जन्मनि॥ १९॥
व्रतबन्धे विवाहे च तथैव च महोत्सवे।
जीर्णोद्धारे तथा शल्यन्यासे चैव विशेषतः॥ २०॥
वज्राग्नि दूषिते भग्ने सर्पचाण्डालवेष्टिते।
उलूकवासिते सप्तरात्रौ काकाधिवासिते॥ २१॥
मृगाधिवासिते रात्रौ गोमार्जाराभिनादिते।
वारणाश्वादि विरुते स्त्रीणां युद्धाभिदूषिते॥ २२॥
कपोतक गृहावासे मधूनां निलये तथा।
अन्यैश्चैव महोत्पातैर्दूषिते शान्तिमाचरेत्॥ २३॥

ऐसा कहकर ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ श्रीब्रह्माजी बोले कि गृहारम्भ (घर की नींव लगाना) में तथा गृहप्रवेश में, गृह के मुख्य द्वार के निर्माण में तथा तीनों प्रकार के प्रवेश (नूतन गृहप्रवेश, जीर्णग्रहप्रवेश तथा यात्रोपरान्त गृहप्रवेश में, प्रतिवर्ष यज्ञादि में, पुत्रजन्म के अवसर पर, यज्ञोपवीत में, विवाह में, महोत्सव में, जीर्णोद्धार में, शल्यन्यास (टूटे-फूटे को जोड़ने) में विशेषरूप से वास्तुपूजा (वास्तुशान्ति) करनी चाहिये॥ १८-२०॥

यदि घर पर आकाशीय बिजली गिर जाय, घर टूट-फूट जाय, दूषित हो जाय, सर्पों की अधिकता होने पर, चाण्डाल (गोघातक, गोमांसभक्षी) के घर में प्रवेश करने पर, उल्लू रहने लगे, सात दिन तक लगातार कौवों का बसेरा घर में रहने पर, घर में रात्रि में पालतू पशु या गो आदि शब्द करें, सियार आदि बोलें, बिल्ली आदि का शब्द रात्रि में हो। हाथी या घोड़े जोर-जोर से रात्रि में निनाद करें, घर में स्त्रियों का नित्य-कलह होने पर, घर में कबूतरों का वास हो जाने पर, मधुमक्खियों का छत्ता लगने पर तथा जब और भी अन्य प्रकार से गृह दूषित हो (घर पर अकारण विपत्तियाँ आ रही हों) तो ऐसे में वास्तु शान्ति अवश्य करानी चाहिये॥ २१-२३॥
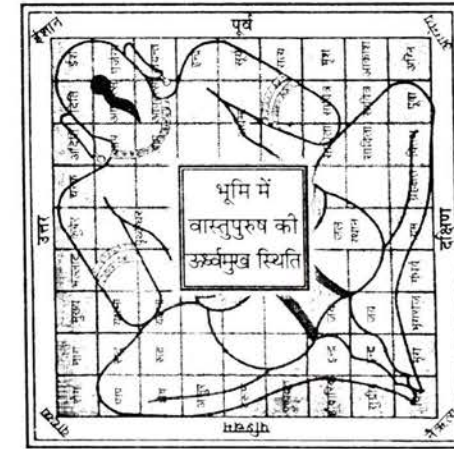
भूमि में वास्तुपुरुष की ऊर्ध्वमुख स्थिति तथा उसके ऊपर देवताओं का निवास

विमर्श—देवताओं के उस महाबली भूत की पीठ पर बैठने तथा वास करने से उस पुरुष का नाम वास्तुपुरुष पड़ गया। मत्स्यपुराण में एक अन्य रोचक कथा इस सम्बन्ध में वर्णित है—

प्राचीनकाल में अन्धक दैत्य के वध के अवसर पर शिवजी ने अपना विकराल रूप बनाया था। तब उनके ललाट (माथे) से पसीने की एक बूँद धरती पर गिर पड़ी, उस बूँद के धरती पर गिरते ही एक विकराल मुखवाला अद्‌भुत प्राणी उत्पन्न हो गया तथा उसने धरती पर गिरी हुई अन्धकासुर के रक्त की बूँदों को पी लिया। परन्तु अन्धक के रक्तपान करने से जब उस प्राणी की तृप्ति नहीं हुई तो वह भगवान् शिव के सम्मुख बैठकर तप करने लगा। तब भैरव ने सन्तुष्ट होकर उससे वरदान माँगने को कहा, तब उस प्राणी ने कहा कि 'हे देवदेवेश! मुझमें तीनों लोकों को ग्रस लेने की सामर्थ्य उत्पन्न हो जाये तो त्रिशूलधारी शिव ने एवमस्तु कह दिया, तब वह प्राणी अपने विशाल शरीर के साथ ऊर्ध्वमुख होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। इससे भयभीत देवों, दानवों आदि ने उसके ऊपर चढ़कर उसे चारों तरफ से काबू में कर लिया। वह पुरुष

देवताओं का निवास बनने के कारण वास्तुपुरुष कहलाया। उसने सभी देवों से प्रार्थना की कि हे देवगणों! आप सब लोग मेरी जीविका का प्रबन्ध करें, जिससे मैं जीवित रह सकूँ। तब ब्रह्मादिक देवताओं ने कहा कि—

'ततो ब्रह्मादिभिः प्रोक्तं वास्तुमध्ये तु यो बलिः।
आहारो वैश्वदेवान्ते नूनमस्य भविष्यति॥
वस्तूपशमनो यज्ञस्तवाहारो भविष्यति।
यज्ञोत्सवादौ च बलिस्तवाहारो भविष्यति॥
वास्तुपूजामकुर्वाणोस्तवाहारो भविष्यति।
अज्ञानात्तु कृतो यज्ञस्तवाहारो भविष्यति॥
एवमुक्तस्ततो हृष्टः स वास्तुरभवत्तदा।
वास्तु यज्ञस्मृतस्तस्मात्ततः प्रभृत्ति शान्तये॥'

—नारदीय पुराण २५२। १७-१९

अर्थात् वास्तु के प्रसंग में जो बलिदान होगा, वह तुम्हारा आहार होगा। वैश्वदेव के अन्त में जो आहार भेंट किया जायेगा, वह तुम्हारा होगा। वास्तुशान्त्यर्थ जो यज्ञ किया जायेगा, वह तुम्हारा आहार होगा। यज्ञ एवं मांगलिक कार्यों में की गयी बलि से तुम्हें आहार मिलेगा। जो अज्ञान से या ज्ञान से वास्तुपूजा नहीं करेंगे, वे भी तुम्हारा आहार होंगे।

देवताओं के इस प्रकार वरदान देने पर वह प्रसन्नतापूर्वक वास्तुपुरुष बन गया (और उसकी पीठ पर मनुष्य तथा देवादि निवास करने लगे) और तभी से संसार में वास्तुशान्ति एवं वास्तुयज्ञ का प्रचलन हो गया!

यह वास्तुपुरुष ईशानकोण में सिर करके अधोमुख पड़ा हुआ कल्पित किया गया है।

चारों वर्णों के लिये वास करने योग्य भूमि के लक्षण

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया।
श्वेता रक्ता तथा पीता कृष्णा वर्णानुपूर्वतः॥ २४॥
सुगन्धा ब्राह्मणी भूमिः रक्तगन्धा तु क्षत्रिया।
मधुगन्धा भवेद् वैश्या मद्यगन्धा च शूद्रिका॥ २५॥
मधुरा ब्राह्मणी भूमिः कषाया क्षत्रिया मता।
अम्ला वैश्या भवेद् भूमिः तिक्ता शूद्रा प्रकीर्तिता॥ २६॥

विश्वकर्मा कहते हैं कि अब मैं लोककल्याण के लिये भूमि के लक्षण कहता हूँ। श्वेतवर्ण की भूमि ब्राह्मणों को, रक्तवर्ण की भूमि क्षत्रियों को, पीतवर्ण की भूमि वैश्यों के लिये तथा कृष्णवर्ण की भूमि शूद्रों को वास करने के लिये उपयुक्त होती है॥ २४॥

ब्राह्मणी भूमि सुगन्धित, रक्तगन्धा (Blood smell) भूमि क्षत्रिया, मधु के समान गन्धवाली भूमि वैश्या (वैश्यों के लिये उपयुक्त) तथा मद्य (Alcohal) के सदृश गन्धवाली भूमि शूद्रा होती है॥ २५॥

ब्राह्मणी भूमि मधुर स्वादवाली, क्षत्रिया भूमि कषाय स्वाद (फिटकिरी के समान स्वाद) वाली, वैश्या भूमि अम्ल स्वाद (खट्टे स्वाद) से युक्त तथा शूद्रा भूमि तिक्ता (नीम-जैसे स्वादवाली) होती है॥ २६॥

विमर्श—भूमि के वर्ण (Colour), गन्ध (Smell) अथवा Odour तथा रस (स्वाद=Taste) के अनुसार उसका प्रभाव लोगों के तन एवं मन पर पड़ता है, अतः बुद्धिजीवियों के लिये ब्राह्मणी भूमि, सैनिकों एवं पुलिसकर्मियों के लिये क्षत्रिया भूमि, व्यापारियों के लिये वैश्या भूमि तथा शूद्रों (शिल्पियों-श्रमिकों आदि) के लिये शूद्रा भूमि में बस्तियाँ बनाना उनकी कार्यक्षमता एवं आनन्द बढ़ाता है। भूमि के वर्णानुसार वर्गीकरण का यही उद्देश्य है।

वास्तु के लिये देवदुर्लभ भूमि के लक्षण

चतुरस्रा द्वीप्याकारां सिंहोक्षाश्वेभरूपिणीम्।
वृत्तञ्च भद्रपीठञ्च त्रिशूलं लिङ्गसन्निभम्॥ २७॥
प्रासादध्वजकुम्भादि देवानामपि दुर्लभाम्।

जो भूमि १. पूर्णतः चौकोर हो, अथवा २. व्याघ्र के आकार की हो अथवा ३. सिंह के आकार की हो, अथवा ४. उक्ष (साँड़) के आकार की हो, अथवा ५. अश्व के आकार की हो, अथवा ६. इभ (हाथी) के आकार की हो, ७. अथवा वृत्ताकार हो, ८. अथवा भद्रपीठ (चौकोर चौकी) के आकार की, अथवा ९. त्रिशूलाकार, अथवा १०. शिवलिंगाकारा अथवा ११. प्रासाद (मन्दिर) ध्वज अथवा कुम्भ (घड़े) के आकार की हो वह भूमि देवताओं के लिये भी दुर्लभ होती है अर्थात् इन आकारों में किसी आकार की भूमि वासस्थान बनाने के लिये अति उत्तम होती है॥ २७-२७½॥

वास्तु में त्याज्य भूमि के लक्षण

त्रिकोणां शकटाकारां शूर्पव्यजनसन्निभाम्॥ २८॥
मुरजाकारसदृशां सर्पमण्डूकरूपिणीम्।
खराजगरसंकाशां बकाञ्चिपिटरूपिणीम्॥ २९॥
मुद्गराभां तथोलूककाकशलभनिभां तथा।
शूकरोष्ट्राजसदृशां धनुः परशुरूपिणीम्॥ ३०॥
कृकलाक्षशवाकारां दुर्गम्याञ्च विवर्जयेत्।

जो भूमि तिकोनी, शकटाकार (बैलगाड़ी के आकार की), शूर्प (सूप) के आकार की, व्यजन (पंखा जो हाथ से झलते हैं) के आकार की, मुरज (मृदंग) के

आकार की, सर्पाकार, मेंढक के आकार की, गदहे, अजगर, बगुला आदि के आकार की तथा चिपिट (नतोदर=Concave) आकार की हो, मुद्गर के आकार की अथवा कौवा, उल्लू, टिड्डा, सूअर, ऊँट, बकरा, धनुष, फरसा, गिरगिट अथवा शव (Dead human body) के आकार की तथा दुर्गम हो—उसे आवास अथवा बस्ती बसाने के लिये त्याग देना चाहिये॥ २८-३०½ ॥

मनोरम भूमि का ही आवास हेतु चयन

मनोरमा च या भूमि: परीक्षेत् प्रयत्नत:॥ ३१॥
द्वितीया दृढभूमिश्च निम्ना चोत्तरपूर्वके।
गम्भीरा ब्राह्मणी भूमि: नृपाणां तुङ्गमाश्रिता॥ ३२॥
वैश्यानां समभूमिश्च शूद्राणां विकटा स्मृता।
सर्वेषाञ्चैव वर्णानां समभूमि: शुभावहा॥ ३३॥
शुक्लवर्णा च सर्वेषां शुभा भूमिरुदाहृता।
कुशकासयुता ब्राह्मी दूर्वा नृपतिवर्गगा॥ ३४॥
फलपुष्पलतावैश्या शूद्राणां तृणसंयुता।

जो भूमि देखने में मनोरम हो, उसी की परीक्षा करनी चाहिये। पूर्व में कथित देवदुर्लभ भूमि के अभाव में जो उत्तम भूमि है अब उसके लक्षण कहते हैं। जो भूमि दृढ हो तथा जो उत्तर एवं पूर्वदिशा में नीची हो (अर्थात् पश्चिम तथा दक्षिण में ऊँची हो) वह भूमि उत्तम होती है॥ ३१-३१½ ॥

ब्राह्मणों के लिये गम्भीर (कुछ गहरी) भूमि उपयुक्त होती है। राजाओं के लिये ऊँची भूमि उचित है, वैश्यों के लिये समभूमि उत्तम होती है तथा शूद्रों के लिये विकट आकार की (Irregular shaped) भूमि जानना चाहिये। सभी के लिये अर्थात् चारों वर्णों के लिये श्वेत वर्ण तथा सम आकार की भूमि शुभ फलदायक होती है॥ ३२-३३½ ॥

जिस भूमि में कुश, काश हो, वह ब्राह्मी भूमि है। जिसमें दूर्वा हो, वह क्षत्रियों के लिये उपयुक्त है। फल, पुष्प तथा लताओं से युक्त भूमि वैश्यों के लिये तथा व्यापारिक प्रतिष्ठानों के लिये उपयुक्त होती है। जिस भूमि में घास-फूस उत्पन्न होता हो, वह शूद्रों के लिये शुभ होती है॥ ३४-३४½ ॥

पुन: वर्जित भूमि के लक्षण

नदीघाताश्रितां तद्वन्महापाषाणसंयुताम्॥ ३५॥
पर्वताग्रेषु संलग्नां गर्त्तां विवरसंयुताम्।
वक्रां सूर्यनिभां तद्वल्लकुटाभां कुरूपिणीम्॥ ३६॥
मुसलाभां महाघोरां वायुना वापि पीडिताम्।
ऋक्षभल्लूकसंयुक्तां मध्ये विकटरूपिणीम्॥ ३७॥

श्वशृगालनिभां रूक्षां दन्तकै: परिवारिताम्।
चैत्यश्मशानवल्मीकधूर्तकालयवर्जिताम्॥ ३८॥
चतुष्पथ महावृक्ष देवमन्त्रि निवासिताम्।
दूराश्रिताञ्च भूगर्त्तयुक्तां चैव विवर्जयेत्॥ ३९॥

जो भूमि नदी के घात (बाढ़ क्षेत्र) में हो, बड़े-बड़े विशाल पत्थरों से युक्त हो, पर्वत के समीप हो अथवा पर्वत के छोर पर हो, गड्ढोंवाली तथा दरारोंवाली हो, टेढ़ी-मेढ़ी हो, सूर्य-जैसे आकार की हो, लकड़ी-जैसे आकार की, कुरूप, मुसलाकार, महाघोर वायुपीड़ित (जहाँ तेज पवन चलती हो), रीछ-भालुओं से युक्त, बीच में विकट रूपवाली, कुत्ता-सियार के आकार की, रूखी, जहाँ हाथियों की संख्या अधिक हो, किसी देवता के चबूतरे, श्मशान, बामींयुक्त हो, धूर्तकालय (गीदड़ों की माँद) से रहित हो। जो भूमि एकदम चौराहे पर महावृक्ष के समीप हो, जिसके समीप देवालय हो, जहाँ शासकीय उच्चाधिकारी मंत्री आदि रहते हों, जो मुख्यमार्ग से बहुत दूर हो, जिसमें अनेक गड्ढे हों—ऐसी भूमि में मकान या बस्ती नहीं बनानी चाहिये॥ ३५-३९ ॥

विमर्श—यहाँ श्लोक ३८ में 'धूर्तकालयवर्जिताम्' वाक्यांश का प्रयोग हुआ है। धूर्तक का अर्थ है शृगाल (Jackal=गीदड़)। जिस भूमि में सियारों के रहने का स्थान नहीं, उस भूमि पर बस्ती या मकान नहीं बनाना चाहिये; क्योंकि सियार प्रकृति का सफाई कर्मचारी है। वह मृत जानवरों को खाकर वातावरण को स्वच्छ रखता है। जहाँ सियार नहीं होंगे, वहाँ वातावरण प्रदूषित रहेगा। इसलिये 'धूर्तकालयवर्जिता' (गीदड़ों के निवास से रहित) भूमि को त्याज्य बताया गया है।

चतुष्पथ (चौराहे की भूमि) व्यापारिक प्रतिष्ठानों के लिये तो उपयुक्त रहती है किन्तु निवास के लिये शोरगुल के कारण कदापि उपयुक्त नहीं होती है, अत: उसे वर्जित कहा है।

देवमन्त्रिनिवासिताम् का अर्थ है जिस भूमि में देवता या राजा के मंत्री इत्यादि रहते हों। देवालयों के समीप की भूमि में वेध दोष तो होता ही है, देवता के प्रति किसी अपराध के अनजाने में हो जाने से हानि की सम्भावना रहती है। इसी प्रकार जहाँ पर किसी मन्त्री, उच्चाधिकारी अथवा बड़े नेता का निवास हो, वहाँ भी आवास नहीं बनाना चाहिये; क्योंकि एक तो उनके यहाँ आने-जानेवालों की भीड़ बनी रहती है, दूसरे वे तथा उनके युवा, पुत्र एवं पुत्रियाँ सत्ता के मद में बड़े-बड़े उत्पात करते रहते हैं, और उन पर पुलिस भी अपना शिकंजा नहीं कस पाती है। इस कारण ऐसी भूमि को वर्जित किया गया है। आजकल मन्त्री-पुत्रों आदि की करतूतें यदा-कदा समाचार पत्रों की सुर्खियाँ बनती ही रहती हैं, इनसे ही समझा जा सकता है।

भूमि की विशेषताओं के अनुसार उसका फल

स्वर्णगन्धा सुरसा धनधान्यसुखावहा।
व्यत्यये व्यत्ययफला अत: कार्यं परीक्षणम्॥ ४०॥

जो भूमि सुन्दर वर्ण, सुन्दर गन्ध तथा सुन्दर स्वादवाली हो; वह धन-धान्य तथा सुख देनेवाली है, किन्तु जो भूमि विवर्ण, विगन्ध तथा नीरस या कुरस हो, वह विपरीत फल देती है अर्थात् उसमें वास्तु बनाने से धन-धान्य तथा सुख का अभाव होता है॥ ४०॥

भूमि के शुभ आकार

चतुरस्रा महाधान्या द्विपाभा धनदायिनी।
सिंहाभा सगुणान्पुत्रान् वृषाभा पशुवृद्धिदा ॥ ४१ ॥
वृत्ता सद्वृत्ति भूमिर्भद्रपीठनिभा तथा।
त्रिशूलरूपा वीराणामुत्पत्तिर्धनसौख्यदा ॥ ४२ ॥
लिङ्गाभा लिङ्गिनां श्रेष्ठा प्रासादध्वजसन्निभा।
पदोन्नतिं प्रकुरुते कुम्भाभा धनवर्द्धिनी ॥ ४३ ॥

१. जो भूमि चौकोर होती है, उसमें वास्तु करने से प्रचुर प्रमाण में धान्यादि (अनाज-कृषि उपज) की प्राप्ति होती है। २. हाथी के समान आकारवाली भूमि धनदायिनी होती है। ३. सिंहाकृति भूमि (भूखण्ड) गुणी पुत्रों को देती है। ४. वृषभ (बैल) के आकार की भूमि में आवास बनाने से पशु एवं वाहनों का सुख मिलता है। ५. वृत्ताकार भूखण्ड अथवा भद्रपीठ के आकार की भूमि श्रेष्ठ आजीविका प्रदान करती है। ६. त्रिशूल के आकार की भूमि वीरों एवं साहसियों को बनाती है तथा धन एवं सुख देती है ॥ ४१-४२ ॥

७. जो भूमि लिंग के आकार की होती है, वह लिंगियों (लिंगोपासकों-शैवों तथा संन्यासियों) के लिये उपयुक्त होती है। ८. जो भूमि प्रासाद (महल) तथा ध्वज के आकार की होती है, वह पदोन्नति तथा प्रतिष्ठा-वृद्धि करती है। ९. जो भूमि कुम्भ (घड़े) के आकार की होती है, वह धन-वृद्धि करती है ॥ ४३ ॥

मुख्य आकारों के शुभ-अशुभ भूखण्ड
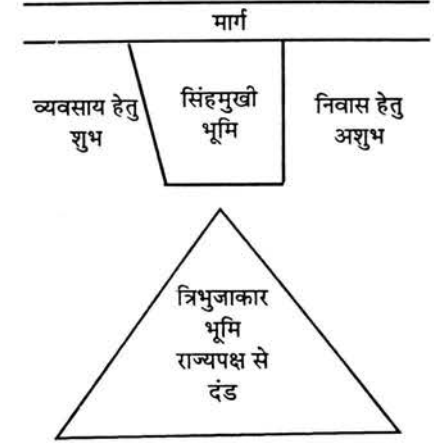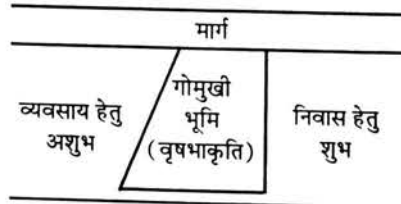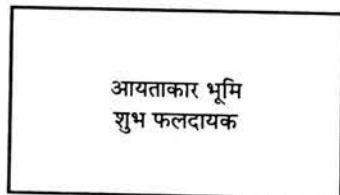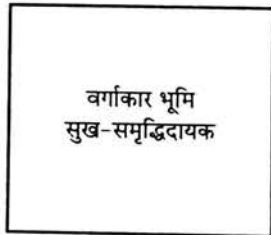
अशुभ आकारों की भूमि का भूखण्ड

त्रिकोणा शकटाकारा शूर्पव्यजनसन्निभा।
क्रमेण सुतसौख्यार्थ धर्महानिकरी स्मृता ॥ ४४ ॥
मुरजा वंशहा सर्पमण्डूकाभा भयावहा।
नैःस्वं खरानुकारा च मृत्युदाऽजगरान्विता ॥ ४५ ॥
चिपिटा पौरुषैर्हीना मुद्गराभा तथैव च।
काकोलूकनिभा तद्वत् दुःखशोकभयप्रदा ॥ ४६ ॥
सर्पाभा पुत्रपौत्रघ्नी वंशाभा वंशहानिदा ॥ ४७ ॥
शूकरोष्ट्राजसदृशी धनुः परशुरूपिणी।
कुचैलान्मलिनान् मूर्खान् ब्रह्मध्यानान् जनयेत्सुतान् ॥ ४८ ॥
कृकलासशवाकारा मृतपुत्रा धनार्तिदा।
दुर्गम्या पापिनां वंशप्रजाभूमिं परित्यजेत् ॥ ४९ ॥

जो भूमि त्रिकोणाकार हो, यह पुत्रहानि करती है। जो भूमि शकटाकार हो, वह सौख्य हानि करती है। जो भूमि सूप के आकार की हो वह धन हानिकारक होती है। जो भूमि व्यजन (हाथ से झलने के पंखे) के आकार की हो, वह धर्म की हानि करती है ॥ ४४ ॥

जो भूमि मुरजाकार (मृदंग के आकार) की हो, वह वंश की हानि करती है। जो सर्पाकार या मण्डूकाकार (मेंढक के समान) होती हो, वह भूमि भय उत्पन्न करती है। जो गधे के आकार की हो, वह भूमि धनहीन करती है तथा जो अजगर के आकार की हो, वह मृत्युभय देती है ॥ ४५ ॥

चिपिटाकार (दो सिरों पर उभरी तथा मध्य में चपटी) तथा मुद्गराकार (हथौड़े के आकार की) भूमि पौरुषहीन बनाती है, उसमें पुरुषों की न्यूनता होती है। जो भूमि कौवे अथवा उल्लू के आकार की हो, वह दु:ख-शोक तथा भय प्रदान करती है ॥ ४६ ॥

सर्पाकार भूमि पुत्र-पौत्रों का नाश करती है। बाँस के समान गाँठ-गठीले आकार की भूमि वंश की हानि करती है ॥ ४७ ॥

जो भूमि सूअर, ऊँट, बकरा, धनुष, फरसा-जैसे आकार की हो, उसमें आवास बनाने से मैले, कुचैले, मूर्ख तथा अपने अध्यापकों को मारनेवाले पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥ ४८ ॥

जिस भूमि का आकार कृकलास (गिरगिट), शव (मुर्दा) आदि के समान हो, वह मृत पुत्र देनेवाली तथा धननाशक होती है। जो भूमि दुर्गम हो तथा जिसमें पापियों की सन्तान का निवास रहा हो, उस भूमि को त्याग देना चाहिये ॥ ४९ ॥

उत्तम भूमि में वास्तु का फल

मनोरमा सुतप्रदा दृढा धनप्रदा मता।
सुतार्थदा तथाप्युदक् सुरेशदिक् प्लावा मही॥ ५०॥

जो भूमि देखने में मनोरम हो, वह सुतप्रदा होती है। जो भूमि दृढ होती है, वह धनप्रदा कही गयी है। जिस भूमि का ढाल उत्तर-पूर्व या ईशान की ओर हो, वह भूमि वास्तु में पुत्रप्रद तथा धनप्रद होती है ॥ ५० ॥

गम्भीर शब्दवाली एवं ऊँची भूमि के गुण

गम्भीरशब्दा जनयेत्पुत्रान् गम्भीरनि:स्वनान्।
तुङ्गा पदान्विता कुर्यात् समा सौभाग्यदायिनी॥ ५१॥

१. गम्भीर शब्दवाली (जिसे ठोकने से गम्भीर शब्द होता हो) भूमि गम्भीर आवाज (बुलन्द आवाज) वाले पुत्रों को देती है। २. जो भूमि ऊँची है, वह उन्नतिशील पुत्रों को प्रदान करती है। ३. समभूमि सुखप्रद होती है ॥ ५१ ॥

विकट भूमि के वास्तु का फल

विकटा शूद्रजातीनां तथा दुर्गनिवासिनाम्।
शुभदानाऽपरेषां च तस्कराणां शुभावहा॥ ५२॥

जो भूमि देखने में विकट (ऊबड़-खाबड़) हो वह शूद्र जाति के निवासार्थ शुभ होती है तथा दुर्ग बनाने के लिये भी शुभ होती है। वह चोरों-डाकुओं के भी अनुकूल होती है, परन्तु अन्य लोगों के लिये शुभ नहीं होती है ॥ ५२ ॥

स्ववर्णा तथा शुक्लवर्णा भूमि का फल

स्ववर्णवर्णा स्वान् वर्णान् वर्णानामधिपत्यदा।
शुक्लवर्णा च सर्वेषां पुत्रपौत्रविवर्धनी॥ ५३॥

ब्राह्मणादि वर्णों के लिये क्रमश: श्वेत-रक्त-पीत तथा कृष्ण वर्ण की भूमि शुभ फलप्रद होती है, किन्तु श्वेत वर्ण की भूमि तो सभी के लिये पुत्र-पौत्रवर्धक होती है ॥ ५३ ॥

कुश-काश एवं फलयुक्त भूमि में वास्तु का फल

कुशकाशान्विता ब्रह्मवर्चसान् कुरुते सुतान्।
दूर्वान्विता वीरजनि: फलाढ्या धनपुत्रदा॥ ५४॥

१. कुश (दर्भ) तथा काश से युक्त भूमि में वास्तु करने पर ब्रह्मतेज से सम्पन्न पुत्र उत्पन्न होते हैं। २. जिस भूमि में दूब की अधिकता हो, उसमें वीर पुत्र उत्पन्न होते हैं। ३. फलों से सम्पन्न भूमि में आवास निर्माण करने पर धन तथा पुत्रों की प्राप्ति होती है ॥ ५४ ॥

विमर्श—प्राकृतिक रूप से भूमि में जैसी वनस्पति उगती है, उसके गुण वहाँ के निवासियों में आ जाते हैं। दूर्वा (दूब) में जीवनी शक्ति की अधिकता होती है, ऐसी भूमि के रहनेवाले जीवनयुक्त तथा वीर पुरुष होते हैं।

स्थिति के अनुसार अशुभ एवं त्याज्य भूमि के लक्षण

नदीघाताश्रितान् मूर्खान् मृतवत्सांस्तथैव च।
दरिद्रानश्ममध्यस्था गर्त्तावस्था मृषायुतान्॥ ५५॥
विवरा पशुपुत्रार्त्तिदायिनी सौख्यहारिणी।
वक्रातिवक्रा जनयेत् पुत्रान् विद्याविहीनकान्॥ ५६॥

१. नदी के कटाव की भूमि में वास्तु करने से मूर्ख तथा मृत पुत्र उत्पन्न होते हैं। २. जिस भूमि के मध्य में पत्थर हों, वह वास्तु करने पर पुत्रों को दरिद्र करती है। ३. गड्ढेवाली भूमि के वास्तु से पुत्र असत्यवादी होते हैं ॥ ५५ ॥

१. छेदों-दरारोंवाली भूमि पशुओं एवं पुत्रों को रोगपीड़ित करती है। २. टेढ़ी-मेढ़ी भूमि में वास्तु करने से विद्याविहीन पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥ ५६ ॥

पुन: त्याज्य भूमियों के लक्षण एवं फल

शूर्पमार्जारलकुटनिभा भीतिसुतार्तिदा।
मुसला मुसलान्पुत्रान् जनयेद्वंशघातकान्॥ ५७॥
घोरा घोरप्रदा वायुपीडिता वायुभीतिदा।
भल्लु-भल्लूकसंयुक्ता पशुहानिप्रदा सदा॥ ५८॥
विकटा विकटान् पुत्रान् श्वश‍ृगालनिभांस्तथा।
ददाति रूक्षा परुषा दुर्वचान् जनयेत् सुतान्॥ ५९॥
गृहस्वामि भयं चैत्ये वल्मीके विपद: स्मृत:।
धूर्त्तालयसमीपे तु पुत्रस्य मरणं ध्रुवम्॥ ६०॥

चतुष्पथे त्वकीर्तिः स्यादुद्वेगो देवसद्मनि।
अर्थहानिश्च सचिवे श्वभ्रे विपद उत्कटाः।
गर्त्तायां तु पिपासा स्यात्कूर्माभे धननाशनम्॥ ६१॥

सूप, बिल्ली, लाठी-जैसे आकार की भूमि पुत्रों को पीड़ा देती है। मूसल के आकार की भूमि मूसल के समान लट्ठ गँवार पुत्रों को देती है तथा वे वंश के लिये घातक भी होते हैं॥ ५७॥

घोर भूमि (भयानक लगनेवाली) भय उत्पन्न करती है, जहाँ प्रचण्ड वायु चलती है। उस भूमि में आवास करने से वायुपीड़ा बनी रहती है। जिस भूमि में रीछ-भालू रहते हों, वह भूमि पशुओं का नाश करती है॥ ५८॥

विकट (ऊबड़-खाबड़) भूमि विकट पुत्रों को उत्पन्न करती है तथा कुत्ते या सियार-जैसे पुत्र रूखी तथा कठोर भूमि दुर्वचन बोलनेवाले पुत्र देती है॥ ५९॥

चैत्य (चबूतरा या चौरा) के समीप वास करने से गृहस्वामी को भय होता है। बांबी के समीप की भूमि वास्तु के लिये विपत्तिकारक होती है। सियार की मांद (घर) के समीप निवास करने से निश्चित ही पुत्र की मृत्यु होती है॥ ६०॥

चौराहे पर भवन बनाने से तथा उसमें निवास करने से अपकीर्ति होती है। देवालय के समीप वास्तु करने से उद्वेग (मानसिक कष्ट) बना रहता है। सचिवादि (उच्चाधिकारी) के समीप वास्तु करने से धनहानि होती है। गड्ढे में घर बनाने से प्रचण्ड विपत्ति आती है। जिस भूमि में बहुत-से गड्ढे हो वहाँ पेयजल का संकट रहता है। कछुवे के आकार की भूमि में वास्तु करने से धन की हानि होती रहती है॥ ६१॥

वास्तुयोग भूमि की परीक्षा-विधियाँ

निखनेद हस्तमात्रेण पुनस्तेनैव पूरयेत्।
पांसुनाऽधिकमध्योना श्रेष्ठा मध्याधमा क्रमात्॥ ६२॥
जलेनापूरयेच्छ्वभ्रं शीघ्रं गत्वा पदैः शतम्।
तथैवागम्य वीक्षेत न हीनसलिला शुभाः॥ ६३॥
अरत्निमात्रे श्वभ्रे वा ह्यनुलिप्ते च सर्वतः।
घृतमाम शरावस्थं कृत्वा वर्त्तिचतुष्टयम्॥ ६४॥
ज्वालयेद् भूपरीक्षार्थं सम्पूर्णं सर्वदिङ्मुखम्।
दीप्ता पूर्वादि गृह्णीयाद् वर्णानामनुपूर्वशः॥ ६५॥

प्रथम परीक्षा-विधि—एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा तथा एक हाथ गहरा गर्त्त खोदें, फिर उसी की जो मिट्टी बाहर निकाली हो उसी से उस गड्ढे को भर दें। यदि मिट्टी पूरने पर गड्ढा ऊँचा दिखे अर्थात् मिट्टी अधिक बचे तो वह भूमि उत्तम होती है। यदि मिट्टी गड्ढे के बराबर रहे तो मध्यम फल होता है किन्तु यदि मिट्टी से पूरा गड्ढा न भरे और खाली रहे तो वह भूमि अशुभ होती है॥ ६२॥

द्वितीय परीक्षा-विधि—उक्त एक हाथ के गड्ढे को जल से भर दें और फिर शीघ्रतापूर्वक एक सौ पग की दूरी तक जाकर फिर लौटकर गड्ढे के पास आ जायँ। आकर गड्ढे को देखें, यदि उसमें पानी कम हो गया हो तो वह भूमि वास्तु के लिये अच्छी नहीं होती है॥ ६३॥

अथवा अरत्निमात्र (एक फुट) का गड्ढा बनाकर उसे भीतर से चारों तरफ (तली सहित) गोबर या मिट्टी से लीपकर उसमें मिट्टी का कच्चा (बिना पका किन्तु सूखा हुआ) शराव (सकोरा) घी से लबालब भरकर उसमें चारों दिशाओं में चार बत्तियाँ (रुई की) डालकर जलायें। यदि चारों दिशाओं की बत्तियाँ जलती रहें, तो वह भी वास्तु योग्य जानना चाहिये। उसमें पूर्व दिशा में ब्राह्मण, दक्षिण में क्षत्रिय, पश्चिम में वैश्य तथा उत्तर दिशा में शूद्र अपने घर बनाकर निवास करें। (यह परीक्षा ग्राम-नगर या बस्ती बसाने के लिये करनी चाहिये॥ ६४-६५॥

जुती भूमि में बीज बोकर भूमि की परीक्षा

हलाकृष्टे तथोद्देशे सर्वबीजानि वापयेत्।
त्रिपञ्च सप्त रात्राणि न प्ररोहन्ति तान्यपि॥ ६६॥
उप्त बीजात्त्रिरात्रेण साङ्कुरा शोभना मही।
मध्यमा पञ्चरात्रेण सप्तरात्रेण निन्दिता॥ ६७॥

हल से जुती हुई भूमि में सभी प्रकार के बीजों को बो दें, फिर देखें कि वह तीन दिन अथवा पाँच दिन अथवा सात दिन इत्यादि कितना समय उगने में लगाते हैं। यदि उक्त बोये गये बीज तीन रात्रियों के उपरान्त उग आयें तो वह भूमि वास्तु के लिये शुभ होती है। यदि पाँच रात्रि में बीज उगें तो उक्त भूमि को वास्तु के लिये मध्यम जानना चाहिये। किन्तु यदि सात रात्रियों में बीज उगते हैं तो वास्तुहेतु उस भूमि को निन्दित समझना चाहिये॥ ६६-६७॥

बीज बोकर द्वितीय प्रकार से भूमि की परीक्षा

तिलान्वा वापयेत्तत्र यवांश्चापि च सर्षपान्।
अथवा सर्वधान्यानि वापयेच्च समन्ततः॥ ६८॥
यत्र नैव प्ररोहन्ति तां प्रयत्नेन वर्जयेत्॥ ६९॥

तिल अथवा यव अथवा सरसों अथवा सर्व धान्यों को उक्त भूमि को कुदालादि से खोदकर सिंचित कर बो दें। यदि सर्वधान्यादि न उगें तो उस भूमि में वास नहीं करना चाहिये॥ ६८-६९॥

विमर्श—यह परीक्षा भूमि की उर्वरा शक्ति जानने के लिये होती है। यदि उद्योग या फैक्ट्री आदि लगानी हो तो ऐसी परीक्षा की आवश्यकता नहीं है। उपजाऊ भूमि में कारखाने लगाकर कृषिक्षेत्र को घटाना राष्ट्रहित में नहीं होता है।

पुन: अन्य प्रकार से भूमि-परीक्षा

व्रीहयः शालयो मुद्गा गोधूमाः सर्षपास्तिलाः।
यवाश्चौषधयः सप्त सर्वबीजानि चैव हि॥ ७०॥
सुवर्णताम्र पुष्पाणि श्वभ्रमध्यगतानि च।
यस्य नाम्नि समायान्ति सा भूमिस्तस्य शोभनाः॥ ७१॥

व्रीह, शालिधान्य, मूँग, गेहूँ, सरसों, तिल, जौ, सर्वौषधि—ये सर्वबीज के साथ गड्ढे में प्रक्षिप्त किये जायँ, साथ ही पुष्प भी डाले जायँ, स्वर्ण एवं ताम्र भी प्रक्षेप करें। यदि श्वेत वर्ण के पुष्प ऊपर रहें तो वह भूमि ब्राह्मणों के लिये शुभ होती है। यदि गर्त में सबसे ऊपर लाल रंग के पुष्प गड्ढे में प्राप्त हों तो क्षत्रियों के लिये तथा पीतवर्ण के पुष्पों से वैश्यों के लिये शुभ जानना चाहिये॥ ७०-७१॥

आकाश में धूलि फेंककर भूमि की परीक्षा

पांसवो रेणुतीनीत्वा निरीक्षेदन्तरिक्षगाः।
अधो मध्योर्ध्वगा नृणां गतिस्तुल्यफलप्रदाः॥ ७२॥

स्थानीय भूमि की धूलि को ऊपर आकाश में फेंककर देखें यदि नीचे की ओर जाये तो भूमि अधोगतिदायक होती है। यदि वह फेंके गये स्तर पर ही छितरा जाय तो मध्यम फल होता है। यदि वह रज ऊपर को चली जाय तो ऊर्ध्वगति (उन्नति) देती है॥ ७२॥

सामान्य दृष्टि से शुभ तथा वास योग्य भूमि

कृष्टां प्ररूढबीजां गोऽध्युषितां ब्राह्मणैस्तथा।
गत्वा महीं गृहपतिः काले साम्वत्सरोदिते॥ ७३॥

जहाँ आसपास की भूमि उपजाऊ हो गोपालनादि योग्य हो तथा ब्राह्मणादि सज्जन पुरुष जहाँ पूर्व से ही निवास करते हों। गृहस्थ व्यक्ति को ज्योतिषी से पूछकर शुभ मुहूर्त में वहीं पर घर बनाकर रहना चाहिये॥ ७३॥

विमर्श—इसका अभिप्राय यही है कि ऐसे स्थान को निवास हेतु चुनना चाहिये, जहाँ का वातावरण प्रदूषित न हो।

गृहारम्भ एवं प्रवेश हेतु शुभ शकुन

पुण्याह शङ्खाध्ययनाम्बु कुम्भा विप्राश्च वीणा पटहस्वनानि।
पुत्रान्विता स्त्रीगुरवो मृदङ्गा वाद्यानि भेरी निनदाः प्रशस्ताः॥ ७४॥
कन्या सुधौताम्बरवासकारी मृदः सुरस्या सुरभीस्सुगन्धाः।
पुष्पाणि चामीकररौप्यमुक्ताप्रवालभक्ष्याणि शुभावहानि॥ ७५॥
मृगाराञ्जनबद्धैक पशुश्चौष्णीषचन्दनम्।
आदर्शव्यजनं वर्द्धमानाश्चापि शुभावहाः॥ ७६॥

कमलममलं गीतारावः सितोक्षमृगा ;
द्विजगमनसमये पुंसां धन्या गृहाद्याद्यधिवासते।
गजहयसुवासिन्यस्तथा प्रवराङ्गना ;
धनसुखारोग्यायुष्यप्रदा गृहकर्मणि॥ ७८॥
गणिका चाङ्कुशं दीपं मालां बालां सुभूषिताम्।
तथा वृष्टिर्गृहारम्भे निवेशे समभीष्टदा॥ ७९॥

पुण्याहवाचन, शंखध्वनि, अध्ययन (वेदपाठ), जलपूर्ण कलश, ब्राह्मण, वीणा (हारमोनियम, सारंगी, वायलिन, चिकारा, बैंजो केसिओ आदि), पटह (ढोल, नगाड़े, चंग, डफली, खंजरी आदि) इन सबकी ध्वनि, शुक्लाम्बर-धारिणी कन्या, सुगन्धित मिट्टी, पुष्प, सुवर्ण (Gold), चाँदी, मोती, प्रवाल, उत्तम भोज्य पदार्थ—ये सब देखने में गृहप्रवेश कार्य के समय शुभ शकुन होते हैं॥ ७४-७५॥

मृग (Deer, Antelope etc.), अंजन (सुरमा), खूँटे पर बँधा हुआ एक पशु, पगड़ी या टोपी या मुकुट, चन्दन, दर्पण, व्यजन (हाथ से झलनेवाला पंखा), वर्धमान (कंघी) इनका दर्शन भी शुभफल प्रदान करता है॥ ७६॥

मांस, दही, दूध, नृयान (पालकी तथा मानवचालित रिक्शा), श्वेत छत्र (छाता तथा राजाओं का सफेद छत्र), मछली, मिथुन (पशु-पक्षी या मानव दम्पती अथवा प्रेमी-प्रेमिका) इनके दर्शन मनुष्यों को स्वास्थ्य तथा सफलता देते हैं॥ ७७॥

निर्मल कमल, गीतों की ध्वनि, श्वेत बैल, मृग तथा ब्राह्मण—ये गृह प्रवेश या नगरप्रवेशके समय दाहिनी ओर शुभ सूचक होते हैं। हाथी, घोड़ा, सुवासिनी स्त्री (नव विवाहिता सौभाग्यवती) तथा श्रेष्ठ स्त्री—ये सब गृहादि प्रवेश के समय सम्मुख देखने में आयें तो शुभफल देते हैं तथा धन-सुख-आरोग्य आदि देते हैं। ये शकुन गृहारम्भ के समय भी शुभ होते हैं॥ ७८॥

गणिका (वेश्या), अंकुश, दीपक, माला, शृंगारयुक्त बाला तथा जलवृष्टि—ये गृहारम्भ तथा गृहप्रवेश के समय शुभ शकुन होते हैं॥ ७९॥

गृहकर्म में अशुभ शकुन

दुर्वाणी शत्रुवाणी च मद्यं चर्मास्थिरेव च।
तृणं तुषं तथा सर्पचर्म चाङ्गारमेव च॥ ८०॥
कार्पास लवणं पंक क्लीब तैलौषधानि च।
पुरीषं कृष्णधान्यानि व्याधिताभ्यक्तमेव च॥ ८१॥
पतितो जटिलोन्मत्तौ मुण्डी नग्न शिरंस्तथा।
इन्धनानि विरावञ्च चिद्विट्पक्षि मृगमानुषम्॥ ८२॥
ज्वलिताशासु दग्धासु धूमिताशु च पश्यतः।
मरणं निर्दिशेत् प्राज्ञः तत्र शल्यं विनिर्दिशेत्॥ ८३॥

यस्याप शकुनं तस्य शल्यं तत्र भवेद् गृहे।
तत्र वासं न कुर्वीत् गृहञ्चैव न कारयेत्॥ ८४॥

दुर्वाणी (कटु-कठोर वचन), शत्रुवाणी (शत्रु की आवाज या बातचीत), मद्य (मदिरा), चमड़ा, अस्थि (हड्डी), तृण (कड़वी-पुआल-सूखी घास आदि), तुष (भूसा), सर्पचर्म (साँप की केंचुली तथा साँप), अंगार (राख-कोयला आदि), रुई-कपास-नमक-पंक (कीचड़), नपुंसक (हिजड़ा), तेल, औषधियाँ, विष्ठा, कालेरंग के अनाज, रोगी व्यक्ति, तेल-चुपड़ा व्यक्ति, पतित, जटिल (जिसके बाल गन्दे तथा रूखे हों), उन्मत्त (पागल), मुण्डी, घुटे सिर, नंगा सिर, ईंधन, विराव (गाली-गलौज, अपशब्द-अश्लील शब्द), आपस में लड़ते हुए पशुपक्षी तथा मनुष्य, दिशाओं में आग या धुआँ-सा दिखना आदि गृहारम्भ तथा गृहप्रवेश के समय उस गृह की भूमि में शल्य के सूचक होते हैं।

जिसका अपशकुन हो उसी प्राणी या मनुष्य आदि का शल्य (हड्डी आदि) उस घर में होती है, अतः उसमें वास नहीं करना चाहिये॥ ८०-८४॥

गृहारम्भ हेतु खनन (नींव खोदने की) विधि

ज्योतिश्शास्त्रानुसारेण सुदिने शुभवासरे।
सुलग्ने सुमुहूर्ते च सुस्नातः प्राङ्मुखो गृही॥ ८५॥
पूजयेद् गणनाथञ्च ग्रहांश्च कलशे स्थितान्।
परीक्षिते च भूभागे गोमयेनानुलिप्य च॥ ८६॥
तत्र सम्पूजयेद् विप्रान् दैवज्ञञ्च तथैव च।
यावत्प्रमाणा भूर्ग्राह्या गृहार्थं तावता गृही॥ ८७॥
पञ्चगव्यौषधैः जलैस्तथा पञ्चामृतेन च।
सेचयेच्छुद्धिकामेन भूसंस्कारांश्च कारयेत्॥ ८८॥

गृहस्वामी ज्योतिशास्त्र के अनुसार शुभ दिन, शुभ वार, शुभ लग्न, शुभ मुहूर्त में स्नान करके जिस भूमि पर घर बनाना हो वहाँ जाकर श्रीगणेशजी महाराज, नवग्रह आदि की कलश पर पूजा करे, फिर जितनी भूमि पर भवन बनाना हो नापकर उतनी भूमि को (दिक्शुद्धि के साथ) ग्रहण करे। सर्वप्रथम पूजास्थल को गोबर से लीपकर फिर उस पर अष्टदलकमल बनाकर कलश का स्थापन करे, ज्योतिषी तथा ब्राह्मणों की दक्षिणा-द्रव्यादि से पूजाकर उन्हें सन्तुष्ट करे। पंचगव्य (गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत, गोमूत्र, गोमय), सर्वौषधि के जल तथा पंचामृत (गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत, शर्करा तथा मधु) इनको मिलाकर उस भूमि पर छिड़कना चाहिये तथा भूमि के अन्य संस्कार (सफाई; झाड़झंखाड़ काटना तथा समतलीकरण) भी पूर्व में ही कर लेना चाहिये॥ ८५-८८॥

कलश-स्थापन तथा उस पर देवादि का आवाहन एवं पूजन

तत्र कुम्भं निवेश्यादौ हेमगर्भं जलैर्युतम्।
सर्वधान्ययुतं सर्वगन्धसर्वौषधैर्युतम्॥ ८९॥

पुष्पान्वितं रक्तवर्णं सवस्त्रं मन्त्रमन्त्रितम्।
तस्मिन्नावाहयेत् खेटान् वरुणप्रमुखांस्तथा॥ ९०॥
तस्मिन्नावाहयेद् भूमिं सशैलवनकाननाम्।
नदीनदसमायुक्तां कर्णिकाभिश्च भूषिताम्॥ ९१॥
सागरैर्वेष्टितां तत्र पूजयेत्प्रार्थयेत्ततः।
दिक्पालाय कुलदेवींश्च देवान्यक्षांस्तथोरगान्॥ ९२॥
बलिञ्च दत्त्वा विधिवज्जलायेति जपेत्ततः।
षड्ऋचं रुद्रजापञ्च कारयेद् विधिपूर्वकम्॥ ९३॥
तस्मिन्सम्पूजयेद् वास्तुं प्रार्थयेत् पूजयेत्ततः।

सर्वप्रथम एक छिद्ररहित कलश में स्वर्णधातु डालकर उसमें जल भर दें। उसी में सर्वधान्य, सर्वगन्ध, सर्वौषधि, पुष्प डालकर रक्तवर्ण के वस्त्र से कलश को वेष्टित कर दें। फिर मन्त्रोंसहित नवग्रहों, वरुणादि देवताओं का उस कलश पर आवाहन करें। उसी पर पर्वतों, वनों, नदियों, नदी तथा कर्णिका सहित पृथ्वी का आवाहन करें। सागर से वेष्टित पृथ्वी देवी की पूजा तथा प्रार्थना करें, दश दिक्पालों, कुलदेवी, कुलदेवता, यक्ष तथा नागों का पूजन करे तथा उन्हें बलि देकर विधिपूर्वक 'जलाय०' मंत्रों, षड्ऋचाओं तथा रुद्रसूक्त का जाप करें। फिर अन्त में उस कलश पर वास्तुदेवता की पूजा तथा प्रार्थना करें॥ ८९-९३½॥

वास्तुप्रार्थना मंत्र

ॐ नमो भगवते वास्तुपुरुषाय कपिलाय च॥ ९४॥
पृथ्वीधराय देवाय प्रधानपुरुषाय च।
सकलगृहप्रासादपुष्करोद्यानकर्मणि ॥ ९५॥
गृहारम्भप्रथमकाले सर्वसिद्धिप्रदायक।
सिद्धदेवमनुष्यैश्च पूज्यमानो दिवानिशम्॥ ९६॥
गृहस्थाने प्रजापतिक्षेत्रेऽस्मिंस्तिष्ठ साम्प्रतम्।
इहागच्छ इमां पूजां गृहाण वरदो भव॥ ९७॥
वास्तुपुरुष नमस्तेऽस्तु भूमिशय्यारत प्रभो।
मद् गृहं धनधान्यादिसमृद्धं कुरु सर्वदा॥ ९८॥

मन्त्र का अर्थ—हे कपिलवर्ण के वास्तुपुरुष! पृथ्वी को धारण करनेवाले प्रधान पुरुष! आपको नमस्कार है। आप सभी प्रकार के भवन, प्रासाद, उद्यानादि-निर्माण के कार्यों में तथा गृहारम्भ के प्रथम काल में सम्पूर्ण सफलता को देनेवाले हैं। आपकी सिद्ध, देवतागण तथा मनुष्य रात-दिन पूजा किया करते हैं। आप यहाँ इस गृह निर्माण हेतु भूमि पर प्रजापति के क्षेत्र में इस समय (इस अवसर पर) आकर विराजमान हों तथा यहाँ आकर इस पूजा एवं बलि आदि को स्वीकार करने की कृपा करें॥ ९४-९७॥

हे वास्तुपुरुष! आपको नमस्कार है, आप भूमि की शैया पर शयन कर रहे हैं। हे प्रभो! आप मेरे इस गृह को धन-धान्यादि से सर्वदा समृद्ध करते रहें॥ ९८॥

भूमि पर वास्तुपुरुष की आकृति का लेखन

इति प्रार्थ्य ततो भूमौ संलिखेद् वास्तुपूरुषम्।
पिष्टातकैर्तण्डुलैर्वा नागरूपधरम् विभुम्॥ ९९॥

इस प्रकार से प्रार्थना करके भूमि पर वास्तुपुष की मूर्ति का लेखन आटे से या चावलों से करें। वास्तुपुरुष नाग-जैसे आकार का बनायें॥ ९९॥

वास्तुपुरुष का आवाहन तथा पूजन तथा नींव की खुदाई

आवाहयेद् वेदमन्त्रैः पूजयेच्च स्वशक्तितः।
मन्त्र—"आवाहयाम्यहं देवं भूमिस्थं च अधोमुखम्॥ १००॥
वास्तुनाथं जगत्प्राणं पूर्वस्यां प्रथमाश्रितम्।"
विष्णाररराटेति मन्त्रेण पूजयेत्सर्पनायकम्॥ १०१॥
नमोस्तु सर्पेभ्यो इति वा पूजयेत्स्वशक्तितः।
कुक्षिप्रदेशे निखनेद्वास्तुनागस्य मन्त्रतः॥ १०२॥

वास्तुपुरुष का आवाहन वेदमंत्रों से करें तथा अपनी सामर्थ्य के अनुसार पूजन करना चाहिये। आवाहन मंत्र का अर्थ—"मैं भूमि में अधोमुखस्थित वास्तुपुरुषरूपी वास्तुनाथ जो कि जगत् के प्राण हैं तथा पूर्व ईशान दिशाओं में प्रथम आश्रित हुए हैं, उनका आवाहन करता हूँ।"

इसके अतिरिक्त 'विष्णोरराटमसि०' इस मंत्र से सर्पनायक की पूजा करें, 'नमोस्तु सर्पेभ्यो०' इस मंत्र से भी पूजा की जा सकती है अथवा दोनों से करें।

फिर वास्तुपुरुष के कुक्षिप्रदेश में नागमन्त्र के उच्चारण (नमोस्तु सर्पेभ्यो०) से खुदाई आरम्भ करना चाहिये॥ १००-१०२॥

विमर्श—भूखण्ड की दिक्छुद्धि का विचार— भवन की नींव हेतु खुदाई करने के लिये सर्वप्रथम आठों दिशाओं की शुद्धि का विचार आवश्यक रूप से कर लेना चाहिये। यहाँ भूखण्ड से अर्थ है वर्गाकार या आयताकार भूखण्ड; क्योंकि इसी आकार में दिशाओं का निश्चय सुविधाजनक होता है। वास्तव में भूखण्ड या गृह भूखण्ड भूमि का वह भाग होता है, जिस पर गृह का निर्माण कार्य किया जाता है। गृह के आगे-पीछे या पार्श्व की रिक्तभूमि भूखण्ड के अन्तर्गत नहीं आती है।

वर्गाकार किंवा आयताकार भूखण्ड की पूर्वादि आठ दिशाओं की सापेक्ष स्थिति का विचार करना ग्रन्थान्तर में विस्तार से वर्णित है। वर्गाकार एवं आयताकार भूखण्डों की परस्पर सम्मुखवर्त्ती भुजाएँ पूर्णरूपेण पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिण में प्रसारित होनी आवश्यक हैं, अन्यथा इसमें अन्तर होने पर अथवा भुजाओं के एक कोण से दूसरे कोण में प्रसारित होने पर भूखण्ड दिक्शुद्ध नहीं होता है और ऐसे भूखण्ड पर गृह-निर्माण नहीं करना चाहिये। उस भूखण्ड की भुजाएँ सर्वतोभावेन पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिण हैं अथवा नहीं? इस बात का निर्णय तब तक नहीं होता है, जब तक कि दिशाओं का सम्यक्

ज्ञान गृहस्वामी तथा भवन निर्माण शिल्पी को न हो। आज के समय में सबसे सरल उपाय दिक्सूचक मंत्र के द्वारा दिशाओं का ज्ञान कर लेना है; क्योंकि इसमें कोई झंझट नहीं है तथा समय की बचत भी होती है। यद्यपि इस ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय के १४वें श्लोक में दिक्साधन करने को कहा गया है परन्तु यहाँ दिक्साधन की विधि नहीं बतायी है।

वर्ष में दो बार जब निरयण सूर्य मीन के ६ अंश पर तथा कन्या के ६ अंश पर होता है। तब ठीक पूर्व दिशा में उगता है। उससे दिशा निश्चय करें अथवा रात्रि में ध्रुवतारा को देखकर दिशा का निश्चय करते हैं। ध्रुवतारा तथा दिक्सूचक यंत्र दोनों ही उत्तर दिशा का ज्ञान कराते हैं, जिसके आधार पर शेष दिशाओं का भी ज्ञान कर लें। मण्डपकुण्डसिद्धि, कुण्डार्क तथा कुण्डरत्नावली ग्रन्थों में दिक्साधन की विधि स्पष्टतः तथा विस्तार से वर्णित है, वहाँ भी देखी जा सकती है। जब उत्तर दिशा का ज्ञान हो जाय तो उस चौकोर भूखण्ड के केन्द्र में एक लोहे की कील गाड़ दें तथा मध्याह्न के समय की सूर्य की छाया से अथवा दिक्सूचक से उस कील के मध्य से दक्षिणोत्तर एक रेखा पृथ्वी पर बना दें। अब उस केन्द्र के मध्य विन्दु से दक्षिणोत्तर रेखा पर एक लम्बरूप पूर्वापर रेखा (पूर्व से पश्चिम की ओर) अंकित करें। उत्तर-दक्षिणोत्तर के दोनों सिरे दक्षिणोत्तर विन्दु होंगे तथा पश्चिम पूर्व रेखा के दोनों सिरे पूर्व तथा पश्चिम के सूचक विन्दु होंगे। आजकल के शिल्पी गाड़ी गयी कील या शलाका के स्थान पर सीसक रेखा अथवा नाग रेखा (Plumb line) का उपयोग करें तो माप अधिक सूक्ष्म होगी।

अब यदि भूखण्ड की परस्पर सम्मुखवर्ती भुजाएँ यदि पूर्वापर रेखा तथा दक्षिणोत्तर रेखा के पूर्णरूपेण समानान्तर हों तो भूखण्ड की परस्पर भुजाओं की स्थिति सम्यक् रूप से पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिण है, ऐसा मान लेना चाहिये। ऐसा भूखण्ड दिशाओं से शुद्ध अथवा दिक्शुद्ध (दिक्छुद्ध) भूखण्ड कहा जायेगा; क्योंकि दिक्छुद्ध भूखण्ड के पूर्व-दक्षिण पश्चिम तथा उत्तर के विन्दु क्रमशः पूर्वी, दक्षिणी, पश्चिमी तथा उत्तरी भुजाओं के मध्यवर्ती विन्दु भी होते हैं।

उपर्युक्त स्थिति के विपरीत भूखण्ड अदिक् शुद्ध भूखण्ड होता है, जो गृह निर्माण हेतु अशुभ कहा गया है; क्योंकि अदिक् शुद्ध भूखण्ड में भवन बनाने पर वास्तुपुरुष के अंग कट जाते हैं।

दिशासूचक चिह्न
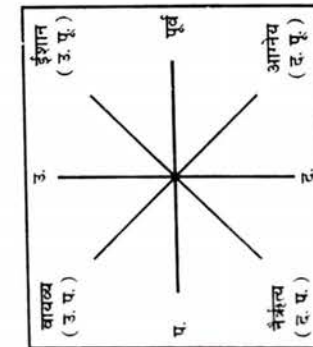
(दिक्शुद्ध भूखण्ड)
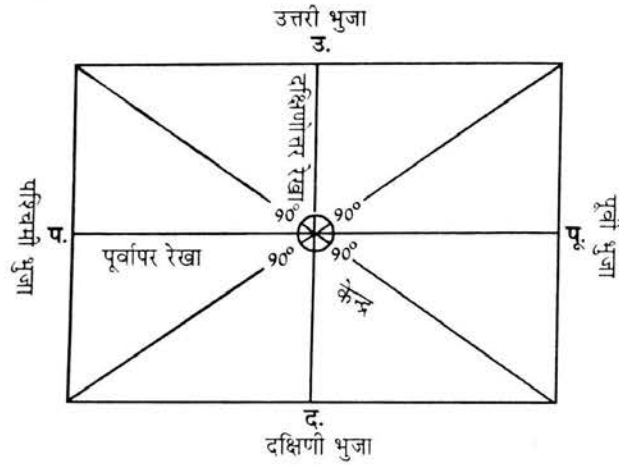
उ. = उत्तर विन्दु। द. = दक्षिण विन्दु।
पू. = पूर्व विन्दु। प. = पश्चिम विन्दु।

(अदिक्शुद्ध भूखण्ड)
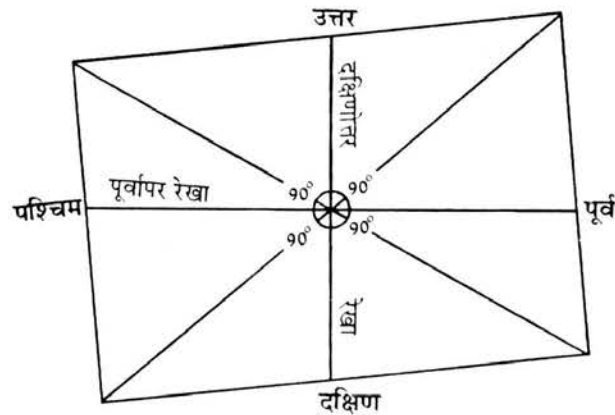
अदिक्शुद्ध भूखण्ड गृहनिर्माण के अयोग्य माना जाता है, उसमें निर्माण नहीं करना चाहिये।

वास्तुभूमि (गृहभूखण्ड) में ४५ वास्तुदेवों की स्थिति

ईशान — पूर्व — आग्नेय

दक्षिण (बायीं ओर) — उत्तर (दायीं ओर)

शिखी	पर्जन्य	जयन्त	इन्द्र	सूर्य	सत्यः	भृशः	अन्त-रिक्ष	अनिलः
दितिः	आपः	जयन्त	इन्द्र	सूर्य	सत्यः	भृशः	सावित्र	पूषा
अदिति	अदितिः	आप-वत्सः	अर्यमा	अर्यमा	अर्यमा	सविता	वितथ	वितथ
भुजगः	भुजगः	पृथिवी-धरः	ब्रह्मा	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विव-स्वान्	वृहत्-क्षत	वृहत्क्षत
सोमः	सोमः	पृथिवी-धरः	ब्रह्मा	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विव-स्वान्	यमः	यमः
भल्लाटः	भल्लाटः	पृथिवी-धरः	ब्रह्मा	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विव-स्वान्	गन्धर्वः	गन्धर्वः
मुख्यः	मुख्यः	राज-यक्ष्मा	मित्रः	मित्रः	मित्रः	इन्द्र	भृंगराज	भृंगराज
नागः	रुद्रः	शोष	असुरः	वरुणः	कुसुम-दन्तः	सुग्रीवः	जयः	मृगः
रोगः	पाप-यक्ष्मा	शोथ	असुरः	वरुणः	कुसुम-दन्तः	सुग्रीवः	दौवा-रिकः	पिता

वायव्य — पश्चिम — नैर्ऋत्य

अदिक् शुद्ध भूखण्ड में वास्तुदेवों की स्थिति

क

ईशान पूर्व आग्नेय

घ

शिखी	पर्जन्य	जयन्त	इन्द्र	सूर्य	सत्यः	भृशः	अन्त-रिक्ष	अनिलः
दितिः	आपः	जयन्त	इन्द्र	सूर्य	सत्यः	भृशः	सावित्र	पूषा
अदिति	अदितिः	आप-वत्स	अर्यमा	अर्यमा	अर्यमा	सविता	वितथ	वितथ
भुजगः	भुजगः	पृथिवी-धरः	ब्रह्मा	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विव-स्वान्	वृहत्-क्षत	वृहत्क्षत
सोमः	सोमः	पृथिवी-धरः	ब्रह्मा	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विव-स्वान्	यमः	यमः
भल्लाटः	भल्लाटः	पृथिवी-धरः	ब्रह्मा	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विव-स्वान्	गन्धर्वः	गन्धर्वः
मुख्यः	मुख्यः	राज-यक्ष्मा	मित्रः	मित्रः	मित्रः	इन्द्र	भृंगराज	भृंगराज
नागः	रुद्रः	शोष	असुरः	वरुणः	कुसुम-दन्तः	सुग्रीवः	जयः	मृगः
रोगः	पाप-यक्ष्मा	शोथ	असुरः	वरुणः	कुसुम-दन्ताः	सुग्रीवः	दौवा-रिकः	पिता

ख

वायव्य पश्चिम नैर्ऋत्य

ग

गृहभूखण्ड में इन ४५ देवों में से किसी एक की भी अनुपस्थिति वास्तुशास्त्रकारों ने गृहस्वामी के लिए अमंगलकारी मानी है। कोण क-ख-ग-घ अशुद्ध भूखण्ड है।

सूर्य संक्रमण के अनुसार वास्तुपुरुष के मुख का ज्ञान
(राहुमुख ज्ञान)

त्रिषु त्रिषु च मासेषु न भस्मादिषु च क्रमात्।
यद् दिङ्मुखो वास्तुनरः तन्मुखं सदनं मुखम्॥ १०३॥
अन्यदिङ्मुखगेहं तु दुःखशोकभयप्रदम्।
वृषार्कादित्रिकं वेद्यां सिंहादिगणयेद् गृहे॥ १०४॥
देवालये च मीनादि तडागे मकरादिजम्।
पूर्वादिषु शिरःकृत्वा नागश्शेते त्रिभिस्त्रिभिः॥ १०५॥
भाद्राद्यैर्वामपार्श्वे च तस्य क्रोडे गृहे शुभम्।
ईशानतः कालसर्पः संहारेण प्रसर्पति॥ १०६॥

विदिक्षु शेष वास्तोश्च मुखं त्याज्यं चतुर्थकम्।
खनेच्च सौरमानेन व्यत्ययश्चाऽशुभं भवेत्॥ १०७॥
चतुस्त्रिकादिशालानामेष दोषो न विद्यते।
एवं नागोडुसंशुद्ध्या मन्दिरारंभणं शुभम्॥ १०८॥

भाद्रपद (सौर सिंह मास) आदि तीन-तीन मासों में क्रमशः पूर्व आदि दिशाओं में वास्तुपुरुष (राहु) का मुख होता है। जिस दिशा में राहु का मुख हो उसी दिशा में गृह का मुख भी करना चाहिये। वास्तुपुरुष का मुख जिस दिशा में हो उससे यदि भिन्न दिशा में गृह का द्वार बना दिया जाय तो दुःख, शोक तथा भय उत्पन्न होता है॥ १०३-१०३½॥

वेदी निर्माण में वृष के सूर्यों से तीन-तीन सूर्य राशियों में राहु मुख गिने तथा गृह-निर्माण में सिंहादि गणना से तीन-तीन राशियों में राहु मुख गिना जाता है॥ १०४॥

देवालय के निर्माण में मीन संक्रान्ति से तीन-तीन मास करके गणना करें तथा जलाशय में मकरादि तीन-तीन और राशियों में राहुमुख का विचार किया जाता है। तीन-तीन मासों के क्रम से पूर्वादि दिशाओं में शिर करके नाग (राहु) अथवा वास्तुपुरुष शयन करता है॥ १०५॥

भाद्रपद आदि तीन-तीन मासों में वास्तुपुरुष के वाम पार्श्व के क्रोड (रिक्त स्थान) में ग्रहारम्भ हेतु खनन कर्म आरंभ करना चाहिये। ईशानादि दिशाओं में राहु संहारक्रम से (उल्टे) प्रसर्पण करता है॥ १०६॥

इसमें ईशानादि कोणों के मध्य में वास्तुपुरुष का जो मुख होता है, उसकी चौथी विदिशा (कोण) त्याग देना चाहिये। इसका ध्यान न रखकर अगर विपरीत दिशा में खनन किया जाय तो अशुभ फल करता है। इसमें सौर मासों का विचार होता है॥ १०७॥

इसमें भी अपवाद यह है कि यदि गृह चतुश्शाल या त्रिशाल हो तो उसमें यह विचार करना है। इस प्रकार यह राहु विचार एवं नक्षत्र की शुद्धि का विचार सम्यक् रीति से करना चाहिये॥ १०८॥

विमर्श—घर बनाने के लिये नींव की खुदाई, किस दिशा से आरम्भ की जाय यह बात इन श्लोकों में समझायी गयी है। इसके निश्चय के लिये राहु के मुख, पीठ एवं पूँछ की स्थिति उस भूखण्ड में किस विदिशा में एवं दिशा में है—यह जान लेना आवश्यक है, ऐसा कहा गया है। राहु सर्प के आकार में प्रत्येक भूखण्ड में अपने शरीर को शिर से पैर तक प्रसारित कर लेटा रहता है। उसकी स्थिति सूर्य की तीन-तीन राशियों के भोग के उपरान्त बदलती रहती है। यह सौर राशियों की गणना स्थिर राशियों से प्रारम्भ की जाती है। अतः वास्तुशास्त्र हमें इस बात के लिये सावधान करता है कि खनन प्रारम्भ करते समय उस सर्पाकार राहु के किसी अंश पर प्रहार न हो जाय।

ऐसा होने पर गृहस्वामी का अनिष्ट होता है। अत: खुदाई उस स्थल से आरम्भ हो, जहाँ पर राहु के शरीर का कोई अंग पीड़ित न हो।

यह राहु गृह-निर्माण हेतु सिंहादि तीन राशि के क्रम से ईशानादि कोणों से उलटा चलता है। जिस विदिशा (कोण) में राहु का मुख होता है, उससे पिछली दो विदिशाओं में क्रमश: पीठ तथा पूँछ होती है। जैसे कि सिंह, कन्या, तुला राशियों के निरयण सूर्य में राहु का मुख ईशान कोण में होता है तब उसकी पीठ वायव्य में तथा पूँछ नैर्ऋत्य कोण में होती है। यह दिशाएँ भूखण्ड के मध्य से देखनी चाहिये।

यहाँ यह स्मरणीय है कि भूखण्ड में नींव खोदने का प्रारम्भ सदैव मुख्य दिशाओं (पूर्व-दक्षिण-पश्चिम-उत्तर) से न होकर ईशानादि विदिशाओं (कोणों) से होता है। बस, नींव की खुदाई का आरम्भ राहु के मुख-पूँछ तथा पृष्ठवाली दिशा से आरम्भ न कर खाली विदिशा (उपदिशा या कोण) से आरम्भ करें। आगे रेखाचित्रों एवं चित्रों को देखकर इस विषय को ठीक से समझ लें।

	ईशान	पूर्व	आ०	
	मुख		खनन प्रारम्भ	
उत्तर		सिंह-कन्या तुला के सूर्य में		दक्षिण
	पेट		पूँछ	
	वायव्य	पश्चिम	नै०	

	ईशान	पूर्व	आ०	
	खनन प्रारम्भ		पुच्छ	
उत्तर		वृश्चिक-धनु मकर के सूर्य में		दक्षिण
	मुख		पेट	
	वायव्य	पश्चिम	नै०	

	ईशान	पूर्व	आ०	
	पुच्छ		पेट	
उत्तर		कुम्भ-मीन मेष के सूर्य में		दक्षिण
	खनन प्रारम्भ		मुख	
	वायव्य	पश्चिम	नै०	

	ईशान	पूर्व	आ०	
	पेट		मुख	
उत्तर		वृष-मिथुन कर्क के सूर्य में		दक्षिण
	पुच्छ		खनन प्रारम्भ	
	वायव्य	पश्चिम	नै०	
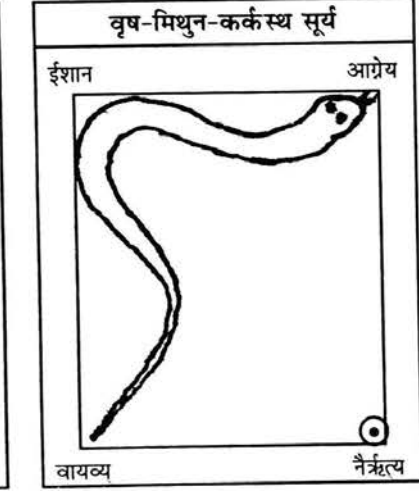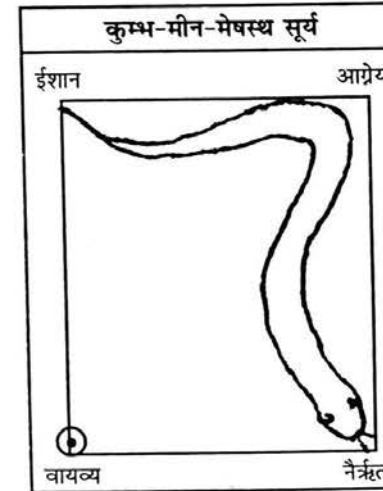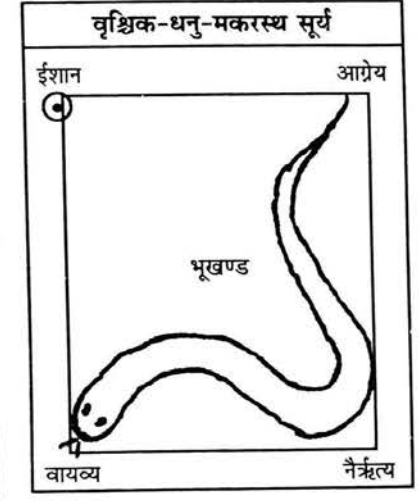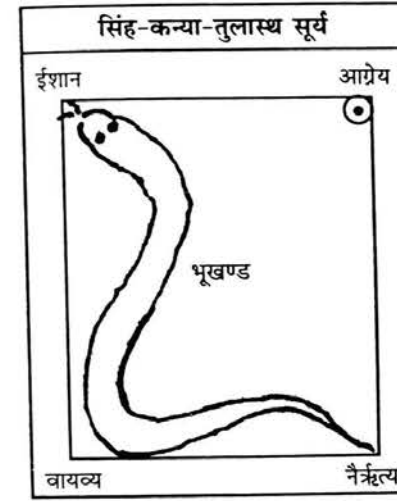
यहाँ राहु की भूखण्ड में सूर्य की राशि स्थिति के अनुसार सर्पाकार चित्रों के माध्यम से स्थिति दर्शायी गयी है, जिसमें खनन प्रारम्भ करने की उपदिशा ⊙ इस चिह्न से प्रदर्शित की गयी है।

खननारम्भ मुहूर्त

अधोमुखे च नक्षत्रे शुभेऽह्नि शुभवासरे।
चन्द्रतारानुकूल्ये च खननारम्भणं शुभम्॥ १०९॥

अधोमुख नक्षत्रों (मूल, श्लेषा, पूर्वाफाल्गुनी), पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, विशाखा, भरणी, कृत्तिका नक्षत्रों) में शुभ दिन (सोमवार, बुधवार, गुरुवार तथा

शुक्रवार) में जब कर्त्ता को चन्द्रबल तथा ताराबल प्राप्त हो तब खनन प्रारम्भ करना शुभ है॥ १०९॥

विमर्श—अधोमुख नक्षत्रों में वापी-कूप-तडाग, गर्तखनन, निधिखनन तथा खान में प्रवेश आदि शुभ होता है—

'मूलाश्लेषामघा पूर्वा विशाखा भरणी द्वयम्।
अधोमुखानि भान्यत्र कर्मसिद्ध्येदधोमुखम्॥
वापीकूपतडागादिखातस्तत्र विधीयते।
निधिक्षेपोद्धृती रन्ध्रप्रवेशो गणितं तथा॥'

मतान्तर से दिशा राहु का विचार

त्रिषु त्रिषु च मासेषु मार्गशीर्षादिषु क्रमात्।
पूर्व दक्षिण तोयेश पौलस्त्याशा क्रमादगुः॥ ११०॥
स्तम्भे वंशविनाशः स्याद् द्वारे वह्नि भयं भवेत्।
गमने कार्य हानिः स्याद् गृहारम्भे कुलक्षयः॥ १११॥

मार्ग शीर्षादि तीन-तीन सौर मासों अर्थात् वृश्चिकादि के सूर्यों में पूर्व-दक्षिण-पश्चिम-उत्तर दिशाओं में क्रमशः राहु रहता है। अतः राहु की दिशा में यदि स्तम्भारोपण किया जाय तो वंश विनाश, द्वार करने पर अग्निभय, यात्रा करने पर, कार्यहानि तथा गृहारम्भ करने पर कुलक्षय होता है॥ ११०-१११॥

दिग्राहु चक्र

पूर्व दिशा में	दक्षिण में	पश्चिम में	उत्तर में	दिग्राहु की दिशा
वृश्चिक-धनु-मकर	कुम्भ-मीन-मेष	वृष-मिथुन-कर्क	सिंह-कन्या-तुला	सूर्यराशि में
वंश-विनाश	वंश-विनाश	वंश-विनाश	वंश-विनाश	स्तंभ निवेश का फल
अग्निभय	अग्निभय	अग्निभय	अग्निभय	द्वार निवेश का फल
कार्यहानि	कार्यहानि	कार्यहानि	कार्यहानि	यात्रा का फल
कुलक्षय	कुलक्षय	कुलक्षय	कुलक्षय	गृहारम्भ फल

वार राहु का विचार

रक्षः कुबेराग्नि जलेशयाम्य वायव्य काष्ठासु च सूर्यवारात्।
वसेदगुश्चाष्टसु दिग्भचक्रे मुखे विवर्ज्या गमनं गृहञ्च॥ ११२॥

रविवारादि के दिनों में क्रमशः दक्षिण-उत्तर-आग्नेय-पश्चिम-दक्षिण तथा वायव्य दिशाओं में राहु रहता है। अतः इन दिशाओं में उक्त वारों में गमन करना तथा गृह-निर्माण अवर्जित है॥ ११२॥

पूर्वकथित राहु के अंगों में खनन का फल

शिरःखनने विनाशः स्यान्माता पित्रोश्च पृष्ठके।
स्त्रीपुत्रनाशः पुच्छे तु गात्रे पुत्रविनाशनम्॥ ११३॥
कुक्षौ सर्वसमृद्धिः स्याद् धनधान्यसुतागमः।
सिंहादिषु च मासेषु आग्नेय्यां कुक्षिमाश्रितः॥ ११४॥

यदि (पूर्व में श्लोक १०३ से १०८ तक कथित) राहु के शिरःस्थान पर खनन हो तो स्वयं का विनाश होता है। पीठ पर खनन करने से माता-पिता का विनाश, पुच्छ पर खनन हो तो स्त्री-पुत्र का नाश होता है किन्तु कुक्षि (खाली स्थान) में खनन करना सर्व समृद्धिदायक होता है तथा धन-धान्य एवं पुत्र की समृद्धि करता है।

यह राहु सिंहादि तीन सौर मासों में अग्निकोण में कुक्षि के आश्रित होता है, अतः इसी प्रकार से खनन कर्म करना चाहिये॥ ११३-११४॥

विमर्श—इन श्लोकों ११३-११४ में पूर्व के श्लोक १०३-१०८ के अभिप्राय को दूसरे प्रकार से समझाकर विषय को स्पष्ट कर दिया है।

राहुकुक्षि का कथन

वृश्चिकादिषु ईशान्यां कुम्भादिषु च वायुदिक्।
वृषादिषु च नैर्ऋत्ये मुखं पुच्छं न शोभनम्॥ ११५॥

वृश्चिक-धनु-मकर के सूर्यों में ईशान दिशा में राहु की कुक्षि होती है, अतः इन सूर्यों में ईशान से खुदाई आरम्भ करनी चाहिये। कुम्भक-मीन-मेष के सूर्यों में राहु की कुक्षि होती है, अतः उक्त विदिशा से खनन आरम्भ करें। वृष-मिथुन-कर्क के सूर्यों में राहु की कुक्षि नैर्ऋत्य कोण में होने से वहीं से खनन आरम्भ करना चाहिये। मुख-पुच्छ-पृष्ठादि पर खनन अशुभ होता है॥ ११५॥

कृत्तिकाद्यं सप्तपूर्वे मघादिद्यं सप्त दक्षिणे।
मैत्राद्यं पश्चिमे सप्त धनिष्ठाद्यं तथोत्तरे॥ ११६॥
अग्रे चन्द्रे स्वामिभयं कर्मकर्त्ता च पृष्ठके।
दक्षिणे च धनं दद्युर्वामे स्त्रीसुखसम्पदः॥ ११७॥

कृत्तिकादि सात नक्षत्रों को पूर्वदिशा में, मघादि सात नक्षत्रों को दक्षिण में, अनुराधादि सात नक्षत्रों को पूर्वदिशा में तथा धनिष्ठादि सात नक्षत्रों को उत्तर दिशा में स्थापित करना चाहिये। यदि अग्रभाग के नक्षत्रों में चन्द्रमा हो तो स्वामी के लिये भय होता है, पृष्ठ नक्षत्रों में चन्द्रमा होने से कर्मकर्त्ता का नाश होता है। दक्षिण दिशा के नक्षत्रों में चन्द्रमा हो तो धनदायक होता है। उत्तरदिशा के नक्षत्रों का चन्द्रमा सुख-सम्पत्तिदायक होता है॥ ११६-११७॥

ॐ	कृत्तिका	रोहिणी	मृगशिरा	आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्य	आश्लेषा	ॐ
भरणी				पूर्व ↑				मघा
अश्विनी								पूर्वाफाल्गुनी
रेवती				सप्तशलाका क्रम से				उत्तरा फाल्गुनी
उत्तराभाद्र		उत्तर ←		दिग्द्वार		→ दक्षिण		हस्त
पूर्वाभाद्र				नक्षत्र				चित्रा
शतभिषा				चक्र				स्वाति
धनिष्ठा				↓ पश्चिम				विशाखा
ॐ	श्रवण	अभिजित्	उत्तराषाढ़ा	पूर्वाषाढ़ा	मूल	ज्येष्ठा	अनुराधा	ॐ

गृहनिर्माण हेतु नक्षत्र चयन

गृहोपलब्ध ऋक्षेषु यत्र ऋक्षेषु चन्द्रमाः।
शलाका सप्तके देयं कृत्तिकादि क्रमेण च॥ ११८॥
ऋक्षं चन्द्रस्य वास्तोश्च अग्रे पृष्ठे न शस्यते।
लग्नाद् ऋक्षाद् विचार्योऽसौ चन्द्रः सद्यो फलप्रदः॥ ११९॥

गृहारम्भ के जो नक्षत्र हैं, उनमें से नक्षत्र का चयन करें। नक्षत्रों का न्यास सप्त शलाका विधि से करें। चन्द्रमा तथा वास्तु (ग्रहनिर्माण) का नक्षत्र अग्र तथा पृष्ठ भाग में श्रेष्ठ नहीं होता है। लग्न तथा नक्षत्र दोनों से विचारा गया चन्द्रमा शीघ्र फल देता है॥ ११८-११९॥

गृह-निर्माण में चन्द्रमा की दिशा का फल

गृहचन्द्रे सम्मुखस्थे पृष्ठस्थे न शुभं गृहम्।
वामदक्षिणगश्चन्द्रः प्रशस्तो वास्तुकर्मणि॥ १२०॥

गृह-निर्माण में चन्द्रमा सम्मुख तथा पृष्ठ पर शुभ नहीं होता है। उसमें तो चन्द्रमा वाम अथवा दक्षिण होना चाहिये॥ १२०॥

विमर्श—यद्यपि गृहारम्भ रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा उत्तराभाद्रपद इन्हीं नक्षत्रों में करना चाहिये परन्तु इन नक्षत्रों के चयन में गृह का द्वार जिस दिशा में रखना है उसके अनुसार पूर्व में दिये गये दिग्द्वार नक्षत्र चक्र के अनुसार शुभता-अशुभता का ध्यान भी रखना परमावश्यक है।

जिस दिशा में घर का मुख्य प्रवेश द्वार रखना है। उस दिशावाले अथवा उससे विपरीत दिशावाले नक्षत्र दिग्द्वार नक्षत्र चक्र में दिये अनुसार त्याग देना चाहिये। मान

लीजिये किसी को अपने घर का द्वार पूर्व दिशा में बनाना है, तो उसे गृहारम्भ के नक्षत्रों में रोहिणी, मृगशिरा तथा पुनर्वसु को पूर्व दिशा के नक्षत्र (अग्र नक्षत्र या सम्मुख नक्षत्र) होने से तथा उत्तराषाढ़ा एवं अनुराधा नक्षत्रों को पृष्ठवर्ती (पश्चिम दिशा) के नक्षत्र होने से त्यागना चाहिये अन्यथा ये नक्षत्र गृह-निर्माण में अशुभ रहेंगे तथा उत्तराभाद्र, धनिष्ठा, शतभिषा वाम होने से तथा उत्तरफाल्गुनी, हस्त, चित्रा तथा स्वाति नक्षत्र दक्षिण होने से शुभ रहेंगे। तब इसका सारांश यह निकला—

१. पूर्व-पश्चिम दिशावाले मुख्यद्वार के लिये शुभ नक्षत्र—उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, धनिष्ठा, शतभिषा, उ०भा०, रेवती।

२. उत्तर या दक्षिण दिशा में द्वार के लिये शुभ नक्षत्र—रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, उत्तराषाढ़ा, अनुराधा।

नींव खोदने की विधि तथा शुभाशुभ शकुन

लौहदण्डञ्च सम्पूज्य भैरवञ्च तथैव च।
तद्दिक्पालं नमस्कृत्य पृथिवीञ्च तथैव च॥ १२१॥
शिवो नामेति मन्त्रेण लोहदण्डं प्रपूजयेत्।
निवर्त्तयामीत्यृचा वै ध्यायेदीशमुमापतिम्॥ १२२॥
बलेन लौहदण्डेन निखनेद्वास्तुपूरुषम्।
यावत्प्रमाणां भुवमेति तावत्तस्य स्थितिर्भवेत्॥ १२३॥
तं लौहदण्डं वस्त्रा वस्त्राक्तं ब्राह्मणाय निवेदयेत्।
पुत्राद्यं विषमेऽङ्गुल्ये समेऽङ्गुल्ये तु कन्यकाम्॥ १२४॥
निर्दिशेत्तु तयोर्मध्ये लौहखण्डार्त्तिदं तथा।
तस्मिन् काले शुभां वाणीं माङ्गल्यं चारुदर्शनम्॥ १२५॥
वेदगीतध्वनिपुष्पफललाभं तथैव च।
वेणुवीणामृदङ्गानां श्रवणं दर्शनं शुभम्॥ १२६॥
दधि दूर्वा कुशाश्चेति कल्याणद्रव्यदर्शनम्।
सुवर्णं रजतं ताम्रं शङ्खमौक्तिकविद्रुमान्॥ १२७॥
मणयो रत्नवैडूर्यस्फटिकं सुखदा मृदः।
गारुडञ्च फलं पुष्पं तृणमयं गुल्ममेव च॥ १२८॥
खाद्यानि कन्दमूलानि सा भूमिः सुखदायिनी।
कण्टकञ्च तथा सर्पं खर्जूरं दर्द्रुमेव च॥ १२९॥
वृश्चिकाश्मकवज्रञ्च विवरं लौहमुद्गरम्।
केशाङ्गारकभस्मांश्च चर्मास्थिलवणं तथा॥ १३०॥
रुधिरञ्च तथा मज्जारसाक्ता न शोभनाः॥ १३१॥

इति श्रीविश्वकर्मप्रकाशे वास्तुशास्त्रे भूम्यादिपरीक्षालक्षणवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

सर्वप्रथम लौहदण्ड (सब्बल, लम्बी खुरपी, कुदाली या फाँवड़ा आदि जिससे भूमि खोदनी हो उस उपकरण) का तथा भैरव का पूजन करे, फिर दिक्पालों का पूजन करे, फिर पृथिवी का पूजन तथा नमस्कार 'शिवोनामासि स्वधितिस्तेपिता नमस्ते माहिंः' इस मन्त्र से करे। फिर 'निवर्तयामि आयुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय॥' इस मन्त्र से उमासहित भगवान् शिव का ध्यान करे॥ १२१-१२२॥

फिर कर्त्तापुरुष पूरी शक्ति के साथ भूमि पर (उस स्थल पर जहाँ से खनन आरम्भ करना है) उस लौहदण्ड का एक प्रहार करे। उस प्रथम प्रहार में वह लौहदण्ड भूमि में समा जायेगा, उसे उसी स्थिति में भूमि में (प्रविष्ट हुए को) छोड़कर उसे किसी नवीन वस्त्र से ढँक दे फिर भूमि पूजन के लिये जिस ब्राह्मण विद्वान् को निमन्त्रित किया है, उसे उस लौहदण्ड का प्रवेश कितने अंगुल भूमि में हो चुका है यह माप (नाप) करने के लिये निवेदन करे। यदि वह लौहदण्ड भूमि में विषम संख्यावाले अंगुलों (तीन, पाँच, सात, नौ आदि) के प्रमाण में भूमि में प्रविष्ट हुआ है तो पुत्र वृद्धिकारक होगा। यदि उसकी माप सम अंगुलों में प्राप्त हो तो वह कन्या प्रदायक होता है॥ १२३-१२४॥

यदि वह लौहखण्ड भूमि में न तो समाङ्गुलों में प्रविष्ट हुआ हो और न विषमाङ्गुलों में तथा मध्य की स्थिति में हो अर्थात् २$\frac{१}{२}$ या ३$\frac{१}{२}$ या ४$\frac{१}{२}$ या ५$\frac{१}{२}$ या ६$\frac{१}{२}$ अथवा सम-विषम अंगुलों से $\frac{१}{४}$ अंगुल किम्वा $\frac{३}{४}$ अंगुल अधिक हो तो अशुभफल होता है॥ १२४$\frac{१}{२}$ ॥

तात्कालिक शुभाशुभ शकुन—यदि खनन-स्थल पर उस समय शुभवाणी सुनाई पड़े, अथवा मांगलिक वस्तुओं के दर्शन हों तो शुभ समझना चाहिये। वेद-ध्वनि, मंगलगीत, पुष्प, फल आदि के प्राप्ति, श्रवण तथा दर्शन शुभ होते हैं। इसी प्रकार बाँसुरी, वीणा, मृदङ्ग आदि वाद्ययन्त्रों की ध्वनि या दर्शन भी शुभ होते हैं॥ १२५-१२६॥

उस समय में दही, दूर्वा, कुशा, अक्षत, कुंकुम आदि मांगलिक पदार्थों के दर्शन हों, सुवर्ण, रजत, ताम्र, शंख, मोती, प्रवाल, मणि, रत्नोपटल, वैदूर्य, स्फटिक, सुन्दर मृत्तिका, पन्ना, पुष्प, तृण्मयगुल्म (घास का गुच्छा) आदि दिखायी पड़े अथवा खुदाई में कोई सुन्दर वस्तु निकले तो उस भूमि को वास्तु के लिये सुखदायक जानना चाहिये॥ १२७-१२८$\frac{१}{२}$ ॥

किन्तु यदि उस स्थान पर काँटे, खजूर, दर्द्रु (छोटी जाति का खजूर), बिच्छू, अश्मक (चिलबटरा), वज्र, भूमि में दरार, लोहे का हथौड़ा, बाल, अंगारा (कोयला आदि) भस्म, चर्म, अस्थि, लवण, रुधिर, मज्जा तथा कीचड़ आदि के दर्शन हों तो अशुभ फल होता है॥ १२९-१३१॥

विमर्श—घर बनाने के लिये नींव खोदते समय यदि पत्थर-ईंट मिलें तो शुभफल होता है, परन्तु चींटी एवं दीमक आदि के मिलने पर अशुभ फल होता है।

हड्डी, भूसा, राख, जली हुई लकड़ी आदि का मिलना अशुभ होता है। अतः गृह-निर्माण के पूर्व ही इन सब बातों का विचार कर लेना आवश्यक होता है—

'खन्यमाने यदा भूमौ पाषाणं प्राप्यते तदा।
धनायुश्चिरता वै स्यादिष्टकासु धनागमः॥
कपालाङ्गारकेशादौ व्याधिना पीडितो भवेत्॥
खाते यदाश्मालभते हिरण्यं तथेष्टकायाञ्च समृद्धिरत्र।
द्रव्यञ्च रम्याणि सुखानि धत्ते ताम्रादिधातुर्यदि तत्र वृद्धिः॥
पिपीलिका षोडश पक्ष निद्रा भवन्ति चेत्तत्र वसेन्न कर्त्ता।
तुषास्थि चीराणि तथैव भस्मान्यण्डानि सर्पा मरणप्रदाःस्युः॥
वराटिका दुःखकलिप्रदात्री कार्पास एवाति ददाति दुःखम्।
काष्ठं प्रदग्धं त्वतिरोगभीतिर्भवेत्कलिः खर्परदर्शनेन।
लोहेन कर्त्तुर्मरणं निगद्यं विचार्य वास्तुं प्रदिशन्ति धीराः॥'

इस प्रकार श्रीविश्वकर्मप्रकाश वास्तुशास्त्र ग्रन्थ की महर्षि अभयकात्यायनविरचित 'अभया' हिन्दी टीका का प्रथम अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

●

द्वितीयोऽध्यायः

समगृहादिनिर्माणाध्यायः

स्वप्नविधि कथन

गणेशं लोकपालांश्च पृथिवीञ्च विशेषतः।
ग्रहांश्च कलशे पूज्य यथामन्त्रं यथोदितम्॥ १॥
यथा कल्पमुपस्कृत्य शुचौ देशे कुशासनः।
भूमौ शुद्धेन वस्त्रेण शीर्षे सम्पूजयेच्छ्रियम्॥ २॥
पद्माञ्च भद्रकालीञ्च बलिन्दत्त्वा तथैव च।
सर्वबीजान्वितान् कुम्भान् सर्वरत्नौषधैर्युतान्॥ ३॥
कृत्वोभयतटे रम्यान्नवाञ्च छुद्धोदकान्वितान्।
कल्पयित्वा सुमनसः कृत्वा स्वस्त्ययनादिकम्॥ ४॥
सावधानः शुचिः सूक्ष्म क्षौमवासः जितेन्द्रियः।
प्राङ्मुखो रुद्र-रुद्रेति हृदि रुद्रविधिञ्जपेत्॥ ५॥
षड्चं रुद्रजापञ्च कारयेत्प्रयतः शुचिः॥ ६॥

भूमि का शुभाशुभ जानने के लिये गृह-निर्माण की आकांक्षावाले कर्त्ता को उक्त भूमि पर रात्रि में शयन करके स्वप्न देखना चाहियें, उसकी प्रथम विधि निम्न प्रकार है—

सर्वप्रथम श्रीगणेशजी, लोकपाल तथा पृथिवी का पूजन करके फिर कलश स्थापितकर उस पर नवग्रहों का पूजन उनके मंत्रों से विधिपूर्वक करना चाहिये॥ १॥

फिर विधिपूर्वक तैयार होकर पवित्र स्थल पर कुश का आसन बिछाकर उस पर शुद्ध वस्त्र रखकर उसके शिरोभाग में श्रीलक्ष्मीजी की पूजा करे, पद्मा तथा भद्रकाली को बलि प्रदान करे। तत्पश्चात् सभी धान्यों के बीजों से युक्त कलश तथा सर्वौषधि एवं रत्नों के कलश भी शामिल हो। उनको वस्त्र के दोनों किनारों पर रखे, साथ ही शुद्ध जल के कलशों को भी रखे तथा उन्हें पुष्पों से सुसज्जित करें। फिर ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन करायें॥ २-४॥

तदुपरान्त सावधान होकर सूक्ष्म रेशमी वस्त्र धारणकर अथवा अलसी के सूत्रों से बने वस्त्र पहिनकर, जितेन्द्रिय होकर पूर्व की ओर मुख करके बैठे तथा हृदय में रुद्र-रुद्र इस प्रकार के नाम मंत्र का जप पवित्र मन से करे अथवा छह ऋचाओंवाले रुद्रसूक्त का जप करे॥ ५-६॥

स्वप्न के पूर्व प्रकारान्तर से पूजा विधि

दुकूलमुक्ता मणिभृन्नरेन्द्रः सम्मन्त्रिदैवज्ञ पुरोऽहितोऽन्तः।
स्वदेवतागारमनुप्रविश्य विवेशयेत्तत्र दिगीश्वरार्चाम्॥ ७॥
अभ्यर्च्य मन्त्रैस्तु पुरोहितस्तामतश्च तस्यां भुवि संस्कृतायाम्।
दर्भैश्च कृत्वान्तरमक्षतैः तान् किरेत्समन्तात्सित सर्षपांश्च॥ ८॥
ब्राह्मी सदूर्वामथ नागयूथिं कृत्वोपधानं शिरसि क्षितीशः।
पूर्णान् घटान्पुष्पफलन्वितांस्तानाशासु कुर्याच्चतुरः क्रमेण॥ ९॥
यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवमावर्त्य मन्त्रान्प्रयतस्तथैतान्।
लघ्वेक भुक्दक्षिणपार्श्वशायी स्वप्नं परीक्षेत यथोपदेशम्॥ १०॥
'नमः शम्भो त्रिनेत्राय रुद्राय वरदाय च।
वामनामविरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः'॥ ११॥

दूसरे प्रकार से स्वप्न विधि इस प्रकार है—राजा दुकूल वस्त्र तथा मुक्ता एवं मणियों को धारण करके अपने मन्त्री, राजज्योतिषी तथा पुरोहित के साथ देव-मन्दिर में प्रवेशकर वहाँ दिक्पालों की पूजा करे, पुरोहित मन्त्रों द्वारा उस पूजा को सम्पन्न कराये। फिर शुद्धभूमि में दर्भ बिछाकर उस पर अक्षत विखेर दे। फिर चार जलपूरित घटों को चारों दिशाओं में स्थापित कर राजा तकिया लगाकर दाहिनी करवट शयन करे। शयन के पूर्व लघु भोजन करे, फिर स्वप्नशास्त्र के अनुसार स्वप्न का फल जाने। स्वप्न हेतु इस प्रकार प्रार्थना करे॥ ७-१०॥

'त्रिनेत्र शंकर भगवान् वरदायक रुद्र के लिये नमस्कार है, वामनरूप, विरूप स्वप्न के अधिपति के लिये नमस्कार है।' (ऐसी प्रार्थना करके सो जाय)॥ ११॥

भगवन् देवदेवेश शूलभृद् वृषवाहन।
इष्टानि मे समाचक्ष्व स्वप्ने सुप्तस्य शाश्वतम्॥ १२॥
एकवस्त्रः कुशास्तीर्णे सुप्तः प्रयत मानसः।
निशान्ते पश्यति स्वप्नं शुभं वा यदि वाऽशुभम्॥ १३॥

हे देवदेव भगवान् भूतभावन शंकर, शूलधारी, वृषभवाहन! स्वप्न के माध्यम से मेरी मनोकामना पूर्ण करें॥ १२॥

इस प्रकार राजा को शान्तचित्त से एक वस्त्र धारण करके कुशासन पर सो जाना चाहिये, रात में जो भी शुभाशुभ स्वप्न देखे उसका फल विचार करे॥ १३॥

भूमि के प्लव (ढलान) का फल

चतुरस्त्रां समां शुद्धिं भूमिं कुर्याद् प्रयत्नतः।
तस्मिन् दिक्साधनं कार्यं वृत्तमध्यगते निशिः॥ १४॥
पूर्वप्लवे भवेल्लक्ष्मीराग्नेय्यां शोकमादिशेत्।
याम्यां याति यमद्वारं नैर्ऋते च महाभयम्॥ १५॥

पश्चिमे कलहं कुर्यात् वायव्यां मृत्युमादिशेत्।
उत्तरे वंशवृद्धिः स्यादीशाने रत्नसंचयः॥ १६॥
दिङ्मूढे कुलनाशः स्याद् वक्रे दारिद्र्यमादिशेत्॥ १६क॥

सर्वप्रथम भूखण्ड की भूमि को प्रयत्नपूर्वक चौकोर बनायें फिर उसमें दिक्साधन वृत्त बनाकर दिशाओं का निश्चय कर लें॥ १४॥

यदि उक्त भूमि में जल का बहाव (ढलान पूर्व की ओर हो तो लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। अग्निकोण में प्लववाली भूमि शोककारक होती है। इसी प्रकार दक्षिण-प्लवा भूमि मृत्युकारक, नैर्ऋत्यप्लवा भूमि महाभयकारक, पश्चिमप्लवा भूमि कलहप्रद, वायव्यप्लवा भूमि मृत्यु या मृत्युतुल्य कष्टकारक, जिस भूमि का ढलान उत्तर दिशा की ओर हो वह वंशवृद्धिकारक तथा ईशानकोण में जल बहाववाली भूमि रत्नादि का संचय करानेवाली है॥ १५-१६॥

१ पूर्व	२ आग्नेय	३ दक्षिण	४ नैर्ऋत्य	५ पश्चिम	६ वायव्य	७ उत्तर	९ ईशान	भूमि के प्लव (जलबहाव की दिशा)
लक्ष्मी की प्राप्ति	शोकप्रद	मृत्युभय	महाभय	कलह	मृत्युभय	वंशवृद्धि	रत्न-प्राप्ति	फल

यदि भूमि दिङ्मूढ़ हो तो कुलनाशक होती है तथा टेढ़ी-मेढ़ी भूमि दरिद्रता-दायक होती है॥ १६क॥

गृहारम्भ में चान्द्रमासों का फल

चैत्रे व्याधिमवाप्नोति यो नवं कारयेद् गृहम्।
वैशाखे धनरत्नानि ज्येष्ठे मृत्युस्तथैव च॥ १७॥
आषाढ़े भृत्यरत्नानि पशुवर्जमवाप्नुयात्।
श्रावणं मित्रलाभन्तु हानिं भाद्रपदे तथा॥ १८॥
युद्धं चैवाश्विने मासि कार्तिके धनधान्यकम्।
धनवृद्धिर्मार्गशीर्षे पौषे तस्करतो भयम्॥ १९॥
माघे त्वग्निभयं विन्द्याल्लक्ष्मीवृद्धिश्च फाल्गुन।

१. यदि चैत्रमास में नया घर बनाना प्रारम्भ किया जाय तो कर्त्ता को रोग उत्पन्न होता है। २. वैशाख में नवीन गृहारम्भ से धन-रत्नों की प्राप्ति होती है। ३. ज्येष्ठमास में नूतन गृहारम्भ मृत्युतुल्य कष्ट देता है। ४. आषाढ़ में नया घर बनाने से भृत्य एवं रत्नहानि होती है। ५. श्रावण में नया घर बनाने से मित्रों का लाभ होता है। ६. भाद्रपद में नूतन गृहारम्भ हानिप्रद होता है। ७. आश्विन मास नवीन गृह बनाने में लड़ाई-झगड़ा कराता है। ८. कार्तिक में नूतन गृह बनाने में धन-धान्य की प्राप्ति होती है। ९. मार्गशीर्ष धनवृद्धि कराता है। १०. पौषमास में नूतन गृहारम्भ से चोरों का भय, ११. माघ में अग्निभय तथा १२. फाल्गुन लक्ष्मीवृद्धिकारक होता है॥ १७-१९½॥

चान्द्रमास	गृह-निर्माण का फल
१. चैत्र	व्याधि
२. वैशाख	धनरत्न
३. ज्येष्ठ	मृत्युतुल्य कष्ट
४. आषाढ़	भृत्यादि की हानि
५. श्रावण	मित्रलाभ
६. भाद्रपद	हानि
७. आश्विन	युद्धभय
८. कार्तिक	धनलाभ
९. मार्गशीर्ष	धनवृद्धि
१०. पौष	चोरभय
११. माघ	अग्निभय
१२. फाल्गुन	लक्ष्मीवृद्धि

गृह-निर्माण में सौरमासों का फल

गृहसंस्थापनं सूर्ये मेषस्थे शुभदो भवेत्॥ २०॥
वृषस्थे धनवृद्धिः स्यात् मिथुने मरणं भवेत्।
कर्कटे शुभदं प्रोक्तं सिंहे भृत्यविवर्धनम्॥ २१॥
कन्या रोगं तुला सौख्यं वृश्चिके धनधान्यकम्।
कार्मुके च महाहानिर्मकरे स्याद् धनागमः॥ २२॥
कुम्भे तु रत्नलाभः स्यान्मीने स्वप्नं भयावहम्।
चापमीननृयुयुक्कन्यामासादोषावहाः स्मृताः॥ २३॥

मेष राशि के सूर्यों में गृहारम्भ शुभफलदायक होता है। वृष के सूर्य में धनवृद्धि होती है। मिथुन के सूर्य में घर बनाने से मृत्यु (या मृत्यतुल्य कष्ट) होता है। कर्क के सूर्य में घर बनाना शुभ फल देता है। सिंह का सूर्य गृहारम्भ में नौकर-चाकरों की सुविधा देता है। कन्या का सूर्य रोगकारक तथा तुला का सुखदायक होता है। वृश्चिक के सूर्य में बनाया गया गृह धनधान्य देनेवाला तथा धनु के सूर्य में महाहानि होती है। मकर का सूर्य गृह-निर्माण में धनलाभ कराता है। कुम्भ के सूर्य में रत्नलाभ होता है। मीन के सूर्य में घर बनाया जाय तो कर्त्ता को बुरे-बुरे स्वप्न आते हैं॥ २०-२२½॥

धनु-मीन-मिथुन-कन्या (द्विस्वभाव राशियों) का सूर्य गृह-निर्माण में दोष-कारक होते हैं॥ २३॥

सूर्य की राशि	नया घर बनाने का फल	विधि निषेध
१. मेष	शुभप्रद	प्रशस्त
२. वृष	धनवृद्धि	प्रशस्त
३. मिथुन	मरण	अशुभ
४. कर्क	शुभफल	प्रशस्त
५. सिंह	भृत्यवृद्धि	प्रशस्त
६. कन्या	रोगकारक	अशुभ
७. तुला	सौख्यप्रद	प्रशस्त
८. वृश्चिक	धनधान्य	प्रशस्त
९. धनु	महाहानि	अशुभ
१०. मकर	धनलाभ	प्रशस्त
११. कुम्भ	रत्नलाभ	प्रशस्त
१२. मीन	दुःस्वप्न	अशुभ

गृहारम्भ में प्रशस्त सौरमास

ज्येष्ठोर्जमाघसिंहाख्याः सौरमाने तु शोभनाः।
मासे तपस्ये तपसि माधवे नभसि त्विषे॥ २४॥
ऊर्जे च गृहनिर्माणं पुत्रपौत्रधनप्रदम्।

सौरमान से ज्येष्ठमास, ऊर्ज्जमास (कार्तिक), माघ सिंह (भाद्रपद)—ये मास गृह-निर्माण में शुभ फलदायक होते हैं। तपमास (माघ), तपस्य (फाल्गुन), माधव (वैशाख), नभ (श्रावण), इष (आश्विन) तथा ऊर्ज (कार्तिक)—इन वैदिक सौर-मासों में गृह-निर्माण पुत्र-पौत्र धनदायक होता है॥ २४-२४½॥

घास-फूस-लकड़ी आदि के गृहों में विशेष

निषिद्धेष्वपि कालेषु स्वानुकूले शुभे दिने॥ २५॥
तृणदारुगृहारम्भे मासदोषो न विद्यते।
पाषाणेष्ट्यादि गेहानि निन्द्यमासे न कारयेत्॥ २६॥

यदि मकान घास-फूस-पत्ते-लकड़ी आदि का बनाना है तो उसे निषिद्ध मास में भी शुभ दिन देखकर बनाया जा सकता है। परन्तु पत्थर, ईंट आदि से बननेवाले गृहों को निन्दित मासों में नहीं बनाना चाहिये॥ २५-२६॥

चान्द्रमास की अनुकूलता में विशेष

निन्द्यमासेऽपि चन्द्रस्य मासेन शुभदं गृहम्।

यदि आवश्यक हो और सौरमास की अनुकूलता न हो तो उसमें यदि चान्द्रमास अनुकूल हो तो भी पक्का घर बनाना प्रारम्भ किया जा सकता है॥ २६½॥

विमर्श—जैसे कि मीन के सौरमास में निषेध है परन्तु यदि मीन का सूर्य होते हुए उसमें फाल्गुन-चान्द्रमास हो तो शुभवार, तिथि एवं अनुकूल नक्षत्र में गृह-निर्माण किया जा सकता है।

गृह-निर्माण में कर्त्ता के लिये गोचरादि बल की आवश्यकता

गोचराष्टकवर्गाभ्यां वामवेधं विचिन्तयेत्॥ २७॥
दशान्तर्दशादीनां विचारश्चात्र कर्मणि।
गुरुशुक्रबले विप्रान्सूर्यभूमि जयोस्तथा॥ २८॥
शशिसौम्यबले सौरे वर्णानुक्रमपूर्वशः।
गृहारम्भं प्रकुर्वीत वर्णनाथबले सति॥ २९॥
सर्वेषामपि वर्णानां सूर्यचन्द्रबलं स्मृतम्।

गृह-निर्माणकर्त्ता को अपने-अपने वर्ण के अनुसार ग्रहों का गोचर बल, अष्टकवर्ग शुद्धि तथा वामवेध का विचार करना चाहिये॥ २७॥

इस कार्य में कर्त्ता के लिये जन्मपत्रिका देखकर दशान्तर्दशा का भी विचार आवश्यकरूप से करना वाञ्छनीय है। ब्राह्मणों के लिये गुरु-शुक्र के बल का विचार, क्षत्रियों के लिये सूर्य तथा मंगल का विचार, वैश्यों के लिये चन्द्र एवं बुध का बल तथा शूद्रों के लिये शनि का बल विचारणीय होता है। इस प्रकार कर्ता के वर्ण का स्वामी बलवान् हो तभी गृहारम्भ करना चाहिये॥ २८-२९॥

यदि यह सम्भव न हो तो चारों वर्णों के कर्त्ता के लिये सूर्य तथा चन्द्रमा का बल अवश्य ही देख लेना चाहिये॥ २९½॥

कर्त्ता के वर्णनाथ के निर्बल होने का फल

विषमस्थे रवौ स्वामी पीड्यते गृहिणी विधौ॥ ३०॥
शुक्रेण पीड्यते लक्ष्मी जीवेन सुखसम्पदः।
बुधेन पुत्रपौत्राश्च भौमेन भ्रातृबान्धवाः॥ ३१॥
सौरेण दासवर्गाश्च पीड्यन्ते नात्र संशयः।
विशेषेण तु सूर्यस्य बले प्रोक्तं गृहे बुधैः॥ ३२॥

१. यदि कर्त्ता के लिये सूर्यगोचर में अशुभ हो तो स्वयं उसे पीड़ा होती है। २. यदि चन्द्रमा प्रतिकूल हो तो उसकी पत्नी पीड़ित होती है। ३. यदि शुक्रगोचर में अशुभ हो तो उसमें गृहारम्भ करने से लक्ष्मी का नाश होता है। ४. यदि गुरु अशुभ हो तो सुख-सम्पत्ति का नाश होता है। ५. बुध से पुत्र-पौत्र पीड़ित होते हैं। ६. मंगल यदि गोचर में प्रतिकूल हो तो उसमें गृहारम्भ करने भ्रातृवर्ग को पीड़ा होती है। ७. यदि शनि प्रतिकूल हो तो दासवर्ग को पीड़ाकारक होता है। विद्वानों ने सभी के लिये सूर्य का बल विचारने की अनिवार्यता कही है॥ ३०-३२॥

दशेश एवं वर्णनाथ के निर्बल होने का निषेध

सर्वेषामपि वर्णानां रविशुद्धिर्विधीयते।
दशापतौ हीनबले वर्णनाथे तथैव च॥ ३३॥

सभी वर्णों (चारों वर्णों) के लिये गोचर में रविशुद्धि देखना अनिवार्य है। इसी प्रकार जन्मकुण्डली में उस समय जो दशा-अन्तर्दशा का स्वामी ग्रह हो वह भी गोचर में निर्बल नहीं होना चाहिये॥ ३३॥

गोचर में सूर्यबल का कथन

पीडितर्क्षगते सूर्ये न विदध्यात् कदाचन।
प्रथमे कोष्ठे रोगश्च द्वितीये चार्थनाशनम्॥ ३४॥
तृतीये धनलाभश्च चतुर्थे भयदो रविः।
पञ्चमे पुत्रनाशाय शत्रुनाशाय शत्रुगे॥ ३५॥
स्त्रीकष्टं सप्तमे सूर्ये मृत्युश्चाष्टमगेहगे।
नवमे धर्मनाशाय दशमे कर्मसंयुतिः॥ ३६॥
एकादशे भवेल्लक्ष्मीर्द्वादशे च धनक्षयः।
पुत्रे द्वितीये द्यूते च धर्मे मध्यबलो रविः॥ ३७॥
द्वितीयपुत्राङ्गगतो विश्वाहात्परतः शुभः।

यदि सूर्य पीड़ित हो तो उसमें कथमपि गृहारम्भ नहीं करना चाहिये। गोचर में जन्मराशि का सूर्य हो तो उदर में रोग करता है। द्वितीय राशि का सूर्य धननाशक होता है। जन्म से तृतीय राशि में गया हुआ सूर्य धनलाभ कराता है। जन्म से पाँचवाँ सूर्य सन्तति को कष्टप्रद तथा चौथा सूर्य भयकारक होता है। जन्मराशि से छठवाँ सूर्य शत्रुनाशक अर्थात् शुभ होता है। सातवाँ सूर्य स्त्री को कष्टदायक, आठवाँ मृत्यु भयकारक तथा नौवाँ सूर्य धर्मनाशक होता है। जन्मराशि से दशमस्थ राशिगत सूर्य जातक को कर्मठ तथा सक्रिय बनाता है, अतः शुभ होता है। जन्मराशि से ग्यारहवाँ सूर्य भी लक्ष्मीकारक होने से गृह-निर्माण में शुभ फलदायक होता है। बारहवाँ सूर्य धनहानि (अधिक व्यय) कराता है॥ ३४-३६½ ॥

जब जन्मराशि से सूर्य दूसरा, पाँचवाँ, सातवाँ या नौवाँ हो तो मध्य बली होता है। इनमें सप्तम को छोड़कर जन्म से दूसरा, पाँचवाँ तथा नौवाँ सूर्य तेरह अंश के उपरान्त शुभ (बली) होता है॥ ३७-३७½ ॥

चक्र

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	जन्मराशि से गोचरादि का क्रम
उदररोग	धनहानि	धनलाभ	भयप्रद	सन्ततिकष्ट	शत्रुनाशक	जीवनसाथी को कष्ट	मृत्युसम कष्ट	धर्मनाश	कर्मसिद्धि	लक्ष्मी की प्राप्ति	व्यय	फल
सामान्य अशुभ	१३ दिन के उपरांत शुभ	शुभ	अशुभ	१३ अंश के उपरांत शुभ	शुभ	मध्यम	अशुभ	१३ दिन बाद शुभ	अति शुभ	शुभ	अशुभ	शुभाशुभ

दूषित ग्रहों की पूजा का कथन

अस्तगा नीचराशिस्थाः परराशौ पैरर्जिताः॥ ३८॥
वृद्धस्था बालभावस्था वक्रश्चाति चारगाः।
रिपुदृष्टि वंशयाता उल्कापातेन दूषिताः॥ ३९॥
न फलन्ति ग्रहा गेहप्रारम्भे तान्प्रपूजयेत्।

जो ग्रह सूर्य के समीप में आने से अस्त हो या अपनी नीचराशि में स्थित हो, या शत्रु राशिगत हो या बालत्व दोष या वृद्धत्व दोष को प्राप्त हो अथवा वक्री या अतिचारी हो अथवा शत्रुग्रह से दृष्ट हो अथवा उल्कापात से दूषित हो तो उस ग्रह के गोचर में अनुकूल स्थान में होने पर भी उसकी पूजा करके ही गृहारम्भ करना चाहिये॥ ३८-३९½ ॥

गृह की माप में हस्त प्रमाण का कथन

स्वामिहस्तप्रमाणेन ज्येष्ठपत्नीकरेण च॥ ४०॥
ज्येष्ठपुत्रकरेणापि कर्मकारकरेण च।
अनामिकान्तं हस्तः स्यादूर्ध्वबाहोः शरांशकः॥ ४१॥
कनिष्ठिका मध्यमाना प्रमाणेनैव कारयेत्।
स्वामिहस्तप्रमाणेन ज्येष्ठपत्नीकरेण च॥ ४२॥
गर्भमात्रं भवेद् गेहं नृणां प्रोक्तः पुरातनैः।
स्वामिहस्तप्रमाणेन गृहं कुर्यादतन्द्रितः॥ ४३॥
हस्तादिरेणुपर्यन्तं युग्मं युग्म मेष च।

कर्त्ता यजमान स्वयं अपने हाथों से अथवा ज्येष्ठपत्नी अथवा ज्येष्ठपुत्र अथवा कर्मकार (राजमिस्त्री या प्रतिनिधि) के हाथों से गृह की माप करें।

ऊपर की ओर दाहिना या बायाँ हाथ उठाकर सीधे खड़े होने पर पैर के अंगूठे से हाथ की अनामिका अंगुली तक की जो लम्बाई होती है, उसका पञ्चमांश ही एक हाथ की नाप कही गई है। इसे मध्यमा या कनिष्ठा से भी नाप सकते हैं। हाथ से लेकर रेणुपर्यन्त सूक्ष्म माप करना चाहिये॥ ४०-४३½ ॥

गृह-निर्माण में त्याज्य तिथ्यादि

कृष्णपक्षे तिथिं षष्ठीं गण्डान्ते रविसंक्रमे॥ ४४॥
रविभौमदिने विष्ट्यां व्यतीपाते च वैधृतौ।
मासदग्धं वारदग्धं तिथिं षष्ठीं विवर्जयेत्॥ ४५॥
अनुक्तेष्वेव धिष्ण्येषु न कर्त्तव्यं कदाचन।
क्रकचं तिथिदग्धञ्च योगानां वज्रसञ्ज्ञकम्॥ ४६॥
उत्पातैर्दूषितं ऋक्षं निसर्गं दर्शसंज्ञकम्।
वज्रव्याघातशूलेषु व्यतिपातादि गण्डयोः॥ ४७॥
विष्कम्भं गण्ड परिघं वर्ज्यं योगेषु कारयेत्।

गृह-निर्माण में कृष्णपक्ष में षष्ठी तिथि से लेकर शुक्लपक्ष की षष्ठी पर्यन्त तिथियाँ त्याग दें। इसी प्रकार गण्डनक्षत्र, सूर्यसंक्रान्ति का दिन, रविवार एवं मंगलवार, मासदग्ध तिथियाँ, वारदग्ध तिथियाँ, भद्राकरण, व्यतिपात तथा वैधृति योग (गणितागत क्रान्तिसाम्य)—इन सबको त्याग देना चाहिये॥ ४४-४५ ॥

जो नक्षत्र गृह-निर्माण हेतु कहे नहीं गये हैं, उन्हें भी गृह-निर्माण में त्याग देना आवश्यक है। क्रकचयोग, दग्धयोग, वज्रयोग, शूल, व्याघात, विष्कम्भ, गण्ड एवं परिघयोगों को भी त्याग देना चाहिये। इसी प्रकार अमावास्या रिक्तादि के साथ उत्पातादि से दूषित नक्षत्र को त्याग देना चाहिये॥ ४६-४७½ ॥

स्तम्भोच्छ्राय हेतु प्रशस्त नक्षत्र

स्वाती मैत्रेऽथ माहेन्द्रे गान्धर्वे भग रोहिणे॥ ४८॥

स्तम्भोच्छ्रायादि कर्त्तव्यमन्यत्र परिवर्जयेत्।

स्वाति, अनुराधा, ज्येष्ठा, गान्धर्व (धनिष्ठा), पूर्वाफाल्गुनी तथा रोहिणी—इन नक्षत्रों में स्तम्भोच्छ्राय आदि करना चाहिये, अन्य नक्षत्र स्तम्भोच्छ्राय में वर्जित हैं॥ ४८-४८½॥

आठ आयों का साधन तथा उनकी दिशाएँ

विस्तारेण हतं दैर्घ्यं विभजेदष्टभिस्ततः॥ ४९॥
यच्छेषं सम्भवेदायो ध्वजाद्यास्ते स्युरष्टधा।
ध्वजो धूम्रो हरिः श्वा गौः खरेभौ वायसोऽष्टमः॥ ५०॥
पूर्वादि दिक्षु चाष्टानां ध्वजादीनामपि स्थितिः।
स्वस्थानात्पञ्चमे स्थाने वैरत्वञ्च महद् भवेत्॥ ५१॥
विषमायः शुभः प्रोक्तः समायः शोकदुःखदः।
स्वस्थानगा बलिष्ठाः स्युर्न चान्यस्थानगाऽशुभाः॥ ५२॥

भूखण्ड के विस्तार (चौड़ाई=Broad=width) तथा दैर्घ्य (लम्बाई=Length) का परस्पर गुणा करके उस गुणनफल में आठ का भाग देने से एकादि शेष से क्रमशः १. ध्वज, २. धूम्र, ३. सिंह, ४. श्वान, ५. गो (वृष), ६. खर (गर्दभ), ७. इभ (गज) तथा ८. वायस (काक या ध्वाङ्क्ष) में आठ आय होते हैं। ये क्रमशः १. पूर्व, २. आग्नेय, ३. दक्षिण, ४. नैर्ऋत्य, ५. पश्चिम, ६. वायव्य, ७. उत्तर, ८. ईशान दिशाओं में स्थित होते हैं अथवा इन दिशाओं के स्वामी होते हैं। इनमें से प्रत्येक आय का अपने से पाँचवें स्थान के आय से वैर होता है।

इन आयों में विषम संख्या के आय अर्थात् ध्वज, सिंह, गो तथा गज शुभ कहे गये हैं तथा सम संख्यावाले आय धूम्र, श्वान, खर तथा गज अर्थात् सामान्यतः मनुष्यों के गृह-निर्माण में शोक एवं दुःख देनेवाले होते हैं। इनमें से सभी आय अपने-अपने स्थानों अर्थात् दिशाओं में बली होते हैं तथा अपनी दिशा को छोड़कर अन्य दिशाओं में निर्बल या अशुभ होते हैं॥ ४९-५२॥

विमर्श—आगे जिस स्थान या शाला के निर्माण के लिये जो आय शुभ कहा है, उसी को उस आय में बनवाना चाहिये। अपने स्थान में सभी आय श्रेष्ठ होते हैं। इस वाक्य का यही अर्थ है।

आयों का विशेष फल

ध्वजः सिंहे तौ च गजे ह्येते गवि शुभप्रदाः।
वृषो न पूजितो ह्यत्र ध्वजः सर्वत्र पूजितः॥ ५३॥
वृषसिंहगजाश्चैव पुटकर्पटकोटयोः।
द्विपः पुनः प्रयोक्तव्यो वापीकूपसरस्सु च॥ ५४॥
मृगेन्द्रमासने दद्याच्छयनेषु गजं पुनः।
वृषं भोजनपात्रेषुच्छत्रादिषु पुनर्ध्वजम्॥ ५५॥

अग्निवेश्मसु सर्वेषु गृहे वस्त्रोपजीविनाम्।
धूम्रं नियोजयेत्केचित् श्वानं म्लेच्छादिजातिषु॥ ५६॥
खरो वैश्यगृहे शस्तो ध्वाङ्क्षः शेष कुटीषु च।
वृषसिंहध्वजाश्चापि प्रासादपुरवेश्मसु॥ ५७॥
गजाये वा ध्वजाये वा गजानां सदनं शुभम्।
अश्वालयं ध्वजाये च खराये वृषभेऽपि वा॥ ५८॥
उष्ट्राणां मन्दिरं कार्यं गजाये वा वृषध्वजे।
पशुसद्म वृषाये च ध्वजाये वा शुभप्रदम्॥ ५९॥
शय्यासु वृषभः शस्तः पीठे सिंहः शुभप्रदः।
अमत्रच्छत्रवस्त्राणां वृषाये वा ध्वजेऽपि वा॥ ६०॥
पादुकोपानहौ कार्यौ सिंहायेऽप्यथवा ध्वजे।
स्वर्णरूपादिधातूनामन्येषान्तु ध्वजस्मृतः॥ ६१॥

ध्वज, सिंह, गज तथा गो (वृष)—ये आय अपने-अपने स्थानों में विशेष शुभफल करते हैं। इनमें ध्वज आय सभी प्रकार के आवासों के निर्माण में शुभ होता है किन्तु गो (वृष) केवल उन्हीं में शुभ है, जिनके लिये उसका उल्लेख किया गया है॥ ५३॥

वृष-सिंह तथा गज आयों का विचार पुट (सन्दूक, म्यान, डिबिया, गुफा), कर्पट (कपड़ा-तम्बू आदि), कोट (किला-जेल तथा युद्धकालीन बंकर एवं सैनिक चौकियाँ) इनके निर्माण में प्रशस्त होते हैं। गज आय का प्रयोग, वापी (बावड़ी), कूप, तालाब तथा पानी की टंकी आदि में करना चाहिये॥ ५४॥

सिंह आय का प्रयोग देवताओं, राजाओं के सिंहासनों तथा आसनों के लिये करें। गज का प्रयोग शयन (खाट-पलंग-बेड-गद्दा-बिछौना, चादर आदि) में प्रशस्त है। वृष आय का प्रयोग भोजन पात्रों के नाप के लिये करना चाहिये। छत्र आदि में ध्वज आय प्रशस्त होती है॥ ५५॥

अग्निगृहों (रसोई-चिमनी आदि) में तथा वस्त्र-निर्माण गृहों में धूम्र आय की माप प्रयुक्त करें। मलेच्छादि जातियों (ईसाई एवं मुसलमानों) के लिये कुछ के मत से श्वान आय का प्रयोग करना चाहिये॥ ५६॥

वैश्यों (व्यापारियों) के गृह बनाने में खर आय का प्रोग करना चाहिये तथा अन्यों की कुटी (झोंपड़ी) आदि बनाने के लिये काक आय का प्रयोग करें। प्रासाद-निर्माण, नगर-निर्माण तथा वेश्म-निर्माण में वृष-सिंह तथा ध्वज आयों का प्रयोग करें॥ ५७॥

गज आय अथवा ध्वज आय में गजशाला बनवानी चाहिये। ध्वज, खर तथा वृष आय में अश्वशाला का निर्माण करना चाहिये ॥ ५८ ॥

उष्ट्रशाला का निर्माण गज आय अथवा ध्वज आय अथवा वृष आय का प्रयोग करें। पशुशाला (गोशाला-महिषशाला) इनके निर्माण में वृष अथवा ध्वज आय का प्रयोग करना चाहिये ॥ ५९ ॥

शय्या-निर्माण में वृषभ आय शुभ होती है तथा पीठ सिंहासन (अधिकारी की कुर्सी आदि में सिंह आय शुभ फलदायक होती है। पात्र, छाता तथा वस्त्रों में वृष आय अथवा ध्वज आय श्रेष्ठ होती है अथवा ध्वज आय प्रशस्त कही गई है ॥ ६० ॥

जूता, खड़ाऊँ चप्पल आदि का निर्माण सिंह आय में अथवा ध्वज आय में करना चाहिये। स्वर्ण, चाँदी आदि का कार्य जिन गृहों में होता है, उनके घरों के लिये ध्वज आय शुभ है ॥ ६१ ॥

ब्राह्मणादि वर्णों के लिये शुभ आयों का कथन

ब्राह्मणेषु ध्वजः शस्तः प्रतीच्यां कारयेत्मुखम्।
सिंहश्च भूभृतां शस्तः उदीच्यां च मुखं शुभम् ॥ ६२ ॥
विशां वृषः प्राग्वदने शूद्राणां दक्षिणे गजः।
सर्वेषामेव चायानां ध्वजः श्रेष्ठतमो मतः ॥ ६३ ॥
ध्वजायः क्षत्रिय विशोः प्रशस्तो गुरुरब्रवीत्।
सिंहायो सर्वथा त्याज्यो ब्राह्मणेन वृषेप्सुना ॥ ६४ ॥
सिंहाये चण्डता गेहे अल्पापत्यः प्रजायते।
ध्वजाये पूर्णसिद्धिः स्यात् वृषायः पशुवृद्धिदः ॥ ६५ ॥
गजाये सम्पदां वृद्धिः शेषायाः शोकदुःखदाः।

१. ब्राह्मणों के लिये ध्वज आय के अनुसार निर्मित गृह शुभ होता है, उनके घर का मुख पश्चिम दिशा में होना चाहिये। २. क्षत्रियों के लिये सिंह आय प्रशस्त है तथा उनके गृह का मुख उदीची (उत्तर) दिशा में होना चाहिये। ३. वैश्यों के लिये वृष आय श्रेष्ठ है, उनके गृह का मुख पूर्वदिशा में होना चाहिये। सभी के लिये ध्वज आय श्रेष्ठ होती है ॥ ६२-६३ ॥

गुरु का मत है कि ध्वज आय क्षत्रियों एवं वैश्यों के लिये भी प्रशस्त है। परन्तु ब्राह्मण यदि अपना कल्याण चाहता है तो उसे सिंह आय में अपना घर नहीं बनवाना चाहिये। सिंह आय में घर में चण्डता (उग्रता) रहती है, सन्तान थोड़ी होती है, जबकि ध्वज आय से पूर्ण सफलता और वृष आय में पशुधन की वृद्धि होती है। गज आय सभी प्रकार की सम्पत्ति को बढ़ाती है तथा शेष आय शोक एवं दुःखप्रद होते हैं ॥ ६४-६५½ ॥

१ ध्वज	२ धूम्र	३ सिंह	४ श्वान	५ वृष	६ खर	७ गज	८ ध्वांक्ष	**आठ आय**
पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	**आय की दिशा**
पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैर्ऋत्य	**आय का गृह मुख**
वृष	खर	गज	ध्वांक्ष	ध्वज	धूम्र	सिंह	श्वान	**शत्रु आय**
अश्व स्वरूप	विडाल-मुख	सिंहमुख नर शरीर	श्वान स्वरूप	वृष स्वरूप	खर स्वरूप	गज स्वरूप	काक मुख	**आय का स्वरूप**
ब्राह्मण एवं सभी	×	क्षत्रिय	×	वैश्य	×	शूद्र	×	**आयों के जाति एवं वर्ण**
प्रासाद पुर वेश्म अश्वशाला पशुशाला गोशाला महिषशाला	अग्नि-शाला ईंट-भट्ठे विविध प्रकार की भट्ठियाँ	प्रासाद पुर वेश्म पुट कर्पट कोठ सिंहासन	म्लेच्छों के गृह	प्रासाद पुर वेश्म गोशाला महिषशाला पशुशाला पुट कर्पट कोट	खरशाला खच्चरों का घर अश्वशाला छोटे लोडिंग वाले वाहन	गजशाला अश्वशाला उष्ट्रशाला शयनागार बड़े दस पहियों वाले वाहनों के गैरेज वापी कूप तडाग	पक्षिशाला म्लेच्छ गृह	**विभिन्न प्रकार के गृह**

गृह-निर्माणार्थ नौ पदार्थों का आनयन

पिण्डे नवाङ्काङ्गगजवह्निनागाष्टसागरैः ॥ ६६ ॥
नागैश्च गुणिते भक्ते क्रमादेते पदार्थकाः।
नागाद्रिनवसूर्याष्टभतिथ्यृक्षखभानुभिः ॥ ६७ ॥
आयो वारोंऽशको द्रव्यमृणमृक्षं तिथिर्युतिः।
आयुश्चाद्य गृहेशर्क्ष गृहमैक्यं मृतिप्रदम् ॥ ६८ ॥
सम्पूर्णा शुभदा ह्येते ह्यसम्पूर्णास्त्वनिष्टदाः।

गृह की लम्बाई × चौड़ाई से प्राप्त क्षेत्रफल को पिण्ड या पद भी कहते हैं। पिण्ड में क्रमशः ९।९।६।८।३।८।८।४।८ अंकों से अलग-अलग गुणा करें।

इन नौ स्थानों पर रखे गुणनफल में क्रमशः ८।७।९।१२।८।१२।१५।२७। १२० इन अंकों का भाग दें तो क्रमशः १. आय, २. वार, ३. अंशक, ४. द्रव्य, ५. ऋण, ६. नक्षत्र, ७. तिथि, ८. योग (युति) तथा ९. आयु ये नौ पदार्थ प्राप्त होते हैं॥ ६६-६७½ ॥

यदि कर्त्ता पुरुष गृह-स्वामी के नाम का नक्षत्र तथा इन नौ पदार्थों में छठे पदार्थ के रूप में प्राप्त घर का नक्षत्र एक ही हों (अथवा इनकी एक नाड़ी हो तो मृत्यु-कारक होते हैं)। ये सम्पूर्ण नौ पदार्थ शुभ हों इस प्रकार के क्षेत्रफल का चयन करना चाहिये॥ ६८-६८½ ॥

नौ पदार्थ तथा उनके गुणकों एवं भाजकों का चक्र

१ आय	२ वार	३ अंशक	४ द्रव्य (धन)	५ ऋण	६ नक्षत्र	७ तिथि	८ युति (योग)	९ गृह की आयु के वर्ष	**नौ पदार्थों के नाम**	
नव ९	अङ्क ९	अङ्ग ६	गज ८	वह्नि ३	नाग ८	अष्ट ८	सागर ४	नाग ८	**शब्दों में अंकों में**	**गुणक**
नाग ८	अद्रि ७	नव ९	सूर्य १२	अष्ट ८	भ २७	तिथि १५	ऋक्ष २७	ख भानु १२०	**शब्दों में अंकों में**	**भाजक**

उदाहरण—मान लीजिये किसी के भवन के भूखण्ड का दैर्घ्य (लम्बाई) ५७ हाथ तथा विस्तार (चौड़ाई) ४५ हाथ है, अत: इनका गुणनफल = ५७ × ४५ = २६६५ वर्ग हाथ—यह पिण्ड या क्षेत्रफल हुआ। अब निम्न क्रिया की गयी—

नव पदार्थ	गृह पिण्ड क्षेत्रफल	गुणांक	गुणनफल	भाजकाङ्क	लब्धि	शेष	नव पदार्थों के नाम
१	२६६५	×९	=२३९८५	÷८	२९९८	१=ध्वज	आय =
२	२६६५	×९	=२३९८५	÷७	३२८३	४=बुध	वार
३	२६६५	×६	=१५९९०	÷९	१७७६	६=शनि	अंश (अंशक)
४	२६६५	×८	=२१३२०	÷१२	१७७६	८=अधिक	द्रव्य (धन)
५	२६६५	×३	=७९९५	÷८	९९९	३=न्यून	ऋण
६	२६६५	×८	=२१३२०	÷२७	७८९	१७=अनु०	गृह नक्षत्र
७	२६६५	×८	=२१३२०	÷१५	१४२१	५=पूर्णा	तिथि
८	२६६५	×४	=१०६६०	÷२७	३९४	२२=साध्य	योग
९	२६५	×८	=२१३२०	÷१२०	१७७	८० वर्ष	आयु वर्ष

सारिणी द्वारा नव पदार्थों का आनयन—गुणा भाग से बचने के लिये हमने आगे गृह की नव पदार्थ सारिणी में दैर्घ्य ५७ तथा विस्तार ४५ के कोष्ठक के नीचे देखा तो पिण्ड २६६५ तथा क्रमांश १।४।६।८।३।१७।५।२२।८० ये अंक मिले। इस पिण्ड के गृह-निर्माण के लिये मेलापक और करना होगा।

गृह के नौ पदार्थों की सारिणी

दैर्घ्य विस्तार	१	१	२	३	३	३	३	३	५	५	५	५	५	५	५
दैर्घ्य	२	३	३	५	७	९	१३	१५	७	९	११	१३	१५	१७	१९
पिण्ड (क्षेत्रफल)	२	३	६	१५	२१	२७	३९	४५	३५	४५	५५	६५	७५	८५	९५
आय	२	३	६	७	५	३	७	५	३	५	७	१	३	५	७
वार	४	६	५	२	७	५	१	६	७	६	५	४	३	२	१
अंशक	३	९	९	९	९	९	९	९	३	९	६	३	९	६	३
द्रव्य (धन)	४	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	४	१२	८	४	१२	८	४
ऋण	६	१	२	५	७	१	५	७	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	१६	२४	२१	१२	६	२७	१५	९	१०	९	८	७	६	५	४
तिथि	१	९	३	१५	३	६	१०	१५	१०	१५	५	१०	१५	५	१०
योग	४	१२	२४	६	३	२७	२१	१८	५	१८	४	१७	३	१६	२
आयु वर्ष	१६	२४	४८	१२०	४८	९६	७२	१२०	४०	१२०	८०	४०	१२०	८०	४०
विस्तार	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	९	९	९	९	९
दैर्घ्य	९	११	१३	१५	१७	१९	२१	२३	२५	२७	११	१३	१५	१७	१९
पिण्ड (क्षेत्रफल)	६३	७७	९१	१०५	११९	१३३	१४७	१६१	१७५	१८९	९९	११७	१३५	१५३	१७१
आय	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	५	७	१	३
वार	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	२	३	४	५	६
अंशक	९	३	६	९	३	६	३	३	६	९	९	९	९	९	९
द्रव्य (धन)	१२	४	८	१२	४	८	४	४	८	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	५	७	१	३	५	७	३	३	५	७	१	७	५	३	१
नक्षत्र	१८	२२	२६	३	७	११	१९	१९	२३	२७	९	१८	२७	९	१८
तिथि	९	१	८	१५	७	१४	१३	१३	५	१२	१२	६	१५	९	३
योग (युति)	९	११	१३	१५	१७	१९	२३	२१	२५	२७	१८	९	२७	१८	९
गृहायु वर्ष	२४	१६	८	१२०	११२	१०४	९६	८८	८०	७२	७२	९६	१२०	२४	४८
विस्तार	९	९	९	९	९	९	९	११	११	११	११	११	११	११	१३
दैर्घ्य	२१	२३	२५	२७	२९	३१	३३	१३	१५	१७	१९	२१	२३	२५	१५
पिण्ड (क्षेत्रफल)	१८९	२०७	२२५	२४३	२६१	२७९	२९७	१४३	१६५	१८७	२०९	२३१	२५३	२७५	१९५
१. आय	५	७	१	३	५	७	१	७	५	३	१	७	५	३	३
२. वार	७	१	४	५	६	७	१	६	१	३	५	७	२	४	५
३. अंशक	९	९	९	९	९	९	९	३	९	६	३	९	६	३	९
४. द्रव्य (धन)	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	४	१२	१२	४	१२	८	४	१२
५. ऋण	७	५	३	१	७	५	३	५	७	१	३	५	७	१	१
६. नक्षत्र	२७	९	१८	२७	९	१८	२७	१०	२४	११	२५	१२	२६	१३	२१
७. तिथि	१२	६	१२	६	१५	९	३	४	१५	११	७	१५	११	१०	१५
८. योग (युति)	२७	१८	९	२७	१८	९	२७	५	१२	१९	२६	६	१३	२०	२४
९. आयु वर्ष	७३	९६	७२	९६	१२०	२४	४८	६४	१२०	५६	१२०	१२०	५६	११२	१२०

गृहे नवपदार्थसारिणी

विस्तार	१३	१३	१३	१३	१३	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१७	१७	१७	१७
दैर्घ्य	१७	१९	२१	२३	२५	१७	१९	२१	२३	२५	२७	१९	२१	२३	२५
पिण्ड	२२१	२४७	२७३	२९९	३२५	२५५	२८५	३१५	३४५	३७५	४०५	३२३	३५७	३९१	४२५
१. आय	५	७	१	३	७	७	५	३	१	७	५	३	५	७	१
२. वार	३	६	२	५	१	६	३	२	६	१	५	२	७	६	३
३. अंशक	३	६	९	३	९	९	९	९	९	९	९	३	९	६	३
४. द्रव्य	४	८	१२	४	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	४	१२	८	४
५. ऋण	७	५	१	१	५	५	७	१	५	५	७	१	७	५	३
६. नक्षत्र	१३	५	२४	१६	१५	१५	१२	९	३	३	२७	१९	२१	२३	२५
७. तिथि	१०	८	६	४	२२	१५	१५	१	१३	१३	१२	१	३	५	७
८. योग	२०	१६	१२	८	२१	२१	६	१८	१५	१५	२७	२३	२४	२५	२६
९. गृहायु	८८	५६	२४	११२	८०	१२०	१२०	१२०	१२०	१२०	१२०	६४	९६	८	४०

विस्तार	१९	१९	१९	१९	१९	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१
दैर्घ्य	२१	२३	२५	२७	२९	२३	२५	२७	२९	३१	३३	३५	३७	४०	४३
पिण्ड	३९९	४३७	४७५	५१३	५५१	४८३	५२५	५६७	६०९	६५१	६९३	७३५	७७७	८४०	९०३
१. आय	७	५	३	१	७	३	५	७	१	३	७	७	१	८	७
२. वार	७	६	२	१	७	४	७	४	७	६	७	७	७	७	७
३. अंशक	९	३	६	९	९	९	९	९	९	०	९	९	९	९	९
४. द्रव्य	१२	४	८	१२	४	१२	१२	१२	१२	०	१२	१२	१२	१२	१२
५. ऋण	५	७	१	३	५	१	७	५	३	१	७	५	३	८	५
६. नक्षत्र	६	१३	२०	२७	७	३	१५	२७	१२	२४	९	२१	६	१०	१५
७. तिथि	१२	१	१४	३	७	३	१५	१५	१२	९	९	१५	६	१२	९
८. योग	३	२०	१०	२७	१७	१५	२१	१७	६	१२	१८	५	३	१२	२१
९. गृहायु	७२	१६	८०	२४	८०	२४	१२०	९६	७२	४८	२४	१२०	९६	१२०	२४

विस्तार	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२५	२५	२५	२५
दैर्घ्य	२५	२७	२९	३१	३३	३५	३७	३९	४१	४३	४५	२५	२७	२९	३१
पिण्ड	५७५	६२१	६६७	७१३	७५९	८०५	८५१	८९७	९४३	९८९	१०३५	६२५	६७५	७२५	७७५
१. आय	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	३	५	७
२. वार	२	३	३	५	५	६	१	१	३	४	५	४	६	१	३
३. अंशक	३	९	६	३	९	६	३	९	६	३	९	६	९	३	६
४. द्रव्य	४	१२	८	४	१२	८	४	१२	८	४	१२	८	१२	४	८
५. ऋण	५	१	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	१	७	५
६. नक्षत्र	१०	२७	१७	४	२४	१४	४	२१	११	१	१८	५	२७	२२	१७
७. तिथि	१०	१५	२	१३	३	११	१३	११	१४	७	१५	५	१५	१०	५
८. योग	५	२७	२२	२	१२	७	२	२३	१९	१४	८	१६	२७	११	२२
९. गृहायु	४०	१२०	५६	६४	७२	८०	८८	९६	१०४	११२	१२०	८०	१२०	४०	८०

गृहे नवपदार्थसारिणी

दैर्घ्य	३१	३१	३१	३३	३३	३३	३३	३५	३५	३५	३५	३७	३७	३७	३७
विस्तार	२७	२९	३१	२७	२९	३१	३३	२९	३१	३३	३५	३१	३३	३५	३७
पिण्ड	८३७	८९९	९६१	८९१	९५७	१०२३	२०८९	१०१५	१०८५	११५५	१२२५	११४७	१२२१	१२९५	१३६९
१. आय	५	३	१	३	५	७	१	७	५	३	१	३	५	७	१
२. वार	१	६	४	४	३	२	१	७	७	७	७	५	६	७	१
३. अंश	९	३	६	९	९	९	९	६	३	९	६	६	९	३	६
४. द्रव्य	१२	४	८	१२	१२	१२	१२	८	४	१२	८	८	१२	४	८
५. ऋण	७	१	३	१	७	५	३	५	७	१	३	१	७	५	३
६. नक्षत्र	२७	१०	२०	२७	१५	३	१८	२०	१३	६	२६	२३	२१	१९	१७
७. तिथि	६	७	८	३	६	९	१२	५	१०	१५	५	१०	३	१०	२
८. योग	२७	५	१०	२७	२१	१५	९	१०	२०	३	१३	३५	२४	२३	२२
९. गृहायु	९६	११२	८	४८	९६	२४	७२	८०	४०	१२०	८०	५६	४८	४०	३२

दैर्घ्य	३९	३९	३९	३९	४१	४१	४१	४१	४१	४३	४३	४३	४३	४३	४५
विस्तार	३३	३५	३७	३९	३३	३५	३७	३९	४१	३५	३७	३९	४१	४३	३७
पिण्ड	१२८७	१३६५	१४४३	१५२१	१३५३	१४३५	१५१७	१५९९	१६८१	१५०५	१५८१	१६७७	१७६३	१८४७	१६६५
१. आय	७	५	३	१	१	३	५	७	१	१	७	५	३	१	१
२. वार	५	७	२	४	४	७	३	६	१	७	४	१	५	२	५
३. अंशक	९	९	९	९	९	६	३	९	६	३	६	९	३	६	९
४. द्रव्य	१२	१२	१२	१२	२२	८	४	१२	८	४	८	१२	४	८	१२
५. ऋण	५	७	१	३	३	१	७	५	३	३	५	७	१	३	३
६. नक्षत्र	९	१२	१५	१८	२४	५	१३	२१	२	२५	११	२४	१०	२३	९
७. तिथि	६	१५	९	३	९	५	१	१२	८	१०	८	६	४	२	१५
८. योग	१८	६	२१	९	१२	१६	२०	२४	१	२६	१९	१२	५	२५	१८
९. गृहायु	९६	१२	२४	४८	२४	८०	१६	७२	८	४०	८	९६	९४	३२	१२०

दैर्घ्य	४५	४५	४५	४५	४७	४७	४७	४७	४७	४९	४९	४९	४९	४९	५१
विस्तार	३९	४१	४३	४५	३७	४१	४३	४५	४७	४१	४३	४५	४७	४९	४१
पिण्ड	१७५५	१८४५	१९३५	२०२५	१८३३	१९४७	२०२१	२११५	२२०९	२००९	२१३७	२२०५	२३०३	२४०१	२०९१
१. आय	३	५	७	१	१	७	५	३	१	१	३	५	७	१	३
२. वार	३	१	६	४	५	४	३	२	१	७	७	७	७	७	३
३. अंश	९	९	९	९	९	६	३	९	६	३	६	९	३	६	९
४. द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	८	४	१२	८	४	८	१२	४	८	१२
५. ऋण	१	७	५	३	३	५	७	१	३	३	१	७	५	३	१
६. नक्षत्र	२७	२८	९	२७	३	२६	२२	१८	१४	७	८	९	९	११	१५
७. तिथि	१५	१५	१५	१५	९	११	१३	१५	२	७	११	१५	४	८	३
८. योग	१७	९	१८	२७	१५	१३	११	९	७	१७	४	१८	५	१९	२१
९. गृहायु	१२०	१२०	१२०	१२०	२४	५६	८८	२०	३२	११२	५६	१२०	६४	८	४८

गृहे नवपदार्थसारिणी

दैर्घ्य	५१	५१	५१	५१	५१	५३	५३	५३	५३	५३	५३	५५	५५	५५	५५
विस्तार	४३	४५	४७	४९	५१	४३	४५	४७	४९	५१	५३	४५	४७	४९	५१
पिण्ड	२१९३	२२९५	२३९७	२४९९	२६०१	२२७९	२३८५	२४९१	२५९६	२७०३	२८०९	२४७५	२५८५	२०९५	२८०५
१. आय	१	७	५	३	१	७	१	३	५	७	१	३	१	७	५
२. वार	४	५	६	७	१	१	३	५	७	२	४	१	४	७	३
३. अंश	९	९	९	९	९	३	९	६	३	९	६	९	३	६	९
४. द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	४	१२	८	४	१२	८	१२	४	८	१२
५. ऋण	३	५	७	१	३	५	३	१	७	५	३	१	३	५	७
६. नक्षत्र	२१	२७	६	१२	१८	७	१८	२	१३	२४	८	९	२५	२४	३
७. तिथि	९	१५	६	१२	३	७	१५	८	१	९	२	१५	१०	५	१५
८. योग	२४	२७	३	६	९	१७	९	१	२०	१२	४	१८	२६	७	१५
९. गृहायु	२४	१२०	९६	७२२	४८	११२	१२०	८	१६	२४	३२	१२०	४०	८०	१२०

दैर्घ्य	५५	५५	५५०	५७	५७	५७	५७	५७	५७	५९	५९	५९	५९	५९	५९
विस्तार	५३	५५	४५	४७	४९	५१	५३	५५	५७	४९	५१	५३	५५	५७	५९
पिण्ड	२९१५	३०२५	२६६५	२६७९	२७९३	२९०७	३०२१	३१३५	३२४९	२८९१	३००९	३१२७	३२४५	३३६३	३४८१
१. आय	३	१	१	७	१	३	५	७	१	३	१	७	५	३	१
२. वार	६	२	४	३	७	४	१	५	२	७	५	३	१	६	४
३. अंश	३	६	६	९	९	९	९	९	९	३	९	६	३	९	६
४. द्रव्य	४	८	८	१२	१२	१२	१२	१२	१२	४	१२	८	४	१२	८
५. ऋण	१	३	३	५	३	१	७	५	३	१	३	५	७	१	३
६. नक्षत्र	१९	८	१७	२१	१५	९	३	२४	१८	१६	१५	१४	१३	१२	११
७. तिथि	१०	५	५	१२	९	६	३	१५	२२	१३	१२	११	१०	९	८
८. योग	२३	४	२२	२४	२१	१८	१५	१२	९	८	२१	७	२०	६	१९
९. गृहायु	४०	८०	८०	७२	२४	९६	४८	१२०	७२	८८	७२	५६	४०	२४	८

दैर्घ्य	६१	६१	६१	६१	६१	६१	६१	६३	६३	६३	६३	६३	६३	६५	६५
विस्तार	४९	५१	५३	५५	५७	५९	६१	५१	५३	५५	५७	६१	६३	५३	५५
पिण्ड	२९८९	३१११	३२३३	३३५५	३४७७	३५९९	३७२१	२३१३	३३३९	३४६५	३५९१	३८४३	३९६९	३४४५	३५७५
१. आय	५	७	१	३	५	७	१	५	३	१	७	३	१	५	७
२. वार	७	६	५	४	३	२	१	७	७	७	७	७	७	२	३
३. अंश	६	९	३	६	९	३	६	९	९	९	९	९	९	६	३
४. द्रव्य	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	१२	१२	१२	१२	१२	८	४
५. ऋण	७	५	३	१	७	५	३	७	१	३	५	१	३	७	५
६. नक्षत्र	१७	२१	२५	२	६	१०	१४	२७	९	१८	२७	१८	२७	२०	७
७. तिथि	२	३	४	५	६	७	८	९	१२	१५	३	९	१२	५	१०
८. योग	२२	२४	२६	१	३	५	७	२७	१८	९	२७	९	२७	१०	१७
९. गृहायु	३२	४८	६४	८०	९६	११२	८	२४	७२	१२०	४८	२४	७२	८०	४०

गृहे नवपदार्थसारिणी

दैर्घ्य	६५	६५	६५	६५	६५	६७	६७	६७	६७	६७	६७	६७	६७	६९	६९
विस्तार	५७	५९	६१	६३	६५	५३	५५	५७	५९	६१	६३	६५	६७	५५	५७
पिण्ड	३७०५	३८३५	३९६५	४०९५	४२२५	३५५१	३६८५	३८१९	३९५३	४०८७	४२२१	४३५५	४४८९	३७९५	३९३३
१. आय	१	३	५	७	१	७	५	३	१	७	५	३	१	३	५
२. वार	४	५	६	७	५	४	६	१	३	५	७	२	४	२	५
३. अंश	९	६	३	९	६	३	६	९	३	६	९	३	६	९	९
४. द्रव्य	१२	८	४	१२	८	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	१२
५. ऋण	३	१	७	५	३	५	७	१	३	५	७	१	३	१	७
६. नक्षत्र	२१	८	२२	९	२३	४	२३	१५	७	२६	१८	१०	२	१२	९
७. तिथि	१५	५	१०	१५	५	१३	५	१२	४	११	३	१०	२	१५	९
८. योग	२५	४	११	१८	२५	२	२५	३१	१७	१३	९	५	१	६	१८
९. गृहायु	१२०	८०	४०	१२०	८०	८८	८०	७२	६४	५६	४८	४०	३९	१२०	२४

दैर्घ्य	६९	६९	६९	६९	६९	६९	७१	७१	७१	७१	७३	७१	७१	७१	७१
विस्तार	५९	६१	६३	६५	६७	६९	५५	५७	५९	६१	६३	६५	६७	६९	७१
पिण्ड	४०७१	४२०९	४३४७	४४८५	४६२३	४५६१	३९०५	४०४७	४१८९	४३३१	४४३३	४६१५	४७५७	४८९९	५०४१
१. आय	७	१	३	५	७	१	१	७	५	३	१	७	५	३	१
२. वार	१	४	७	३	६	२	५	२	६	३	७	४	१	५	२
३. अंशक	९	९	९	९	९	९	३	९	६	३	९	६	३	९	६
४. द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	४	१२	८	४	१२	८	४	१२	८
५. ऋण	५	३	१	७	५	३	३	५	७	१	३	५	७	१	३
६. नक्षत्र	६	३	२७	२४	२१	१८	१	३	५	७	९	११	१३	१५	१७
७. तिथि	३	१२	६	१५	९	३	१०	६	२	१३	९	५	१	१२	८
८. योग	३	१५	२७	२१	२४	९	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२
९. गृहायु	४८	७२	९६	१२०	२४	४८	४०	९६	३२	८८	२४	८०	१६	७२	४८

दैर्घ्य	७३	७३	७३	७३	७३	७५	७५	७५	७५	७५	७५	७५	७५	७५	७५
विस्तार	६५	६७	६९	७१	७३	५७	५९	६१	६३	६५	६७	६९	७१	७३	७५
पिण्ड	४७४५	४८९१	५०३७	५१८३	५३२९	४२७५	४४२५	४५७५	४७२५	४८७५	५०२५	५१७५	५३२५	५४७५	५६२५
१. आय	१	३	५	७	१	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
२. वार	५	३	१	६	४	३	३	१	७	६	५	४	३	२	१
३. अंश	३	६	९	३	६	९	७	९	९	९	९	९	९	९	९
४. द्रव्य	४	८	१२	४	८	१२	८	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१३
५. ऋण	३	१	७	५	२	१	३	५	७	१	१	५	७	१	३
६. नक्षत्र	२५	५	१२	१९	२६	१८	२	१५	२७	१२	१२	९	२१	६	८
७. तिथि	१०	८	६	४	२	१५	५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५
८. योग	२६	१६	६	२३	१३	९	१	२१	२७	६	६	१८	२४	३	९
९. गृहायु	४०	८	९६	९४	३२	१२०	८०	१२०	१२०	१२०	१२०	१२०	१२०	१२०	१२०

गृह के आय-व्यय का ज्ञान तथा फल

धिष्ण्ये च वसुभिर्भक्ते व्ययः स्याच्छेषकाङ्कके ॥ ६९ ॥
(पिण्डे च वसुभिर्भक्ते आयः स्याच्छेषकाङ्कके)
धनादिकं गृहं वृद्ध्यै निर्धनाय ऋणाधिकम्।

गृहपिण्ड (क्षेत्रफल) को ८ से भाग देने पर गृह की आय (आमदनी=Income) ज्ञात होती है तथा पूर्वकथित विधि से छठे पदार्थ के रूप में गृह का जो नक्षत्र आया है, उसमें ८ का भाग देने से गृह का व्यय होता है। यदि गृह की आय अधिक हो तो घर में सम्पन्नता रहती है तथा व्यय अधिक हो तो निर्धनताकारक होता है ॥ ६९½ ॥

विमर्श—यहाँ आय का अर्थ पूर्वोक्त ध्वजादि आठ आय न होकर उसकी आमदनी से है।

गृह के इन्द्रादि अंशों का ज्ञान

व्ययान्विते क्षेत्रफले ध्रुवाद्यक्षरसंयुते ॥ ७० ॥
त्रिभिः शेषे क्रमादिन्द्रयमभूम्यधिपांशकाः।
इन्द्रांशे पदवीवृद्धिर्महत्सौख्यं प्रजायते ॥ ७१ ॥
यमांशे मरणं नूनं रोगशोकमनेकधा।
राजांशे धनधान्याप्तिः पुत्रवृद्धिश्च जायते ॥ ७२ ॥

गृह के क्षेत्रफल में उस गृह का जो ध्रुवादि नाम हो, उसकी अक्षर-संख्या तथा गृह का व्यय (इन तीनों को) जोड़ दे तथा उसमें तीन का भाग दें। १ शेष बचने पर इन्द्र का भाग, २ शेष बचने पर यम का भाग तथा ३ या शून्य शेष बचने पर राजा का अंश या भाग होता है।

यदि इन्द्रांश आये तो पदवीवृद्धि (उन्नति) होती है। यदि यमांश आये तो मृत्यु या मृत्युतुल्य कष्ट होता है तथा राजांश में महान् सुख की प्राप्ति होती है एवं धन मिलता है ॥ ७०-७२ ॥

विमर्श—गृह के आय-व्यय, इन्द्रादि अंश, ध्रुवादि नाम, गृह के धन-ऋण तथा गृहायु का विचार केवल उन्हीं गृहों में करने को कहा गया है, जिनमें दैर्घ्य ३२ हाथ से न्यून होता है। बत्तीस हाथ से अधिक लम्बाईवाले गृहों में इन पाँच बातों का विचार नहीं किया जाता है। जैसा कि 'तत्त्वचिन्तामणि' नामक ग्रन्थ में कहा गया है—

'यत्र दैर्घ्यं गृहादीनां द्वात्रिंशद्धस्ततोऽधिकम्।
न तत्र चिन्तयेद् धीमान् गुणानायव्ययाधिकम् ॥'

गृहस्वामी की नामराशि के साथ गृहनक्षत्र की राशि का मेलापक

राशिकूटादिकं सर्वं दम्पत्योरिव चिन्तयेत्।
नैःस्वं द्विर्द्वादशे नूनं त्रिकोणे ह्यनपत्यता ॥ ७३ ॥
षडष्टके नैधनं स्याद् व्यत्ययेन धनं स्मृतम्।

जिस प्रकार से विवाह के पूर्व वर-कन्या की जन्मराशियों का मेलापक किया जाता है, उसी प्रकार राशिकूट, नक्षत्रकूट आदि सबका विचार गृहस्वामी की नामराशि तथा गृह की राशि से करना चाहिये।

अशुभ राशिकूट—यदि गृहस्वामी तथा गृह की राशि में द्विर्द्वादश सम्बन्ध हो तो निर्धनता होती है। यदि उनमें त्रिकोण सम्बन्ध (नवपंचम) हो तो सन्तानहीनता होती है अर्थात् सन्तति को हानि पहुँचाते हैं। यदि दोनों में षडष्टक का सम्बन्ध हो तो मृत्यु या मृत्युतुल्य कष्ट होता है। इनसे भिन्न प्रकार के सम्बन्ध धनदायक होते हैं ॥ ७३-७३½ ॥

शुभ चन्द्रमा

द्यूनस्थिते पुत्रलाभं स्त्रीलाभं तथैव च ॥ ७४ ॥
जन्म तृतीये च तथा धनधान्यागमो भवेत्।
दशमैकादशे चन्द्रो धनायुर्बहुपुत्रदः ॥ ७५ ॥
चतुर्थाष्टमे रिष्फस्थो मृत्युपुत्रविनाशदः।
त्रिकोणे त्वनपत्यं स्यात् केचित् बन्धुगृहे शुभम् ॥ ७६ ॥
वदन्ति चन्द्रे मुनयो नैतन्मम मतं स्मृतम्।

यदि गृहारम्भ के समय चन्द्रमा सप्तमस्थ हो तो पुत्र एवं स्त्री का लाभ देता है। यदि जन्म का अथवा तृतीय का चन्द्रमा हो तो धन-धान्य का लाभ कराता है। यदि चन्द्रमा दशम या एकादश भाव में हो तो धनवृद्धि, आयुवृद्धि तथा पुत्र-पौत्रादि की वृद्धि करता है ॥ ७४-७५ ॥

यदि चन्द्रमा चौथा, आठवाँ या बारहवाँ हो तो मृत्युभय एवं पुत्रहानि होती है। यदि चन्द्रमा त्रिकोण में हो तो सन्ततिहानि देता है तथा कुछ मुनिजन उसे चौथे घर में शुभ मानते हैं। यह उनका मत है, मेरा मत नहीं है ॥ ७६-७६½ ॥

राशिकूट-चक्र

१ मेष	२ वृष	३ मिथुन	४ कर्क	५ सिंह	६ कन्या	७ तुला	८ वृश्चिक	९ धनु	१० मकर	११ कुम्भ	१२ मीन	गृहस्वामी की नामराशि
२-१२	३-१	४-२	५-३	६-५	७-५	८-६	९-७	१०-८	११-९	१२-१०	१-११	द्विर्द्वादश राशि
९-५	१०-६	११-७	१२-८	१-९	२-१०	३-११	४-१२	५-१	६-२	७-३	८-४	नवपञ्चम राशि
६-८	७-९	८-१०	९-११	१०-१२	११-१	१२-२	१-३	२-४	३-५	४-६	५-७	षडष्टक
७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	समसप्तक
४-१०	५-११	६-१२	७-१	८-२	९-३	१०-४	११-५	१२-६	१-७	२-८	३-९	चतुर्थ-दशम
३-११	४-१२	५-१	६-२	७-३	८-४	९-५	१०-६	११-७	१२-८	१-९	२-१०	त्रिरेकादश

वास्तुशास्त्रीय राशिचक्र (अवकहडा चक्र)

अश्विन्यादित्रयं मेषे सिंहे प्रोक्तं मघात्रयम् ॥ ७७ ॥
मूलादित्रितयश्चापे शेषराशिर्द्विके द्विके।

१. अश्विनी-भरणी-कृत्तिका—इन तीनों नक्षत्रों को मिलाकर मेषराशि होती है। २. मघा-पूर्वाफाल्गुनी-उत्तराफाल्गुनी—इन तीनों को मिलाकर सिंह राशि तथा ३. मूल-पूर्वाषाढ़ा-उत्तराषाढ़ा को मिलाकर धनुराशि होती है। शेष राशियों में दो-दो नक्षत्र आते हैं ॥ ७७-७७½ ॥

विमर्श—वास्तुशास्त्रीय राशिविचार चक्र में राशियों एवं नक्षत्रों का समायोजन भिन्न प्रकार से होता है। प्रचलित राशिचक्र का विभाजन अश्विन्यादि गणना से सवा दो नक्षत्रों के अनुपात से किया गया है, परन्तु इस वास्तुशास्त्रीय अवकहडा-चक्र के विचार में पूरे-पूरे नक्षत्रों के साथ बारह राशियों का समन्वय किया गया है। इसी आधार पर गृह के साथ मेलापक में गृहस्वामी की राशि का विचार करना चाहिये। यहाँ पंचांगों में दिये गये अवकहडा चक्र के अनुसार उसकी राशि नहीं देखना चाहिये।

ध्यान रहे—गृहमेलापकादि में जन्मराशि का प्रयोजन नहीं है, यहाँ तो इस विशेष अवकहडा चक्र के आधार पर ही नामराशि का विचार करना चाहिये। तथा निम्न नियमों का ध्यान रखें—

१. स्वरों में ह्रस्व तथा दीर्घ का भेद इस चक्र में नहीं होता है। जैसे कि अनन्तराम तथा आदेश कुमार दोनों का नक्षत्र कृत्तिका ही होगा तथा राशि मेष होगी।

२. मात्राओं में ह्रस्व-दीर्घ में भेद नहीं है, अत: चुन्नीलाल तथा चूड़ामणि इन दोनों का नक्षत्र अश्विनी होगा तथा राशि मेष होगी।

३. ऋषिकुमार की राशि वृष होगी।

४. व-ब, वि-बि, बु-बु. इनमें कोई भेद नहीं होता है।

५. 'श' तथा 'स' अक्षरों में भी कोई भेद नहीं मानकर राशि का विचार करना चाहिये। इसके अनुसार शालिनी तथा सारिका के नाम का नक्षत्र शतभिषा तथा राशि कुम्भ होगी।

इस अवकहडा चक्र के अनुसार मेष-सिंह-धनु—इन तीन राशियों में नौ नक्षत्र होते हैं, शेष बची हुई नौ राशियों में शेष १८ नक्षत्रों का समायोजन हो जाता है। आगे के पृष्ठ पर वास्तुशास्त्रीय अवकहडा चक्र दिया जा रहा है।

विशेष—घ-घा-घि-घी-घु-घू-घे-घै—इन अक्षरों का आर्द्रा नक्षत्र तथा मिथुन राशि है। छ-छा-छि-छी-छु-छू-छे भी इसी में हैं। थ-था-थि-थी-थु-थू-थे-थै-थो-थौ तथा झ-झा-झि-झी-झु-झू-झे-झै-झो-झौ—ये उत्तराभाद्र नक्षत्र तथा मीनराशि के अक्षर हैं। ठ-ठा-ठि-ठी-ठु-ठू-ठे-ठै-ठो-ठौ—ये अक्षर हस्त नक्षत्र तथा कन्या राशि में है। फ-फा-फि-फी-फु-फू-फे-फै-फो-फौ तथा ढ-ढा-ढि-ढी-ढु-ढू-ढे-ढै-ढो-ढौ—ये अक्षर पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र तथा धनुराशि में हैं।

वास्तुशास्त्रीय अवकहडा-चक्र

राशि	नक्षत्र	अक्षर
१ मेष	१. अश्विनी २. भरणी ३. कृत्तिका	चू-चे-चो-ला ली-लु-ले-लो अ-इ-उ-ए
२ वृष	४. रोहिणी ५. मृगशिरा	ओ-वा-वि-वू (औ-बा-बी-बू) वे-वो क की (बे-बो का-कि)
३ मिथुन	६. आर्द्रा ७. पुनर्वसु	कु-घ-ङ-छ के-को ह-ही
४ कर्क	८. पुष्य ९. आश्लेषा	हु-हे-हो-डा डि-डू-डे-डो
५ सिंह	१०. मघा ११. पूर्वाफाल्गुनी १२. उत्तराफाल्गुनी	मा-मी-मू-मे (म-मि-मु-मै) मो-ट-टि-टु टे-टो-प-पी
६ कन्या	१३. हस्त १४. चित्रा	पू-ष-ण-ठ पे-पो-रा-रि
७ तुला	१५. स्वाति १६. विशाखा	रू-रे-रो-ता ती-तू-ते तो
८ वृश्चिक	१७. अनुराधा १८. ज्येष्ठा	ना-नी-नु-ने वो-या-यि-यु
९ धनु	१९. मूल २०. पूर्वाषाढ़ा २१. उत्तराषाढ़ा	ये-यो-भ-भी भु-ध-फ-ढ भे-भो-जा-जि
१० मकर	२२. श्रवण २३. धनिष्ठा	ख-खी-खु-खे-खो ग-गी-गु-गे
११ कुम्भ	२४. शतभिषा २५. पूर्वाभाद्रपद	गो सा-सि-सु (शा-शि-शु) से-सो द-दीं
१२ मीन	२६. उत्तराभाद्रपद २७. रेवती	दू-थ-झ-ञ दे-दो-च-ची

अशुभवार एवं अशुभ अंशक

सूर्यारवारराश्यंशा: सदा वह्निभयप्रदा ॥ ७८ ॥
शेष ग्रहाणां वारांशा: कर्तुरिष्टार्थसिद्धिदा:।
तन्नवांश वशात्तत्र ज्ञातव्यं सर्वदा गृहम् ॥ ७९ ॥

रविवार एवं मंगलवार तथा इन ग्रहों के राशि एवं अंश सदैव अग्निभय देते हैं। शेष ग्रहों के वार तथा नवांश गृहारम्भ में शुभ फल देते हैं। गृह का जो नक्षत्र क्षेत्रफल

के अनुसार आया हो वह नक्षत्र यदि दो राशियों में विभाजित हो तो उसके नवांश के अनुसार सदैव गृह के नवांश का विचार करना चाहिये॥ ७८-७९॥

विमर्श—पूर्व में नौ पदार्थों में जो तीसरा पदार्थ अंश है, उसके स्वामियों को विंशोत्तरी दशाक्रम से जानना चाहिये—

१. सूर्य, २. चन्द्र, ३. मंगल, ४. राहु, ५. गुरु, ६. शनि, ७. बुध, ८. केतु तथा ९. शुक्र। यथा—

'अर्कश्चन्द्रः कुजो राहुर्जीवमन्दज्ञकेतवः।
भृगुपुत्रक्रमेणैव अंशाधीशाः प्रकीर्तिताः॥'

इसी प्रकार से जो चौथा पदार्थ द्रव्य है, उसकी संख्या के अंक द्रव्य का भेद भी सूचित करते हैं—

१. वस्त्र, २. शस्त्र, ३. पुस्तक, ४. द्रव्य (स्वर्णादि), ५. धान्य, ६. वसुन्धरा, ७. कुटुम्ब, ८. विद्यारूपीधन, ९. पशुधन, १०. वाटिकाधन, ११. भाण्डधन तथा १२. आभूषण धन। इस प्रकार बारहरूपों में से किसी एक रूप में धन (द्रव्य) होता है—

'पिण्डाष्ट गुणितञ्चात्र सूर्यैश्चापि विभाजितम्।
अवशिष्टं भवेद् द्रव्यं तत्तन्नामाब्रवीदिदम्॥'
'वस्त्राणि शस्त्राणि च पुस्तकानि
द्रव्याणि धान्यानि वसुन्धरा च।
कुटुम्ब विद्या पशुवाटिकाश्च
भाण्डानि भूषाश्च धनानि सूर्याः॥'

तारामेलाप का फल

विपत्प्रदा विपत्तारा प्रत्यरिः प्रतिकूलदा॥ ८०॥
निधनाख्या तु या तारा सर्वथा निधनप्रदा।
विवर्ज्यतारकास्वेतत् निर्माणमशुभप्रदम्॥ ८१॥
प्रत्यरिः तूग्रभयदा त्रिविंशर्क्षे च मृत्युदा।
निधनाख्या तु या तारा स्त्रीसुतार्तिप्रदायिनी॥ ८२॥
कुर्वन्नज्ञानतो मोहाद् दुःखभाक् व्याधिभाक् भवेत्।

गृहस्वामी की राशि से गृह का नक्षत्र यदि विपत्ति तारा में हो तो विपत्ति होती है। यदि प्रत्यरितारा में हो तो प्रतिकूलता उत्पन्न होती है। निधनतारा मृत्यु अथवा मृत्युतुल्य कष्ट देता है, अतः विपत्ति-प्रत्यरि तथा निधन (वध) तारा—इन तीन ताराओं को छोड़कर गृहारम्भ करना चाहिये॥ ८०-८१॥

विशेष फल यह है कि प्रत्यरि तारा में उग्रभय होता है। नाम नक्षत्र से २३वाँ नक्षत्र (प्रत्यरि) विशेष रूप से मृत्युभयकारक होता है। निधनतारा (नाम नक्षत्र से ७वाँ,

१६वाँ, २५वाँ) स्त्री, पुत्रों को कष्टप्रद होता है। यदि अज्ञानतावश इन तीन ताराओं विपत्-प्रत्यरि तथा निधन में गृहारम्भ हो तो दुःख-रोग एवं कष्ट होता है॥ ८२½॥

तारा प्रदर्शक चक्र (कर्त्ता के नाम नक्षत्र से गिनें)

१ जन्मतारा	२ सम्पत्तितारा	३ विपत्तितारा	४ क्षेमतारा	५ प्रत्यरितारा	६ साधकतारा	७ वधतारा (निधन)	८ मित्रतारा	९ अतिमित्रतारा
पहला दसवाँ उन्नीसवाँ	दूसरा ग्यारहवाँ बीसवाँ	तीसरा बारहवाँ इक्कीसवाँ	चौथा तेरहवाँ बाइसवाँ	पाँचवाँ चौदहवाँ तेईसवाँ	छठवाँ पन्द्रहवाँ चौबीसवाँ	सातवाँ सोलहवाँ पच्चीसवाँ	आठवाँ सत्रहवाँ छब्बीसवाँ	नौवाँ नक्षत्र अठारहवाँ नक्षत्र सत्ताइसवाँ नक्षत्र

गृहारम्भ में दुष्ट तिथ्यादि का फल

तिथौ रिक्ते दरिद्रत्वं दर्शे गर्भनिपातनम्॥ ८३॥
कुयोगे धान्यादिनाशः पातश्च मृत्युदः।
वैधृतिः सर्वनाशाय नक्षत्रैक्ये तथैव च॥ ८४॥

यदि रिक्ता तिथि (४। ९। १४) में गृहारम्भ किया जाय तो दरिद्रता होती है। अमावस्या में गृहारम्भ होने पर गर्भपात होता है। यदि किसी सामान्य कुयोग में गृहारम्भ हो तो धान्यादि की हानि होती है। यदि व्यतिपात में गृहारम्भ हो तो मृत्यु होती है। वैधृतियोग किया गया गृहारम्भ सब प्रकार से हानिप्रद होता है। उसी प्रकार से यदि गृहस्वामी के नाम का नक्षत्र तथा गृह का नक्षत्र यदि एक ही हो तो भी सर्वनाशकारक होता है॥ ८३-८४॥

आयुर्विहीन गृह का परिणाम

आयुर्विहीने गेहे तु दुर्भगत्वं प्रजायते।

हीनायुवाले घर में वास करने से दुर्भाग्य प्राप्त होता है, अतः हीनायु गृह में निवास नहीं करना चाहिये॥ ८४½॥

विमर्श—पूर्वकथित गृह के नौ पदार्थों में नौवाँ पदार्थ गृह की आयु होती है। गृह की आयु ८ वर्ष से १२० वर्ष पर्यन्त होती है। यहाँ ४० वर्षपर्यन्त की आयुवाले गृहों को अल्पायु, ८० वर्ष तक मध्यायु तथा १२० वर्ष को पूर्णायु जाने, यथासंभव पूर्णायु वाला गृह ही बनवाना चाहिये। यदि किसी कारणवश अल्पायुवाले गृह में निवास करना पड़े तो फिर उसकी जितने वर्ष की आयु निकली है, उसे पूर्ण होते ही उस घर को छोड़ देना उचित होता है।

गृह के साथ अन्य प्रकार से मेलापक

नाडीवेधो न शुभदस्तारा रोगभयप्रदा॥ ८५॥
गणवैरे पुत्रहानिर्धनहानिस्तथैव च।
योनौ कलिर्महादुःखं यमांशे मरणाद्भयम्॥ ८६॥

नक्षत्रैक्ये स्वामिमृत्युर्वर्णे वंशविनाशनम्।
पापवारे दरिद्रत्वं शिशूनां मरणं तथा॥ ८७॥
केचिच्छनिं प्रशंसन्ति चौरभीतिस्तु जायते।

गृह मेलापक में गृहस्वामी एवं गृह की नाडी एक नहीं होनी चाहिये। इसका फल शुभ नहीं होता है। दोनों की तारा भी एक न हो अन्यथा रोगभयकारक होते हैं। यदि दोनों के गणों में वैर हो तो पुत्रहानि तथा धनहानि होती है। योनिवैर में कलह तथा महान् दुःख होता है। यमांश में गृह-निर्माण मृत्युकारक होता है। गृह एवं उसके स्वामी के नक्षत्रों की एकता भी स्वामी के लिये मृत्युकारक है। वर्णों में शत्रुता होना वंश-विनाशक है।

यदि नौ पदार्थों में आया हुआ वार पापग्रह का है तो वंश-विनाशक होता है, परन्तु कुछ आचार्य शनि को शुभ मानते हैं। उसमें केवल चोरभय होता है॥ ८५-८७½॥

नाडीज्ञान चक्र

नाडी	नक्षत्र (नाम के प्रथम अक्षर का नक्षत्र)								
आदिनाडी	अश्विनी	आर्द्रा	पुनर्वसु	उ०फा०	हस्त	ज्येष्ठ	मूल	शत०	पू०भा०
मध्यनाडी	भरणी	मृगशिरा	पुष्य	पूर्वाफाल्गुनी	चित्रा	अनुराधा	पूर्वाषाढ़ा	धनि०	उ०भा०
अन्त्यनाडी	कृत्तिका	रोहिणी	श्लेषा	मघा	स्वाति	विशाखा	उ०षा०	श्रवण	रेवती

गणबोधक चक्र

१. देवगण	२. मनुष्यगण	३. राक्षसगण	गण
अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, अनुराधा, हस्त, श्रवण, स्वाति, रेवती	भरणी, आर्द्रा, रोहिणी, उ०फा०, उ०षा०, उ०भा०, पू०फा०, पू०षा०, पू०भा०	कृत्तिका, श्लेषा, मघा, ज्येष्ठा, चित्रा, विशाखा, मूल, शतभिषा, धनिष्ठा	गणों के नक्षत्र
देवता	मनुष्य	राक्षस	मित्रगण
मनुष्य	देवता	×	समगण
राक्षस	राक्षस	देवता, मनुष्य	शत्रुगण

योनि मेलापकबोधक चक्र

१ अश्व	२ महिष	३ सिंह	४ गज	५ मेष	६ वानर	७ नकुल	८ सर्प	९ हरिण (मृग)	१० श्वान	११ मार्जार	१२ मूषक	१३ व्याघ्र	१४ गो	योनि
अश्विनी शत०	हस्त स्वाति	धनि पू.भा.	भरणी रेवती	कृत्तिका पुष्य	श्रवण पू.षा.	उ.षा. अभि.	रोहिणी मृग.	अनु. ज्ये.	आर्द्रा मूल	पुनर्वसु श्लेषा	मघा पू.फा.	विशा. चित्रा	उ.भा. उ.फा.	नक्षत्र
महिष	अश्व	गज	सिंह	वानर	मेष	सर्प	नकुल	श्वान	हरिण	मूषक	मार्जार	गो	व्याघ्र	वैर योनि

वर्णबोधक चक्र

१ मेष	२ वृष	३ मिथुन	४ कर्क	५ सिंह	६ कन्या	७ तुला	८ वृश्चिक	९ धनु	१० मकर	११ कुम्भ	१२ मीन	राशियाँ
अश्विनी भरणी कृत्तिका	रोहिणी मृग.	आर्द्रा पुनर्वसु	पुष्य श्लेषा	मघा पू.फा. उ.फा.	हस्त चित्रा	स्वाति विशाखा	अनु. ज्येष्ठा	मूल पूर्वाषाढ़ा उ.षा.	श्रवण धनि.	शत. पू.भा.	उ.भा. रेवती	नक्षत्र
क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	विप्र	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	विप्र	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	विप्र	राशि एवं नक्षत्र का वर्ण

गृहस्वामी के नाम के प्रथम अक्षर से जो वर्ण आये, उससे गृह के नक्षत्रराशि का वर्ण समान या नीचा होना शुभ है। स्वामी के वर्ण से गृह का वर्ण ऊँचा न हो।

स्वामि हस्त प्रमाण से अभीष्ट क्षेत्रफल की सिद्धि का कथन

स्वामिहस्तप्रमाणेन गृहं कुर्याद् वरानने।
रेखादिहस्तपर्यन्तमोजसंख्या प्रशस्यते॥ ८८॥
करमानादधिकं चेत्तदङ्गुलानि प्रदाय च।
क्षेत्रफलं गणितेन प्रसाधयेदिष्टसिद्ध्यर्थम्॥ ८९॥
करमानादधिकं चेदङ्गुलानि प्रसाधयेत्।
दीर्घे देयानि वा नूनं न विस्तीर्णे कदाचन॥ ९०॥
अङ्गुलैः कल्पिता नाभिर्वर्गीकृत्य पदं भवेत्।
प्राप्तहस्तादिमानं स्यात्कुर्यादायतनं ततः॥ ९१॥

(भगवान् शंकर कहते हैं—) हे पार्वति! गृह को उसके स्वामी के हाथ की माप से बनाना चाहिये। रेखा (लिक्षा) से लेकर (यूका-जौ-अंगुल) हाथ तक की माप में क्षेत्रफल हेतु दैर्घ्य-विस्तार का प्रमाण विषम संख्या में होना शुभ होता है॥ ८८॥

यदि क्षेत्रफल अभीष्ट न आये तो उसमें कुछ अंगुलों को मिलाकर अथवा कुछ अंगुलों को (दैर्घ्य-विस्तार) में कम करके उसे शुभ प्रमाण में बना लेना चाहिये। इस प्रकार न्यूनाधिक करके उचित प्रमाण में क्षेत्रफल सिद्ध करें। अंगुलों की कल्पना से जो नाभिक्षेत्र का मान हो, उसका वर्ग करने से पद होता है। उससे जो हस्तादि मान प्राप्त हो उससे गृह का निर्माण करे॥ ८९-९१॥

आयादि विचार के लिये बत्तीस हाथ तक का गृह

एकादशकरादूर्ध्वं यावद् द्वात्रिंशहस्तकम्।
तावदायादिकं चिन्त्यं तदूर्ध्वं नैव चिन्तयेत्॥ ९२॥

जिस घर की न्यूनतम लम्बाई एकादश हाथ तथा अधिकतम बत्तीस हाथ हो, इसके भीतरवाले घर में ही आयादि का विचार करना चाहिये, उससे ऊपर आय आदि पाँच पदार्थ का विचार न करें॥ ९२॥

विमर्श—सामान्य व्यक्तियों के लिये ११ हाथ लम्बे से लेकर ३२ हाथ तक लम्बे गृह ही बनते हैं। ११ हाथ से कम लम्बाईवाला गृह नहीं बनता है, इसका अभिप्राय यही है। आवास गृह इससे न्यून होना अव्यवहारिक है।

जीर्ण गृह में आय-व्यय एवं मासशुद्धि का विचार अनावश्यक

आयव्ययौ मासशुद्धिं न जीर्णे चिन्तयेद् गृहे।
शिलान्यासं प्रकुर्वीत मध्ये तस्य विधानता॥ ९३॥

यदि पुराना घर हो तो उसमें आय-व्यय एवं मासशुद्धि का विचार अपेक्षित नहीं है। शिलान्यास को भूखण्ड के मध्य में करने का विधान है॥ ९३॥

सोलह उपकरण गृहों के निर्माण की दिशाएँ

ईशान्यां देवतागेहं पूर्वस्यां स्नानमन्दिरम्।
आग्नेय्यां पाकसदनं भण्डारागारमुत्तरे॥ ९४॥
आग्नेयपूर्वयोर्मध्ये दधिमन्थनमन्दिरम्।
अग्निप्रेतेशयोर्मध्ये आज्यगेहं प्रशस्यते॥ ९५॥
याम्यनैर्ऋत्ययोर्मध्ये पुरीषत्यागमन्दिरम्।
नैर्ऋत्याम्बुपयोर्मध्ये विद्याभ्यासस्यमन्दिरम्॥ ९६॥
पश्चिमानिलयोर्मध्ये रोदनार्थं गृहं स्मृतम्।
वायव्योत्तरयोर्मध्ये रतिगेहं प्रशस्यते॥ ९७॥
उत्तरेशानयोर्मध्ये औषधार्थन्तु कारयेत्।

१. गृह के मध्य से ईशानकोण में पूजागृह बनाना चाहिये। २. पूर्व दिशा में स्नानागार बनायें। ३. अग्निकोण में पाकशास्त्र (रसोईघर) बनायें, ४. उत्तरदिशा में भण्डारगृह बनायें। ५. आग्नेय तथा पूर्व के मध्यवर्ती स्थान में दधिमन्थनगृह, ६. आग्नेय-दक्षिण के मध्य आज्यगृह (घृतभण्डार), ७. दक्षिण एवं नैर्ऋत्य के मध्य में पुरीषत्यागगृह (पाखाना), ८. नैर्ऋत्य एवं पश्चिम के बीच में विद्याभ्यास गृह (Study room), ९. पश्चिम तथा वायव्य के बीच में रोदनगृह (शोकगृह-कोपभवन), १०. वायव्य तथा उत्तर के मध्य रतिगृह (मनोरंजनालय), ११. उत्तर तथा ईशान के बीच औषधगृह बनाना चाहिये। (१२. पश्चिम में भोजनगृह, १३. दक्षिण में शयनगृह, १४. ईशान तथा पूर्व के मध्य में सर्ववस्तुभण्डार, १५. नैर्ऋत्य में शस्त्रागार, १६. वायव्य में धान्यागार बनायें)।

इस प्रकार सोलह गृहों का निर्माण करें॥ ९४-९७½॥

विमर्श—यहाँ मूल में कुछ श्लोक लुप्त हैं। अत: उनके छूटे हुए विषय को ग्रन्थान्तर से लेकर कोष्ठक के बीच में अनुवाद के रूप में दे दिया गया है। इस ग्रन्थ में नैर्ऋत्यकोण में सूतिकागृह भी बनाने को कहा है, वह आगे दिया जा रहा है।

सूतिकागृह का स्थान एवं निर्माण-विधि

नैर्ऋत्यां सूतिकागेहं नृपाणां भूतिमिच्छताम्॥ ९८॥

आसन्नप्रसवे मासि कुर्याच्चैव विशेषतः।
तद्वत् प्रसवकाले स्यादिति शास्त्रेषु निश्चयः॥ ९९॥
मासे तु नवमे प्राप्ते पूर्वपक्षे शुभे दिने।
प्रसूतिसम्भवे काले गेहारम्भणमिष्यते॥ १००॥

नैर्ऋत्य कोण में ऐश्वर्य चाहनेवाले राजाओं (सम्पन्न व्यक्तियों) को सूतिकागार बनवाना चाहिये। आसन्नप्रसवा को उसे पूर्णरूपेण सज्जित कर उसमें प्रविष्ट करा देना चाहिये। इसे पूर्व से भी बनवाकर रखना विशेष उत्तम होता है। शुभ दिन में शुक्लपक्ष में सूतिकागृह में प्रवेश उत्तम होता है॥ ९८-१००॥

ईशान — पूर्व — आग्नेय

पूजागृह	सर्ववस्तु भण्डार	स्नानागार	दधिमंथन गृह	पाकशाला
औषधि गृह				घृत-भण्डार
भाण्डागार (कोषागार)				शयन कक्ष
रतिगृह (मनोरंजन)		भोजनगृह	सूतिका गृह	पुरीषगृह
धान्यागार	कोपभवन (रोदनगृह)		विद्याभ्यास गृह	शस्त्रगृह

उत्तर (बायें) — दक्षिण (दायें)

वायव्य — पश्चिम — नैर्ऋत्य

गृह में अलिन्द का स्थान

गुरोरधो लघुः स्थाप्यः पुरस्तादूर्ध्वं संन्यसेत्।
गुरुभिः पश्चिमे पूर्वे सर्वलघ्वाविधिर्विधिः॥ १०१॥
स्यादलिन्दो गुरुस्थाने नालिन्दं गुरुमाश्रितम्।

गुरु के नीचे लघु को स्थापित करके उसके आगे ऊर्ध्व की भाँति स्थापना करे। पश्चिम तथा पूर्व में सब लघुओं की अवधि की विधि होती है। अलिन्द को सदैव लघुस्थान में रखें। अलिन्द को गुरु के आश्रित नहीं रखना चाहिये॥ १०१-१०१½॥

विमर्श—द्वार के बाहर के चबूतरे, प्रकोष्ठ, देहली, ओसारा आदि सबको संस्कृत शब्दकोशों में अलिन्द कहा गया है। उपशाला=ओसारा।

अलिन्दों के अनुसार गृहों के १६ प्रकार

प्रदक्षिणैर्गृहद्वारादलिन्दैर्दशषड्विधा ॥ १०२॥
ध्रुवसंज्ञं गृहं त्वाद्यं धनधान्यसुखप्रदम्।
धान्यं धान्यप्रदं नृणां जयं स्याद् विजयप्रदम्॥ १०३॥
नन्दं स्त्रीधान्यदं नूनं खरं सम्पद्विनाशनम्।
पुत्रपौत्रप्रदं कान्तिं श्रीप्रदं स्यान्मनोरमम्॥ १०४॥
सुवक्त्रं भोगदं नूनं दुर्मुखं विमुखप्रदम्।
सर्वदुःखप्रदं क्रूरं रिपुदं शत्रुभीतिदम्॥ १०५॥
धनदं धनदं गेहं क्षयं सर्वक्षयावहम्।
आक्रन्दं शोकजनकं विपुलं श्रीयशप्रदम्॥ १०६॥
विजयं नामसदृशं धनदं विजयाभिधम्॥ १०७॥

प्रदक्षिण क्रम से गृहद्वार एवं अलिन्दों के अनुसार शालागृहों के सोलह भेद होते हैं। उनके नाम एवं फल इस प्रकार हैं—

१. ध्रुव—प्रथम ध्रुवसंज्ञक गृह है, जो धन-धान्य तथा सुख को देता है।
२. धान्य—यह धान्य प्रदायक होता है।
३. जय—यह विजय एवं सफलता प्रदान करता है।
४. नन्द—यह स्त्री एवं धान्य प्राप्त करानेवाला है।
५. खर—खरगृह में रहने से चल-अचल सम्पत्ति नष्ट होती है।
६. कान्त—यह पुत्र-पौत्रप्रदायक होता है।
७. मनोरम—मनोरम नामक गृह श्री (लक्ष्मी)-प्रदायक होता है।
८. सुमुख—यह सुवक्त्र भी कहलाता है, जो भोग प्रदान करता है।
९. दुर्मुख—दुर्मुख गृह से लोग विमुख हो जाते हैं; अलोकप्रियता बढ़ती है।
१०. उग्र या क्रूर—यह सब प्रकार से दुःख देता है।
११. रिपुद—इसमें रहने से शत्रुओं द्वारा कष्ट मिलता है।
१२. धनद—इसमें रहने से धन की कमी नहीं होती।
१३. क्षय—इसमें रहने से धन-जन एवं पशु आदि की हानि होती है।
१४. आक्रन्द—इसमें रहने से सदैव लड़ाई-झगड़ा होता है।
१५. विपुल—विपुलगृह में श्री एवं यश की विपुलता होती है।
१६. विजय—यह विजय, धन को देनेवाला होता है॥ १०२-१०७॥

विमर्श—१-२-४-८—ये क्रमशः पूर्व आदि चारो दिशाओं के अंक हैं। दिशा-भेद से घर में जितने द्वार बनाने हों, उनकी दिशाओं के अंक जो ऊपर दिये गये हैं, उन सब को जोड़कर उसमें एक और जोड़ना फिर जितनी संख्या हो। उस क्रम से गृह के ऊपर बताये नाम होते हैं। ऊपर उनके क्रमांक, नाम तथा फल दिये गये हैं।

उदाहरण के लिये यदि गृह के पूर्व, दक्षिण एवं पश्चिम इन तीन दिशाओं में अलिन्द (ओसारा = उपशाला) बनाना है। तो पूर्व का अंक १+ दक्षिण का अंक २+ पश्चिम दिशा का अंक ४ = योग ७+१=८ अतः आठवाँ सुमुख नामक गृह हुआ, जो शुभ फलदायक है।

षोडश गृहों में अलिन्द स्थापन क्रम

प्रदक्षिणे सप्तमुखालिन्दं विद्याल्लघुस्थानसमाश्रितञ्च।
गृहस्य पूर्वादिगतेष्वलिन्देष्वेवं भवेयुर्दश षट् च भेदाः॥ १०८॥

प्रदक्षिण क्रम से सप्तमुख से लघुस्थान में स्थापित अलिन्द की दिशाओं के अनुसार ये गृहों के सोलह भेद कहे गये हैं॥ १०८॥

कापालसंज्ञक गृह का निषेध

भवेयुर्न विनालिन्दं शुभं कापालसंज्ञकम्।
विस्ताराद् द्विगुणं गेहं गृहस्वामिविनाशनम्॥ १०९॥
निरर्थकं तद्गृहं स्याद् भयं वा राजसम्भवम्।

बिना अलिन्द का गृह तथा जो चौड़ाई के दुगुने से अधिक लम्बा हो वह गृह कापाल संज्ञक होता है वह शुभ नहीं होता है तथा निरर्थक भी होता है। उस गृह के निवासियों को राजभय तथा अन्य प्रकार का भय प्राप्त होता है॥ १०९-१०९½॥

अलिन्दों की परिभाषा का कथन

केचिदलिन्दकं द्वारं प्रवदन्ति मनीषिणः॥ ११०॥
केचिदलिन्दशालाञ्च केचिच्चालिन्दकञ्च तत्।
गृहबाह्यस्थिताः काष्ठा गृहमत्यन्तनिर्गताः॥ १११॥
काष्ठा काष्ठस्य यद् गेहं तद् वा चाऽलिन्दसंज्ञकम्।
गृहाद् बहिश्च ये काष्ठा गृहस्यान्तर्गताश्च ये॥ ११२॥
तेषां कोष्ठीकृतं तिर्यग्गेहं चालिन्दसंज्ञकम्।
स्तम्भं न गृहाद् बाह्यान्निर्गतं काष्ठनिर्मितम्॥ ११३॥
मध्यादूर्ध्वगतं गेहं तच्च वालिन्दसंज्ञकम्।
यत्रालिन्दश्च तत्रैव द्वारमार्गं प्रशस्यते॥ ११४॥
अलिन्दं द्वारहीनञ्च गृहकोटी समं स्मृतम्।
यत्रालिन्दं तत्र शाला तत्र द्वारे च शोभनम्॥ ११५॥
शालालिन्दद्वारहीनं गृहं न कारयेद् बुधः।

१. कुछ मनीषी लोग द्वार के बाहर की थोड़ी-सी बाह्य रचना को अलिन्दक कहते हैं।

२. कुछ दालान को अलिन्द कहते हैं।

३. कुछ घर के बाह्य भाग में जो बाहर की ओर लम्बा चौड़ा चबूतरा होता है, उसको अलिन्दक कहते हैं।

४. कुछ घर के बाहर के दालान (बरामदे) को तथा साथ ही भीतरी बरामदे को भी अलिन्द कहते हैं।

५. कुछ घर के द्वार पर खपरैल या छप्पर से जो गैरिजनुमा तिरछी रचना बनाते हैं, उसको अलिन्द कहते हैं।

६. कोई घर के मध्य भाग में छत के ऊपर जो बरसाती बनाते हैं, उसे अलिन्द कहते हैं।

घर के जिस भाग में अलिन्द हो उसी में घर का द्वार बनाना चाहिये। जिस घर में अलिन्द एवं द्वार न हो, वह कोटि (शस्त्र की धार) के समान होता है अतः जहाँ अलिन्द हो वहीं द्वार बनाये तथा बिना अलिन्द एवं द्वार के घर नहीं बनाना चाहिये॥ ११०-११५$\frac{१}{२}$॥

विमर्श—इन सब का सारांश यह है कि घर के बाहर तथा भीतर आँगन में चारों ओर बरामदा (अभाव में छज्जा) अवश्य बनवाना चाहिये अन्यथा घर के किवाड़ एवं खिड़कियाँ खराब हो जाते हैं। ऊपर छत पर जहाँ जीना खुलता हो वहाँ भी छाया करे। इन सबको ही अलिन्द कहते हैं। बिना अलिन्द के द्वार एवं कपाट सुरक्षित नहीं रहते हैं।

गृह की लम्बाई तथा ऊँचाई का कथन

यद् वास्तुनि च विस्तारः सैवोच्छ्रायः शुभः स्मृतः॥ ११६॥
शूकशालो गृहः कार्यो विस्ताराद् द्विगुणो दश।
चतुःशालगृहस्यैवमुच्छ्रायो व्याससम्मितः॥ ११७॥
विस्ताराद् द्विगुणं दैर्घ्यमेकशाले प्रशस्यते।
विस्तीर्णं यद् भवेद् गेहं तदूर्ध्वमेकशालकम्॥ ११८॥
द्विशाले द्विगुणं प्रोक्तं त्रिशाले त्रिगुणं तथा।
चतुःशाले पञ्चगुणं तदूर्ध्वं नैव कारयेत्॥ ११९॥

वास्तु (गृह) की जितनी चौड़ाई (विस्तार) हो, उतनी ही ऊँचाई शुभ होती है॥ ११६॥

विस्तार (चौड़ाई) से द्विगुणित ऊँचाईवाला गृह शुकशाल कहलाता है। चारशाला (चतुःशाल=चार मञ्जिल) से लेकर दशशाल—दस मंजिले गृहों की ऊँचाई उसके व्यास के बराबर रखनी चाहिये। एक शाल गृह (एक मंजिला) की लम्बाई यदि उसके विस्तार से दुगुनी हो तो प्रशस्त होती है। विस्तीर्ण गृह की ऊँचाई एक शाल गृह के बराबर रखनी चाहिये॥ ११७-११८॥

द्विशाल गृह में दुगुनी तथा त्रिशाल गृह में तिगुनी ऊँचाई तथा लम्बाई (पूर्वकथित अनुपात में) रखें। चतुःशाल में पाँच गुना रखें। सामान्यतः इससे ऊपर का निर्माण नहीं करना चाहिये॥ ११९॥

विमर्श—वास्तुशास्त्र में शाला का अर्थ आवास तथा उसका कमरा दोनों ही होता है। मंजिल (Story) के लिये भी एक शाल-द्विशाल शब्दों का प्रयोग हुआ है।

संस्कृत का शाला शब्द ग्रीक् भाषा में कालीअ (Kalia) हो गया है। वास्तव में यह ग्रीक शब्द 'शालेय' का घिसा हुआ रूप है। शालेय—षालेय—Kalia इस प्रकार अपभ्रंश हुआ है। लैटिन भाषा में Cell तथा Cella हो गया है जिसका अर्थ भी घर ही होता है। पुरानी हंगेरियन भाषा में शाला के स्थान पर Halla तथा Hall (अंग्रेजी) हो गया है।

गृह की शिखा का प्रमाण

शिखा चैव त्रिभागन्तु गृहे चोत्तमसंज्ञकम्।
एकं नागोडु संशुद्ध्या द्वे च दक्षिणपश्चिमा॥ १२०॥
त्रिशाले पूर्वतो हीनं कार्यञ्च सौम्यवर्जितम्।
ऊर्ध्वभागत्रयं त्यक्त्वा ह्यधोभागद्वयं तथा॥ १२१॥
मध्ये नाभिं विजानीयादिति प्रोक्तं पराशरः।
पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु वाममेकादयो ध्रुवाः॥ १२२॥
विस्तारस्याथ दैर्घ्यस्य तथैवेकैकसंयुतम्।
वामं वातादिकोणेषु ध्रुवं विस्तारदैर्घ्ययोः॥ १२३॥
एकाद्याः स्वेच्छया सर्वे कार्या वेदसमन्विताः।
अनेनैव प्रकारेण क्रियमाणे च वास्तुनि॥ १२४॥
आयव्ययादिसंशुद्धिं चिन्तयन्ति न पूर्वजाः॥ १२५॥

घर की शिखा (चोटी की ऊँचाई या शिखर की ऊँचाई) गृह के त्रिभाग के बराबर हो तो उत्तम होता है। यदि एक शाला का गृह बनाना हो तो भी उसे राहु शुद्धि एवं चन्द्रतारा शुद्धि के साथ बनाना चाहिये। यदि दो शाला बनानी हों तो एक दक्षिण में तथा दूसरी शाला पश्चिम में बनानी चाहिये। त्रिशाल गृह में पूर्व को छोड़कर शेष तीन दिशाओं (दक्षिण-पश्चिम तथा उत्तर) में शालाएँ बनाना चाहिये। पूर्व में ऊर्ध्व प्रारम्भ के तीन भागों को छोड़कर तथा पश्चिम से दो भाग छोड़कर जो मध्य भाग होता है, वह नाभि होती है। यह पराशर का मत है। उस नाभि को छोड़ देना चाहिये। उसमें कोई निर्माण कार्य न करें। पूर्व दिशा में क्षेत्रफल का एक भाग जोड़कर, दक्षिण में (अग्निकोण) में दो भाग जोड़कर, पश्चिम में तीन भाग जोड़कर तथा उत्तर में चार भाग जोड़कर शाला बनाना चाहिये। ये शाला ध्रुव होते हैं, एक शाला से लेकर चार शालावाले गृह में यही नियम है। इस प्रकार से जो गृह बनाया जाय, उसमें आय-व्ययादि की शुद्धि के विचार की आवश्यकता नहीं है॥ १२०-१२५॥

ब्राह्मणादि के लिये शालाओं की संख्या

ब्राह्मणानां चतुःशालं क्षत्रियाणां त्रिशालकम्।
द्विशालं स्यात्तु वैश्यानां शूद्राणामेकशालकम्॥ १२६॥
सर्वेषामेव वर्णानामेकशालं प्रशस्यते।

ब्राह्मणों के लिये चारशाला का गृह (पुस्तकालय के कारण), क्षत्रियों के लिये तीनशाला का गृह, वैश्यों के लिये दोशाला का गृह तथा शूद्रों के लिये एकशालायुक्त, गृह बनवाना चाहिये। इसके अभाव में सभी वर्णों के लिये एकशालायुक्त गृह प्रशस्त होता है॥ १२६-१२६$\frac{१}{२}$॥

शाला के अनुरूप अलिन्द का निर्माण

एकशालं द्विशालं वा त्रिशालं तुर्यशालकम्॥ १२७॥
यथालिन्दं गृहङ्कुर्यात् तादृक् शाला प्रशस्यते।
शालादिभिर्न कर्त्तव्यं न कुर्यात् तुङ्गनिम्नकम्॥ १२८॥
समां शालां ततः कुर्यात् समं प्रकारमेव च।

एकशाल, द्विशाल, त्रिशाल अथवा चतुःशाल—जैसा भी घर बनवायें, शालाओं के रूप एवं आकार के अनुरूप ही अलिन्दों का निर्माण होना चाहिये। अथवा अलिन्दों के अनुरूप ही शाला प्रशस्त होती है। शालादि को ऊँचा एवं नीचा भी नहीं बनाना चाहिये। शाला की ऊँचाई के बराबर ही प्रकार (परकोटे) की ऊँचाई रखनी चाहिये॥ १२७-१२८$\frac{१}{२}$॥

ग्राम नगर या दुर्ग में चारों वर्णों के स्थान

कुलीरवृश्चिकौ मीन उत्तरद्वारसंस्थिता॥ १२९॥
मेषसिंहधनुर्द्वाराः पूर्वद्वारेषु संस्थिताः।
वृषभं मकरं कन्या याम्यद्वारे समाश्रिताः॥ १३०॥
तुलाकुम्भौ च मिथुनं पश्चिमद्वारमाश्रिताः।
ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्च यथाक्रमम्॥ १३१॥

१. कर्क-सिंह-कन्या—ये उत्तर दिशा की राशियाँ हैं। २. मेष-सिंह-धनु—ये पूर्व दिग्द्वार राशियाँ हैं। ३. वृष-कन्या-मकर—ये तीनों दक्षिण दिग्द्वार राशियाँ हैं तथा ४. मिथुन-तुला-कुम्भ—ये पश्चिम दिग्द्वार राशियाँ हैं। इसी क्रम से इनमें ब्राह्मणादि चारों वर्णों को बसाना चाहिये॥ १२९-१३१॥

विमर्श—तात्पर्य यह है कि उत्तर में ब्राह्मणों को, पूर्व में क्षत्रियों को, दक्षिण में वैश्यों को तथा पश्चिम में शूद्रों (शिल्पियों) को बसाना चाहिये।

विकल्प से ब्राह्मणादि वर्णों के निवास-स्थान

यद् दिशा राशयः प्रोक्तास्तस्मिन् शाला प्रशस्यते।
अथवा पूर्वभागे तु ब्राह्मणा उत्तरे नृपाः॥ १३२॥
वैश्यानां दक्षिणे भागे पश्चिमे शूद्रकास्तथा।
आग्नेयादि क्रमेणैव अन्त्यजा वर्णसङ्कराः॥ १३३॥
जातिभ्रष्टाश्च चौराश्च विदिक्स्थाः शोभना स्मृताः।
ब्राह्मणाक्षत्रियावैश्या शूद्रा प्रागादिषु क्रमात्॥ १३४॥

जिस दिशा की जो राशि है, उसमें उसके वर्ण के लिये शाला का निर्माण प्रशस्त होता है परन्तु यदि यह सम्भव न हो तो १. पूर्व में ब्राह्मण, २. उत्तर में क्षत्रिय, ३. दक्षिण में वैश्य तथा ४. पश्चिम में शूद्रों का वास करायें। अग्निकोण में अन्त्यज (अकुशल मजदूर), नैर्ऋत्यकोण में वर्णसंकर, वायव्यकोण में जाति से पतित लोग तथा ईशानकोण में चोरों (अपराधी जातियों) को बसाना चाहिये। अन्य विकल्प के अनुसार पूर्वादि दिशाओं में ब्राह्मणादि चारों वर्णों को प्रदक्षिणक्रम से बसायें॥ १३२-१३४॥

	ईशान	पूर्व	आग्नेय	
	चोर (अपराधी)	ब्राह्मण	अन्त्यज	
उत्तर	क्षत्रिय	विभिन्न जातियों के ग्राम-नगर दुर्ग आदि में निवास का स्थान	वैश्य	उत्तर
	जातिभ्रष्ट	शूद्र	वर्णसंकर	
	वायव्य	पश्चिम	नैर्ऋत्य	

राजाओं के गृहों का विस्तार एवं दैर्घ्य

अष्टोत्तरशतं हस्त विस्तारान्नृपमन्दिरम्।
कार्यं प्रधानमन्यानि तथाष्टाष्टौनानि तु॥ १३५॥
विस्तारं पादसंयुक्तं तेषां दैर्घ्यं प्रकल्पयेत्।
एवं नृपाणां पञ्चैव गृहाणि शुभदानि च॥ १३६॥

राजाओं का आवास १०८ (एक सौ आठ) हाथ के विस्तार में बनता है। अन्य चार राज प्रासाद का दैर्घ्य (लम्बाई) उसके विस्तार (चौड़ाई) से चतुर्थांश अधिक हो अर्थात् चौड़ाई १०८ हाथ तथा उसका $\frac{१}{४}$ = $\frac{१०८}{४}$ = २७ हाथ जोड़कर १०८+२७=१३५ हाथ के दैर्घ्य में बनाना चाहिये। यह उत्तम होता है। अन्य चार गृहों को क्रमशः आठ-आठ हाथ न्यून करके बनाना चाहिये। तब उनकी लम्बाई को चौड़ाई से चतुर्थांश अधिक रखना चाहिये। इस प्रकार राजा के लिये ये पाँच भवन बनते हैं, ये ही शुभदायक होते हैं॥ १३५-१३६॥

सेनापति के गृहों का क्षेत्रफल

षड्भिः षड्भिर्विहीनाश्च चतुःषष्टि चमूपतेः।
पञ्चैव तस्य विस्तारं दैर्घ्यं षड्भागसंयुतम्॥ १३७॥

चमूपति (सेनापति) के प्रधान गृह को चौंसठ हाथ का बनाना चाहिये। शेष चार गृहों को क्रमशः छह-छह हाथ न्यून बनाना चाहिये तथा उनकी लम्बाई प्रत्येक के छठे भाग (षष्ठांश = $\frac{1}{6}$) से युक्त होना चाहिये। इस प्रकार ये पाँच सेनापति के गृह बनाना चाहिये॥ १३७॥

मन्त्री, सचिव के गृहों का प्रमाण

षष्टिश्चतुर्विहीनानि वेश्मानि सचिवस्य च।
पञ्चअष्टांशसंयुक्तं दैर्घ्यं तस्यार्धमेव च॥ १३८॥

मंत्री का प्रधान आवास साठ हाथ चौड़ा तथा शेष चार गृह क्रमशः चार-चार हाथ न्यून विस्तार से युक्त बनायें तथा उनका दैर्घ्य चौड़ाई का अष्टमांस अधिक होना चाहिये॥ १३८॥

विमर्श—यहाँ इस श्लोक का अन्तिम वाक्यांश राजमहिषी के गृह के लिये है।

रानियों तथा युवराजादि के गृहों का प्रमाण

नृपाणाञ्च महिषीणाञ्च प्रशस्तं पञ्च चैव हि।
षड्भिः षड्भिश्च वर्ज्यानि अशीत्याश्च तथैव च॥ १३९॥
त्र्यंशयुतं तस्य दैर्घ्यञ्च युवराजस्य गृहाणि च।
पञ्च तदर्धं तस्यैव भ्रातृणां प्रभवन्ति च॥ १४०॥

१. राजाओं की रानियों के गृह मन्त्रियों से आधे विस्तार के होते हैं तथा उनकी लम्बाई के आधे में रानियों के गृहों का गृह बनता है। अर्थात् राजमहिषी का प्रधानगृह ३० हाथ चौड़ा तथा तैंतीस हाथ एवं १८ अंगुल लम्बा होना चाहिये।

२. युवराज का प्रधान प्रासाद अस्सी हाथ चौड़ा तथा विस्तार का त्रिभाग अर्थात् $\frac{80}{3}$ (अर्थात् १०६ हाथ एवं १६ अंगुल) अधिक होना चाहिये।

३. युवराज के भाइयों के भवन युवराज से आधे प्रमाण के होने चाहिये॥ १३९-१४०॥

सामन्तों एवं प्रधान राजपुरुषों के गृहों का क्षेत्रफल

नृपमन्त्रिगृहाणाञ्च अन्तरं यत्प्रमाणकम्।
सामन्तराजपुत्राणां प्रवराणाञ्च गृहं स्मृतम्॥ १४१॥

राजा तथा मंत्री के गृहों के दैर्घ्य (लम्बाई) तथा विस्तार (चौड़ाई) का जो अन्तर है उसके बराबर का अन्तर जितना है उतनी लम्बाई-चौड़ाई के सामन्तों, राजपुत्रों तथा वरिष्ठ राजपुरुषों के घर बनाना चाहिये॥ १४१॥

कञ्चुकी आदि के गृहों का प्रमाण

नृपाणां युवराजस्य गृहाणामन्तरेण यत्।
तद् गृहं कञ्चुकीवेश्याकलाज्ञानां तथैव च॥ १४२॥

राजा एवं युवराज के घरों में जो लम्बाई-चौड़ाई का अन्तर है, उस अन्तर के बराबर लम्बे-चौड़े घर कञ्चुकी, वेश्या तथा अन्य कलाकारों के बनाना चाहिये॥ १४२॥

अधिकारियों एवं दूतों के गृहों का क्षेत्रफल

युवराजं मन्त्रिणां तु प्रभवेद् हि यदन्तरम्।
अध्यक्षदूतगेहन्तत्कर्मसु कुशलाश्च ये॥ १४३॥

युवराज तथा मन्त्रियों के गृहों के क्षेत्रफल में जो अन्तर है, उसके बराबर क्षेत्रफल के विभागाध्यक्षों, दूतों तथा अन्य कुशल कर्मचारियों के गृहों का निर्माण कराना चाहिये॥ १४३॥

विभागीय कर्मचारियों के गृह

अध्यक्षाधिकृतानाञ्च रतिकोशप्रमाणकम्।
चत्वारिंशच्चतुर्हीना पञ्चगेहा भवन्ति हि॥ १४४॥

विभागाध्यक्षों के अधीनस्थ जो कर्मचारी रहते हैं उनके लिये रतिगृह तथा कोशगृह जितने प्रमाण में बनते हैं, उतने क्षेत्रफल के गृह बनाना चाहिये॥ १४४॥

ज्योतिषी-पुरोहित तथा वैद्य के गृहों का क्षेत्रफल

षड्भागसंयुतं दैर्घ्यं दैवज्ञभिषजान्तथा।
पुरोहितानां शुभदं सर्वेषां कथयाम्यतः॥ १४५॥

दैवज्ञ, राजवैद्य तथा राजपुरोहित के घर ४० हाथ चौड़े तथा ४६ हाथ एवं १६ अंगुल लम्बे बनाने चाहिये। शेष चार गृह क्रमशः चार-चार हाथ न्यून होते हैं॥ १४५॥

विमर्श—१. राजा के प्रधान गृह की चौड़ाई १०८ हाथ और उसका सवाया अर्थात् १३५ हाथ लम्बाई रहेगी। इसी प्रकार दूसरे घर की चौड़ाई आठ हाथ कम अर्थात् १०० हाथ होगी तथा लम्बाई उसका सवाया =१२५ हाथ होगी। इसी प्रकार अन्य गृहों की सुविधा के लिये आगे विस्तार तथा दैर्घ्य के अनुपात की तालिका प्रदर्शित की गयी है। महर्षि कश्यप ने काश्यप संहिता में कहा है—

'अष्टोत्तरं हस्तशतं विस्तारान्नृपमन्दिरम्।
कार्यं प्रधानमन्यानि तथाष्टाष्टोनितानि तु॥
विस्तारं पादसंयुक्तं दैर्घ्यं तेषां प्रकल्पयेत्।
एवं पञ्च नृपः कुर्यात् गृहाणाञ्च पृथक् पृथक्॥'

वराहमिहिराचार्य ने भी इसी को मान्य करते हुए कहा है—

'उत्तममष्टाध्यधिकं हस्तशतं नृपगृहं पृथुत्वेन।
अष्टाष्टोनान्येवं पञ्च सपादानि दैर्घ्येन॥'

अन्यों के गृहों के सम्बन्ध में भी उनका कथन है—

'षड्भिर्षड्भिहीना सेनापतिसद्मनां चतुतःषष्टिः।
एवं पञ्चगृहाणि षड्भागसमन्विता दैर्घ्यम्॥
षष्टिश्चतुश्चतुर्भिर्हीनां वेश्मानि पञ्च सचिवस्य।
स्वाष्टांशयुतो दैर्घ्यं तदर्धतो राजमहिषीणाम्॥
षड्भिः षड्भिश्चैवं युवराजस्यापवर्जिताऽशीतिः।
त्र्यंशान्विता च दैर्घ्यं पञ्च तदर्धैस्तदनुजानाम्॥

नृपसचिवान्तरतुल्यं सामन्तप्रवरराजपुरुषाणाम्।
नृपयुवराजविशेषः कञ्चुकिवेश्याकलाज्ञानाम्॥
अध्यक्षाधिकृतानां सर्वेषामेव कोशरतितुल्यम्।
युवराजमन्त्रिप्रवरं कर्माध्यक्षदूतानाम्॥'

राजा आदि के पञ्चगृहों के क्षेत्रफल की तालिका

	प्रथम गृह		द्वितीय गृह		तृतीय गृह		चतुर्थ गृह		पंचम गृह		माप (नाप) का प्रमाण
	हाथ	अंगुल	हाथ	अंगुल	हाथ	अंगुल	हाथ	अंगुल	हाथ	अंगुल	
१ राजा राष्ट्रपति	१०८	०	१००	०	९२	०	८४	०	७६	०	विस्तार (चौड़ाई)
	१३५	०	१२५	०	११५	०	१०५	०	९५	०	दैर्घ्य (लम्बाई)
२ सेनापति	६४	०	५८	०	५२	०	४६	०	४०	०	विस्तार (Width)
	७४	१६	६७	१६	६०	१६	५३	१६	४६	१६	दैर्घ्य (Length)
३ मन्त्री	६०	०	५६	०	५२	०	४८	०	४४	०	विस्तार (Wideness)
	६७	१२	६३	०	५८	१२	५४	०	४९	१२	दैर्घ्य (Lengthness)
४ रानी	३०	०	२८	०	२६	०	२४	०	२२	०	विस्तार (Broadness)
	३३	१८	३१	१२	२९	६	२७	०	२४	१२	दैर्घ्य (Lengthiness)
५ युवराज	८०	०	७४	०	६८	०	६२	०	५६	०	विस्तार (Amplitude)
	१०६	१६	९८	१६	९०	१६	८२	१६	७४	०	दैर्घ्य (Tediousness)
६ युवराज के अनुज	४०	०	३७	०	३४	०	३१	०	२८	०	विस्तार (Breadth)
	५३	८	४९	८	४५	८	४१	८	३७	८	दैर्घ्य (Elongation)
७ सामन्त	४८	०	४४	०	४०	०	३६	०	३२	०	विस्तार (फ़राख़ी)
	६७	१२	६२	०	५६	१२	५१	०	४५	१२	दैर्घ्य (तवालत)
८ कंचुकी आदि	२८	०	२६	०	२४	०	२२	०	२०	०	विस्तार (अर्ज़)
	२८	८	२६	८	२४	८	२२	८	२०	८	दैर्घ्य
९ कर्मा-ध्यक्ष	२०	०	१८	०	१६	०	१४	०	१२	०	विस्तार (दराज़ी)
	३९	४	३५	१६	३२	४	२८	१६	२५	४	दैर्घ्य (वसीअ)
१० दैवज्ञ	४०	०	३६	०	३२	०	२८	०	२४	०	विस्तार
	४६	१६	४२	०	३७	८	३२	१६	२८	०	दैर्घ्य
११ वैद्य	४०	०	३६	०	३२	०	२८	०	२४	०	विस्तार
	४६	१६	४२	०	३७	८	३२	१६	२८	०	दैर्घ्य
१२ पुरोहित	४०	०	३६	०	३२	०	२८	०	२४	०	विस्तार
	४६	१६	४२	०	३७	८	३२	१६	२८	०	दैर्घ्य

ब्राह्मणों के गृह का क्षेत्रफल

हस्तद्वात्रिंशतायुक्तं विस्तारञ्च द्विजालयम्।
विस्तारसदशांशस्तु दैर्घ्यं तस्य प्रकल्पयेत्॥ १४६॥

ब्राह्मण का मुख्यगृह ३२ हाथ का तथा शेष चार गृह चार-चार हाथ कम होने चाहिये। विस्तार के दशांश ($\frac{१}{१०}$) सहित दैर्घ्य रखना चाहिए॥ १४६॥

क्षत्रियादि त्रिवर्णों के गृहों का मान

त्रयाणां क्षत्रियादीनामालयं पूर्वचोदितम्।

ब्राह्मण के पाँचों गृहों के मान में चार-चार हाथ कम करने पर क्षत्रियादि (क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) के पाँचों गृहों का मान होता है॥ १४६$\frac{१}{२}$॥

विमर्श—ब्राह्मण का उत्तम गृह ३२ हाथ का होता है, अतः २८ हाथ का क्षत्रिय का, २४ हाथ का वैश्य का तथा २० हाथ का शूद्र का होता है।

कोशगृह तथा रतिगृह का क्षेत्रफल

नृपसेनापतेर्गेहस्यान्तरे यद् भवेदिह॥ १४७॥
तत्कोशगेहं भवति रतिगेहं तथैव च।

राजा तथा सेनापति के घरों में जितना अन्तर विस्तार एवं दैर्घ्य में होता है, उतने अन्तर के मान का लम्बा-चौड़ा, कोशगृह तथा रतिगृह होता है॥ १४७$\frac{१}{२}$॥

विमर्श—राजा के गृह का विस्तार १०८ तथा सेनापति के गृह का ६४ हाथ होता है, अतः १०८ — ६४ = ४४ हाथ चौड़ा रतिगृह या कोशगृह बनवाना चाहिये। इसी प्रकार राजा के गृह का दैर्घ्य १३५ हाथ तथा सेनापति के गृह का ७४ हाथ एवं १६ अंगुल होता है, अतः १३५ — ७४ + १६ = ६० हाथ एवं ८ अंगुल लम्बा कोशगृह तथा रतिगृह होना चाहिये।

राजपुरुषों के गृह

सेनापतिगृहाणाञ्च अन्तरे यत्प्रमाणकम्॥ १४८॥
चातुर्वर्ण्यञ्च यद्गेहं तद्राजपुरुषं मतम्।

१. सेनापति के गृह से ब्राह्मण के गृह का जो अन्तर हो उसके बराबर ब्राह्मण राजपुरुषों का, २. सेनापति से क्षत्रिय के गृह के अन्तरतुल्य क्षत्रिय राजपुरुष का, ३. सेनापति से वैश्य के अन्तरतुल्य वैश्य राजपुरुष का तथा सेनापति से शूद्र के गृह के अन्तरतुल्य शूद्र राजपुरुष का गृह होना चाहिये॥ १४८-१४८$\frac{१}{२}$॥

विमर्श—ब्राह्मणादि चारों वर्णों के गृहों के सम्बन्ध में अन्यों के मत इस प्रकार हैं—

'हस्तद्वात्रिंशतायुक्तो विस्तारः स्याद् द्विजालये।
विस्तारं सदशांशन्तु दैर्घ्यं तस्य प्रकल्पयेत्॥
त्रयाणां क्षत्रियादीनां मानं यत्पूर्वचोदितम्।
तच्चतुर्भिः करैस्ताक्ष्र्य ह्रासयेदनुपूर्वतः॥
एषामष्टांश षड्भाग पाददैर्घ्यं क्रमाद् भवेत्॥'

—किरणाख्यतन्त्र

'चातुर्वर्ण्य व्यासो द्वात्रिंशत् सा चतुश्चतुर्हीना।
आषोडशादिति परं न्यूनतरमतीवहीनानाम्॥'
—बृहत्संहिता

इस प्रकार वराहमिहिर के अनुसार किसी के भी गृह का विस्तार सोलह हाथ से न्यून नहीं होना चाहिये। आगे की तालिका में स्पष्ट समझ लें।

ब्राह्मणादि चार वर्णों के कोशगृह तथा राजपुरुषगृहों के मान की तालिका

जाति	उत्तम गृह		द्वितीय गृह		तृतीय गृह		चतुर्थ गृह		पंचम गृह		क्षेत्रफल के अंग
माप की इकाई→	हस्त	अंगुल	हस्त	अंगुल	हस्त	अंगुल	हस्त	अंगुल	हस्त	अंगुल	
ब्राह्मण	३२	०	२८	०	२४	०	२०	०	१६	०	विस्तार
गृह	३५	५	३०	१९	१६	१०	२२	०	१७	१४	दैर्घ्य
क्षत्रिय	२८	०	२४	०	२०	०	१६	०	×	×	विस्तार
गृह	३१	१२	२७	०	२२	१२	१८	०	×	×	दैर्घ्य
वैश्य	२४	०	२०	०	१६	०	×	×	×	×	विस्तार
गृह	२८	०	२६	८	१८	१६	×	×	×	×	दैर्घ्य
शूद्र	२०	०	१६	०	×	×	×	×	×	×	विस्तार
गृह	२५	०	२०	०	×	×	×	×	×	×	दैर्घ्य
कोश	४४	०	४२	०	४०	०	३८	०	३६	०	विस्तार
गृह	६०	८	५७	८	५४	८	५१	८	४८	८	दैर्घ्य
रति	४४	०	४२	०	४०	०	३८	०	३६	०	विस्तार
गृह	६०	८	५७	८	५४	८	५१	८	४८	८	दैर्घ्य
ब्राह्मण राजपुरुष	३२	०	३०	०	२८	०	२६	०	२४	०	विस्तार
का गृह	३९	११	२६	२१	३४	६	३१	१६	२९	२	दैर्घ्य
क्षत्रिय राजपुरुष	३०	०	२८	०	२६	०	२४	०	×	×	विस्तार
का गृह	३६	२१	३४	६	३१	१६	२९	२			दैर्घ्य
वैश्य राजपुरुष	२८	०	२६	०	×	×	×	×	×	×	विस्तार
का गृह	३४	६	३१	१६	×	×	×	×	×	×	दैर्घ्य
शूद्र राजपुरुष	३६	०	×	×	×	×	×	×	×	×	विस्तार
का गृह	३१	१६	×	×	×	×	×	×	×	×	दैर्घ्य

पारशवादि के गृह

अथ पारशवादीनां मातापित्रोर्यदन्तरम्॥ १४९॥
ब्राह्मणस्य च यन्मानं शूद्रेण सह यद्भवेत्।
मूर्धावसिक्तस्य क्षत्रासु तथैव भूर्जकण्टकः॥ १५०॥
पश्चाच्छ्रमी जनानाञ्च यथेष्टं कारयेद् गृहम्।

ब्राह्मण एवं शूद्र के गृह में जो अन्तर हो उतना प्रमाण मूर्धावसिक्त क्षत्रिय तथा कृत्कण्टक के गृह में होना चाहिये। पारशव के माता एवं पिता के गृहों के अन्तरतुल्य प्रमाण का गृह पारशव का बनाना चाहिये। फिर बाद में श्रमिकजनों के लिये भी आवश्यकतानुसार गृहों का निर्माण करायें॥ १४९-१५०½॥

विमर्श—ब्राह्मण पति एवं शूद्रा स्त्री से उत्पन्न पुत्र पारशव, ब्राह्मण पुरुष तथा वेश्या से उत्पन्न पुत्र भूर्जकण्टक तथा ब्राह्मण पुरुष एवं क्षत्रिय स्त्री के संयोग से उत्पन्न पुत्र मूर्धाभिषिक्त कहलाता है।

चतुःशाल गृह की ऊँचाई

शतहस्तोच्छ्रितं कार्यं चतुःशालं गृहं भवेत्॥ १५१॥
प्रमितं त्वेक शालं तु शुभदं तत्प्रकीर्तितम्।

चार शालावाले गृह की ऊँचाई केवल एक सौ हाथ तक ही रखनी चाहिए। इससे अधिक ऊँचाई का गृह शुभ नहीं माना जाता है॥ १५१-१५१½॥

शाला एवं अलिन्द के मान का कथन

सेनापतिनृपादीनां सप्तत्या सहिते कृते॥ १५२॥
व्यासे चतुर्दशदृते शालामानं प्रकीर्तितम्।
पञ्चत्रिंशदृतेऽन्यत्रालिन्दमानं भवेच्च तत्॥ १५३॥

सेनापति के गृह के क्षेत्रफल तथा राजा के गृह के क्षेत्रफल में ७० (सत्तर) जोड़ दें। इस योगफल को दो स्थानों पर रख दें। प्रथम स्थान पर १४ का भाग देने पर लब्धि शाला का मान होता है तथा द्वितीय स्थान पर ३५ का भाग देने से अलिन्द का मान प्राप्त हो जाता है॥ १५२-१५३॥

वीथिका का मान

शालात्रिभागतुल्या च कर्त्तव्या वीथिका बहिः।
भवनात्पूर्वतोष्णीषं पश्चास्वापाश्रयं भवेत्॥ १५४॥

शाला मान के त्रिभाग के बराबर शाला की बाहिरी वीथिका होती है। भवन के पूर्व भाग में पगड़ी आदि वस्त्र रखने का स्थान तथा पश्चिमी भाग में शयनागार बनवाना चाहिये॥ १५४॥

गृह के मध्यभाग की ऊँचाई का कथन

सावष्टम्भं पार्श्वयोस्तु सर्वत्र सुस्थितं भवेत्।
विस्तार षोडशोंऽशस्तु चतुर्हस्तयुतश्च यः॥ १५५॥
तदन्तरस्योच्चतरं प्रमाणं प्रवदेद् बुधः।

घर को सभी दिशाओं में शुद्ध बनवाना चाहिये, घर की चौड़ाई का जो सोलहवाँ भाग हो उसमें चार हाथ मिलाकर गृह के मध्य भाग की ऊँचाई रखना चाहिये॥ १५५-१५५$\frac{१}{२}$॥

गृह के शेष भागों की ऊँचाई का कथन

द्वादशभागेनोनश्च समस्तानी प्रकल्पयेत्॥ १५६॥

द्वितीय तल को ऊपर कहीं ऊँचाई में $\frac{१}{१२}$ भाग कम करके बनाना चाहिये। उसमें पुनः द्वादश भाग घटाकर तृतीय तल की ऊँचाई रखें। इस प्रकार से बहुमंजिली इमारतें बनाना चाहिये॥ १५६॥

विमर्श—वराह के अनुसार जिस भवन के पूर्व में वीथिका होती है। उसे सोष्णीष, जिसके पश्चिम में वीथिका हो उसे सामाश्रय तथा उत्तर में वीथिका होने पर सावष्टम्भ कहते हैं। चारों ओर वीथिका ले युक्त गृह को सुस्थित वास्तु कहा जाता है। वीथिका गली के गलियारे को कहते हैं।

राजसूय यज्ञ करनेवाले राजाओं के गृह के प्रमाण

यजन्ते राजसूयाद्यैः क्रतुभिरवनीश्वराः।
नल्वैरर्धाष्टमैर्तेषां कारयेद् भवनोत्तमम्॥ १५७॥

जिस राजा को राजसूय यज्ञ करना हो ऐसे बड़े राजा के लिये साढ़े आठ नल्व के प्रमाण में उत्तम भवन बनाना चाहिये॥ १५७॥

विमर्श—संस्कृत शब्दकोश 'वाचस्पत्यम्' में अमरकोश के अनुसार ४०० हाथ की नाप को तथा अन्य के अनुसार १०० हाथ की नाप को 'नल्व' कहा गया है।

राजसूय यज्ञ के लिये ब्राह्मणादि भवनों के प्रमाण

तथा च सप्तमैरेव विप्राणां कारयेद् गृहम्।
अर्धषष्ठैः क्षत्रियाणां वैश्यानामर्ध पञ्चकैः॥ १५८॥
त्रिभिस्सार्द्धैश्च शूद्राणां भवनं शुभदं स्मृतम्।
स्वगृहाणां विभागेन प्रमाणमिह लक्षयेत्॥ १५९॥
विस्तारायामगुणितं नल्वैः षोडशभिर्भजेत्।
विषमा शुभदा शेषे समा दुःखप्रदायकाः॥ १६०॥

साढ़े सात नल्व का गृह ब्राह्मणों के लिये, साढ़े छह नल्व का क्षत्रियों के लिये, साढ़े पाँच नल्व का वैश्यों के लिये तथा साढ़े तीन नल्व का शूद्रों के लिये बनवाना चाहिये। इस प्रकार अपने-अपने वर्ण के अनुसार गृहों का क्षेत्रफल रखना चाहिये॥ १५८-१६०॥

पक्की एवं कच्ची मिट्टी के भवनों में भित्ति का प्रमाण

व्यासाच्च षोडशोभागः सर्वेषां भित्तयस्मृतः।
पक्वेष्टिका कृतानाञ्च दारूणां न कदाचन॥ १६१॥

प्रत्येक पक्की ईंटों के बने भवन में उसका जो व्यास (चौड़ाई) हो, उसके षोडशांश ($\frac{१}{१६}$) के बराबर भित्ति (दीवाल) की मोटाई रखना चाहिये। परन्तु लकड़ी से बने भवनों में यह नियम नहीं है। वहाँ सुविधानुसार भित्ति की मोटाई रखें॥ १६१॥

विमर्श—गर्गसंहितादि ग्रन्थों में भी भित्ति की मोटाई को विस्तार (व्यास) के सोलहवें भाग के बराबर रखने को कहा है। उससे न्यूनाधिकता दोषपूर्ण होती है—

'विस्तार षोडशांशेन गृहभित्तिं प्रकल्पयेत्।
हीनाधिका न कर्त्तव्या गृहभर्त्तुर्न शोभना॥'
—गर्गाचार्य

'पक्वेष्टानामयं व्यासो दारुजानां यथेच्छया।
द्विजाद्येवगृहं कार्यं तत्रस्याच्छुभ्रं स्वदिग्गतम्॥'
—किरणाख्यतन्त्र

राजा एवं सेनापति के भवनों के प्रधान द्वार का प्रमाण

नृपसेनापतिगृहमष्टाशीतिशतैर्युताः।
अङ्गुलानि द्वारमानं प्रवदन्ति मनीषिणः॥ १६२॥

राजा तथा सेनापति के भवन का प्रधान द्वार १८८ (एक सौ अट्ठासी) अंगुल ऊँचा होता है। ऐसा मनीषियों का कथन है॥ १६२॥

विमर्श—ऊँचाई का आधा अर्थात् $\frac{१८८}{२}$ = ९४ अंगुल यह राजद्वार की चौड़ाई (व्यास) होना चाहिये।

ब्राह्मणादि के द्वारों का प्रमाण

विप्रादीनां तथा सप्त विंशतिस्त्वङ्गुलानि च।
द्वारस्यमानं तत्प्रोक्तं त्रिगुणोच्छ्रायमुच्यते॥ १६३॥

ब्राह्मण के गृह के द्वार की चौड़ाई सत्ताईस अंगुल होती है। द्वार की ऊँचाई उसकी चौड़ाई (२७ अंगुल) से तिगुनी अर्थात् २७ × ३ = ८१ (इक्यासी) अंगुल होती है॥ १६३॥

चौखट का प्रमाण

उच्छ्रायहस्तसंख्यायाः परिमाणान्यङ्गुलानि च।
शाखाद्वयेऽपि बाहुल्यं कार्यं द्वादशसंयुतम्॥ १६४॥
उच्छ्रायात्सप्तगुणिताद् दशेति पृथुता मता।
भागः पुनर्नवगुणाऽशीत्यंशस्तत एव च॥ १६५॥

दशांशहीनस्तस्याग्रः स्तम्भानां परिमाणकम्।
वेदास्त्रः रुचकः स्तम्भो वज्रोऽष्टास्त्रियुतो मतः॥ १६६॥
द्विवज्रः षोडशास्त्रिः स्याद् द्विगुणास्त्रिः प्रलीनकः।
समन्तवृत्तो वृत्ताख्यः स्तम्भः प्रोक्तो द्विजोत्तमैः॥ १६७॥

द्वार की ऊँचाई जितने हाथ हो चौखट में उतने ही अंगुल की चौखट के बाजुओं की मोटाई होनी चाहिये। उसमें बारह अंगुल अधिक जोड़कर नीचे की देहली की मोटाई रखनी चाहिये। द्वार की ऊँचाई (राजद्वार की ऊँचाई) को सात गुणा करके उस गुणनफल में ८० (अस्सी) का भाग दें। जो लब्धि हो, उतनी मोटी उदुम्बर (ऊपर का सिरा) बनायें। स्तम्भ की ऊँचाई को नौ से गुणा करके अस्सी का भाग देकर जो लब्धि मिले, उसके बराबर स्तम्भ मूल की मोटाई रखे। स्तम्भ के अग्रभाग की मोटाई उसकी मोटाई से दशमांश ($\frac{१}{१०}$) कम होनी चाहिये।

जिस स्तम्भ के मध्य का भाग चार कोणवाला हो, उसे रुचक कहते हैं। सोलह कोणवाला स्तम्भ द्विवज्र कहलाता है तथा आठ कोणवाला वज्र होता है। बत्तीस कोणवाले स्तम्भ को 'प्रलीनक' कहते हैं। जो वर्त्तुलाकार हो, उसे वृत्तस्तम्भ कहा जाता है। ऐसा विद्वानों ने कहा है॥ १६४-१६७॥

स्तम्भ के नौ भागों के नाम तथा भारतुलादि

विभज्य नवधास्तम्भं कुर्यादुद्वहनं घटम्।
पद्मञ्च सोत्तरोष्ठञ्च कुर्याद् भावोनभागतः॥ १६८॥
स्तम्भसमं बाहुल्यं भारतुलानामुपर्युपरियासाम्।
भवति तुलाय तुलानामूनं पादेन पादेन॥ १६९॥

स्तम्भ के नौ भाग करें, उसके नीचेवाला जो प्रथम भाग है, वह सम्पूर्ण स्तम्भादि का भार धारण करने से वहन या उद्वहन कहलाता है। उससे ऊपर का दूसरा भाग घटाकृति होने से घट कहलाता है तथा तीसरा भाग पद्म (कमल के समान कहलाता है। चौथा भाग उत्तरोष्ठ कहलाता है।

स्तम्भ की मोटाई के प्रमाण का पाँचवाँ भाग भारतुला कहलाता है। उसके ऊपर का छठाँ भाग तुला तथा सातवाँ उपतुला कहा जाता है। ये क्रमशः चतुर्थांश, चतुर्थांश न्यून क्रम में मोटे होते हैं॥ १६८-१६९॥

सर्वतोभद्रवास्तु के लक्षण

अप्रतिषिद्धालिन्दं समन्ततो वास्तु सर्वतोभद्रम्।
नृपविबुधसमूहानां कार्यं द्वारैश्चतुर्भिरपि॥ १७०॥

जिस वास्तु (गृह) के चारों ओर अलिन्द तथा चारों दिशाओं में द्वार हों वह सर्वतोभद्रवास्तु कहलाता है तथा ऐसा वास्तु देवताओं और राजाओं के लिये बनवाना चाहिये॥ १७०॥

विमर्श—यहाँ गर्गाचार्य का कथन है—

'अलिन्दानां व्यवच्छेदो नास्ति यत्र समन्ततः।
तद्वास्तु सर्वतोभद्रं चतुर्द्वारसमायुतम्॥'

शालाओं की निर्माण-विधि

याम्यशाला न्यसेदादौ द्वितीया पश्चिमे ततः।
तृतीया चोत्तरे स्थाप्या चतुर्थी पूर्वपश्चिमा॥ १७१॥

यदि चतुःशाला गृह बनाना हो तो सर्वप्रथम दक्षिण की शाला का निर्माण करें। दूसरी शाला पश्चिम में बनायें। तीसरी शाला बनानी हो तो उसे उत्तर में बनायें तथा चौथी शाला को पूर्व-पश्चिम के मध्य में बनाना चाहिये॥ १७१॥

द्विशाल गृहों के भेद (१. वाताख्य तथा २. सिद्धार्थ)

दक्षिणे दुर्मुखं कृत्वा पूर्वे च खरसंज्ञकम्।
तद्वाताख्यं भवेद्गेहं वातरोगप्रदं स्मृतम्॥ १७२॥
दक्षिणे दुर्मुखं ज्ञेयं पश्चिमे धान्यसंज्ञकम्।
सिद्धार्थाख्यं द्विशालञ्च सर्वसिद्धिकरं नृणाम्॥ १७३॥

१. वाताख्य गृह—जिसके दक्षिण में दुर्मुख शाला तथा पश्चिम में खर हो वह 'वाताख्य' नामक वास्तु होता है, जो निवास करनेवालों को वातरोगप्रदायक होता है।

२. सिद्धार्थ गृह—जिसके दक्षिण में दुर्मुखशाला तथा पश्चिम में धान्य गृह हो, उसे 'सिद्धार्थ' गृह कहते हैं। यह सर्वसिद्धिदाता होता है॥ १७२-१७३॥

३. यमसूर्य, ४. दण्ड तथा ५. काच के लक्षण

पश्चिमे धान्यनामानमुत्तरे जयसंज्ञकम्।
यमसूर्यं द्विशालं तन्मृत्युदं नाशदं स्मृतम्॥ १७४॥
पूर्वे तु खरनामानमुत्तरे धान्यसंज्ञकम्।
दण्डाख्यं तद्द्विशालं स्याद् दण्डकुर्यात्पुनः पुनः॥ १७५॥
दुर्मुखं दक्षिणे कुर्यात् उत्तरे जयसंज्ञकम्।
काचाख्यं तद् द्विशालन्तु बन्धुनाशं धनक्षयम्॥ १७६॥

३. पश्चिम में धान्य नामक तथा उत्तर में जयसंज्ञक शाला बनाने पर 'यमसूर्य' नामक वास्तु होता है। यह मृत्युदायक होता है।

४. पूर्व में खर तथा उत्तर में धान्य नामक शाला बनाने पर ऐसा द्विशालगृह 'दण्ड' कहलाता है। यह बार-बार दण्ड दिलाता है।

५. दक्षिण में दुर्मुख तथा उत्तर में जय नामक शाला बनायें तो 'काच' नामक द्विशाल गृह होता है। इसमें निवास करने पर बन्धुनाश तथा धनक्षय होता है॥ १७४-१७६॥

६. चुल्ली नामक द्विशाल गृह के लक्षण

खरं च पूर्व दिग्भागे पश्चिमे धान्यसंज्ञकम्।
गृहं चुल्ली द्विशालं तत्पशुवृद्धिधनप्रदम्॥ १७७॥

६. पूर्व में खर तथा पश्चिम में धान्य नामक शाला बनाने पर बना हुआ वास्तु 'चुल्ली' कहलाता है। यह धनधान्य की तथा पशुओं की वृद्धि करता है॥ १७७॥

विमर्श—वराहमिहिर ने द्विशाल वास्तु में केवल यही छह भेद लिखे हैं। परन्तु इस ग्रन्थ (विश्वकर्मप्रकाश) में सात भेद अधिक है, जो आगे कहे जा रहे हैं।

७. शोभनवास्तु के लक्षण एवं फल

विपक्षं दक्षिणे भागे पश्चिमे क्रूरसंज्ञकम्।
शोभनाख्यं द्विशालं तद् धनधान्यकरं परम्॥ १७८॥

जिसमें दक्षिण में विपक्ष तथा पश्चिम में 'क्रूर' शाला हो, ऐसा द्विशाल गृह 'शोभन' कहलाता है। जो अतीव धनधान्यदायक होता है॥ १७८॥

८. कुम्भवास्तु के लक्षण एवं फल

विजयं दक्षिणेभागे विजयश्चैव पश्चिमे।
द्विशालं कुम्भाख्यं पुत्रदारादिसंयुतम्॥ १७९॥

जिसके दक्षिण एवं पश्चिम दोनों भागों में 'विजय' नामक शाला निर्मित हो, वह 'कुम्भ' नामक द्विशाल वास्तु पुत्र एवं स्त्री आदि से समृद्ध रहता है॥ १७९॥

९. नन्दवास्तु के लक्षण एवं फल

धनश्च पूर्व दिग्भागे धान्यश्चैव तु पश्चिमे।
नन्दाख्यं तद् द्विशालं च धनदं शोभनं स्मृतम्॥ १८०॥

जिसके पूर्व दिशा में 'धन' नामक शाला तथा पश्चिम में 'धान्य' नामक शाला हो, ऐसा द्विशालवास्तु 'नन्द' कहा जाता है। जो धनदायक तथा सुन्दर होता है॥ १८०॥

१०. शङ्खवास्तु के लक्षण एवं फल

विजयं सर्व दिग्भागे द्विशालाख्यं तदेव हि।
शङ्खाख्यं नाम तद्गेहं शुभदश्च नृणां भवेत्॥ १८१॥

जिसमें किन्हीं भी दो दिशाओं में विजय नामक शालाएँ निर्मित हों, उसको 'शङ्ख' द्विशाल वास्तु कहा जाता है। जो कि शुभफल देता है॥ १८१॥

११. सम्पुटवास्तु के लक्षण एवं फल

विपुलं सर्वदिग्भागे द्विशालं तत्प्रजायते।
तानि सम्पुटसंज्ञानि धनधान्यप्रदानि च॥ १८२॥

जिसके किन्हीं भी दो दिशाओं में विपुल नामक शालाएँ बनी हों ऐसा द्विशालवास्तु 'सम्पुट' कहलाता है। जो धनधान्य देनेवाला होता है॥ १८२॥

१२-१३. कान्त द्विशालवास्तु के लक्षण एवं फल

धनदं सर्वदिग्भागे सुवक्त्रं वा मनोरमम्।
कान्त नाम तु तद्गेहं सर्वेषां शोभनं स्मृतम्॥ १८३॥

जिसके किन्हीं भी दो दिशाओं में सुवक्त्र अथवा मनोरम नामक शालाएँ बनी हों अर्थात् या तो दोनों ओर सुवक्त्र हो अथवा दोनों ओर मनोरम हों तो 'कान्त' नामक वास्तु होता है॥ १८३॥

विमर्श—यहाँ 'कान्त' द्विशालवास्तु दो प्रकार का होता है। इस प्रकार तेरह द्विशालवास्तु हुए।

द्विशालवास्तु के तेरह भेदों की कल्पना की उपपत्ति

द्विशालानां तद्गृहाणां भेदाश्चैव त्रयोदश।
फलपाकार्थमेतेषां मया प्रोक्तं सुविस्तरात्॥ १८४॥
पूर्वयाम्यमथ याम्य पश्चिमं पश्चिमोत्तरमथोत्तरपूर्वकम्।
प्राक्प्रतीचीमथ दक्षिणोत्तरं वास्तुषड्विधमिदं द्विशालकम्॥ १८५॥

इन द्विशाल गृहों के १. पूर्व-दक्षिण, २. दक्षिण-पश्चिम, ३. पश्चिम-उत्तर, ४. उत्तर-पूर्व, ५. पूर्व-पश्चिम तथा ६. उत्तर-दक्षिण—इन छह प्रकार से विस्तारपूर्वक तेरह भेदों को मेरे द्वारा सविस्तार कहा गया है॥ १८४-१८५॥

१. हिरण्यनाभ त्रिशालवास्तु

उत्तरद्वारहीनं यत् त्रिशालं धनधान्यदम्।
हिरण्यनाभनामानं राज्ञां सौख्यविवर्धनम्॥ १८६॥

जो त्रिशाल वास्तु उत्तर द्वार एवं शाला से हीन हो, उसे 'हिरण्यनाभ' कहते हैं, वह राजाओं के सुख को बढ़ानेवाला तथा धन-धान्य प्रदायक होता है॥ १८६॥

२. सुक्षेत्र त्रिशालवास्तु

प्राग्द्वारशालहीनं तु सुक्षेत्रे नाम तद्गृहम्।
वृद्धिदं पुत्रपौत्राणां धनधान्यसमृद्धिदम्॥ १८७॥

जो त्रिशालवास्तु पूर्व में द्वार एवं शाला से रहित होता हो, उसे 'सुक्षेत्र' कहते हैं, वह पुत्र-पौत्रों आदि की वृद्धि करनेवाला तथा धनधान्य की समृद्धि देनेवाला होता है॥ १८७॥

३. चुल्लिसंज्ञक त्रिशालवास्तु

याम्यशालाविहीनं तत् त्रिशालं चुल्लिसंज्ञकम्।
विनाशनं धनस्यापि पुत्रपौत्रादिनाशनम्॥ १८८॥

जो त्रिशालवास्तु दक्षिण में शाला से रहित हो, उसे 'चुल्लि' नामक त्रिशालवास्तु कहते हैं। वह धननाश तथा पुत्र-पौत्रादि की हानि करता है॥ १८८॥

४. पक्षघ्न त्रिशालवास्तु

प्रत्यक्छालाविहीनं तु पक्षघ्नं नाम तद्गृहम्।
पुत्राणां दोषदश्चैव परश्च पुरवासिनाम्॥ १८९॥

जिस त्रिशालवास्तु में पश्चिम दिशा में शाला न हो, उसे 'पक्षघ्न' कहा जाता है। वह पुत्रों-पौत्रों तथा पुरुषवासियों में चारित्रिक भ्रष्टता उत्पन्न करता है॥ १८९॥

विमर्श—इनमें पूर्व एवं उत्तर शाला विहीन दो वास्तु उत्तम होते हैं, शेष दो अशुभ होते हैं—

'शस्तं हिरण्यनाभाख्यं हीनं चोत्तरशालया।
सुक्षेत्रं पूर्वतोहीनं शालया वृद्धिदं मतम्॥
चुल्ली दक्षिणया हीनं यत्स्याद् परयाहीनं पक्षघ्नं तत्सुतान्तकृत्॥'
—किरणाख्यतन्त्र

चतुर्दश भेदों की कल्पना

चत्वारोऽमी मया प्रोक्ता भेदाश्चैव चतुर्दश।
तस्माद् विचार्य कुर्वीत गृहकर्मणि कोविदः॥ १९०॥

यहाँ मैंने चार मुख्य भेद इन त्रिशाल वास्तुओं के कहें हैं—बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि वह गृहकर्म में इनके चौदह उपभेदों की कल्पना करे॥ १९०॥

सर्वतोभद्र चतुश्शाल वास्तु

अलिन्दानां ह्यवच्छेदो नास्ति यत्र समन्ततः।
तद्वास्तु सर्वतोभद्रं चतुर्द्वारसमन्वितम्॥ १९१॥
नृपाणां विबुधानां च गृहं सौख्यप्रदायकम्॥ १९२॥

जिस चतुश्शाल वास्तु में चारों दिशाओं में अलिन्द हों तथा चारों ओर द्वार हो वह राजाओं एवं देवताओं के लिये प्रशस्त 'सर्वतोभद्र' वास्तु कहलाता है, वह सर्वसुख-प्रदायक होता है॥ १९१-१९२॥

विमर्श—इस वास्तु का उल्लेख पीछे के श्लोक १७० में भी हो चुका है। मुम्बई से मुद्रित मूलपाठ में इसके बीच में एक श्लोक सम्मुख शुक्र के परिहार का छपा है, वह स्पष्टतः लिपिकार की भूल है, अतः उसे यहाँ से हटा दिया गया है।

नन्द्यावर्त्त चतुश्शाल वास्तु

प्रदक्षिणान्तगैः सर्वैः शालाभित्तिरलिन्दकैः।
विनापरेण द्वारेण नन्द्यावर्त्तं इति स्मृतम्॥ १९३॥

जिस चतुश्शाल वास्तु में शाला की भित्ति (दीवाल) से आरम्भ करके प्रदक्षिण क्रम से अलिन्द हो तथा ऊपर दिशा (पश्चिम) को छोड़कर शेष तीन दिशाओं में द्वार हो, उसको 'नन्द्यावर्त्त' वास्तु जानना चाहिये॥ १९३॥

नन्द्यावर्त्त चतुश्शाल वास्तु का फल

श्रेष्ठं सुतारोग्यकरं सर्वेषां शुद्धजन्मनाम्।

यह नन्द्यावर्त्त वास्तु श्रेष्ठ, पुत्र-पौत्रप्रद और आरोग्यदायक होता है। यह श्रेष्ठ एवं कुलीन पुरुषों के निवास के लिये होता है॥ १९३½॥

वर्धमान वास्तु के लक्षण एवं फल

द्वारालिन्दो गतस्त्वेकोऽन्येत्रयोर्दक्षिणागतः॥ १९४॥
विहाय दक्षिणं द्वारं वर्धमानमिति स्मृतम्।
शुभदं सर्ववर्णानां वृद्धिदं पुत्रपौत्रकम्॥ १९५॥

प्रधान द्वार के अलिन्द के अन्तर्गत (दक्षिणोत्तर् भित्ति में संलग्न) हो, अन्य तीन अलिन्द प्रदक्षिण क्रम से बनाये गये हों तथा जिसमें दक्षिण की ओर द्वार न हो (शेष तीन दिशाओं में द्वार हो) उसे 'वर्धमान' वास्तु कहते हैं। यह सभी वर्णों के लिये उन्नतिकार तथा पुत्र-पौत्र-प्रदायक होता है॥ १९४-१९५॥

विमर्श—दक्षिण का द्वार तो सामान्यतः अशुभ होता है, अतः सर्वतोभद्र तथा नन्द्यावर्त्त को छोड़कर अन्य में नहीं होता है। यथा—

'द्वारालिन्दोऽन्तगस्तेषां ये त्रयो दक्षिणाङ्गताः।
विहाय दक्षिणं द्वारं वर्धमानमिति स्मृतम्॥'
—गर्गाचार्य

स्वस्तिक चतुश्शाल वास्तु

पश्चिमोत्तरतो प्रागन्तौ द्वौ तदुत्थितौ।
अन्यस्तन्मध्यविधृतः प्राग्द्वारं स्वस्तिकं शुभम्॥ १९६॥

जिस वास्तु में पश्चिमी अलिन्द दक्षिणोत्तर शाला से संलग्न हो तथा पश्चिमी अलिन्द से संलग्न दो अन्य अलिन्द पूर्व दिशा की शाला से संलग्न हों तथा जिसमें केवल पूर्व दिशा में ही एकमात्र द्वार हो (अन्य दिशाओं में द्वार न हों) उसको 'स्वस्तिक' वास्तु कहते हैं यह सबके लिये शुभ होता है॥ १९६॥

रुचक चतुःशाल वास्तु

प्राक्पश्चिमालिन्दौ यावन्तगौ तद् भवे परौ।
सौम्य द्वारं विना तु स्याद् रुचकाख्यं तु तत्स्मृतम्॥ १९७॥

इति श्रीविश्वकर्मप्रकाशे वास्तुशास्त्रे समगृहादिनिर्माणे द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

जिस चतुःशाल वास्तु में पूर्व एवं पश्चिम का अलिन्द दक्षिणोत्तर शाला से संलग्न हो तथा शेष दो अलिन्द उनके मध्य में हों तथा जिसमें उत्तर द्वार न हो। शेष तीन दिशाओं में द्वार हो उसे 'रुचक' नामक वास्तु जानना चाहिये॥ १९७॥

इस प्रकार श्रीविश्वकर्मप्रकाश वास्तुशास्त्र ग्रन्थ की महर्षि अभय कात्यायनविरचित 'अभया' हिन्दी टीका का द्वितीय अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

•

तृतीयोऽध्यायः

गृहवास्तुकालनिर्णयाध्यायः

गृहारम्भमुहूर्त का कथन

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गृहे कालविनिर्णयम्।
यथाकालं शुभं ज्ञात्वा तदा भवनमारभेत्॥ १॥

अब मैं गृहारम्भ के लिये कालनिर्णय कहता हूँ, जिसको जानकर गृह का निर्माणकार्य प्रारम्भ करना चाहिये॥ १॥

विमर्श—गृहारम्भ हेतु काल के स्थूल अवयवों को पिछले अध्याय (द्वितीय) में बता दिया गया है। वहाँ गृहारम्भ हेतु अयन-ऋतु-मास आदि का वर्णन है। अब इस अध्याय में सूक्ष्म अवयवों नक्षत्र, मुहूर्त, लग्न आदि का विवरण दिया गया है।

गृहारम्भ हेतु नक्षत्रों का कथन

मृदुध्रुवस्वातिपुष्यधनिष्ठाद्वितये रवौ।
मूले पुनर्वसौ सौम्यवारे प्रारम्भणं शुभम्॥ २॥

गृहारम्भ के लिये मृदु नक्षत्र (अश्विनी, चित्रा, मूल, रेवती), ध्रुवनक्षत्र, रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्र), स्वाति, पुष्य, धनिष्ठा, शतभिषा, हस्त, मूल तथा पुनर्वसु—ये नक्षत्र एवं शुभवार ग्रहण करना चाहिये॥ २॥

गृहारम्भ में शुभवार

आदित्यभौमवर्जन्तु वाराः सर्वे शुभावहाः।

रविवार तथा मंगलवार को छोड़कर शेष सभी वार (सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि) गृहारम्भ हेतु शुभ होते हैं॥ २½॥

गृहारम्भ में शुभ तिथियाँ

द्वितीया च तृतीया च षष्ठी पञ्चमी तथा॥ ३॥
सप्तमी दशमी चैव द्वादश्येकादशी तथा।
त्रयोदशी पञ्चदशी तिथयः स्युः शुभावहाः॥ ४॥

गृहारम्भ में द्वितीया, तृतीय, षष्ठी, पंचमी, सप्तमी, दशमी, द्वादशी, एकादशी, त्रयोदशी तथा पूर्णिमा—ये तिथियाँ शुभ होती हैं॥ ३-४॥

गृहारम्भ में अशुभ तिथियाँ

दारिद्र्यं प्रतिपत्कुर्यात् चतुर्थी धनहारिणी।
अष्टम्युच्चाटने चैव नवमी शस्त्रघातिनी॥ ५॥

दर्शे राजभयं भूते सुतदारविनाशनम्।

प्रतिपदा (विशेषकर शुक्लपक्ष) में गृहारम्भ करने से दरिद्रता प्राप्त होती है। चतुर्थी में धनहरण होता है। अष्टमी में बनवानेवाले तथा कारीगर में एवं मजदूरों का उच्चाटन होता है अर्थात् उनका मन उचट जाता है। जिसके कारण कार्य पूर्ण होने में व्यवधान आता है। नवमी तिथि में शस्त्राघात का भय होता है। अमावास्या में राजभय तथा चतुर्दशी में पुत्र एवं पत्नी आदि का विनाश होता है॥ ५-५½॥

धनिष्ठादि पञ्चम का विचार

धनिष्ठा पञ्चके चैव नैव कुर्यात्स्तम्भसमुच्छ्रयम्॥ ६॥
सूत्रधारशिलान्यासप्राकारादि समारभेत्।

धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तरा भाद्रपद तथा रेवती इन पाँच नक्षत्रों में स्तम्भ समुच्छ्राय (खम्भे या Pillar की स्थापना) नहीं करना चाहिये॥ ६॥

किन्तु इन पाँच नक्षत्रों अर्थात् पञ्चक में सूत्रधार (राजमिस्त्री = कारीगर = धवई = स्थपति) को बुलाकर शिलान्यास तथा प्राकारादि (परकोटे-चहारदीवारी) आदि का निर्माण किया जा सकता है॥ ६½॥

विमर्श—धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तराभाद्रपद तथा रेवती ये नक्षत्र तो श्लोक २ में गृहारम्भ हेतु प्रशस्त कहे ही गये हैं, अतः घर पर छाया करने, चौखट-बाजू, पटना आदि लगाने में ही पंचक वर्जित होता है। नींव लगाने में पंचक का विचार नहीं है।

यामित्रादि दोषों की वर्जना

यामित्रं द्विविधं वर्ज्यं वेधोपग्रहकर्त्तरी॥ ७॥
एकार्गलं तथा लत्तायुतिक्रकचसंज्ञकाः।
पातन्तु द्विविधं वर्ज्यं व्यतीपातश्च वैधृतिः॥ ८॥
कुलिकं कण्टकं कालं यमघण्टं तथैव च।
जन्मतृतीयपञ्चाद्रितारा वर्ज्यानि भानि च॥ ९॥
कुयोगाऽवमसंज्ञश्च तथा त्रिस्पृक् खलं दिनम्।
पापलग्नानि पापांशाः पापवर्गास्तथैव च॥ १०॥
कुयोगा तिथिवारोत्था तिथिभोत्था भवारजाः।
विवाहादिषु ये वर्ज्यास्ते वर्ज्या वास्तुकर्मणि॥ ११॥

गृहारम्भ में दो प्रकार का यामित्र, वेध, उपग्रह दोष, कर्त्तरीदोष, एकार्गल, लता, युति, क्रकच, दो प्रकार का पात—व्यतीपात और वैधृति, कुलिक, कण्टक, कालदोष, यमघण्ट दोष ये सब वर्जित हैं। जन्मतारा, विपत्तितारा, प्रत्यरितारा तथा सप्तम तारा—ये चार तारा वर्जित हैं। दुष्ट नक्षत्र भी वर्जित हैं॥ ७-९॥

आनन्दादि योगों में जो अशुभ योग हैं, वे वर्जित हैं। क्षयतिथि, वृद्धितिथि, दुष्टवार, पापग्रह की लग्नें, पापनवांश, पापग्रहों के वर्ग (षड्वर्ग), तिथिवारजन्य

कुयोग, तिथि-नक्षत्रजन्य कुयोग, वार एवं नक्षत्रजन्य कुयोग भी वर्जित हैं। इसके अतिरिक्त विवाह आदि शुभकार्यों में जो वर्ज्य हैं, वास्तुकर्म में उनको भी वर्जित करना चाहिये॥ १०-११॥

विमर्श—यहाँ वास्तुकर्म में अनेक वर्जित योगों की सूची श्लोक ७ से ११ तक दी गयी है। यहाँ उनका स्पष्टीकरण किया जा रहा है—

लग्न यामित्र—गृहारम्भ लग्न नक्षत्र से १४वें नक्षत्र पर कोई ग्रह हो तो लग्न नक्षत्र से यामित्रदोष होता है। सूर्य-मंगल-शनि का या मित्र त्याज्य है।

चन्द्र नक्षत्र यामित्र—गृहारम्भ समय के चन्द्रनक्षत्र से १४वें नक्षत्र पर कोई ग्रह हो तो नक्षत्र यामित्रदोष होता है।

वेधदोष—गृहारम्भ में सप्तशलाका चक्र का विचार करना चाहिये। इसमें गृहारम्भ के नक्षत्र के सामनेवाले नक्षत्र पर यदि कोई ग्रह स्थित होगा तो वहाँ सप्तशलाका चक्र के अनुसार वेधदोष होगा यह त्याज्य रहता है।

इस चक्र में रोहिणी का अभिजित से, मृगशिरा का उत्तराषाढ़ा से, पुनर्वसु का मूल से, पुष्य का ज्येष्ठा से, रेवती का उत्तराफाल्गुनी से, उत्तराभाद्र का हस्त से, चित्रा का पूर्वाभाद्र से, स्वाति का शतभिषा से तथा धनिष्ठा का विशाखा से वेध है। अनुराधा का आश्लेषा से वेध है। इस वेध को त्यागना चाहिये। विवाहादि में पञ्चशलाका चक्र का तथा गृहारम्भादि में सप्त-शलाका का वेध देखा जाता है—

'चक्रे सप्तशलाकाख्ये स वेधो सर्वकर्मसु।
चिन्तनीयो विवाहे तु पञ्चरेखासमुद्भवे॥'

उपग्रह दोष—गृहारम्भ समय में जिस नक्षत्र पर सूर्य हो उस नक्षत्र से ५।७।८।१०।१४।१५।१८।१९।२१।२२।२३।२४।२५—इन संख्याओं वाले नक्षत्र पर यदि चन्द्रमा हो तो उपग्रह दोष होता है। ये तेरह नक्षत्र उपग्रह दोष से दूषित होते हैं। यह प्रथम मत है।

द्वितीय-तृतीय मत के अनुसार—सूर्यनक्षत्र से चन्द्रनक्षत्र सातवाँ, दसवाँ, पन्द्रहवाँ, इक्कीसवाँ अथवा पच्चीसवाँ हों तो उपग्रह दोष होता है। इन दोनों मतों को मुहूर्तगणपति में एक साथ दिया है—

'अष्टमं पञ्चमं चाष्टादशं वाऽथ चतुर्दशम्।
द्वाविंशैकोनविंशे च त्रयोविंश स्तथैव च॥'
'दिक्सप्ततिथितत्त्वाख्या स्वर्गसंख्यानि भानि च।
एतान्यपि जुगुप्सौपग्रहर्क्षाणि इति केचन॥'
—मुहूर्तगणपति १५।१६८, १७०

सूर्यनक्षत्र एवं चन्द्रनक्षत्र के संयोग से उपग्रहदोषप्रदर्शकतालिका

सूर्यनक्षत्र से ↓	चन्द्रनक्षत्र की संख्या							
	५ पाँचवाँ	८ आठवाँ	१४ चौदहवाँ	१८ अठारहवाँ	१९ उन्नीसवाँ	२२ बाईसवाँ	२३ तेईसवाँ	२४ चौबीसवाँ
१. अश्विनी	मृगशिरा	पुष्य	चित्रा	ज्येष्ठा	मूल	श्रवण	धनि.	शतभिषा
२. भरणी	आर्द्रा	श्लेषा	स्वाति	मूल	पू.षा.	धनि.	शत.	पू.भा.
३. कृत्तिका	पुनर्वसु	मघा	विशाखा	पू.षा.	उ.षा.	शत.	पू.भा.	उ.भा.
४. रोहिणी	पुष्य	पू.फा.	अनुराधा	उ.षा.	श्रवण	पू.भा.	उ.भा.	रेवती
५. मृगशिरा	श्लेषा	उ.फा.	ज्येष्ठा	श्रवण	धनि.	उ.भा.	रेवती	अश्विनी
६. आर्द्रा	मघा	हस्त	मूल	धनिष्ठा	शत.	रेवती	अश्विनी	भरणी
७. पुनर्वसु	पू.फा.	चित्रा	पूर्वाषाढ़ा	शतभिषा	पू.भा.	अश्विनी	भरणी	कृत्तिका
८. पुष्य	उ.फा.	स्वाति	उत्तराषाढ़ा	पू.भा.	उ.भा.	भरणी	कृत्तिका	रोहिणी
९. आश्लेषा	हस्त	विशाखा	श्रवण	उ.भा.	रेवती	कृत्तिका	रोहिणी	मृगशिरा
१०. मघा	चित्रा	अनु.	धनिष्ठा	रेवती	अश्विनी	रोहिणी	मृगशिरा	आर्द्रा
११. पू.फा.	स्वाति	ज्येष्ठा	शतभिषा	अश्विनी	भरणी	मृगशिरा	आर्द्रा	पुनर्वसु
१२. उ.फा.	विशाखा	मूल	पूर्वाभाद्र	भरणी	कृत्तिका	आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्य
१३. हस्त	अनुराधा	पू.षा.	उ.भा.	कृत्तिका	रोहिणी	पुनर्वसु	पुष्य	श्लेषा
१४. चित्रा	ज्येष्ठा	उ.षा.	रेवती	रोहिणी	मृगशिरा	पुष्य	श्लेषा	मघा
१५. स्वाति	मूल	श्रवण	अश्विनी	मृगशिरा	आर्द्रा	श्लेषा	मघा	पू.फा.
१६. विशाखा	पू.षा.	धनिष्ठा	भरणी	आर्द्रा	पुनर्वसु	मघा	पू.फा.	उ.फा.
१७. अनुराधा	उ.षा.	शतभिषा	कृत्तिका	पुनर्वसु	पुष्य	पू.फा.	उ.फा.	हस्त
१८. ज्येष्ठा	श्रवण	पू.भा.	रोहिणी	पुष्य	श्लेषा	उ.फा.	हस्त	चित्रा
१९. मूल	धनिष्ठा	उ.भा.	मृगशिरा	श्लेषा	मघा	हस्त	चित्रा	स्वाति
२०. पू.षा.	शतभिषा	रेवती	आर्द्रा	मघा	पू.फा.	चित्रा	स्वाति	विशाखा
२१. उ.षा.	पू.भा.	अश्विनी	पुनर्वसु	पू.फा.	उ.फा.	स्वाति	विशाखा	अनुराधा
२२. श्रवण	उ.भा.	भरणी	पुष्य	उ.फा.	हस्त	विशाखा	अनु.	ज्येष्ठा
२३. धनिष्ठा	रेवती	कृत्तिका	आश्लेषा	हस्त	चित्रा	अनु.	ज्येष्ठा	मूल
२४. शतभिषा	अश्विनी	रोहिणी	मघा	चित्रा	स्वाति	ज्येष्ठा	मूल	पूर्वाषाढ़ा
२५. पू.भा.	भरणी	मृगशिरा	पू.फा.	स्वाति	विशाखा	मूल	पू.षा.	उत्तराषाढ़ा
२६. उ.भा.	कृत्तिका	आर्द्रा	उ.फा.	विशाखा	अनुराधा	पूर्वाषाढ़ा	उ.षा.	श्रवण
२७. रेवती	रोहिणी	पुनर्वसु	हस्त	अनुराधा	ज्येष्ठा	उ.षा.	श्रवण	धनिष्ठा

कर्त्तरी दोष—जब गृहारम्भ लग्न से द्वितीय भाव में वक्री पापग्रह तथा बारहवें भाव में कोई मार्गी पापग्रह बैठा हो तो कर्त्तरीदोष होता है।

एकार्गल दोष—विष्कम्भ, वज्र, परिघ्र, व्यतिपात, शूल, व्याघात, वैधृति, गण्ड, अतिगण्ड यदि इन योगों में से कोई योग हो तथा उसी से संलग्न गृहारम्भ का नक्षत्र हो (भले ही वह योग उस समय समाप्त हो गया हो) यदि वह चन्द्रनक्षत्र तत्कालीन सूर्यनक्षत्र से अभिजित सहित गिनने पर विषम संख्या में हो तब एकार्गल दोष होता है।

लत्ता दोष—सूर्य स्वाधिष्ठित नक्षत्र से अपने आगेवाले १२वें नक्षत्र को, समीप की पूर्णिमा का चन्द्रमा स्वाधिष्ठित नक्षत्र से अपने से पीछेवाले २२वें नक्षत्र को, मंगल आगेवाले तीसरे नक्षत्र को, बुध पीछेवाले सातवें नक्षत्र को, गुरु आगेवाले छठें नक्षत्र को, शुक्र पीछेवाले पाँचवें नक्षत्र को तथा शनि आगेवाले आठवें नक्षत्र को लात मारता है। यह गृहारम्भ में वर्जित है।

ग्रहों का लत्ताप्रदर्शक चक्र

सूर्य	पूर्णचन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	ग्रह
१३	२२	३	७	६	५	८	लत्तित नक्षत्र की संख्या
आगे	पीछे	आगे	पीछे	आगे	पीछे	आगे	**लत्ता का प्रकार**

चण्डायुध पात—शूल, गण्ड, वैधृति, साध्य, व्यतिपात तथा हर्षण इन योगों की समाप्ति जिस नक्षत्र में हो उसमें यह चण्डायुध नामक पात होता है।

क्रान्तिपात दोष—सूर्य-चन्द्रमा की क्रान्ति समान होने पर यह दोष होता है।

व्यतिपात दोष—पंचांग के विष्कम्भादि में यह १७वाँ योग होता है।

वैधृति दोष—यहाँ २७वाँ योग होता है।

कुलिक योग—रविवार में १४वाँ, सोम में १२वाँ, मंगल में १०वाँ, बुधवार में आठवाँ, गुरुवार में छठाँ, शुक्र में चौथा तथा शनि में दूसरा मुहूर्त कुलिक संज्ञक होता है। ये दिन के समय के कुलिक मुहूर्त हैं। रात्रि के समय एक संख्या कम कर देने पर कुलिक मुहूर्त होता है। जैसे रविवार की रात में १३वाँ, सोमवार की रात में ११वाँ इस क्रम से कुलिक मुहूर्त होते हैं।

दिन में कुलिक-कालवेला तथा कण्टक प्रदर्शक चक्र

	रविवार	सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार
कुलिक	१४वाँ	१२	१०	८	६	४	२ मुहूर्त
कण्टक	८वाँ	६	४	२	१४	१२	१० मुहूर्त
कालवेला	६वाँ	४	२	१४	१२	१०	८ मुहूर्त

रात्रि में कुलिक-कालवेला तथा कण्टक मुहूर्तों का चक्र

	रविवार	सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार
कुलिक	१३	११	९	७	५	३	१
कण्टक	७	५	३	१	१३	११	९
कालवेला	५	३	१	१३	११	९	८

अथ तिथिवारयोर्भवारयोर्योगादनेकयोगानां बोधकचक्रमिदम्

योगनामानि	सूर्यवासरः	चन्द्रवासरः	भौमवासरः	बुधवासरः	गुरुवासरः	शुक्रवासरः	शनिवासरः
च्राख्ययोगः	पू.षा.	आर्द्रा	विशाखा	रोहिणी	पुष्य	मघा	मूल
क्रकचयोगः	१२ ति.	११ ति.	१० ति.	९ ति.	८ ति.	७ ति.	६ ति.
दग्धयोगः	१२ ति.	११ ति.	५ ति.	३ ति.	६ ति.	८ ति.	९ ति.
विषाख्ययोगः	४ ति.	६ ति.	७ ति.	२ ति.	८ ति.	९ ति.	७ ति.
हुताशनयोगः	१२ ति.	६ ति.	७ ति.	८ ति.	९ ति.	१० ति.	११ ति.
यमघण्टयोगः	मघा	विशाखा	आर्द्रा	मूल	कृत्तिका	रोहिणी	हस्त
दग्धयोगः	भरणी	चित्रा	उ.षा.	धनिष्ठा	उत्तरा फा.	ज्येष्ठा	रेवती
यमदंष्ट्रयोगः	म. ध.	वि. म.	कृ. भ.	पू.षा., पुन.	उ.षा., अश्वि.	रो. अनु.	श्र. श.
सर्वार्थसिद्धिर्भ-वारयोर्योगात्	ह.मू.उ.३ पू. अश्वि.	श्र. रो. मृ. पुष्य. अनु.	अश्वि. उ.भा. कृ. आश्ले.	रो. अनु. ह. कृ. मृ.	रेवती, अनु. अ. पुष्य पुन.	रे. अनु. अ. पुन. श्र.	श्रवण रो. स्वाती
अमृतसिद्धयोगः	हस्त	मृ.	अश्वि.	अनु.	पुष्य	रेवती	रोहिणी

वारनक्षत्रजन्य

आनन्दादि योगों के जानने की तालिका

सं.	आनंदादयः यो.	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	फलम्
१	आनंद	अश्वि.	मृग.	श्लेषा.	हस्त	अनुराधा	उ.षा.	शतभिषा	शुभ
२	कालदंड	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा	अभिजित	पू.भा.	अशुभ
३	धूम्र	कृत्तिका	पुनर्वसु	पू.फा.	स्वाति	मूल	श्रवण	उ.भा.	अशुभ
४	धाता	रोहिणी	पुष्य	उ.फा.	विशाखा	पू.षा.	धनिष्ठा	रेवती	शुभ
५	सौम्य	मृग	श्लेषा	हस्त	अनुराधा	उ.षा.	शतभिषा	अश्विनी	शुभ
६	ध्वांक्ष	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा	अभिजित	पू.भा.	भरणी	अशुभ
७	केतु	पुनर्वसु	पूर्वाफा.	स्वाति	मूल	श्रवण	उ.भा.	कृत्तिका	शुभ
८	श्रीवत्स	पुष्य	उ.फा.	विशाखा	पू.षा.	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	शुभ
९	वज्र	श्लेषा	हस्त	अनु.	उ.षा.	शतभिषा	अश्विनी	मृगशिरा	अशुभ
१०	मुद्गर	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा	अभिजित	पू.भा.	भरणी	आर्द्रा	अशुभ

सं.	आनंदा दयः यो.	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	फलम्
११	छत्र	पूर्वाफा.	स्वाति	मूल	श्रवण	उ.भा.	कृत्तिका	पुनर्वसु	शुभ
१२	मित्र	उ.फा.	विशाखा	पू.षा.	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	शुभ
१३	मानस	हस्त	अनुराधा	उ.षा.	शतभिषा	अश्विनी	मृगशिरा	श्लेषा	शुभ
१४	पद्म	चित्रा	ज्येष्ठा	अभिजित	पू.भा.	भरणी	आर्द्रा	मघा	शुभ
१५	लुम्बक	स्वाति	मूल	श्रवण	उ.भा.	कृत्तिका	पुनर्वसु	पू.फा.	अशुभ
१६	उत्पात	विशाखा	पू.षा.	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उ.फा.	अशुभ
१७	मृत्यु	अनुराधा	उ.षा.	शतभिषा	अश्विनी	पुनर्वसु	श्लेषा	हस्त	अशुभ
१८	काण	ज्येष्ठा	अभिजित	पू.भा.	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा	अशुभ
१९	सिद्धि	मूल	श्रवण	उ.भा.	कृत्तिका	पुनर्वसु	पू.फा.	स्वाति	शुभ
२०	शुभ	पूर्वाषा.	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उ.फा.	विशाखा	शुभ
२१	अमृत	उ.षा.	शतभिषा	अश्विनी	मृगशिरा	श्लेषा	हस्त	अनुराधा	शुभ
२२	मुसल	अभिजित	पू.भा.	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा	अशुभ
२३	गद	श्रवण	उ.भा.	कृत्तिका	पुनर्वसु	पू.फा.	स्वाति	मूल	अशुभ
२४	मातंग	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उ.फा.	विशाखा	प.षा.	शुभ
२५	राक्षस	शतभिषा	अश्विनी	मृगशिरा	श्लेषा	हस्त	अनुराधा	उ.षा.	अशुभ
२६	चर	पू.भा.	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा	अभिजित	शुभ
२७	सुस्थिर	उ.भा.	कृत्तिका	पुनर्वसु	पू.फा.	स्वाति	मूल	श्रवण	शुभ
२८	प्रवर्ध	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उ.फा.	विशाखा	पू.षा.	धनिष्ठा	शुभ

वास्तुचक्र (वृषभ चक्र) का कथन

वास्तुचक्रं प्रवक्ष्यामि यच्च व्यासेन भाषितम्।
यस्मिनृक्षे स्थितो भानुस्तदादौ त्रीणि मस्तके॥ १२॥
चतुष्कमग्रपादे स्यात् पुनश्चत्वारि पश्चिमे।
पृष्ठे च त्रीणि ऋक्षाणि दक्षकुक्षौ चतुष्ककम्॥ १३॥
पुच्छे च त्रीणि ऋक्षाणि कुक्षौ चत्वारि वामतः।
मुखेभत्रयमेव स्युरष्टाविंशतितारकाः॥ १४॥
शिरस्तारागिनदाहाय गृहोद्वासोऽग्रपादयोः।
स्थैर्यं स्यात्पश्चिमे पादे पृष्ठे चैवं धनागमः॥ १५॥
कुक्षौ स्याद् दक्षिणे लाभः पुच्छे च स्वामिनाशनम्।
वामकुक्षौ च दारिद्र्यं मुखे पीडा निरन्तरम्॥ १६॥

अब मैं व्यासजी द्वारा कथित वास्तुचक्र (वृषभचक्र) को कहता हूँ। जिस नक्षत्र पर सूर्य हो वहाँ से गणना कर प्रथम तीन नक्षत्र वृषभ के मस्तक पर रखें। फिर अगले पैरों पर चार नक्षत्र, पिछले पैरों पर चार नक्षत्र, पीठ पर तीन नक्षत्र, दक्षिण कुक्षि में चार नक्षत्र, पूँछ पर तीन नक्षत्र, वाम कुक्षि में चार नक्षत्र तथा मुख में तीन नक्षत्र लिखें। इस प्रकार अभिजित् सहित अट्ठाईस नक्षत्रों की गणना करना चाहिये॥ १२-१४॥

इसका फल इस प्रकार है—यदि शिर के नक्षत्रों में गृहारम्भ हो तो अग्निकाण्ड होता है। यदि अगले पैरों के नक्षत्र में गृहारम्भ हो तो उद्वासन होता है अर्थात् घर छोड़ना पड़ता है। पश्चिम के पैर स्थिरताकारक हो तो पीठ धनदायक है। दक्षिण कुक्षि लाभकारक, पूँछ गृहस्वामी की नाशक, वामकुक्षि दरिद्रताकारक तथा मुख निरन्तर पीड़ाकारक होता है॥ १५-१६॥

विमर्श—तात्पर्य यह है कि सूर्य नक्षत्र से गणना करने पर प्रथम ७ नक्षत्र अशुभ, फिर ११ नक्षत्र शुभ, फिर १० नक्षत्र अशुभ होते हैं। आगे चक्र देखें।

गृहारम्भ में वृषवास्तु चक्र

शीर्ष (मस्तक)	अग्रपाद	पश्चपाद	पृष्ठ (पीठ)	दक्षिण-कुक्षि	पुच्छ (पूँछ)	वाम-कुक्षि	मुख	**वृषभ के अङ्ग**
३	४	४	३	४	३	४	३	**सूर्यनक्षत्र से संख्या**
अग्निदाह	उद्वासन	स्थिरता	धनागम	लाभ	स्वामी का नाश	दरिद्रता	पीड़ा	**स्पष्ट फल**
सात नक्षत्र अशुभ		ग्यारह नक्षत्र शुभ			दस नक्षत्र अशुभ			**शुभाशुभ फल**

सूतिकागृह का मुहूर्त

पुनर्वसौ नृपादीनां कर्त्तव्यं सूतिकागृहम्।
यमनिर्ऋतियोर्मध्ये कर्तव्यम्भूतिमिच्छता॥ १७॥

राजाओं एवं धनी लोगों को पुनर्वसु नक्षत्र में अपने वास्तु में दक्षिण एवं नैर्ऋत्य के मध्य में (शौचालय की बगल में) कल्याण की इच्छा से सूतिकागृह बनवाना चाहिये॥ १७॥

सूतिकागृह में प्रवेश का मुहूर्त तथा गृहारम्भ हेतु लग्नशुद्धि

श्रवणाभिजितोर्मध्ये प्रवेशं तत्र कारयेत्।
चरलग्ने चरांशे च सर्वथा परिवर्जयेत्॥ १८॥
जन्मभाच्चोपचयभे लग्ने वर्गे तथैव च।
प्रारम्भणं प्रकुर्वीत नैधनं परिवर्जयेत्॥ १९॥
पापैस्त्रिषडायगतैः सौम्यैः केन्द्रत्रिकोणगैः।
निर्माणं कारयेद् धीमान् अष्टमस्थैः खलैर्मृतिः॥ २०॥

श्रवण एवं अभिजित् नक्षत्र के मध्यवर्ती नक्षत्रकाल में सूतिकागृह में प्रवेश करना चाहिये।

गृहारम्भ में चरलग्न तथा चरनवांश सर्वथा त्याज्य है। जब कर्ता के जन्मराशि या लग्न से उपचय स्थानों में लग्न हो, उसमें गृहारम्भ करे, परन्तु गृहारम्भ लग्न से अष्टम भाव में कोई गृह न हो तथा जन्म लग्न एवं राशि से आठवीं लग्न एवं राशि भी गृहारम्भ के समय नहीं होनी चाहिये॥ १८-१९॥

गृहारम्भ लग्न कुण्डली में पापग्रहों को ३। ६। ११ स्थानों में होना चाहिये तथा शुभग्रह केन्द्र एवं त्रिकोण में हो तब बुद्धिमान् पुरुष गृह-निर्माण आरम्भ करे। यदि गृह-निर्माण लग्न से आठवें भाव में पापग्रह हों तो गृहस्वामी की मृत्यु होती है॥ २०॥

जलाशयादि प्रारम्भ हेतु लग्नशुद्धि

मनुष्यलग्ने सौम्यानां दृग्योगे योगतस्तथा।
कुम्भं विहायान्यतरे लग्ने सौम्यग्रहान्विते॥ २१॥
वापीकूपतडागादि ह्यमोघ जलदायकान्।
जलाशयादिवास्तूनां प्रारम्भो शुभदः स्मृतः॥ २२॥

मनुष्य लग्न में यदि कुम्भ को छोड़कर अन्य में (अर्थात् मिथुन-कन्या-तुला में) शुभग्रहों की दृष्टि अथवा युति हो तब वापी, कूप, तडागादि अमोघ जलवाले जलाशयों का निर्माण शुभ होता है॥ २१-२२॥

सौ वर्ष की आयु के गृह का योग

गुरुर्लग्ने रविः षष्ठे द्यूने सौम्ये सुखे सिते।
तृतीयस्थेऽर्कपुत्रे च तद्गृहं शतमायुषम्॥ २३॥

यदि गृहारम्भकालीन लग्न में गुरु बैठा हो, सूर्य छठे भाव में हो, बुध सप्तम में हो, शुक्र चौथे में तथा शनि तीसरे घर में हो तो ऐसे योग में निर्मित गृह की आयु एक सौ (१००) वर्ष होती है॥ २३॥

पुनः शतवर्षायु योग

भृगुर्लग्नेऽम्बरे सौम्ये लाभस्थाने च भास्करे।
गुरुः केन्द्रगतो यत्र शतवर्षाणि तिष्ठति॥ २४॥

यदि शुक्र लग्न में, बुध दशम में, सूर्य एकादश में तथा गुरु केन्द्र में हो तो इस योग में आरम्भ किये गये गृह की आयु पूरे एक सौ (१००) वर्ष होती है॥ २४॥
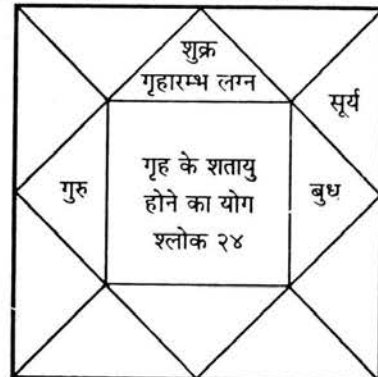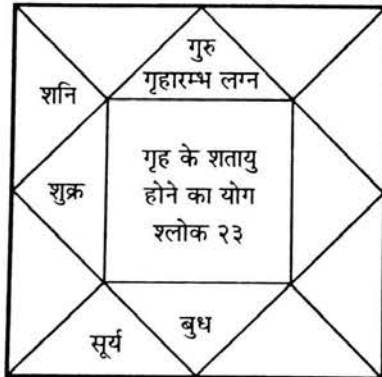
गृह की अस्सी वर्ष की आयु का योग

शिवके ज्येऽम्बरे चन्द्रे लाभे च कुजभास्करौ।
प्रारम्भः क्रियते यस्य अशीत्यायुः क्रमाद् भवेत्॥ २५॥

जिस गृह का निर्माणकार्य चतुर्थ भाव में गुरु, दशम में चन्द्र तथा ग्यारहवें भाव में मंगल एवं सूर्य होने पर प्रारम्भ किया जाता है, उसकी आयु अस्सी वर्ष होती है॥ २५॥

दो सौ वर्ष की गृहायु के योग

लग्ने भृगौ पुत्रगेज्ये षष्ठे भौमे तृतीयगे।
रवौ यस्य गृहारम्भः स च तिष्ठेच्छतद्वयम्॥ २६॥
लग्नस्थौ गुरुशुक्रौ च रिपुराशिगते कुजे।
सूर्ये लाभगते यस्य द्विशताब्दानि तिष्ठति॥ २७॥

१. यदि गृहारम्भ की लग्न में शुक्र बैठा हो, पाँचवें भाव में गुरु, छठे भाव में मंगल तथा तृतीय भाव में सूर्य बैठा हो तो इस ग्रहयोग में बननेवाला गृह दो सौ वर्ष तक बना रहता है॥ २६॥

यदि गृहारम्भ की लग्न में गुरु तथा शुक्र दोनों बैठे हों, मंगल छठे भाव में बैठा हो तथा सूर्य ग्यारहवें भाव में बैठा हो तो इस योग में बना गृह २०० (दो सौ) वर्ष तक टिकाऊ (Durable) रहता है॥ २७॥
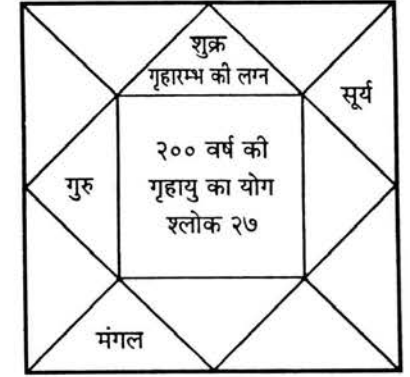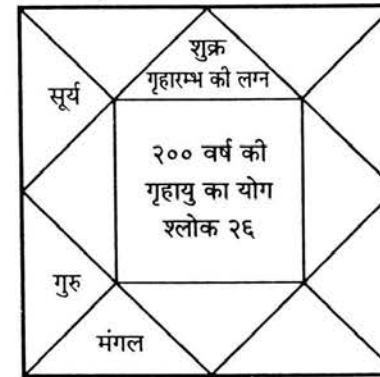
सहस्र वर्ष की आयु के गृह का योग

स्वोच्चस्थो वा भृगुर्लग्ने स्वोच्चे जीवे सुखस्थिते।
स्वोच्चे लाभगते मन्दे सहस्राणां समास्थितिः॥ २८॥

यदि गृहारम्भ की लग्न में स्वराशि या उच्चराशि का शुक्र बैठा हो अथवा चतुर्थ में स्वराशि या उच्चराशि का गुरु बैठा हो तथा स्वराशि या उच्च का होकर शनि ग्यारहवें भाव में बैठा हो तो गृह की आयु (स्थिति) एक सहस्र वर्ष से भी अधिक होती है॥ २८॥
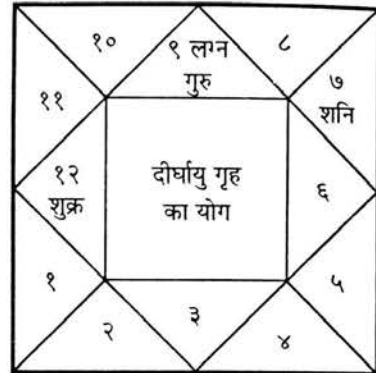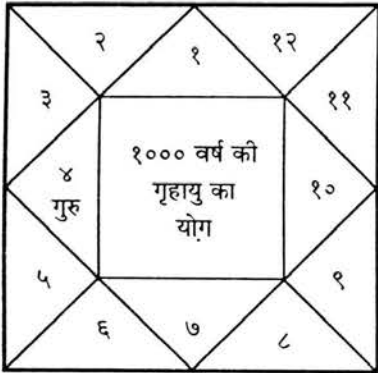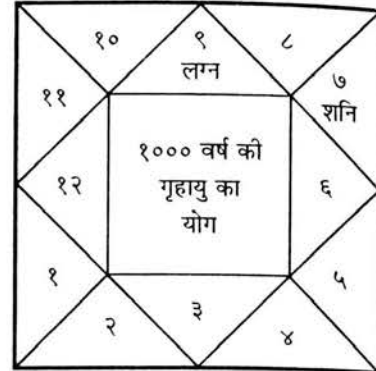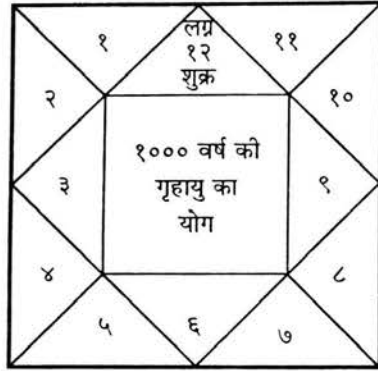
पुनः दो सौ वर्ष वर्ष की गृहायु का योग

स्वोच्चे स्वभवने सौम्यैर्लग्नस्थे वापि केन्द्रगैः।
प्रारम्भः क्रियते यस्य स तिष्ठति शतद्वयम्॥ २९॥

१. यदि शुभग्रह स्वराशि या उच्चराशि के होकर लग्न में अथवा केन्द्र में बैठे हों तो ऐसे योग में जिस घर की नींव रखी जाती है, वह दो सौ वर्ष पर्यन्त बना रहता है॥ २९॥
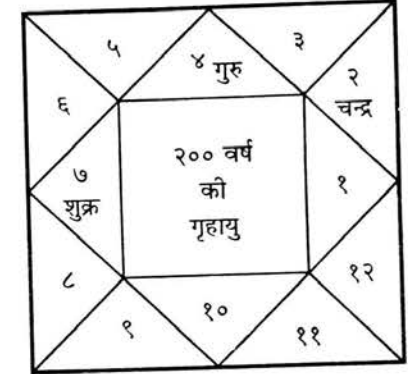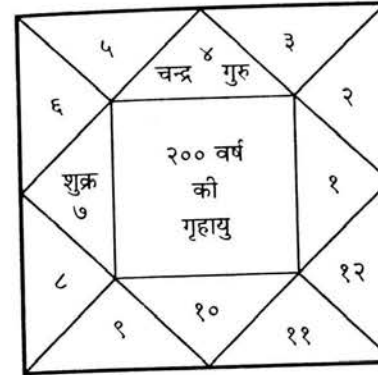
गृहारम्भ के शुभ योग

कर्कलग्नगते चन्द्रे केन्द्रस्थाने च वाक्पतिः।
मित्र स्वोच्चस्थितैर्खेटैः लक्ष्मीस्तस्य चिरं भवेत्॥ ३०॥
इज्योत्तरायाहीन्दु विष्णु धातृ जलोडुषु।
वरुणा सहितेष्वेषु कृतं गेहं श्रियायुतम्॥ ३१॥
द्विदेवत्वाष्ट्रवारीशरुद्रादितिवसूडुषु।
शुक्रेण सहितेष्वेषु कृतं धान्यप्रदं गृहम्॥ ३२॥
हस्तार्यमत्वाष्ट्रदस्त्रानुराधातारकासु च।
बुधेन सहितेष्वेषु धनपुत्रसुखप्रदम्॥ ३३॥

१. यदि गृहारम्भ के समय चन्द्रमा कर्क लग्न में तथा गुरु केन्द्र में बैठा हो तथा अन्य गृह मित्रक्षेत्री, स्वक्षेत्री आदि हों तो इस योग में निर्मित गृह में लक्ष्मी का निवास चिरकाल तक रहता है॥ ३०॥

पुष्य, उ.फा., उ.षा., उ.भा., श्लेषा, मृगशिरा, श्रवण, रोहिणी, पूर्वाषाढ़ा, शतभिषा इनमें निर्मित गृह लक्ष्मी से युक्त होता है॥ ३१॥

विशाखा, चित्रा, शतभिषा, आर्द्रा, पुनर्वसु, धनिष्ठा तथा शुक्रवार में निर्मित गृह धन-धान्यप्रद होता है॥ ३२॥

हस्त, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, अश्विनी, अनुराधा—इन नक्षत्रों में तथा बुधवार में निर्मित गृह धन-पुत्र तथा सुख देनेवाला होता है॥ ३३॥

लक्ष्मीविनाशक योग

शत्रुक्षेत्रगतैः खेटैः नीचस्थैर्वा पराजितैः।
प्रारम्भे यस्य भवने लक्ष्मीस्तस्य विनश्यति॥ ३४॥

यदि गृहारम्भ करते समय लग्न से छठे भाव में नीच अथवा पराजित ग्रह स्थित हो तो इस योग में बननेवाले गृह की लक्ष्मी (धन) नष्ट हो जाता है॥ ३४॥

गृह के परहस्तगत जाने का योग

एकोऽपि परभागस्थो दशमे सप्तमेऽपि वा।
वर्णाधिपे बलैर्हीने तद्गृहं परहस्तगम्॥ ३५॥

यदि एक भी ग्रह शत्रुनवांश का होकर दशम या सप्तम भाव में बैठा हो तथा गृहकर्त्ता के वर्ण (ब्राह्मणादिजाति) का स्वामी ग्रह यदि निर्बल हो तो वह गृह निर्माण के उपरान्त दूसरे के हाथ में चला जाता है॥ ३५॥

अस्सी वर्ष की गृहायु का योग

पापान्तरगते लग्ने न च सौम्ययुते क्षिते।
अष्टमस्थे अर्कपुत्रे च अशीत्यब्दाद विहन्यते॥ ३६॥

यदि गृहारम्भ लग्न दो पापग्रहों के बीच में हो तथा उस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो, शनि अष्टम भाव में हो तो इस योग में निर्मित गृह अस्सी वर्ष में नष्ट होता है॥ ३६॥

विमर्श—जब बारहवें भाव में कोई मार्गी पापग्रह तथा द्वितीय भाव में वक्री पापग्रह होता है तब लग्न पाप मध्य में कही जाती है।
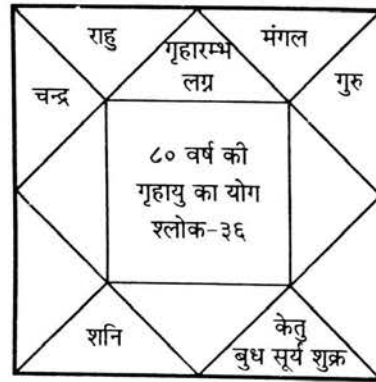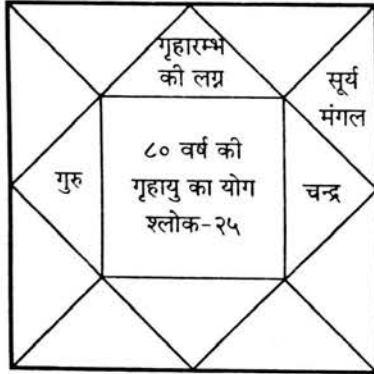
शतवर्ष गृहायु योग

मन्दे लग्नगते चैव कुजे सप्तम संस्थिते।
शुभैरवीक्षिते वापि शतवर्षाणि हन्यते॥ ३७॥

जब लग्न में शनि, सप्तम भाव में मंगल हो तथा उस पर शुभग्रहों की दृष्टि न हो तो इस योग में प्रारम्भ गृह एक सौ वर्षों में नष्ट हो जाता है॥ ३७॥

गृह के शीघ्र नष्ट होने का योग

लग्नगे शशिनि क्षीणे मृत्युस्थाने च भूसुते।
प्रारम्भः क्रियते यस्य शीघ्रं तद्धि विनश्यति॥ ३८॥

यदि लग्न में क्षीण चन्द्रमा तथा अष्टमभाव में मंगल बैठा हो तो इस योग में प्रारम्भ किया गया गृह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है॥ ३८॥

गृह-निर्माण में वर्जित योग

दशापतौ बलैर्हीने वर्णनाथे तथैव च।
पीडितर्क्षगते सूर्ये न विदध्यात्कदाचन॥ ३९॥

यदि कर्त्ता पुरुष की कुण्डली में जिस ग्रह की दशा चल रही हो वह निर्माण समय में निर्बल हो तथा उसके वर्ण का स्वामी ग्रह निर्बल हो साथ ही सूर्य पीड़ितर्क्ष में हो तो गृह-निर्माण न करें॥ ३९॥

गृह के अग्निदाह के योग

पितृमूलेज्यभाग्यार्कपौष्णभेषु च यत्कृतम्।
कुजेन सहितेष्वेषु गृहं सन्दह्यतेऽग्निना॥ ४०॥

मघा, मूल, पुष्य, पू.फा., हस्त तथा रेवती में से कोई नक्षत्र हो तथा मंगलवार हो तो इसमें आरम्भ किया गृह अग्नि से जलता है॥ ४०॥

अग्निदाह योग एवं पुत्रदाह योग

मूलञ्च रेवती चैव कृत्तिकाऽऽषाढमेव च।
पूर्वाफाल्गुनीहस्ते च मघा चैव तु सप्तकम्॥ ४१॥
एषु भौमेन युक्तेषु वारे तस्यैव वेश्मयत्।
अग्निना दह्यते कृत्स्नं पुत्रनाशः प्रजायते॥ ४२॥

मूल, रेवती, कृत्तिका, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त तथा मघा—इन सात नक्षत्रों में कोई भी मंगलवार के दिन हो तथा उस दिन यदि गृह-निर्माण आरम्भ किया जाय तो उसमें आग लगती है, जिसमें पुत्र भी नष्ट हो जाता है॥ ४१-४२॥

पुनः अग्निदाह योग

अग्निनक्षत्रगे सूर्ये चन्द्रे वा तत्र संस्थिते।
निर्मितं मन्दिरं नूनमग्निना दह्यतेऽचिरात्॥ ४३॥

यदि सूर्य तथा चन्द्रमा दोनों कृत्तिका नक्षत्रगत हों तो उसमें बनाया गया गृह निश्चित ही अग्नि से जलता है॥ ४३॥

कृपण योग

ज्येष्ठानुराधके चैव भरणीस्वातिपूर्वभे।
धनिष्ठास्वपि ऋक्षेषु शनिस्तिष्ठेद् दिनस्य च॥ ४४॥
कृपणो नामतः प्रोक्तो धनधान्यादिके गृहे।
पुत्रे जातेऽथवा तस्मिन् गृह्यते यक्षराक्षसैः॥ ४५॥

यदि गृहारम्भ के समय ज्येष्ठा, अनुराधा, भरणी, स्वाति, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, धनिष्ठा—इन नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र हो तथा शनिवार हो तो यह कृपण योग होता है किन्तु उसमें जन्मनेवाले बालकों को यक्ष-राक्षस (भूत-प्रेत) आदि लगते रहते हैं॥ ४४-४५॥

कृपण योग में निर्मित कूपादि का फल

प्रासादेष्वेवमेव स्याद् वापी कूपेषु चैव हि।
तस्माद् विचार्य कर्त्तव्यो गृहारम्भः शुभेप्सुना॥ ४६॥

इसी प्रकार से देवालय, वापी, कूप, तडागादि में भी इस योग का विचार कर लेना चाहिये, अन्यथा उन पर भी यक्ष-राक्षसों का अधिकार हो जाता है, अतः शुभेच्छु को विचारपूर्वक शुभ समय में गृहारम्भ करना चाहिये॥ ४६॥

गृहारम्भ में विभिन्न बातों का फल

नाशं दिशन्ति मकरालिकुलीरलग्ने
मेषे घटे धनुषि कर्मसु दीर्घसूत्रम्।
कन्याझषे मिथुनगे ध्रुवमर्थलाभं
ज्योतिर्विदः कलशासिंहवृषेषु सिद्धिदम्॥ ४७॥

घटे

१. यदि मकर, वृश्चिक, कर्क लग्नों में गृहारम्भ किया जाय तो गृहस्वामी की हानि होती है। २. मेष, तुला, धनु इनमें से किसी लग्न में गृहारम्भ हो तो मकान बनने में देर होती है। ३. कन्या, मीन, मिथुन लग्नों में धनलाभ होता है। ४. कुम्भ, सिंह तथा वृष लग्नों में गृहारम्भ सफलतादायक होता है॥ ४७॥

मध्याह्न एवं मध्यरात्रि का निषेध

मध्याह्ने तु कृतं वास्तु कर्त्तुर्वित्तविनाशनम्।
महानिशास्वपि तथा सन्ध्ययोर्नैव कारयेत्॥ ४८॥

गृहारम्भ ठीक मध्याह्न के समय, ठीक अर्धरात्रि पर तथा प्रातः एवं सायं के दोनों सन्ध्याओं में नहीं करना चाहिये॥ ४८॥

विमर्श—अभिजित् मुहूर्त में भी ठीक मध्याह्न का समय १० मिनट पूर्व तथा १० मिनट पश्चात् का छोड़कर गृहारम्भ करें।

लग्न में सूर्यादि ग्रहों का फल

लग्नेऽर्के वज्रपातः स्यात्कोशहानिश्च शीतगौ।
मृत्युर्विश्वम्भरापुत्रे दारिद्र्यं रविनन्दने॥ ४९॥
जीवे धर्मार्थकामा स्युः पुत्रोत्पत्तिश्च भार्गवे।
चन्द्रजे कुशलासक्तिः यावदायुः प्रवर्त्तते॥ ५०॥

यदि लग्न में सूर्य बैठा हो तो उस लग्न में लगायी गयी नींववाले घर पर वज्रपात होता है (बिजली गिरती है)। यदि गृहारम्भकालिक लग्न में चन्द्रमा बैठा हो तो सञ्चित अन्न-धन की हानि होती है। यदि मंगल इस लग्न में स्थित हो तो मृत्यु होती है, यदि शनि बैठा हो तो दरिद्रता होती है। यदि गुरु हो तो धर्मार्थ-काम तीनों प्राप्त होते हैं। यदि शुक्र बैठा हो तो पुत्र की प्राप्ति होती है। यदि उत्तम लग्न में बुध स्थित हो तो उस घर में जब तक उसकी स्थिति रहती है तब तक कला-कौशल की उन्नति होती है॥ ४९-५०॥

द्वितीय भाव में सूर्यादि ग्रहों का फल

द्वितीयस्थे रवौ हानिश्चन्द्रे शत्रुक्षयो भवेत्।
भूमिजे बन्धनं प्रोक्तं नानाविघ्नानि भानुजे॥ ५१॥

बुधे द्रविणसम्पत्तिः गुरौ धर्माभिवर्धनम्।
यथा कामविनोदेन भृगौ कामं व्रजेत्फलम्॥ ५२॥

जिस गृहारम्भ की लग्न से द्वितीय भाव में सूर्य स्थित हो तो उस घर में हानि होती रहती है। यदि चन्द्रमा द्वितीयस्थ हो तो उस घर के शत्रुओं का क्षय होता है। यदि उक्त द्वितीय भाव में मंगल बैठा हो तो उस गृह या उसके स्वामी को बन्धन प्राप्त होता है अर्थात् या तो वह गृह कहीं बन्धक बनाकर रखा जाता है अथवा किराये पर उठा दिया जाता है। यदि शनि द्वितीय भाव में बैठा हो तो उस घर में विघ्नप्राप्ति की शृंखला चलती रहती है। यदि द्वितीय भाव में बुध बैठा हो तो धन एवं सम्पत्ति से युक्त होता है। यदि गृहारम्भ की कुण्डली में द्वितीय भाव में गुरु की स्थिति हो तो उस घर में धर्म की वृद्धि होती है। यदि द्वितीय भाव में शुक्र बैठा हो तो उस गृह में सदैव आनन्द-मंगल तथा मनोविनोद होता रहता है॥ ५१-५२॥

तृतीय भावस्थ ग्रहों का फल

तृतीयस्थेषु पापेषु सौम्येष्वेव विशेषतः।
सिद्धिः स्यादचिरादेव यथाभिलषितं प्रति॥ ५३॥

तृतीय भाव में यदि पापग्रह हो तो कुछ विलम्ब से तथा यदि सौम्यग्रह (पूर्णचन्द्र, उदित बुध, गुरु, शुक्र) यदि तृतीय में हों तो शीघ्र उस गृह की उन्नति होती है॥ ५३॥

गृह-निर्माण कुण्डली के चतुर्थ भाव में ग्रहों का फल

चतुर्थस्थानगे जीवे पूजा सम्पद्यते नृपात्।
चन्द्रजे चार्थलाभः स्याद् भूमिलाभश्च भार्गवे॥ ५४॥
वियोगः सुहृदां भानौ मन्त्रभेदो महीसुते।
बुद्धिनाशो निशानाथे सर्वनाशोऽर्कनन्दने॥ ५५॥

जिस गृह-निर्माण लग्नकुण्डली में लग्न से चौथे भाव में गुरु बैठा हो तो उस गृह के निवासियों को राज्यशासन से सम्मान की प्राप्ति होती है। यदि बुध चतुर्थ भाव में स्थित हो तो अर्थलाभ होता रहता है। यदि शुक्र बैठा हो तो भूमि-सम्बन्धी लाभ कराता है। यदि सूर्य बैठा हो तो मित्रों से वियोग कराता है। यदि मंगल उक्त स्थान में स्थित हो तो उस घर-परिवार के गुप्त रहस्य दूसरों को पता चलते रहते हैं। यदि चन्द्रमा चतुर्थ में स्थित हो तो बुद्धि बिगड़ जाती है। यदि शनि चतुर्थ भाव में हो तो उस घर की सब प्रकार से अवनति होती रहती है॥ ५४-५५॥

गृहारम्भ कुण्डली के पंचम भाव में ग्रहों का फल

पञ्चमे तु सुराचार्यो मित्रं वसुधनागमः।
शुक्रे पुत्र सुखावाप्तो रत्नलाभस्तथेन्दुजे॥ ५६॥
सुतदुःख सहस्रांशौ शशाङ्के कलहस्मृतः।
भौमे कार्यविरोधः स्यात् सौरे बन्धुविमर्दनम्॥ ५७॥

यदि गृहारम्भ समय की लग्न से पाँचवें भाग में गुरु बैठे हों तो मित्रों, अचल सम्पत्ति (वसु) तथा धन का आगमन उस घर में होता रहता है। यदि पंचम भाव में शुक्र की स्थिति हो तो गृहस्वामी को पुत्रसुख की प्राप्ति होती है। यदि बुध की स्थिति पञ्चम भाव में हो तो धन-रत्नादि का लाभ होता है। यदि सूर्य की स्थिति पंचम भाव में हो तो पुत्र का दुःख भोगना पड़ता है। यदि चन्द्रमा पाँचवें भाव में विराजमान हो तो कलह करानेवाला होता है। यदि मंगल पाँचवें भाव में स्थित हो तो कार्यों में अवरोध उत्पन्न होते रहते हैं। शनि की स्थिति गृहारम्भ कुण्डली के पञ्चम भाव में होने पर बन्धु-बान्धवों में झगड़ा होता रहता है॥ ५६-५७॥

गृह-निर्माण कुण्डली के षष्ठ भाव में ग्रहों का फल

षष्ठस्थानगते सर्ये रोगनाशं विनिर्दिशेत्।
चन्द्रे पुष्टिः कुजे प्राप्तिः सौरे शत्रुबलक्षयः॥ ५८॥
गुरौ मन्त्रोदयः प्रोक्तो भृगौ विद्यागमो भवेत्।
सम्यग्ज्ञानार्थकौशल्यं नक्षत्रपतिनन्दने॥ ५९॥

यदि घर की नींव के शिलान्यास के समय जो लग्न हो उससे छठे भाव में सूर्य बैठा हो तो रोगनाश करता है। यदि चन्द्रमा षष्ठ भाव में हो तो घर की पुष्टि तथा उन्नति होती है। यदि मंगल छठे भाव में हो तो भौतिक सुख-साधनों की प्राप्ति कराता है। यदि शनि छठे भाव में हो तो गृहस्वामी के शत्रुओं को दुर्बल करता है। यदि गुरु छठे भाव में विराजमान हो तो अच्छे परामर्शदाता के परामर्श से कार्य करने पर अच्छा परिणाम प्रकट होता है।

यदि शुक्र छठे भाव में हो तो विद्या की प्राप्ति होती है। यदि बुध की स्थिति षष्ठ भाव में हो तो कला-कौशल आदि में सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होती है॥ ५८-५९॥

गृहारम्भ कुण्डली के सप्तम भाव में ग्रहों का फल

सप्तमस्थानगे जीवे बुधे दैत्यपुरोहिते।
गजवाजिधरित्रीणां क्रमाल्लाभं विनिर्दिशेत्॥ ६०॥
भास्करे कीर्तिभङ्गः स्यात् कुजे विपदमादिशेत्।
हिमगौक्लेश आयासः पातङ्गे व्यङ्गताभयम्॥ ६१॥

यदि गृह-निर्माण लग्न से सप्तम भाव में गुरु बैठा हो तो हाथियों (भारी वाहनों) का लाभ होता है। यदि बुध स्थित हो तो घोड़ों (छोटे तथा शीघ्रगामी वाहनों) का लाभ होता है। यदि शुक्र की स्थिति सप्तम भाव में हो तो भूमिलाभ होता है।

यदि सातवें भाव में सूर्य बैठा हो तो गृहस्वामी की कीर्ति नष्ट हो जाती है। यदि मंगल सप्तम भावगत हो तो विपत्ति प्राप्त होती है। यदि चन्द्रमा सप्तम भाव में बैठा हो तो क्लेश की प्राप्ति होती है। यदि शनि सप्तम भाव में हो तो व्यङ्गता (विकलांगता) का भय उस गृह के सदस्यों को होता है॥ ६०-६१॥

गृहारम्भ कुण्डली के अष्टम भाव में ग्रहों का फल

नैधने च सहस्रांशौ विद्विषो जनिता पदः।
हानिः शीतमयूखे च भौमे सौरे च रुग्भयम्॥ ६२॥
बुधे मानधनप्राप्तिर्जीवे च विजयो भवेत्।
शुक्रे स्वजनभेदः स्यान्मन्त्रज्ञस्यापि देहिनः॥ ६३॥

यदि गृह के शिलान्यास समय की कुण्डली में लग्न से आठवें भाव में सूर्य बैठा हो तो शत्रुओं से उस गृह के स्वामी को कष्ट प्राप्त होता है। यदि चन्द्रमा अष्टम भाव में स्थित हो तो हानि प्राप्त होती है। यदि मंगल बैठा हो तो रोग से भय होता है। यदि शनि आठवें भाव में बैठा हो तो भी रोग होता है॥ ६२॥

यदि आठवें भाव में बुध की स्थिति हो तो धन एवं सम्मान दोनों ही प्राप्त होते हैं। यदि उस आठवें भाव में शुक्र विराजमान हो तो गृह-निर्माता स्वामी के परिवार में फूट पड़ जाती है। यदि गुरु आठवें भाव में हो तो विजय एवं सफलता मिलती है॥ ६३॥

गृहारम्भ कुण्डली के नवम भाव में ग्रहों का फल

वागीशे नवमस्थाने विद्याभोगाभिनन्दनम्।
बुधे विविधभोगाश्च क्षीवे च विजयी भवेत्॥ ६४॥
चन्द्रे धातुक्षयः प्रोक्तो धर्महानिश्च भास्करे।
कुजे चार्थक्षयं विद्याद्रविजे धर्मदूषणम्॥ ६५॥

यदि नवम भाव में वागीश (बृहस्पति) स्थित हों तो विद्या, भोग तथा स्वागत-सत्कार की प्राप्ति होती है। यदि बुध नवम भाव में हो तो कर्त्ता को विविध भोग प्राप्त होते हैं। यदि क्षीव (शुक्र) की नवम भाव में स्थिति हो विजयश्री एवं सफलता मिलती है॥ ६४॥

यदि नवम भाव में चन्द्रमा हो तो धातुक्षीणता उत्पन्न होती है तथा सूर्य होने पर धर्म की हानि होती है। मंगल यदि नवम भाव में हो तो धनहानि होती है। यदि शनि नवम में हो तो गृह-निर्माण को धर्म-सम्बन्धी आक्षेप लगता है॥ ६५॥

विमर्श—यहाँ श्लोक ६४ में शुक्रग्रह के लिये 'क्षीव' शब्द का प्रयोग हुआ है, परन्तु कुछ प्रतियों में यहाँ जीव शब्द छपा है जो कि सही नहीं है; क्योंकि 'जीव' का अर्थ तो देवगुरु बृहस्पति होता है। 'क्षीव' शब्द 'क्षीव्' धातु में क्त (त) प्रत्यय जुड़ने से बनता है। 'क्षीव' धातु दिवादिगण की परस्मैपदी धातु है, जिसका अर्थ मदहोश होना, नशे में मस्त हो जाना, मदोन्मत्त होना आदि होता है तथा जो मदोन्मत्त हो जाता है, उसे 'क्षीव' कहते हैं। शुक्राचार्य भी मद्यपान करते थे, एक बार दैत्यों ने उन्हें (शुक्राचार्य को) बृहस्पति के पुत्र कच को मदोन्मत्त स्थिति में मारकर खिला दिया था तब से उनका नाम 'क्षीव' पड़ गया। 'क्षीव्' धातु का अर्थ थूकना, उगलना तथा बाहर

निकालना भी होता है। कच मृतसंजीवनी विद्या सीख चुका था, अत: शुक्राचार्य के उसे नाम लेकर पुकारते ही वह उनके पेट से जीवित बाहर निकल आया था। इस प्रकार श्लोक ६४ में 'जीव' के स्थान में 'क्षीव' पाठ ही समीचीन है।

गृहारम्भ लग्न से दशम भाव में ग्रहों का फल

दशमस्थानगे शुक्रे शयनासनसिद्धय:।
सुराचार्यं महत्सौख्यं विजयं स्त्रीधनं बुधे॥ ६६॥
मार्तण्डे च सुहृद् वृद्धिश्चन्द्रे शोकविवर्धनम्।
भौमे रत्नागम: प्रोक्त: कोणे कीर्तिविलोपनम्॥ ६७॥

यदि गृहारम्भकालीन लग्न से दशम स्थान में शुक्र स्थित हो तो उस घर में शयन, आसन आदि की सामग्री की सुविधा तथा प्रचुरता होती है। यदि बृहस्पति हो तो महान् सुख होता है। बुध होने पर विजयप्राप्ति, स्त्रीप्राप्ति तथा धन की प्राप्ति होती है॥ ६६॥

यदि सूर्य दशम भावगत हो तो उस घर में मित्रों तथा रिश्तेदारों की वृद्धि होती है किन्तु यदि चन्द्रमा दशमभावस्थ हो तब घर शोकसन्तप्त रहता है। यदि मंगल दशम भाव में बैठा हो रत्नादि की प्राप्ति होती है। शनि के दशमस्थ बैठने पर कीर्ति नष्ट हो जाती है॥ ६७॥

गृहारम्भ कुण्डली के ग्यारहवें भाव में तथा बारहवें भाव में ग्रहों का फल

लाभस्थानेषु सर्वेषु लाभस्थानं विनिर्दिशेत्।
व्ययस्थानेषु सर्वेषु विनिर्देश्यो व्यय: सदा॥ ६८॥

प्रत्येक ग्रह यदि ग्यारहवें भाव में बैठा हो तो वह जिन वस्तुओं का कारक है, उनका लाभ कराता है। इसी प्रकार बारहवें भाव में बैठा हुआ प्रत्येक ग्रह अपने कारकत्व से सम्बन्धित वस्तुओं का या उन वस्तुओं के सम्बन्ध में व्यय कराता है॥ ६८॥

ग्रहों की उच्चादि स्थितियों से फल में भिन्नता

स्वोच्चे पूर्णफल: प्रोक्त: पादोनं स्वर्क्षगो ग्रह:।
स्वत्रिकोणे अर्धफलद: पादं मित्रगृहाश्रित:॥ ६९॥
समर्क्षे रिपुराशौच समकष्टफलौ ग्रहौ।
नीचस्थो निष्फल: प्रोक्तो वर्गे सत्फलद: शुभ:॥ ७०॥

इति श्रीविश्वकर्मप्रकाश: वास्तुशास्त्रे कालादिनिर्णयो नाम तृतीयोऽध्याय:॥ ३॥

१. जो ग्रह अपनी उच्चराशि में होता है, वह अपना शुभाशुभ फल पूरा देता है।

२. जो ग्रह स्वराशि में होता है वह पादोन (पौना=तीन-चौथाई=$\frac{3}{4}$) शुभाशुभ फल देता है।

३. जो ग्रह अपने मूलत्रिकोण में होता है वह अपने शुभ-अशुभ फल का आधा फल देता है।

४. जो ग्रह मित्रराशिगत होता है, वह अपने शुभाशुभ फल का पादांश (चतुर्थांश=एक चरण=$\frac{1}{4}$=०.२५) शुभाशुभ फल किसी भाव में देता है।

५. समराशिगत ग्रह समफल तथा ६. शत्रुराशिगत ग्रह कष्ट फल देता है। ७. नीचराशिगत ग्रह निष्फल होता है, ८. वर्गोत्तम ग्रह श्रेष्ठ फल देता है॥ ६९-७०॥

गृहारम्भ कुण्डली में लग्नादि द्वादश भावों में स्थित ग्रहों के संक्षिप्त फल की तालिका

भाव क्रमांक	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
१	वज्रपात	कोशहानि	मृत्यु	कुशलता	धर्मार्थकाम	पुत्रप्राप्ति	दरिद्रता
२	हानि	शत्रुनाश	बन्धन	धनसम्पत्ति	धर्मवृद्धि	आनन्द	विघ्न
३	सिद्धि	सिद्धि	सिद्धि	सिद्धि	सिद्धि	सिद्धि	सिद्धि
४	मित्रवियोग	बुद्धिनाश	मन्त्रभेद	धनलाभ	राजा से लाभ	भूमिलाभ	सर्वनाश
५	पुत्रदु:ख	कलह	कार्यविरोध	रत्नलाभ	धनलाभ	पुत्रसुख	बन्धुकलह
६	रोगनाश	पुष्टि	प्राप्ति	कुशलता	मन्त्रोदय	विद्यालाभ	शत्रुनाश
७	कीर्तिनाश	क्लेश	विपद	अश्वलाभ	गजलाभ	भूमिलाभ	भय
८	द्वेष	पदहानि	रोगभय	धनप्राप्ति	विजय	स्वजनभेद	रोगभय
९	धर्महानि	धातुक्षय	धनक्षय	रोग	विद्यालाभ	विजय	धर्मदूषण
१०	मित्रवृद्धि	शोक	रत्नलाभ	विजय-धन	सौख्य	शयनासन का लाभ	कीर्तिनाश
११	लाभ	लाभ	लाभ	लाभ	लाभ	लाभ	लाभ
१२	व्यय	व्यय	व्यय	व्यय	व्यय	व्यय	व्यय

इस प्रकार श्रीविश्वकर्मप्रकाश वास्तुशास्त्र ग्रन्थ की महर्षि अभय कात्यायनविरचित 'अभया' हिन्दी टीका का तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

●

चतुर्थोऽध्यायः

गृहादिनिर्माणाध्यायः

गृह के उत्तमादि भेद कथन

चतुर्दश विधाः प्रोक्ता गृहाश्चोत्तममध्यमाः।
निन्दिताश्च प्रमाणञ्च कथयामि समासतः॥ १॥
गृहं तद् द्विविधं प्रोक्तं शरीरन्तु पृथग्विधम्।
शरीरं तु गृहन्नाम शय्याशयनचक्रके॥ २॥

ग्रहों का वर्गीकरण अनेक प्रकार से किया गया है। यथा—उत्तम, मध्यम तथा निन्दित। इन तीन भेदों के साथ वे चौदह प्रकार के होते हैं। उन्हें मैं संक्षेप में वर्णन कर रहा हूँ। उन सबके प्रमाण भी कह रहा हूँ॥ १॥

शरीर तथा शय्या इन दोनों को भी गृह कहा जाता है। गृह को शरीर कहते हैं तथा शयनचक्र में शय्या को भी गृह कहते हैं॥ २॥

विमर्श—जिस प्रकार 'आत्मा' का निवास-स्थान शरीर में है, उसी प्रकार से व्यक्ति का निवास-स्थान गृह में होता है। अतः गृह वास्तव में मनुष्य की काया या व्यक्तित्व का शरीर ही होता है। प्राचीन दार्शनिक ग्रन्थों में देह तथा गेह (गृह) की आसक्ति ही संसार-बन्धन का कारण कही गयी है। जिस प्रकार शरीर में आत्मा ही प्रधान होता है, उसी प्रकार किसी गृह में उसका गृहेश (गृहस्वामी) ही प्रधान होता है। उस गृह को उसी गृहस्वामी का गृह कहा तथा समझा जाता है। जिस प्रकार शरीर को क्षेत्र तथा आत्मा को क्षेत्रज्ञ अथवा शरीर को देह तथा आत्मा को देही अथवा देहिन् कहते हैं। शरीर में ही आत्मा के अस्तित्व का अनुभव किया जाता है। उसी प्रकार से गृह एवं गृही का सम्बन्ध है। गृह की पहिचान उसके गृही से रहती है। गृह तो निर्जीव होता है, उसमें गृही के वास करने से ही वह सजीव दिखाई देता है। इसीलिये जिस प्रकार से व्यक्ति शरीर की रक्षा बड़े ममत्व के साथ करता है, तथैव वह अपने गृहरूपी शरीर की रक्षा भी बड़े यत्नपूर्वक करता है। गृही अपने परिजनों के साथ जब अपने घर में निवास करता है, तब वह गृह उसी गृही के शरीर का भी शरीर होता है। अतः गृह को श्लोक २ में शरीर की संज्ञा प्रदान की गयी है। गृह के उपरान्त गृही के लिये शय्या (पलंग) तथा आसन (कुर्सी आदि) महत्त्वपूर्ण होते हैं।

सामान्य शय्या तथा आसन के मानादि का कथन

शय्यामानं स्वदेहेन सुखं कार्यं सुखेप्सुना।
एकाशीत्यङ्गुला शय्या नवत्यङ्गुलसम्मिता॥ ३॥

तदर्धेन च विस्तीर्णा पादुकावुद्यताङ्गुलौ।
आसनं तु प्रकर्त्तव्यं शय्याविस्तारमानकम्॥ ४॥
विस्तारं पादहीनं तु तद्विस्तारं प्रकल्पयेत्।
उपानहौ प्रकर्त्तव्यौ स्वपादप्रमितौ तथा॥ ५॥
पादुकेऽपि यथा कार्ये अन्यथा दुःखशोकदौ।
अथाङ्गुलेन मानेन शय्यामानं प्रकल्पयेत्॥ ६॥

सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शय्या (खाट-चारपाई-पलङ्ग-मचिया) अपने शरीर की लम्बाई के अनुसार दीर्घ बनवानी चाहिये, उसी में सुख रहता है। इक्यासी अंगुल अथवा नब्बे अंगुल की शय्या उत्तम रहती है॥ ३॥

शय्या की लम्बाई से आधी (अर्थात् ४१ अंगुल अथवा ४५ अंगुल उसकी चौड़ाई रखनी चाहिये। शय्या की पादुका (पावों = खट्वांगों) की ऊँचाई चौड़ाई के तुल्य होनी चाहिये।

आसन भी शय्या के समान ही लम्बा बनाना चाहिये तथा उसकी चौड़ाई, लम्बाई से चतुर्थांश कम रखनी चाहिये।

खड़ाऊ एक अंगुल ऊँची तथा पैर के पंजे के माप की होनी चाहिये। इसी प्रकार जूते भी अपने पैर के अनुसार ही बनवायें, अन्यथा कष्टप्रद होते हैं। इस प्रकार शय्या का अंगुलात्मक मान प्रकल्पित करे॥ ४-६॥

राजाओं के शय्यादि का मान

अथवा ह्यपरा प्रोक्ता नृपाणां काममिच्छताम्।
शताङ्गुला तु नृपाणां तु महती परिकीर्तिता॥ ७॥

अथवा राजाओं की कामपूर्ति हेतु अन्य शय्या भी कही गयी है। राजाओं की बड़ी शय्या एक सौ (१००) अंगुल की बनानी चाहिये॥ ७॥

राजकुमारों एवं मन्त्रियों की शय्या का मान

कुमाराणां तु नवतिः सा षडूना तु मन्त्रिणाम्॥ ८॥

१. राजकुमारों की शय्या ९० अंगुल दीर्घ होती है। २. नंत्रियों की शय्या उससे छह अंगुल कम अर्थात् ८४ अंगुल की बनानी चाहिये॥ ८॥

सेनापति एवं पुरोहितों की शय्या का मान

द्वादशोना बलेशस्य पर्यङ्को परिकीर्तितः।
पुरोहितानान्तु तथा हीना धृत्यङ्गुलैस्ततः॥ ९॥

राजा की शय्या में बारह अंगुल कम करने से बलेश (सेनापति) की शय्या का मान (७८ अंगुल) तथा पुरोहित की १८ अंगुल कम अर्थात् ७२ अंगुल होती है॥ ९॥

पाए की ऊँचाई का कथन

दैर्घ्यमष्टभागोनं विष्कम्भः परिकीर्तितः।
आयाम त्र्यंशतुल्यश्च पादोच्छ्रायं तु निर्दिशेत्॥ १०॥

राजादि के लिये शय्या की लम्बाई का अष्टमांश (१/८) चौड़ाई रखना चाहिये तथा चौड़ाई का त्र्यंश (१/३) उसके पैरों की ऊँचाई रखें॥ १०॥

सभी वर्णों की शय्या का कथन

सर्वेषाञ्चैव वर्णानामेकाशीतिमिता स्मृता।
स्वदेहान्नाति दीर्घा सा न विस्तारा तथैव च॥ ११॥

यद्यपि सभी वर्णों के लिये ८१ अंगुल की शय्या कही गयी है, परन्तु व्यक्तिगत रूप से अपने शरीर की लम्बाई से बहुत बड़ी तथा अधिक चौड़ी भी न होना चाहिये॥ ११॥

हीनाधिका शय्या का फल

हीना रोगप्रदा दीर्घा दुःखदा सुखदा समा।
ऊनाधिका च या शय्या सा ज्ञेया स्वामिनोऽशुभा॥ १२॥

जो शय्या छोटी होती है वह रोगप्रद और जो अधिक बड़ी होती है वह दुःखप्रद होती है। शरीर के समान शय्या सुखप्रद होती है। शरीर के अनुपात से छोटी-बड़ी शय्या स्वामी के लिये अशुभ होती है॥ १२॥

निर्माण-सामग्री के आधार पर चौदह प्रकार के गृह

पाषाणैर्निर्मितं यत्तु तद् गृहं मन्दिरं स्मृतम्॥ १३॥
पक्वेष्टकं वास्तुनाम भवनं हितमुत्तमम्।
अनिष्टकैः सुमनन्तु सुधारं कर्दमेन तु॥ १४॥
मानस्यं वर्धितं काष्ठैः वेत्रैश्च चन्दनं स्मृतम्।
वस्त्रैश्च विजयं प्रोक्तं राज्ञां शिल्पिविकल्पितम्॥ १५॥
कालमेति च विज्ञेयं अष्टमं तृणजातिभिः।
उत्तमानि च चत्वारि गृहाणि गृहमेधिनाम्॥ १६॥
सौवर्णं राजतं ताम्रमायसं च प्रकीर्तितम्।
सौवर्णं तु करं नाम राजतं श्रीभवं तथा॥ १७॥
ताम्रेण सूर्यमन्त्रन्तु चण्डनाम तथायसम्।
देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसपन्नगाः ॥ १८॥
द्वादशैते प्रकारास्तु गृहाणां नियताः स्मृताः।
जातुषं त्वनलं नाम प्रायुवं वारिबन्धकम्॥ १९॥
एवं सर्वासु जातीषु गृहाणि च चतुर्दश।
चत्वारश्चोत्तमा ये च ते गृहा वर्णपूर्वकाः॥ २०॥

१. **मन्दिर**—पत्थरों से निर्मित आवास को मन्दिर कहते हैं।
२. **भवन**—जो पक्की ईंटों से बनता है, उसे भवन कहते हैं।
३. **सुमन**—कच्ची ईंटों से निर्मित गृह को सुमन कहते हैं।

४. **सुधार**—कीचड़ या गारे से बने गृह को सुधार कहते हैं।
५. **मानस्य**—जो गृह लकड़ी से बनता है, उसे मानस्य कहा जाता है।
६. **चन्दन**—जो खेतों में निर्मित होता है, उस गृह को चन्दन कहते हैं।
७. **विजय**—राजाओं के वस्त्रादिनिर्मित तम्बूघर को विजय कहते हैं।
८. **कालिम**—घास-फूस से निर्मित गृह को कालिम कहते हैं। पूर्व के चार गृह गृहस्थियों के लिये उत्तम कहे गये हैं॥ १३-१६॥

सुवर्ण, चाँदी, ताम्र तथा लोहे से जो गृह बनते हैं, वे देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नागादि के लिये उपयुक्त होते हैं।

९. **कर**—स्वर्णनिर्मित गृह को कर कहते हैं।
१०. **श्रीभव**—चाँदी से बने घर को श्रीभव कहा जाता है।
११. **सूर्यमन्त्र**—ताम्रनिर्मित आवास सूर्यमन्त्र कहलाता है।
१२. **चण्ड**—लोहे से बना घर चण्ड कहलाता है।
१३. **अनल**—लाख से बने गृह को अनल कहते हैं। (पाण्डवों के लिये दुर्योधन ने लाक्षागृह बनवाया था)।
१४. **प्रायुव**—वारिबन्धनयुक्त (Water Proof) गृह को प्रायुव कहा जाता है।

इस प्रकार १२+२=१४ ये गृह कहे गये हैं। इनमें पूर्व के चार गृह ब्राह्मणादि वर्णों के लिये क्रमशः उत्तम होते हैं॥ १७-२०॥

विमर्श—इस प्रकार इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि प्राचीन भारत के लोग वास्तुशास्त्र में सम्पूर्ण संसार में आगे थे। मिश्र (मिस्र) के पिरामिडों का निर्माण भी भारतीय शिल्पियों द्वारा ही किया गया है। ऊपर १४वें गृह को प्रायुव कहा गया है। यह एक प्रकार की पनडुब्बी ही होती थी। दुर्योधन इसी प्रकार के प्रायुव नामक गृह में छिप गया था। जो कि जल के भीतर बना हुआ था। प्राचीन काल में इस प्रकार 'प्रायुव' नामक गृहों को राजा लोग अपने विश्राम के लिये कुशल शिल्पियों से बनवा लिया करते थे। महाभारत के युद्ध में जब दुर्योधन की ग्यारह अक्षौहिणी सेना नष्ट हो गयी, तब दुर्योधन ने पूर्व से बनवाये हुए उस जलस्तम्भी गृह 'प्रायुव' में जाकर विश्राम किया था। वह गृह एक गहरे जलकुण्ड में बना हुआ था—

'एकादशचमूभर्त्ता पुत्रो दुर्योधनस्तव।
गदामादाय तेजस्वी पदातिः प्रथितो ह्रदम्॥'

पाण्डवों से हारकर भागा दुर्योधन तालाब में बने पनडुब्बीगृह (प्रायुव) में छिपा था, संजय ने यह बात धृतराष्ट्र को बतायी थी—

'ब्रूयाः सञ्जय राजानं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम्।
दुर्योधनस्तव सुतः प्रविष्टो ह्रदमित्युत॥'
—महाभारत शल्यपर्व २९। ५१

मार्ग में संजय की भेंट युद्ध में घायल कृपाचार्य, अश्वत्थामा तथा कृतवर्मा—इन तीन योद्धाओं से हुई, उन्होंने संजय से दुर्योधन के बारे में जानकारी चाही। तब संजय ने उन्हें उसके सरोवर में छिपने की जानकारी दी—

'एवमुक्त्वा महाराज प्राविशत् तं महाह्रदम्।
अस्तम्भयत तोयं च मायया मनुजाधिपः॥
तस्मिन् ह्रदं प्रविष्टे तु त्रीन् रथान् श्रान्तवाहनान्।
अपश्यं सहितानेकस्तं देशं समुपेयुषः॥
कृपं शारद्वतं वीरं द्रौणिञ्च रथिनां वरम्।
भोजञ्च कृतवर्माणं सहिताञ्शरविक्षतान्॥
ते सर्वे मामभिप्रेक्ष्य तूर्णमश्वाननोदयन्।
उपायाय तु मायूचुर्दिष्ट्या जीवसि सञ्जय॥
अपृच्छंश्चैव मां सर्वे पुत्रं तव जनाधिपम्।
कच्चिद् दुर्योधनो राजा स नो जीवति सञ्जय॥
आख्यातवानहं तेभ्यस्तदा कुशलिनं नृपम्।
तच्चैव सर्वमाचक्षं यन्मां दुर्योधनोऽब्रवीत्॥
ह्रदं चैवाहमाचक्षं यं प्रविष्टो नराधिपः।
अश्वत्थामा तु तद्राजन् निशम्य वचनं मम॥
तं ह्रदं विपुलं प्रेक्ष्य करुणं पर्यदेवयत्।'

—महाभारत शल्यपर्व अध्याय २९।५४-६१

वह सरोवर बहुत विशाल था, दुर्योधन उसमें निर्मित 'प्रायुव' में छिपा हुआ था और पाण्डव दुर्योधन की खोज कर रहे थे। वे थककर अपने शिविर में विश्राम करने लगे, तब तक कृपाचार्य, अश्वत्थामा तथा कृतवर्मा—ये तीनों ही उस सरोवर के तट पर दुर्योधन से मिलने के लिये गये। राजा दुर्योधन उस प्रायुव में शयन कर रहा था। प्रायुव में संचार-व्यवस्था उत्तम थी, अतः इन तीनों के जगाने पर दुर्योधन की पनडुब्बी ऊपर आ गयी और तीनों महारथियों से दुर्योधन का वार्तालाप होने लगा।

'यदा तु पाण्डवाः सर्वे सुपरिश्रान्तवाहनाः॥
ततः स्वशिविरं प्राप्य व्यतिष्ठन्त ससैनिकाः।
ततः कृपश्च द्रौणिश्च कृतवर्मा च सात्वतः॥
सन्निविष्टेषु पार्थेषु प्रयातस्तं ह्रदं शनैः।
ते तं ह्रदं समासाद्य यत्र शेते जनाधिपः॥
अभ्यभाषन्त दुर्धर्षं राजानं सुप्तमम्भसि।
राजन्नुत्तिष्ठ युद्धयस्व सहास्माभिर्युधिष्ठिरम्।
जित्वा वा पृथिवीं भुङ्क्ष्व हतो वा स्वर्गमाप्नुहि॥'

—महाभारत शल्यपर्व ३०।८-१२

दुर्योधन ने उन महारथियों ने कहा—'अहो! बड़े सौभाग्य की बात है कि ऐसे महासंग्राम में मैं आप लोगों को जीवित देख रहा हूँ। हम लोग अभी विश्राम करके अपनी थकावट दूर कर लें।' तदुपरान्त हम अवश्य विजयी होंगे। मैं आज रात विश्राम करके अपनी थकान तथा घावों को ठीक करना चाहता हूँ, फिर कल प्रातः आप लोगों के साथ जाकर मैं युद्धक्षेत्र में अवश्य ही युद्ध करूँगा—

'विश्रम्यैकां निशामद्य भवद्भिः सहितो रणे।
प्रतियोत्स्याम्यहं शत्रूञ्श्वो न मेऽस्त्यत्र संशयः॥'

—महाभारत शल्यपर्व ३०।१८

इधर पाण्डव दुर्योधन को किसी भी कीमत पर पकड़ने के लिये व्यग्र थे। उनके गुप्तचर चारों ओर दुर्योधन की खोज में लगे हुए थे। उन्होंने दुर्योधन का पता लगाने के लिये पुरस्कार भी घोषित कर रखा था। वनवासी लोगों में महाराज युधिष्ठिर के प्रति अपार सहानुभूति थी। दैवयोग से कुछ व्याध (शिकारी लोग) पानी पीने के लिये उस सरोवर पर आये तो उन लोगों ने कृतवर्मा, कृपाचार्य एवं अश्वत्थामा के साथ दुर्योधन की बातचीत सुन ली, अतः उन्हें पता चल गया कि दुर्योधन इसी सरोवर में प्रायुव (पनडुब्बी) में छिपा हुआ है। दुर्योधन की खोज में लगे युधिष्ठिर को मार्ग में व्याध मिल गये थे तब उनसे उन्होंने पूछा था कि क्या तुम लोगों को दुर्योधन दिखा है? अतः उस बात को यादकर व्याधों ने पुरस्कारप्राप्ति की इच्छा से भीमसेन के शिविर में जाकर दुर्योधन के प्रायुव (पनडुब्बी) में छिपे होने का वृत्तान्त युधिष्ठिर को बता दिया, जिसे सुनकर महाबली भीमसेन की बाँछें खिल गयीं। पाण्डव भी बहुत प्रसन्न हुए—

'ते तु पाण्डवमासाद्य भीमसेनं महाबलम्।
तस्मै सर्वमाचख्युर्यद्वृत्तं यच्च वै श्रुतम्॥
ततो वृकोदरो राजन् दत्त्वा तेषां धनं बहु।
धर्मराजाय तत्सर्वमाचचक्षे परन्तपः॥
असौ दुर्योधनो राजन् विज्ञातो मम लुब्धकैः।
संस्तभ्य सलिलं शेते यस्यार्थे परितप्यसे॥
तद् वचो भीमसेनस्य प्रियं श्रुत्वा विशाम्पते।
अजातशत्रुः कौन्तेयो हृष्टोऽभूत् सह सोदरैः॥
तं च श्रुत्वा महेष्वासं प्रविष्टं सलिलं ह्रदे।
क्षिप्रमेव ततोऽगच्छन् पुरस्कृत्य जनार्दनम्॥'

—महाभारत शल्यपर्व २०।४१-४५

भीमसेन ने सूचना देनेवाले व्याधों को धन देकर विदा किया और युधिष्ठिर के नेतृत्व में वे सभी पाण्डव वीर अपने सैनिकों समेत उस सरोवर पर गये, जिसमें चमत्कारिक ढंग से सारी सुविधाओं के साथ दुर्योधन रह रहा था। वह हाथ में गदा लिये हुए लेटा हुआ था तथा शयन मुद्रा में ही कृतवर्मा आदि से बातचीत कर रहा था।

उस समय पनडुब्बी पानी के ऊपर थी। जैसे ही युधिष्ठिर की सेना का कोलाहल सुनाई पड़ा, कृतवर्मा ने दुर्योधन को इसकी सूचना दी और वे कृपाचार्य तथा अश्वत्थामा के साथ वहाँ से दूर हटकर छिप गये। पनडुब्बी फिर जल के भीतर छिप गयी। अब उसे किसी भी मनुष्य के लिये देखना पूर्णतः असम्भव था। परन्तु दुर्योधन को जल के भीतर भी पाण्डव सेना का तुमुल शब्द सुनायी पड़ रहा था—

'द्वैपायनं ह्रदं घोरं यत्र दुर्योधनोऽभवत्।
शीतामलजलं ह्रद्यं द्वितीयमिव सागरम्॥
मायया सलिलं स्तभ्य यत्राभूत् ते स्थितः सुतः।
अत्यद्भुतेन विधिना दैवयोगेन भारत॥
सलिलान्तर्गतः शेते दुर्दर्शः कस्यचित् प्रभो।
मानुषस्य मनुष्येन्द्र गदाहस्तो जनाधिपः॥
ततो दुर्योधनो राजा सलिलान्तर्गतो वसन्।
शुश्रुवे तुमुलं शब्दं जलदोपमनिःस्वनम्॥
युधिष्ठिरश्च राजेन्द्र तं ह्रदं सह सोदरैः।
आजगाम महाराज तव पुत्रवधाय वै॥'
'दुर्योधनस्तु तच्छ्रुत्वा तेषां तत्र तरस्विनाम्।
तथेत्युक्त्वा ह्रदं तं वै माययास्तम्भयत् प्रभो॥'
'विष्टभ्य सलिलं सुप्तो धार्तराष्ट्रो महाबलः।
पाण्डवश्चापि सम्प्राप्तास्तं देशं युद्धमीप्सवः॥'
—महाभारत शल्यपर्व ३०।५४-५८, ६२, ६५

भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवों के साथ ही थे, अतः उस द्वैपायन सरोवर पर जाकर युधिष्ठिरादि ने इस विषय पर भगवान् से परामर्श किया। युधिष्ठिर ने देखा कि सरोवर का जल यथावत् लहरों से परिपूर्ण है। माया (विज्ञान) के इस चमत्कार पर महाराज युधिष्ठिर विस्मित हो रहे थे। भगवान् ने युधिष्ठिर से दुर्योधन को चुनौती देने को कहा। युधिष्ठिर ने चुपचाप लेटे दुर्योधन को व्यङ्गोक्तियों द्वारा उत्तेजित किया। अतः पाण्डवों के द्वारा फटकारे जाने पर दुर्योधन प्रायुव (पनडुब्बी) से बाहर आ गया और भीमसेन के साथ गदायुद्ध में मारा गया।

'प्रायुव' के निर्माण का उद्देश्य—प्राचीन भारत में विभिन्न प्रकार के विज्ञानों के साथ वास्तुशास्त्र भी अपनी चरमसीमा पर था; इस बात की पुष्टि के लिये महाभारत की यह घटना यहाँ पर दी गयी है। जल के भीतर इन 'प्रायुव' नामक गृहों के निर्माण का उद्देश्य क्या था? यह प्रश्न सहज ही उपस्थित होता है। उस काल में इनके निर्माण के उद्देश्य निम्न थे—

१. सात्त्विक प्रकृति के लोग (ऋषि-मुनि इत्यादि) एकान्त तपस्या के लिये इनका उपयोग करते थे। इनमें सांसारिक विघ्न-बाधाओं से बचे रहकर वे मनुष्य-

समाज से दूर रहते थे। उनकी निजी जिन्दगी में बाहरी हस्तक्षेप नहीं रहता था। अनेक ऋषियों द्वारा वर्षों तक सुरक्षित रूप से जल में रहकर तपस्या करने का उल्लेख भारतीय पुराणों में मिलता है। 'प्रायुव' शब्द निजीपन का बोधक है। महर्षि सौभरि भी प्रायुव में रहकर तप करते थे।

देववाणी संस्कृत का यह शब्द निजीपन के अर्थ में ही अंग्रेजी में Private तथा Privacy हो गया है। ये इसी वैदिक 'प्रायुव' शब्द से ही व्युत्पन्न हैं। यह शब्द यूरोप की प्राचीन भाषा लैटिन में Privatus तथा Privus आदि रूपों में विद्यमान् है।

२. राजा लोग, जो समृद्ध होते थे, वे इसका उपयोग विश्राम के लिये करते थे। जल के भीतर होने से इसका तापमान सदैव वातानुकूलित होता है। इससे शरीर को पूर्ण विश्राम मिलता है, साथ ही शरीर की रोगप्रतिरोधक शक्ति भी बढ़ जाती थी। मानसिक तनाव भी दूर हो जाता था; क्योंकि जल की गहराई में सूर्य की किरणों का तीव्र प्रकाश नहीं पहुँच पाता है, अतः मानसिक शान्ति बनी रहती थी।

३. तामसी जन अपने प्रतिपक्षियों से बचने के लिये उनका उपयोग करते थे और छिपकर निष्क्रिय होकर पड़े रहते थे। मगरमच्छ की भाँति पड़े रहते थे; क्योंकि 'प्रायुवों' का अर्थ आलस्य या आलसी-जैसा भी है। जिसके समानार्थी प्रमाद, अनुत्साह आदि भी हैं। यजुर्वेद के इस मंत्र में देवताओं से अप्रायुव रहकर रक्षा की प्रार्थना की गयी है—

'आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।
देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे॥'
—यजुर्वेद २५।१४

लाक्षागृह—ऊपर श्लोक १९ में 'जातुषगृह' का भी उल्लेख है। जातुष का अर्थ लाख या लाही होता है। संस्कृत में इसे लाक्षा कहते हैं। आज के समय में कृत्रिम वस्तुओं के निर्माण में जैसा प्रयोग प्लास्टिक तथा नायलोन का होता है। उससे अधिक प्रयोग प्राचीन काल में लाख का होता था। परन्तु निर्माण के अतिरिक्त लाख का प्रयोग आरोग्यकारक औषधि के रूप में भी होता था। परन्तु आज तो लोग 'लाख' क्या वस्तु थी, इसे तो छोड़िये उसका नाम भी भूल रहे हैं।

लाख को संस्कृत में लाक्षा, पलङ्कषा, अलक्त, याव, वृक्षामय, जतु, ब्राह्मणी, अङ्गारवल्ली, खरशाखा, हञ्जिका आदि कहा गया है। अंग्रेजी में इसे Lac, Cocous lacca (कॉकस लक्का) तथा Tachardia lacca (टकार्डिआ लक्का) कहा जाता है।

लाख—पुराने पीपल, ढाक, वट तथा बेर आदि की टहनियों पर एक प्रकार के सूक्ष्म कीड़ों द्वारा निर्मित रक्ताभ या गाढ़े-भूरे रंग का एक पदार्थ है। इसमें पीपल वृक्ष पर बननेवाली लाख श्रेष्ठतम होती है, वैशाख तथा आश्विन मास में इसे वृक्षों से निकालकर सुखाया जाता है, फिर उसको लम्बी थैलियों में भरकर गरम किया जाता

है। जिससे गलकर लाख टपकती है। आजकल तो वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग किया जाने लगा है। इसी से चपड़े का निर्माण भी किया जाता है। चपड़ा बनाने के लिये गर्म करने के पहले इसमें हरताल का घोल मिलाते हैं। बाद में इसे खींच-खींचकर पतला बनाते हैं। लाख को औटाकर प्राचीनकाल में लाल रंग बनाते थे, जिसे अलक्तक अथवा 'आलता' कहते थे। उस लाल रंग से ही महावर बनता था। लाख के रंग की स्याही (Ink) भी बनती थी, जो बहुत पक्की होती थी। प्राचीन भारत में यह निर्यात की प्रमुख वस्तु थी। झारखण्ड के राँची नगर तथा उ०प्र० के मिर्जापुर इसके उत्पादन एवं व्यापार के प्रमुख केन्द्र रहे हैं।

लाक्षागृह का उपयोग—लाक्षागृहों का प्रमुख उपयोग आरोग्य प्राप्ति तथा उपचार के लिये होता था। लाक्षागृहों में अनेक रोगों के रोगियों को स्वास्थ्य लाभ के लिये रखा जाता है। लाख के आभ्यन्तरिक तथा बाह्य प्रयोग से अनेक रोग समूल नष्ट हो जाते थे।

लाख से नष्ट होनेवाले रोग—लाख लघु, कषाय, कटुविपाक, शीतवीर्य (अनुष्ण वीर्य), बलवर्धक (Tonic), रक्तशोधक, स्निग्ध, रञ्जक, भग्नसंधानक (टूटे अंग को जोड़नेवाली), रक्तस्तम्भक, वीर्यस्तम्भक, वर्णप्रद, कफपित्तशामक, लेखन, कफ निस्सारक तथा मोटापा दूर करनेवाली होती है। यह शोष, दाह (जलन), विषविकार, रक्तविकार, राजयक्ष्मा, हिचकी, श्वास, वमन, खाँसी, जीर्णज्वर, पुराना जुकाम, विषमज्वर, विसर्प, कृमिरोग, चर्मरोग, कुष्ठ, रक्तस्राव, रक्तप्रदर, रक्तपित्त तथा सर्वांग शोथ में अतीव लाभकारी है। बवासीर आदि विकार इसके उपयोग से दूर होते हैं। लाक्षागृह में रहकर राजा एवं धनी लोग अपने इन रोगों को दूर करते थे। यथा—

'लाक्षा पलङ्कषालक्तो यावो वृक्षामयो जतुः।
ब्राह्मण्यङ्गारवल्ली च खरशाखा च हञ्जिका॥
लाक्षा वर्ण्या हिमा बल्या स्निग्ध्या च तुवरा लघुः।
अनुष्णा कफपित्तास्र हिक्कास्वासज्वर प्रणुत्॥
व्रणोरःक्षतवीसर्पकृमिकुष्ठगदापहा ।
अलक्तको गुणैस्तद्वद् विशेषाद् व्यङ्गनाशनः॥'
—भावप्रकाशनिघण्टु

'साक्षानिमज्ञत्सरो रक्ता द्रुमव्याधिः पलङ्कषा।
कृमिजा जतु दीसाह्वा जावको लवको यतः॥
लाक्षा वर्ण्या हिमा बल्या स्निग्धा श्लेष्मास्रपित्तजित्।
व्रणोरःक्षतवीसर्पकृमिकुष्ठग्रहापहा ।
अलक्तके गुणैस्तद्वद् विशेषाद् व्यङ्गनाशकः॥'
—मदनपालनिघण्टु

लाख में घाव भरने की अद्भुत शक्ति होती है। इसके भवनों में घायलों को रखने से उनके घाव पकते नहीं थे और वे शीघ्र ही भर जाते थे। परन्तु इन गृहों में आग लगने

का भयंकर खतरा बना रहता था। पाण्डव अपने वनवासकाल में एक ऐसे ही लाक्षाभवन (अनल) में रहे थे। दुर्योधन ने उन्हें उसी में जलाकर मार डालने की योजना बनायी, परन्तु उन्हें उस योजना का पता चल गया और वे एक सुरंग बनाकर उसमें से सुरक्षित निकल गये थे। यह बात सर्वविदित है।

उत्तम गृहों के निर्माण में कालशुद्धि की अपेक्षा

शुभदा ब्राह्मणादीनां सर्वेषामपि शोभनाः।
उत्तमा शुद्धकालेषु स्थाप्याः शुद्धविधानतः॥ २१॥

उत्तम प्रकार के गृह ब्राह्मणादि वर्णों एवं अन्य उत्तम लोगों के लिये शुभ होते हैं, अतः उनका निर्माण-कार्य शुद्धकाल (उचित मुहूर्त) में ही करना चाहिये तथा शास्त्रोक्त विधि (वास्तुपूजनादि) भी करनी चाहिये॥ २१॥

तृणकाष्ठादिगृह में कालशुद्धि की अपेक्षा नहीं

काष्ठादिकृतगेहेषु कालापेक्षां न कारयेत्।
तृणदारुगृहारम्भे विकल्पं नैव कारयेत्॥ २२॥

काष्ठ आदि से जो घर बनाये जाते हैं, उनमें कालशुद्धि के अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है। घासफूस एवं लकड़ी के मकान में उनकी लम्बाई-चौड़ाई के विकल्प विचार की आवश्यकता नहीं है, उन्हें तो अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं के अनुसार ही बना लेना उत्तम होता है॥ २२॥

विमर्श—पाषाण से जो छोटा गृह (कमरा) बनाते हैं अथवा मिट्टी से बनाते हैं, उसे कुटी, कुटिः, कुटिका, कुटीरः आदि कहा जाता रहा है। आजकल घासफूस या लकड़ी से निर्मित को भी कुटी कहते हैं। यही कुटीगेह भी कहा जाता है। इसी का अपभ्रंश लैटिन में Cottagium तथा अंग्रेजी में Cottage है, जो आजकल घृणित अर्थ में भी प्रयुक्त होने लगा है। पर्णशाला का निर्माण पत्रादि से होता है, इसे संस्कृत में 'उटज' भी कहते हैं, जिसका अपभ्रंश प्राचीन फ्रेंच भाषा में Hutte प्राचीन उच्च जर्मन में Hutta तथा अंग्रेजी में Hut है। जो कुटी घास-फूस की चटाई से बनती थी, उसको संस्कृत में 'मयट' कहा जाता था। आज का अंग्रेजी शब्द Mat इसी संस्कृत 'मयट' का घिसा हुआ रूप है।

सुवर्णादि से निर्मित गृह के आरम्भ करने में मासदोष नहीं

सौवर्णादिगृहारम्भे मासदोषो न विद्यते।

सौवर्णादिनिर्मित (सुवर्ण, रौप्य, ताम्र, लौह) गृह के निर्माण-कार्य को आरम्भ करने में मासशुद्धि का विचार नहीं करते हैं, उसे तो किसी भी मास में शुभ तिथि-वार-नक्षत्र का विचार करके आरम्भ कर सकते हैं॥ २२½॥

विमर्श—मास का विचार तो पाषाण, कच्ची-पक्की ईंट एवं मिट्टी आदि से बननेवाले गृहों में अपेक्षित होता है।

गृह-प्रवेश का संक्षिप्त विचार

पञ्चाङ्गशुद्धकाले तु न चैत्रे सिंहपौषके॥ २३॥
प्रवेशनञ्च कर्त्तव्यं महोत्सवदिने तथा।

चैत्र तथा पौष इन सौरमासों को छोड़कर पञ्चांग शुद्ध, दिवस को अथवा किसी महोत्सववाले दिन गृह-प्रवेश करना चाहिये॥ २३-२३½॥

शिल्पमान तथा स्तम्भमान का कथन

पक्वेष्टिका निर्मितेषु शिल्पमानं प्रचक्षते॥ २४॥
काष्ठादिनिर्मिते गेहे स्तम्भमानं प्रचक्षते।

१. पक्की ईंट एवं पत्थरनिर्मित गृह में शिल्प का मान (माप) करना चाहिये तथा काष्ठनिर्मित गृह में स्तम्भों के मान का विचार करना चाहिये॥ २४-२४½॥

कार्य प्रयोजन के अनुसार मान की इकाइयों का कथन

सौवर्णाद्ये हस्तमानं जातुषाद्येन किञ्चन॥ २५॥
पादुकोपानहौ कार्यौ अङ्गुलस्य प्रमाणतः।
मञ्चादिकमासनञ्च अङ्गुले नैव कारयेत्॥ २६॥
प्रतिमापीठिका चापि लिङ्गम्वा स्तम्भमेव वा।
गवाक्षाणां प्रमाणञ्च शिलामानं तथैव च॥ २७॥
खड्गचर्मायुधादीनां प्रमाणं चाङ्गुलानि च।
विषमा शुभदा पुंसां समाः सौख्यविनाशकाः॥ २८॥

१. जो भवन सुवर्ण, रजत, ताम्र या लौह से निर्मित होता है, उसकी माप हाथों से ही करना चाहिये।

२. पादुका (चप्पल), उपानह (जूता) आदि की माप अंगुलों में करना उचित है।

३. मञ्च (टेबल, लकड़ी का पलङ्ग, तख्त आदि), आसन इनकी माप भी अंगुलों से ही करना चाहिये।

४. मूर्तिपीठिका (जिस पर मूर्ति को स्थिर किया जाता है), शिवलिङ्ग तथा स्तम्भ एवं गवाक्षों (झरोखे-रोशनदान-खिड़की आदि) की माप भी अंगुलों से ही करने का विधान है।

५. शिला (पत्थर की पटिया आदि) की माप भी अंगुलों से ही करें॥ २५-२७॥

६. खड्ग (तलवार, तेग, खड्ग, कृपाण, छुरी आदि), चर्म (छाल तथा कवच आदि), विभिन्न प्रकार के शस्त्रास्त्रों की माप भी अंगुलों में ही की जाती है।

यह माप पुरुषों के लिये विषम (Odd) संख्यावाले अंगुलों में शुभ होती है। यदि यह माप सम (Even) अंगुलों में हो तो असुखकारक होती है॥ २८॥

अङ्गुलप्रमाण का स्पष्टीकरण

अङ्गुलस्य प्रमाणन्तु कथयामि समासतः।
नवाष्ट सप्त-षट् पूर्वा अङ्गुला विषमा समाः॥ २९॥

अब अंगुल की माप के सम्बन्ध में संक्षेप में स्पष्ट कर रहा हूँ। जैसे नौ अङ्गुल विषम होने से शुभ तथा आठ अंगुल सम होने से अशुभ होते हैं। इसी प्रकार सात अंगुल विषम होने से शुभ किन्तु छह अंगुल की माप सम होने से अशुभ जानना चाहिये॥ २९॥

त्रिविध हस्तमान का निदर्शन

त्रिविधस्यापि हस्तस्य प्रत्येकं कर्म दर्शितम्।
ग्रामखेटपुरादीनां विभागोऽस्य विस्तरात्॥ ३०॥
परिखाद्वाररथ्याश्च स्तम्भाः प्रासादवेश्मनाम्।
तेषां निर्गममार्गे च सीमान्तेऽत्रान्तराणि च॥ ३१॥
दिशान्तरविभागाश्च वस्त्रायोधनयोस्तथा।
अध्वनः परिमाणञ्च क्रोशगव्यूतियोजनैः॥ ३२॥

हाथ से तीन प्रकार की माप होती है (दैर्घ्य-विस्तार तथा घनहस्त)। ग्रामखेट (कस्बा=Town) तथा पुर (महानगर) की माप अब विस्तार से कही जा रही है॥ ३०॥

परिखा, द्वार, रथ्या, स्तम्भ, प्रासाद, वेश्म आदि की माप उनके निर्गम, मार्ग, सीमान्त, उनके मध्य के अन्तर, दिशात्मक अन्तर (Directional difference) तथा विभाग (Divison), वस्त्रों की माप, आयोधन (युद्धक्षेत्र), अध्वन (यात्रा की दूरी) इन सबको क्रोश—गव्यूति तथा योजन की इकाइयों में नापते हैं॥ ३१-३२॥

विमर्श—यहाँ दिये गये संज्ञा शब्दों का स्पष्टीकरण अति आवश्यक होने से यहाँ दिया जा रहा है—

परिखा—नगर अथवा दुर्ग के चारों ओर की खाईं को परिखा कहते हैं—'परितः खन्यते इति परिखा'। जब यह गहरी हो तथा जलपूरित हो तो इसका अंग्रेजी पर्याय Moat होता है। संकरी तथा लम्बी नाली Trench तथा सिंचाई आदि के उपयोग की नाली Ditch कहलाती हैं।

रथ्या—जिसमें रथों का आगमन तथा गमन रहता हो, उस मार्ग को रथ्या कहते हैं। 'रथस्य गमनागमनात् रथ्या भवति।' आजकल के सभी राजमार्ग 'रथ्या' हैं तथा उन पर चलते मोटर, बस इत्यादि रथ हैं। फारसी भाषा का रास्ता शब्द 'रथ्या' का ही घिसा हुआ रूप है। अंग्रेजी के Rad, Road तथा Ride शब्द रथ्या से ही निकले हैं।

स्तम्भ—खम्भे को स्तम्भ कहते हैं। स्तम्भ का अपभ्रंश थम्भ तथा धम्ब होते हैं। वृक्ष के तने के लिये प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द Stem तथा Stemn इसी से उत्पन्न हुए हैं।

प्रासाद—महल, हवेली तथा देवालयों को प्रासाद कहते हैं। राजमहल राजप्रासाद अथवा केवल प्रासाद कहलाता है। लैटिन भाषा का Palatium फ्रेंच का Palacis जर्मन का Palast एवं अंग्रेजी का Palace प्रासाद शब्द से ही घिसकर बने हैं।

खात-क्रकच आदि के माप में विशेष

खात क्रकच राशी च प्रासादायनमापनम्।
नवयवाङ्गुले हस्ते तस्य मानं प्रचक्षते॥ ३३॥

खात (गड्ढा), क्रकच (लकड़ी आदि काटने की आरी) इनका माप, प्रासाद का आँगन तथा सार्वजनिक स्थलों का क्षेत्रफल इसमें नौ यव के एक अंगुल के अनुसार माने गये हाथ (२४×९=२१६ यव=राजहस्त) से नापना चाहिये॥ ३३॥

विमर्श—सार्वजनिक वस्तुएँ अथवा जिनकी माप में विवाद सम्भव है, उन्हें राजकीय माप की इकाइयों से नापना चाहिये। राजहस्त में २१६ यव हो जाते हैं, जबकि सामान्य हाथ ८ यव के अंगुल को मानकर ८×२४=१९२ यव का ही होता है।

आठ यव के अंगुलवाले हाथ से मापने योग्य वस्तुएँ

आयोधनानि चर्माणि तथा चण्डायुधानि च।
वापीकूपप्रमाणानि तथा च गजवाजिनाम्॥ ३४॥
इक्षुयन्त्रारघट्टाश्च हलयूपयुगध्वजाम्।
अतो यानि च नावश्च शिल्पिनाम्वाप्युपस्करम्॥ ३५॥
पादुके वदशी छत्रं धर्मोद्यानानि चैव हि।
मात्राष्टयवहस्तेन न च दण्डांश्च मापयेत्॥ ३६॥

युद्धक्षेत्र, क्रीडाप्रतियोगिता के क्षेत्र आदि को आयोधन कहते हैं। इनका मापन आठ यव प्रमाण के अंगुल के अनुसार जो एक हाथ की नाप हो उससे करना चाहिये। इसी प्रकार ढाल, तलवार आदि युद्ध के उपकरणों, वापी, कूप, सरोवर, हाथी, घोड़े (अश्वशाला, गजशाला, वाहन के गैरिज), ईख पेरने का कोल्हू, अटघट्टक (रहट), हल, हल का युग (जुवा), ध्वजा, बिना जल की नाव, शिल्पियों के उपकरण, जूता, चप्पल, खड़ाऊँ, वदशी (पानी की टङ्की) तथा धर्मोद्यान आदि की माप ८ यव के प्रमाण अंगुलवाले हाथ से करना चाहिये॥ ३४-३६॥

विभिन्न प्रदेशों में माप की इकाइयों का प्रमाण

जालन्धरे हस्तसंख्या अवधे च दण्डकस्तथा।
मध्यदेशे क्रोशसंख्या द्वीपान्तरे तु योजनम्॥ ३७॥

१. जालन्धर (पंजाब, हरियाणा, कश्मीर आदि) में (प्राचीनकाल में) ग्रामादि का माप हाथों में नापा जाता था। अवध प्रान्त में दण्डकों (लट्ठों या लग्गों) में, मध्यदेश में क्रोशों में तथा द्वीपान्तर की दूरी के लिये योजनों का प्रयोग माप में करना चाहिये॥ ३७॥

हस्तादि का प्रमाण

चतुर्विंशत्यङ्गुलैस्तु हस्तमानं प्रचक्षते।
चतुर्हस्तो भवेद् दण्ड: क्रोशं तद्द्विसहस्रकम्॥ ३८॥

चौबीस अंगुल का एक हाथ होता है। चार हाथ का एक दण्ड होता है तथा दो सहस्र दण्ड का एक क्रोश होता है॥ ३८॥

विमर्श—भास्कराचार्य ने भी इसी प्रकार से हस्तादि मान का वर्णन किया है—

'यवोदरैरङ्गुलमष्टसंख्यैर्हस्ताङ्गुलै: षड्गुणितैश्चतुर्भि:।
हस्तैश्चतुर्भि: भवतीह दण्ड: क्रोश: सहस्रद्वितयेन तेषाम्॥'

इस प्रकार ४×२०००=८००० हस्त का एक क्रोश होता है।

योजनादि का प्रमाण कथन

चतुष्क्रोशं योजनन्तु वंशो दशकरैर्मित:।
निवर्त्तनं विंशतिवंशै: क्षेत्रं तच्च चतुर्भुजै:॥ ३९॥

चार क्रोश के बराबर एक योजन होता है। दश हाथ के बराबर एक वंश तथा बीस वंश का एक निवर्त्तन है। यदि वही चारों भुजाओं से युक्त है। अर्थात् बीस वंश लम्बा तथा बीस वंश चौड़ा तो वही-क्षेत्र (बीघा) कहलायेगा॥ ३९॥

विमर्श—भास्कराचार्य ने इन मापों को स्पष्ट करते हुए लिखा है—

'स्याद् योजनं क्रोश चतुष्टयेन तथा कराणां दशकेनवंश:।
निवर्त्तनं विंशतिवंशसंख्यै: क्षेत्रं चतुर्भिश्च भुजैर्निबद्धम्॥'
—लीलावती परिभाषा-प्रकरण ६

ग्रामादि के क्षेत्रफल की ८१ पदों के वास्तु में माप का कथन

शतवेश्मनि देशांश्च गृहादीनां निवर्त्तनम्।
एकाशीतिपदे नैव सर्वं स्थानं मापयेत्॥ ४०॥

एक सौ की संख्याएँ जिसमें घर हों ऐसे वास्तु को तथा गृहों के क्षेत्रफल आदि सभी को पुन: इक्यासी पद के वास्तु चक्र में नापकर बनाना चाहिये॥ ४०॥

विमर्श—'क्रोश' शब्द 'कुश्' धातु में घञ् प्रत्यय लगने से बनता है। क्रोश का अर्थ तुमुलध्वनि, चीत्कार तुमुलनाद, कोलाहल आदि होता है। प्राचीन काल के पर्यावरण में सामान्यत: जितनी दूरी तक चिल्लाने से आदमी की पुकार दूसरे आदमी के कान में पड़ जाती थी उतनी दूरी का नाम क्रोश रखा गया है।

इसी प्रकार इस क्रोशात्मक दूरी को जो आपस में योजित करता है, उसे योजन कहते हैं। चार क्रोश का एक योजन होता है।

संसार भर में लम्बाई को नापने की जो विभिन्न इकाइयाँ प्रचलित हैं, वे सभी संस्कृत शब्दों से ही व्युत्पन्न हैं तथा विश्व को भारतवर्ष की ही देन हैं। उनमें से कुछ का स्पष्टीकरण किया जा रहा है।

गज—यह गदा शब्द का अपभ्रंश है। गदा नामक अस्त्र की लम्बाई दो हाथ होती थी अत: दो हाथ के बराबर एक गदा (गजा) को भी लम्बाई की एक इकाई माना गया जो कि आधे दण्ड के बराबर का माप है। एंग्लो सेक्सन नामक पुरानी भाषा में गदा शब्द विकृत होकर प्रथम Gerd तथा Geird हुआ, फिर वही आजकल की अंग्रेजी में Yard हो गया।

फीट या फुट—मनुष्य के पैर के पंजे को संस्कृत में पद या प्रपद अथवा पाद कहते हैं। संस्कृत का यह पद शब्द ग्रीक भाषा में पैस् या पुज, लैटिन में पेस् तथा Pod=Pes गौथिक में Fotus, प्राचीन हंगेरियन भाषा में Fuoz तथा अंग्रेजी में Feet एवं Foot हो गया है। हिन्दी में पैर कहते हैं। एक पञ्जे के बराबर की लम्बाई फीट या फुट होती है, जिसमें १२ इञ्च होते हैं।

इञ्च—यह अङ्गुल का अपभ्रंश है। एक फीट में बारह इंच होते हैं।

मीटर—संस्कृत में माप को 'मिति' कहते हैं। मिति शब्द में कृ (कर) प्रत्यय लगकर मितिकृ (मितिकर) शब्द बनते हैं। यह मितिकर शब्द घिसकर प्राकृत भाषा में मितिअर तथा मितियर हुआ तथा यही यूरोप की भाषाओं में Meter, Metre, Metron (मितिकरम्) आदि हो गया है।

चौंसठ पद के वास्तु में प्रासाद आदि की माप

प्रासादा द्विविधाः प्रोक्ताश्चलाः स्थिरतरास्तथा।
मण्डपाश्च चतुष्षष्टिः प्रकाराः देवताश्रयाः॥ ४१॥
विशेषेणापि ये छात्रस्तथा ये चाष्टमण्डपाः।
चतुष्षष्टि पदेनैव सर्वानेतान् प्रकल्पयेत्॥ ४२॥

चल तथा स्थिर दोनों प्रकार के प्रासाद तथा मण्डप—ये सभी चौंसठ कोठे के वास्तु में नापना चाहिये और उन्हें वास्तुदेवों के आश्रित समझना चाहिये॥ ४१॥

विशेषरूप से जो आठ प्रकार के मण्डप तथा छत्र (तम्बू आदि) हैं, उन्हें चौंसठ पद के वास्तु में ही कल्पित करना चाहिये॥ ४२॥

माप हेतु आधार व्यक्ति

नगरग्रामकोटादिस्थावराणि च भूभृताम्।
स्थपतिस्था स्थितयदि प्रविभागेन मापयेत्॥ ४३॥

नगर-ग्राम कोट (कला) तथा राजाओं के गृहों के निर्माण हेतु किसके हाथ से नाप की जाय इसके लिये कहते हैं या तो वह राजा के हाथ से माप निर्धारित करें अथवा जो स्थपति (प्रधान शिल्पी) हो, उसके हाथ से अथवा उस स्थपति के यहाँ स्थित किसी साधु-सन्त, अतिथि के हाथ से माप कराना चाहिये॥ ४३॥

विमर्श—वास्तुशास्त्र में हाथ की माप का निर्धारण इस प्रकार किया गया है। जिस व्यक्ति के हाथ को माप का आधार बनाना हो, उसको सीधा खड़ा कर दें। उसे अपनी दोनों भुजाएँ आकाश में ऊपर सीधी उठाकर रखनी चाहिये। फिर उस व्यक्ति के पैर के अंगूठे से लेकर दाहिने हाथ की मध्यमा अंगुली के सिरे तक एक सूत्र (डोरा या फीते) से दूरी नापनी चाहिये। इस दूरी के पाँच बराबर भाग करने पर एक भाग हाथ कहलाता है—

'कृतोर्ध्वबाहो समभूगतस्य कर्तुः शरांशः प्रपदोच्छ्रितस्य।
यो वा सहस्तोऽस्य जिनांशकोऽपि स्यादङ्गुलं तद् इभांशको यः॥'
—मण्डपकुण्डसिद्धि १। ३

शंकु के लिये वृक्षच्छेदन विधि

स्निग्धादि भूभागसमुत्थितानां
न्यग्रोधबिल्वद्रुमखादिराणाम्।
शमीवटोदुम्बरदेवदारु-
क्षीरीस्वदेशोत्थफलद्रुमाणाम्॥ ४४॥
उपोषितः शिल्पिजनस्तु येषां,
मध्यात्तु तीक्ष्णेन कुठारकेन।
छिन्द्यात्ततो दिक्पतितोत्तरस्यां
शुभे विलग्ने परिगृह्य शङ्कुम्॥ ४५॥
करप्रमाणं परतश्चतस्त्र-
स्तदर्धमानेन ततोऽनुगृह्य।
नीत्वा न्यसेत्तानि गृहे च तावद्
यावत् प्रतिष्ठा न समयोश्च शङ्कोः॥ ४६॥

स्निग्ध भूमि में उत्पन्न वट, पीपल, बेल, बैर, छेंकुर, गूलर, देवदारु आदि क्षीरी वृक्षों में जो उस स्थान के समीप उपलब्ध हो उपवास करके शिल्पी लोग तेज कुल्हाड़ी से मध्यभाग में प्रहार करें। जो शाखा उत्तरदिशा में गिरे उसे शुभलग्न में लाकर चार हाथ या दो हाथ शुभ भूमि में उस लकड़ी से निर्मित शंकु को तब तक के लिये रख दें जब तक कि उस शंकु को शिलान्यास के समय भूमि में स्थापित न किया जाय॥ ४४-४६॥

विमर्श—शंकु की लम्बाई बारह अंगुल होती है, जिसमें चार-चार अंगुल के तीन समान भागों की कल्पना करें अथवा उस दूरी को चिह्नित कर दें। उसके एक सिरे का भाग गोल तथा नोंकदार बनाएँ, मध्य का भाग अष्टास्र (आठ कोणोंवाला) तथा अन्य सिरे का शेष भाग चतुरस्र (चौकोर) रखें। यथा—

'स्याच्चतुर्विंश विंशाशाष्टि द्वादशाङ्गुलकैः क्रमात्।
विप्रादीनां शङ्कुमानं स्वर्णवस्त्राद्यलङ्कृतम्॥
शङ्कुं त्रिधा विभज्यादौ चतुरस्रं ततः परम्।
अष्टास्रं च तृतीयांशमजस्रमृज्वर्णकम्॥'

ब्राह्मणों के लिये २४ अंगुल, क्षत्रियों के लिये २० अंगुल, वैश्यों के लिये १६ अंगुल तथा अन्य सबके लिये १२ अंगुल का शंकु बनवाना चाहिये। ऐसा उल्लेख भी वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में मिलता है। वसिष्ठसंहिता के मतानुसार सभी वर्णों के लिये बारह अंगुल का शंकु ग्रहण करने का निर्देश है। यह शंकु वास्तुपुरुष की नाभि में गाड़ा जाता है।
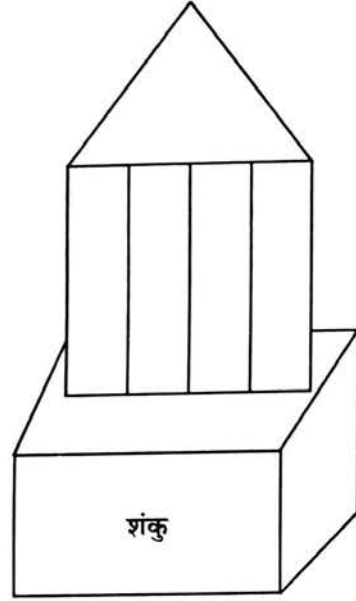
शिलाओं के स्वरूप एवं दिशाओं का कथन

नन्देति सूक्तिः कथितैशकोणे
हुताशनाख्ये सुभगेति चान्या।
सुमङ्गली नैर्ऋतभागसंस्था
भद्रङ्करी मारुतकोणयाता॥ ४७॥
वृषाश्वपुन्नागपदाङ्कितानां
नन्दादिकानां क्रमशः शिलानाम्।
अखण्डितानां सुदृढी कृतानां
सुलक्षणानां ग्रहणं निरुक्तम्॥ ४८॥

१. नन्दा नाम की शिला को ईशानकोण में स्थापित करें, इस पर वृषभ के पैर का चिह्न अंकित करें।

२. शुभता नाम की शिला पर अश्व का पैर अंकित करें तथा उसके अग्निकोण में स्थापित करें।

३. सुमङ्गली नाम की तीसरी शिला पर पुरुष (मनुष्य) का चिह्न बनवाना चाहिये तथा इसे नैर्ऋत्य कोण में स्थापित करना चाहिये।

४. भद्रङ्करी नामक चौथी शिला पर नागपद (हाथी के पैर) का चिह्न अंकित कर उसे वायव्य कोण में स्थापित करना चाहिये। ये शिलाएँ अखण्डित, सुदृढ़ और सुलक्षण हों॥ ४७-४८॥

कूर्मादि की स्थापना

कूर्मश्च शेषश्च जनार्दनः श्रीः
ध्रुवश्च मध्ये भवनस्य संस्थाः।
निवेशनीया क्रमशः शिलानां
प्रमाणमेतन्मुनिभिः प्रदिष्टम्॥ ४९॥

शिलाओं के मध्य में भवन के मध्य संस्थिति के लिये (स्वर्णादि निर्मित) कूर्म-शेषनाग, जनार्दन (विष्णुः) तथा श्रीः (लक्ष्मी) को भी स्थापित करना चाहिये। अब आगे शिलाओं के प्रमाण को मुनियों ने जैसा कहा है उसे कहता हूँ॥ ४९॥

चारों वर्णों के लिये शिलाओं का अङ्गुलात्मक प्रमाण

शिलाप्रमाणं क्रमशः प्रदिष्टं
वर्णानुपूर्व्येण तथाङ्गुलानाम्।
अथैकविंशं घनविश्वनन्दा
विस्तारके व्यासमितं तदर्धम्॥ ५०॥

१. ब्राह्मणों के लिये इक्कीस अंगुल की शिला, २. क्षत्रियों के लिये सत्रह अंगुल की शिला, ३. वैश्यों के लिये १३ अंगुल लम्बी शिला तथा ४. शूद्रों के लिये नौ अंगुल की लम्बी शिला होनी चाहिये।

प्रत्येक शिला की चौड़ाई उसकी लम्बाई से आधी होनी चाहिये॥ ५०॥

ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	वर्ण
एकविंश	घन	विश्व	नन्द	शिला का दैर्घ्य शब्दों में
२१ अंगुल	१७ अंगुल	१३ अंगुल	९ अंगुल	शिला का दैर्घ्य अंकों में (लम्बाई)
१०$\frac{१}{२}$ अंगुल	८$\frac{१}{२}$ अंगुल	६$\frac{१}{२}$ अंगुल	४$\frac{१}{२}$ अंगुल	शिला का विस्तार (चौड़ाई)
५$\frac{१}{४}$ अंगुल	४$\frac{१}{४}$ अंगुल	३$\frac{१}{४}$ अंगुल	२$\frac{१}{४}$ अंगुल	पिण्डिका (मोटाई)

पिण्डिका के प्रमाण का कथन

तदर्धमानं त्वथ पिण्डिका स्याद्
ऊर्ध्वाधिका न्यूनतरा न कार्या।
प्रमाणहीना सुतनाशकारिणी
व्यङ्गाव्ययं भ्रष्टविवर्णदेहा॥ ५१॥

शिला (ईंट) की जितनी चौड़ाई हो उसके आधे प्रमाण में उसकी पिण्डिका (मोटाई) बनानी चाहिये। इससे न्यूनाधिक नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार से लम्बाई एवं चौड़ाई भी न्यूनाधिक न रखें। प्रमाणहीन ईंट लगाने से पुत्रहानि होती है। साफ-सुथरी अव्यंग, अखंडित तथा त्रुटिरहित शिलाएँ ग्रहण करनी चाहिये॥ ५१॥

गृहारम्भ के समय पूजार्थ निम्न संभार (सामग्री) की व्यवस्था करें—

समुद्रीरत्न, सुवर्ण, रजत, सभी अन्नों के बीज , गन्ध, शर, कुशा, दर्भ, श्वेतपुष्प, घृत, मधु, गोरोचन, आमिष, मद्य, अनेक प्रकार के फल, नैवेद्य के लिये पक्वान्न (पकवान), वस्त्र-आभूषण। ब्राह्मणादि वर्ण के अनुसार श्वेत-रक्त-पीत तथा कृष्णवर्ण के आभूषणादि तथा पुष्पादि की व्यवस्था करें तथा समाहित चित्त से वास्तुविद्या विधान को जाननेवाले विद्वानों का सहयोग प्राप्त करें॥ ५९-६२॥

विमर्श—गृह की नींव में सभी प्रकार के अनाज के बीज रखने की परम्परा वैदिक है। हड़प्पा-मोहनजोदड़ो, रोपड़ तथा लोथल आदि स्थानों की खुदाई में पुरातत्त्ववेत्ताओं को गेहूँ के दाने प्राप्त हुए हैं, जो कि उस सभ्यता को वैदिक सभ्यता अथवा हिन्दू सभ्यता ही प्रमाणित करते हैं। लार्ड मैकाले की शिक्षा-पद्धति के संस्कारित तथा कथित विद्वान् मनमाने निष्कर्ष निकालते रहते हैं—यह विडम्बना ही है। अतः सिन्धु घाटी की सभ्यता को भारतीय सभ्यता से किसी भिन्न प्रकार की सभ्यता होने का निष्कर्ष निकालना ठीक नहीं है।

इस प्रकार श्रीविश्वकर्मप्रकाश वास्तुशास्त्र ग्रन्थ की महर्षि अभयकात्यायनविरचित 'अभया' हिन्दी टीका का चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

●

पञ्चमोऽध्यायः

शिलान्यासाध्यायः

विषय-प्रवेश

प्रोक्तं यद् भवता सम्यक् प्रासादानां यथाक्रमम्।
अधुना श्रोतुमिच्छामि वास्तुदेहस्य लक्षणम्॥ १॥

हे विश्वकर्मन्! आपने इस वास्तुशास्त्र में यथाक्रम प्रासादों के लक्षणों का वर्णन किया, अब मैं वास्तुपुरुष के शरीर के लक्षण सुनना चाहता हूँ॥ १॥

विश्वकर्मा का कथन

पुरा स भगवान् वास्तुपुरुषः परिकीर्तितः।
पूर्वोत्तरमुखो वास्तुपुरुषः परिकीर्तितः॥ २॥
देवैः सेन्द्रादिभिः तस्मिन् काले भूमौ निपातितः।
अवाङ्मुखो निपतित ईशान्यां दिशि संस्थितः॥ ३॥

प्राचीन काल में उन भगवान् (शिव ने) वास्तुपुरुष के सम्बन्ध में बताया था, वह वास्तुपुरुष पूर्व एवं उत्तर दिशा के कोने (ईशानकोण) की ओर शिर करके रहता है—ऐसा कहा गया है। देवताओं ने उस वास्तुपुरुष को अधोमुख (नीचे भूमि की ओर मुख तथा ऊपर की ओर पीठ करके) पटक दिया था। वह इसी स्थिति में ईशान को शिर करके प्रत्येक भूखण्ड में स्थित रहा है॥ २-३॥

चौंसठ पद के वास्तु में देवताओं की स्थिति

शिरोभागे स्थितो वह्निमुखे आपः स्तने यमः।
आपवत्सश्चोत्तरस्यां सव्यमार्गसमाश्रितः॥ ४॥
पर्जन्याद्यास्तथा नासा दृक्छ्रुवोः स्थलांसगाः।
सत्याद्या पञ्च च भुजे विन्यस्य पुरुषोत्तमे॥ ५॥
हस्ते सविता सावित्री वितथोऽथ गृहक्षतः।
पार्श्वे जठरे विवस्वांश्च आस्थितः परितस्सदा॥ ६॥
ऊरुजानू जङ्घस्फिचो यमाद्यैः परिवेष्टिताः।
एते दक्षिणपार्श्वस्था वामपार्श्वे तथैव च॥ ७॥
शेषा दण्डजयन्तौ च मेढ्रे ब्रह्मा हृदि स्थितः।
पादे समाश्रित इति पितृभिः परिवारितः॥ ८॥
चत्वारिंशत्पञ्चयुक्ताः परितो ब्रह्मणस्तथा।
चतुःषष्टिपदे वातौ देवा ब्रह्मादयस्तथा॥ ९॥

कोणे तेषां प्रकर्त्तव्यास्तिर्यक्कोष्ठगताः गजाः।
चतुःषष्टिपदो वास्तुः प्रासादे ब्रह्मणस्मृतः॥ १०॥
ब्रह्मा चतुष्पदो ह्यत्र कोणाद्यर्थं पदाः स्मृताः।
चरकीं विदारींश्चैव पूतनां पाप राक्षसीम्॥ ११॥
षोडश कोणगाः सार्धपदाश्चाथोऽभयस्तथा।
विंशति द्विपदाश्चैव चतुःषष्टिपदे स्मृताः॥ १२॥

वास्तुपुरुष के शिर में अग्नि, मुख में आपदेवता, स्तनों में यम, उत्तर में आपवत्स वामस्तन में रहता है। पर्जन्यादि देवता क्रमशः नासिका, नेत्र, कर्ण तथा उरस् (छाती के ऊपरी भाग) तथा कन्धे पर रहते हैं। सत्य आदि पाँच देवता भुजा में रहते हैं। हाथ में सूर्य, सावित्री, वितथ तथा गृहक्षत रहते हैं। पार्श्व में तथा उदर में विवस्वान् आदि रहते हैं। ऊरु (घुटने से ऊपर का भाग तथा कमर से नीचे का) जानु (घुटना), जङ्घा (पिंडली) तथा स्फिच (कूल्हे) में यम आदि देवता स्थापित होते हैं। ये सब दक्षिण पार्श्व के देवता हैं। इसी प्रकार वामपार्श्व में जानना चाहिए। शेष, दण्डायुध, जयन्त—ये मेढ़ (लिंग) में तथा हृदय में ब्रह्मा निवास करते हैं। पैर में पितृ इत्यादि देवताओं का स्थान है। इस प्रकार मध्य में ब्रह्मासहित उसके आसपास पैंतालीस देवता रहते हैं। इस प्रकार से चौंसठ पद (कोठे) के वास्तु में देवता रहते हैं। उन पैंतालीस देवताओं के बाहरी भाग में तिरछे में (दिशा-विदिशा में) आठ दिक्पाल होते हैं। ब्रह्माजी ने यह चौंसठ कोठे का वास्तुमण्डल प्रासाद (देवालय=मन्दिर-गुरुद्वारा आदि) में कहा है। कोणों में चरकी-विदारी-पूतना एवं पाप राक्षसी की स्थापना करे। कीलों में १६ अर्धपद दोनों ओर होते हैं। २० द्विपदकोष्ठ चौंसठ कोटि के वास्तु में होता है॥ ४-१२॥

विमर्श—आगे विभिन्न वास्तुमण्डल देखें।

चौंसठ पद (कोष्टक) का वास्तुमण्डल
(मन्दिर एवं मूर्ति की प्रतिष्ठा हेतु)

ईशान — पूर्व — अग्निकोण

उत्तर (बायीं ओर) — दक्षिण (दायीं ओर)

शिखि १ / दिति ३२	पर्जन्य	जयन्त	कुलिश	सूर्य	सत्य	भृश	आकाश ८ / वायु ९
अदिति	३१ २	३	४	५	६	७ पूषा	१०
सर्प	३०	३४ अदभ्यो आपवत्स ३३	अर्यमा	३५	सावित्री ३६ सा० ३७	वितथ	११
सोम	२९	४४	ब्रह्मा		विवस्वान्	गृहक्षत	१२
भल्लाट	२८	पृथ्वीधर	४५		३८	यम	१३
मुख्य	२७	रुद्र ४२ यक्ष्म ४२	मित्र	४१	४२ जयन्त विबुध ३९	गन्धर्व	१४
अहि	२६ शेष	असुर	वरुण	पुष्पदन्त	सुग्रीव	भृङ्गराज	१५
रोग २५ पाप २४	२३	२२	२१	२०	१९	दौवारिक १८	१७ पितृ मृग १६

वायव्य — पश्चिम — नैर्ऋत्य

गृहवास्तुचक्रम् (८१ पद का)

पूर्व

६१ ॐ ईशानाय नमः (श्वेत) ॐ चरक्यै नमः ४९ धूम्र

ॐ ब्रह्मणे नमः: रक्त ६२

५४ ॐ इन्द्राय नमः (पीत या रक्त) ५० ॐ स्कंदाय नमः: (रक्त या कृष्ण)

ॐ (रक्त) ५१ ॐ अग्नये नमः ॐ विदार्यै नमः ४७ (रक्त)

उत्तर: ५३ ॐ पिलिपिच्छाय नमः (पीत) ६० ॐ सोमाय नमः (श्वेत)

दक्षिण: ५६ ॐ यमाय नमः (कृष्ण) ५१ ॐ अर्यम्णे नमः

ॐशिखिने नमः रक्त १	ॐ पर्जन्याय नमः पीत २	ॐ जयन्ताय नमः पीत ३	ॐ कुलिशाय नमः पीत ४	ॐ सूर्याय नमः रक्त ५	ॐ सत्याय नमः श्वेत ६	ॐ भूताय नमः कृष्ण ७	ॐ आकाशाय नमः कृष्ण ८	ॐ वायवे नमः धूम्र ९
ॐ दित्यै नमः पीत ३२	ॐअद्भ्या नमः श्वेत ३३						ॐ सवित्रे नमः श्वेत ३४	ॐ पूषणे नमः रक्त १०
ॐ अदित्यै नमः पीत ३१		ॐआर्षवत्साय नमः श्वेत ४४	ॐ अर्यम्णे नमः कृष्ण ३७			ॐ सवित्रे नमः रक्त ३८	ॐ वितथाय नमः श्वेत ११	
ॐ सर्पेभ्यो नमः कृष्ण ३०		ॐ पृथ्वीधराय नमः रक्त ४३	वृषवा ॐ ब्रह्मणेस्तु ४५ नमः नवपद पीत या श्वेत			ॐ विवस्वते नमः श्वेत ३९	ॐ गृहक्षताय नमः पीत १२	
ॐ सोमाय नमः श्वेत २९							ॐ यमाय नमः कृष्ण १३	
ॐ भल्लाटाय नमः कृष्ण २८							ॐ गान्धर्वाय नमः रक्त १४	
ॐ मुख्याय नमः रक्त २७		ॐ राजयक्ष्मणे नमः रक्त ४२	ॐ मित्राय नमः श्वेत ४१			ॐ बिबुधाधिपाय नमः रक्त ४०	ॐ भृङ्गराजाय नमः कृष्ण १५	
ॐ अहिर्बुध्न्याय नमः रक्त २६	ॐ रुद्राय नमः रक्त ३६	ॐ शोषाय नमः कृष्ण २३	ॐ असुराय नमः पीत २२	ॐ वरुणाय नमः श्वेत २१	ॐ पुष्पदन्ताय नमः रक्त २०	ॐ सुग्रीवाय नमः श्वेत १९	ॐ जयन्ताय नमः श्वेत ३५	ॐ मृगाय नमः पीत १६
ॐ रागाय नमः रक्त २५	ॐ पापाय नमः पीत २४						ॐ दौवारिकाय नमः रक्त १८	ॐपितृभ्यो नमः रक्त १७

५९ ॐ वायवे नमः ५५ ॐ पापराक्षस्यै नमः (कृष्ण)

५२ ॐ जृम्भकाय नमः (रक्त) ५८ ॐ वरुणाय नमः (श्वेत)

ॐ अनन्ताय नमः ६३ (कृष्ण)

५७ ॐ नैर्ऋत्ये नमः (श्वेत) ५३ ॐ पूतनायै नमः (पीत या श्वेत)

पश्चिम

वास्तुशान्ति के अवसर

जीर्णोद्धारे तथोद्याने तथागृहनिवेशने।
नवप्रासादभवने प्रासादपरिवर्त्तने॥ १३॥
द्वाराभिवर्त्तने तद्वत प्रासादेषु गृहेषु च।
वास्तूपशमनं कुर्यात् पूर्वमेव विचक्षणः॥ १४॥

देवालय अथवा गृह के जीर्णोद्धार में, उद्यान-निर्माण करने पर, गृहप्रवेश में नवीन देवालय या गृह के निर्माण के समय, प्रासाद-परिवर्तन में, गृह में द्वार-परिवर्तन के अवसर पर चाहे प्रासाद देवालय अथवा (राजभवन) के परिवर्तन, परिवर्धन आदि करने से पूर्व में ही वास्तुशान्ति करना चाहिये॥ १३-१४॥

शङ्कुरोपण

वास्तुमण्डलकोणेषु ईशानादि क्रमेण च।
शङ्कूनां रोपणं शस्तं प्रादक्षिण्येन मार्गतः॥ १५॥

वास्तुमण्डल (वास्तुक्षेत्र अथवा वास्तुपीठ) के कोनों पर ईशानादि क्रम से (अर्थात् ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य तथा वायव्य इस क्रम से) प्रादक्षिण्य मार्ग से दाहिनी ओर को चलते हुए चार शंकुओं को गाड़ना चाहिये॥ १५॥

शङ्कुरोपण का मन्त्र (प्रार्थना)

विशन्तु भूतले नागाः लोकपालाश्च सर्वशः।
अस्मिन् गृहेऽवतिष्ठन्तु आयुर्बलकराः सदा॥ १६॥

हे नागो! तुम भूतल में प्रवेश करो; हे लोकपालो!! इस घर (अथवा प्रासाद, उद्यान, कूप-तड़ाग आदि जो भी हो) में उत्तम निवास करते हुए आयु तथा बल सदैव प्रदान करते रहो॥ १६॥

नामपूर्वक शङ्कुरोपण का निर्देश

प्रासादारामवापीषु कूपोद्यानेषु चैव हि।
तन्नाम पूर्विका रोप्या कोणे शङ्कु चतुष्टयम्॥ १७॥

देवालय, वापी (बावड़ी), कूप (कुआँ-नलकूप आदि भी) उद्यान (बगीचा), इन सबमें ऊपर का मन्त्र बोलते हुए तथा उसमें इनमें से जो भी कार्य हो, उस कार्य का नाम लेकर चारो दिशाओं में शंकुओं का रोपण करें॥ १७॥

विमर्श—तात्पर्य यह है कि उक्त मन्त्र में इस प्रकार परिवर्तन करें—

प्रासाद में— 'विशन्तु भूतले नागाः लोकपालाश्च सर्वशः।
प्रासादेऽस्मिन् तिष्ठन्तु आयुर्बलकराः सदा॥'

आराम में— 'विशन्तु भूतले नागाः लोकपालाश्च सर्वशः।
आरामेऽस्मिन् तिष्ठन्तु आयुर्बलकराः सदा॥'

कूप में— 'विशन्तु भूतले नागाः लोकपालाश्च सर्वशः।
अस्मिन् कूपेऽवतिष्ठन्तु आयुर्बलकराः सदा॥'

उद्यान में— 'विशन्तु भूतले नागाः लोकपालाश्च सर्वशः।
उद्यानेऽस्मिन् तिष्ठन्तु आयुर्बलकराः सदा॥'

इस प्रकार कार्य के अनुसार मन्त्र की शब्दावली में परिवर्तन करने का निर्देश है।

अग्नि आदि देवों के लिये बलि का मन्त्र

अग्निभ्योऽप्यथ सर्पेभ्यो ये चान्ये तत्समाश्रितः।
तेभ्यो बलिं प्रयच्छामि पुण्यमोदनमुत्तमम्॥ १८॥

अग्नि तथा सर्प आदि जितने देवता इस वास्तु में निवास करते हों, उन सबके लिये मैं पुण्य ओदन (पवित्र भात) की बलि प्रदान करता हूँ॥ १८॥

इक्यासी पद के वास्तु की निर्माण विधि

एकाशीतिपदं कुर्याद्रेखाभिः कनकेन च।
पश्चात् पिष्टेन चालिख्य सूत्रेणालोड्य सर्वतः॥ १९॥
दशपूर्वायता रेखा दश चोत्तरायताः।
सर्वा वास्तुविभागेषु विज्ञेया नवकानव॥ २०॥

स्वर्ण की शलाका से प्रथम रेखा बनाकर फिर उन रेखाओं पर पिष्ट (पिसा आटा, रंग, कोयला, हल्दी, गेरू या रोली) में सूत्र (धागे) को आलोडित करके दस रेखा पूर्व से पश्चिम की ओर तथा दस रेखा उत्तर से दक्षिण की ओर बनायें। ऐसा करने से नौ कोष्ठकों (पदों) के ९ नवक होंगे, जिससे ९ × ९ = ८१ पद का वास्तुमण्डल बन जायेगा॥ १९-२०॥

इक्यासी पद के वास्तु की रचना

ईशान पूर्व आग्नेय

उत्तर

१	२	३	४	५	६	७	८	९	प्रथम नवक
१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	द्वितीय नवक
१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	तृतीय नवक
२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	चतुर्थ नवक
३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	दक्षिण पं.नवक
४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	षष्ठ नवक
५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	सप्तम नवक
६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	अष्टम नवक
७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	नवम नवक

वायव्य पश्चिम नैर्ऋत्य

८१ पद में पूर्वापरा रेखाओं के नाम

शान्ता यशोवती कान्ता विशाला प्राणवाहिनी।
सती च सुमनानन्दा सुभद्रा सुस्थिता तथा॥ २१॥
पूर्वा परागता ह्येता उदग्यामाश्रितस्तथा।

१. शान्ता, २. यशोवती, ३. कान्ता, ४. विशाला, ५. प्राणवाहिनी, ६. सती, ७. सुमना, ८. नन्दा, ९. सुभद्रा तथा वृत्त १०. सुस्थिता ये पूर्व से पश्चिम की ओर खींची जानेवाली रेखाओं के नाम (८१ पद के वास्तुमण्डल में) हैं। अब उत्तर से दक्षिण की ओर गयी हुई रेखाओं के नाम कहता हूँ॥ २१-२१½॥

पूर्व

उत्तर / दक्षिण
१. शान्ता
२. यशोवती
३. कान्ता
४. विशाला
५. प्राणवाहिनी
६. सती
७. सुमना
८. नन्दा
९. सुभद्रा
१०. सुस्थिता

पश्चिम

उत्तर-दक्षिण की दस रेखाओं के नाम

हिरण्या सुव्रता लक्ष्मीर्विभूतिर्विमला प्रिया॥ २२॥
जया काला विशोका च तथेन्द्रा दशमी स्मृता।
एकाशीतिपदे ह्येता शिराश्च परिकीर्तिताः॥ २३॥

१. हिरण्या, २. सुव्रता, ३. लक्ष्मी, ४. विभूति, ५. विमला, ६. प्रिया, ७. जया, ८. काला, ९. विशोका तथा १०. इन्द्रा—ये दस रेखाएँ एकाशीति (८१) पद के वास्तु-मण्डल में उत्तर से दक्षिण होती हैं॥ २२-२३॥

पूर्व

उत्तर									दक्षिण
१. हिरण्या	२. सुव्रता	३. लक्ष्मी	४. विभूति	५. विमला	६. प्रिया	७. जया	८. काला	९. विशोका	१०. इन्द्रा

पश्चिम

चौंसठ पद के वास्तु में पूर्वापरा नौ शिराएँ (रेखाएँ)

श्रिया यशोवती कान्ता सुप्रियाऽपि परा शिवा।
सुशोभा सधना ज्ञेया तथेभा नवमी स्मृता॥ २४॥
पूर्वापरा तथा ह्येता चतुःषष्टिपदे स्मृताः।

१. श्रिया, २. यशोवती, ३. कान्ता, ४. सुप्रिया, ५. परा, ६. शिवा, ७. सुशोभा, ८. सधना तथा ९. इभा। ये चौंसठ पद के वास्तु में ये नौ शिराएँ (रेखाएँ) पूर्व से पश्चिम की ओर जानना चाहिये॥ २४-२४½॥

चौंसठ पद के वास्तु में उत्तरा-दक्षिणा नौ शिराएँ (रेखाएँ)

धन्या धरा विशाला च स्थिरा रूपा गदा निशा॥ २५॥
विभवा प्रभवा चान्या सौम्या सौम्याश्रिता शिरा।
पदस्याष्टांशको भागः तत्प्रोक्तं मर्मसंज्ञकम्॥ २६॥

१. धन्या, २. धरा, ३. विशाला, ४. स्थिरा, ५. रूपा, ६. गदा, ७. निशा, ८. विभवा तथा ९. प्रभवा—ये नौ शिराएँ (रेखाएँ) चौंसठ पद के वास्तु में उत्तर से दक्षिण को जाती हैं।

पद का आठवाँ भाग 'मर्म' होता है॥ २५-२६॥

विमर्श—जिस प्रकार इक्यासी पद के वास्तु में ९ × ९ = ८१ नवक होते हैं तथैव चौंसठ पद के वास्तु में ८ × ८ = ६४ अष्टक होते हैं। इन नवकों एवं अष्टकों की ही पद संज्ञा होती है।

इक्यासी पद के वास्तु का उपयोग गृह-निर्माण, गृहप्रवेश आदि में करते हैं तथा चौंसठ पद के वास्तु का प्रयोग देवालय आदि की प्रतिष्ठा में किया जाता है। जैसा कि कहा गया है—

'एकाशीतिपदं वास्तु गृहकर्मणि शस्यते।
चतुःषष्टिपदे वास्तु प्रासादे देवभूभुजाम्॥'

पूर्व

उत्तर / दक्षिण
१. श्रिया
२. यशोवती
३. कान्ता
४. सुप्रिया
५. परा
६. शिवा
७. सुशोभा
८. सधना
९. इभा

पश्चिम

उत्तर									दक्षिण
	१. धान्या	२. धरा	३. विशाला	४. स्थिरा	५. हृपा	६. गदा	७. निशा	८. भिवबा	९. प्रभवा

ईशान — पूर्व — आग्नेय

१	२	३	४	५	६	७	८	प्रथम अष्टक
९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	द्वितीय अष्टक
१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	तृतीय अष्टक
२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	चतुर्थ अष्टक
३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	पञ्चम अष्टक
४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	षष्ठ अष्टक
४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	सप्तम अष्टक
५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	अष्टम अष्टक

उत्तर — दक्षिण

वायव्य — पश्चिम — नैर्ऋत्य

अंगुल तथा शिरामान का कथन

पदहस्तसंख्यासमं निवेशोऽङ्गुलानि च।
विस्तीर्णवंशव्यासोर्द्धं शिरामानं प्रचक्षते॥ २७॥

पूर्वापरा तथा उदग्दक्षिणा जो दस-दस रेखाएँ हैं, वे शिरा कही जाती हैं। वास्तु में एक पद का जितना विस्तार (चौड़ाई) हो, उतने अंगुल एक वंश का विस्तार होता है तथा वंश के विस्तार या व्यास से ड्योढ़ा शिरा का विस्तार होता है॥ २७॥

विमर्श—वंश सूत्र तथा अतिमार्ग के स्थानों के सम्बन्ध में आचार्य वराहमिहिर का कथन है कि—

'रोगाद्वायुं पितृतो हुताशनं शोषसूत्रमपि वितथात्।
मुख्याद्भ्रशं जयन्ताच्च भृङ्गमदितेश्च सुग्रीवम्॥
तत्सम्पाता नवये तान्यति मर्माणि सम्प्रदिष्टानि।
यश्च पदस्याष्टांश तत्प्रोक्तं मर्मपरिमाणम्॥'

—वृहत् संहिता ५३। ६३-६४

अर्थात् रोग से वायु तक, पितृ से अग्नि (शिखि) तक, वितथ से शोष तक, जयन्त से भृङ्ग तक तथा अदिति से सुग्रीव तक सूत्र को बाँधना चाहिये। इन सूत्रों के

परस्पर सम्पात के ९ स्थान होते हैं, वे वास्तुपुरुष के अति मर्मस्थान हैं। एक पद के अष्टमांश के बराबर मर्म का परिमाण होता है, यह बात ऊपर के २६वें श्लोक के अन्तिम चरण में कही जा चुकी है।

वंश—रोग से वायु तक तथा पितृ से अग्नि तक जो सूत्र दिया जाता है, वह वंश कहा जाता है।

रज्जु—वितथ से शोकपर्यन्त, मुख्य से भृशपर्यन्त, जयन्त से भृंगराज तक तथा सुग्रीव से अदितिपर्यन्त जो सूत्र दिया जाता है, वह रज्जु कहलाता है। जैसा कि कहा गया है—

'रोगाद्वायुं नयेत् सूत्रं पितृतोऽथ हुताशनम्।
एतत् सूत्रद्वयं प्रोक्तं मुनिभिर्वंशसंज्ञितम्॥
वितथाच्छोषकं चान्यद् भृशं मुख्यात्तथा नयेत्।
जयन्ताद् भृङ्गराजाख्यं सुग्रीवमदितेस्तथा॥
एतच्चतुष्टयं प्रोक्तं रज्जुसंज्ञं मनीषिभि:॥'

भवन-निर्माण तथा उपयोग में मर्म स्थानों का बचाव

सम्पाता अपि वंशानां मध्यमानि समानि च।
पदानां पातितान् विद्यात् सर्वाणि भूयदान्यपि॥ २८॥
न तानि पीडयेत्प्राज्ञोऽशुचिभाण्डैश्च कीलकै:।
स्तम्भैश्च शल्यदोषैश्च गृहस्वामिषु पीडनम्॥ २९॥
तस्मिन्नवयवे तस्य बाधा चैव प्रजायते।

पदों के ठीक-ठीक मध्य भागों में वंशों (कोण से कोणगत सूत्रों) का परस्पर सम्पात जिस स्थान पर होता है, वह मर्म होता है। समझदार व्यक्ति को चाहिये कि उन मर्म स्थानों का अपवित्र भाण्डों (जूठे-गन्दे बर्तनों) स्तम्भों तथा कीलों आदि से पीडित न करे। यदि पीड़ित करता है तो उस भाग में वास्तुपुरुष का जो अंग होता है, गृहस्वामी के उसी अंग में पीड़ा होती है॥ २८-२९½॥

विमर्श—आचार्य वराहमिहिर भी मर्मस्थानों के बचाव का निर्देश करते हुए कहते हैं—

'सम्पातो वंशानां मध्यानि समानि यानि च पदानाम्।
मर्माणि तानि विन्द्यान्न तानि परिपीडयेत्प्राज्ञ:॥
तान्यशुचिभाण्डकीलस्तम्भाद्यै: पीडितानि शल्यैश्च।
गृहभर्त्तुस्तत्तुल्ये पीडामङ्गे प्रयच्छन्ति॥'

शल्य ज्ञान का प्रकार

कण्डूयते यदङ्गं वा गृहस्वामी तथैव च॥ ३०॥
होमकाले च यज्ञादौ तथा भूमिपरीक्षणे।
अग्नेर्वा विकृतिर्यत्र तत्र शल्यं विनिर्दिशेत्॥ ३१॥

यज्ञकाल (होम या हवन करते समय) तथा भूमि-परीक्षा के समय यजमान (गृहस्वामी) अपने शरीर के जिस अंग को खुजलाये तो भूमि के भीतर वास्तुपुरुष के उसी अंग (स्थान) पर शल्य जानना चाहिये। अथवा यज्ञमण्डप में जिस भाग में अग्नि आदि से विकृति उत्पन्न हो जाये तो यज्ञशाला के उसी भाग में भूमि से नीचे शल्य है। ऐसा निर्देश दैवज्ञ को कर देना चाहिये॥ ३०-३१॥

शल्य की धातु से फलकथन

धनहानिर्दारुमये पशुपीडास्थिसम्भवे।
रोगस्यापि भयं प्रोक्तं नागदन्तोऽपि दूषकः॥ ३२॥

यदि भूमि में काष्ठशल्य हो तो धनहानि होती है। अस्थि का शल्य होने पर पशुपीड़ा होती है तथा रोगभय भी होता है। यदि हाथीदाँत का शल्य हो तो लोक से दूषण (बदनामी) प्राप्त होती है॥ ३२॥

विमर्श—यहाँ केवल तीन प्रकार के शल्यों का फल विश्वकर्मा ने दिया है, परन्तु श्रीवराहमिहिर और अधिक प्रकार के शल्यों का फल बताते हैं—

'धनहानिर्दारुमध्ये पशुपीडारुग्भयानि चास्थिकृते।
लोहमये शस्त्रभयं कपालकेशेषु मृत्युः स्यात्॥
अङ्गारेस्तेन भयं भस्मनि च विनिर्दिशेत् सदाग्निभयम्।
शल्यं हि मर्मसंस्थं सुवर्णरजतादृतेऽत्युशुभम्॥
मर्मण्यमर्मगोवा निरुणद्ध्यर्थागमे तुषसमूहः।
अपि नागदन्तको मर्मसंस्थितो दोषकृद् भवति॥'

इस प्रकार स्वर्ण एवं रजत धातु को छोड़कर कोई भी शल्य भूमि में हो तो हानिकारक प्रभाव होता है।

वंशसूत्रों का कथन

वंशानिमान्प्रवक्ष्यामि बहूनपि पृथक् पृथक्।
वायुं यावत्तथा रोगात्पितृभ्यः शिख्यस्तथा॥ ३३॥
मुख्याद् भृङ्गस्तथाशोकाद् वितथं यावदेव तु।
सुग्रीवादतिं यावत् भृङ्गात्पर्जन्यमेव च॥ ३४॥
एते वंशा समाख्याताः क्वचिद् दुर्जय एव तु।
एतेषां यस्तु सम्पातः पदमध्ये समन्ततः॥ ३५॥
एतत्प्रवेशमाख्यातं त्रिशूलं त्रिकोणकञ्च यत्।
स्तम्भन्यासेषु वर्ज्यानि तुलाबन्धेषु सर्वदा॥ ३६॥

अब मैं बहुत प्रकार के वंशों को पृथक्-पृथक् कहता हूँ—

१. वायु से लेकर रोगपर्यन्त सूत्र डालने पर एक वंश होता है।

२. पितृ से लेकर शिखिपर्यन्त दूसरा वंश होता है।

३. मुख्य से लेकर भृङ्गपर्यन्त तीसरा वंश होता है।

४. शोक से लेकर वितथपर्यन्त चतुर्थ वंश होता है।

५. सुग्रीव से लेकर अदितिपर्यन्त पाँचवाँ वंश होता है।

६. भृङ्गराज से लेकर पर्जन्यपर्यन्त छठा वंश होता है।

ये वंश कहे गये हैं, इन्हीं को दुर्जय भी कहते हैं॥ ३३-३४½॥

इन वंशों का पदों के मध्य में जो सम्पात स्थूल है, वह प्रवेश कहलाता है। ये त्रिशूल एवं त्रिकोण के आकार के स्थल स्तम्भारोपण तथा तुला (चौखट) लगाने के लिये वर्जित हैं। (तात्पर्य यह है कि ये मर्मस्थान इन कार्यों के लिये निषिद्ध हैं)॥ ३५-३६॥

इक्यासी पद के वास्तुमण्डल की निर्माण-विधि

सर्वत्र वास्तुनिर्दिष्टः पितृवैश्वानरः यतः।
एकाशीतिपदे ह्यस्मिन् देवतास्थापने शृणु॥ ३७॥
रेखाणाञ्च फलं तत्र कथयामि समासतः।
वर्णानुपूर्व्येण तथा अङ्गस्पर्शनकं परम्॥ ३८॥
विप्रः स्पृष्ट्वा तथा शीर्षं चक्षुः क्षत्रियकस्तथा।
वैश्यश्चोरू च शूद्रश्च पादौ स्पृष्ट्वा समारभेत्॥ ३९॥
अङ्गुष्ठकेन वा कुर्यान्मध्याङ्गुल्या तथैव च।
प्रदेशिन्या ह्यपि तथा स्वर्णरौप्यादि धातुना॥ ४०॥
मणिना कुसुमैर्वापि तथा दध्यक्षतैः फलैः।

गृहारम्भ एवं प्रवेशादि में इक्यासी पद का वास्तु कहा है। वास्तुपुरुष को पितृ से शिखि के बीच में अधोमुख माना जाता है। इस इक्यासी पद के वास्तु में देवताओं के स्थापन को सुनो॥ ३७॥

वहीं पर संक्षेप में रेखाओं का फल भी कहता हूँ। ब्राह्मण शिर का स्पर्श करके, क्षत्रिय नेत्रों का स्पर्श करके, वैश्य ऊरु का स्पर्श करके तथा शूद्र पैरों का स्पर्श करके वास्तुपुरुषपीठ का निर्माण करे॥ ३८-३९॥

अँगूठे, मध्यमांगुलि अथवा प्रदेशिनी (तर्जनी) से स्वर्ण या रौप्य की शलाका अथवा मणि इत्यादि से रेखा करना चाहिये अथवा पुष्पों, दधि एवं अक्षतों (चावलों) से रेखा करे॥ ४०-४०½॥

विमर्श—रेखाओं का निर्माण भी स्वर्ण-रजत-मणि-पुष्प तथा दध्यक्षतों से करना चाहिये, यही अभिप्राय है।

शस्त्रादि से रेखा-निर्माण के अशुभ फल

शस्त्रेण शत्रुतो मृत्युर्बन्धो लोहेन भस्मना॥ ४१॥
अग्नेर्भयं तृणेनापि काष्ठादिलिखितेन च।
नृपाद् भयं तथा वक्रे खण्डे शत्रुभयं भवेत्॥ ४२॥
विरूपा चर्म दन्तेन चाङ्गारेणास्थिनापि वा।
न शिवाय भवेद्रेखा स्वामिनो मरणं तथा॥ ४३॥
अपसव्यक्रमे वैरं सव्ये सम्पदमादिशेत्।

यदि किसी शस्त्र से वास्तुपीठ की रेखाएँ बनायी जायें तो शत्रु से भय होता है। लोह से या भस्म से रेखा बनाने पर बन्धन होता है। तृण से रेखा बनाने पर अग्निभय तथा काष्ठादि से लेखन करने पर राजभय होता है। यदि रेखा टेढ़ी या खण्डित हो तो शत्रु का भय होता है। यदि रेखा विरूप हो अथवा चर्म या दन्त से रेखा निर्मित हो अथवा कोयला या अस्थि से रेखा बनायी जाये तो ऐसी रेखा कल्याणप्रद नहीं होती है। ऐसी रेखाओं से गृहस्वामी का मरण अथवा मृत्युतुल्य कष्ट होता है।

यदि रेखाओं का निर्माण अपसव्य क्रम (दाहिने से बाएँ को = Anti clock-wise) से हो तो वैर बढ़ता है तथा सव्यक्रम (प्रदक्षिण क्रम =Clockwise) से हो तो सम्पत्तिकारक होता है॥ ४१-४३½॥

वास्तुकर्म के आरम्भ में अपशकुनों की वर्जना

तस्मिन्कर्मसमारम्भे क्षुतं निष्ठीवितं तथा॥ ४४॥
वाचस्तु परुषास्तत्र ये चान्ये शकुनाधमाः।
तान् विवर्ज्य प्रकुर्वीत वास्तुपूजनकर्मणि॥ ४५॥

इस कार्य के प्रारम्भ करने में छींकना, थूकना, खखारना, कठोरवाणी इनका बोलना तथा सुनना त्याग देना चाहिये। अन्य जो भी बुरे शकुन हों, उनको भी वर्जित करना चाहिये॥ ४४-४५॥

शल्यज्ञान की अन्य विधि

अकचटतपयशवर्गाः इत्यष्टदिक्षु च।
प्राचीप्रभृत्तिवर्णास्तत्परं कारयेत्फलम्॥ ४६॥
एते वर्णाः प्रश्नकाले मध्ये यद्यैकमक्षरम्।
तेन शल्यं विजानीयाद् दिशि तस्याञ्च वेश्मनः॥ ४७॥
एतेभ्यो वा परं बाह्ये प्रश्नं यदक्षरं भवेत्।
तदा शल्यं न जानीयाद् गृहमध्ये विनिश्चयः॥ ४८॥

अवर्ग-कवर्ग-चवर्ग-टवर्ग-तवर्ग-पवर्ग-यवर्ग तथा शवर्ग के अक्षरों को क्रमशः पूर्वादि आठ दिशाओं का सूचक जानना चाहिये। यह प्रश्नकर्त्ता के मुख से निकले हुए प्रश्न के प्रथमाक्षर के आधार पर जानना चाहिये तथा जो अक्षर हो, उसी

भाग में शल्य समझें। यदि प्रश्न में प्रथमाक्षर संयुक्त हो तो शल्य नहीं होता है। ऐसा समझें॥ ४६-४८॥

विमर्श—यदि प्रथमाक्षर अवर्ग का हो तो पूर्व में, यदि कवर्ग हो तो अग्निकोण में, चवर्ग का हो तो दक्षिण में इसी क्रम से शल्य जानें। किन्तु ह प य—ये तीन वर्ण मध्य में शल्य के सूचक होते हैं।

इस प्रकार से शल्यज्ञान में वास्तु के ग्रन्थों में किंचित् भिन्नता पायी जाती है।

इक्यासी पद के वास्तुमण्डल की पूजन-विधि

एकाशीतिपदं कुर्यात् वास्तुवित् सर्ववास्तुषु।
आदौ सम्पूज्य गणपं दिक्पालान् पूजयेत्ततः॥ ४९॥
धरित्र्यां कलशं स्थाप्य मातृका पूजयेत्ततः।
नान्दीश्राद्धं ततः कुर्यात् पुण्यानभ्यर्चयेत्ततः॥ ५०॥
अग्निसंस्थापनार्थन्तु मेखलात्रयसंयुतम्।
कुण्डं कुर्याद् विधानेन योन्याकारं विशेषतः॥ ५१॥
स्थण्डिलं वा प्रकुर्वीत मतिमान् सर्वकर्मसु।
पदस्थान् पूजयेत्सर्वान् पञ्चचत्वारिंश च॥ ५२॥

वास्तुशास्त्री को सभी गृहकर्मों में इक्यासी पद के वास्तु को बनाना चाहिये। प्रारम्भ में गणपति-पूजन करके फिर दिक्पालों की पूजा करे॥ ४९॥

धरती पर कलश स्थापितकर मातृकापूजन करे। फिर नान्दीश्राद्ध करना चाहिये। नान्दीश्राद्ध के उपरान्त पुण्याहवाचन कराये॥ ५०॥

फिर त्रिमेखलायुक्त कुण्ड में अग्निस्थापन करे। योनिकुण्ड गृहवास्तु में विशेष प्रशस्त कहा है॥ ५१॥

अथवा स्थण्डिल पर ही त्रिमेखला कल्पितकर या बनाकर बुद्धिमान् अपना काम चलाये। सभी पदस्थित ४५ देवताओं का पूजन करे॥ ५२॥

देवताओं के पदों का कथन

शिखी चैकपदं प्रोक्तः पर्जन्यश्च तथैव च।
जयन्तो कुलिशो सूर्यः सत्य भृशो द्विकोष्ठकाः॥ ५३॥
पदैकमन्तरिक्षस्तु वायुश्चैकपदस्मृतः।
पूषा चैकपदो ह्यस्मिन् द्विपदो वितथस्तथा॥ ५४॥
द्विपदौ दक्षिणाशास्थौ गृहक्षतयमावुभौ।
गन्धर्वभृंगराजौ तु द्विपदौ परिकीर्तितौ॥ ५५॥
मृगः पितृगणश्चैव दौवारिकश्चैकपादकः।
सुग्रीवपुष्पदन्तौ च द्विपदौ वरुणस्तथा॥ ५६॥

असुरश्च तथा शोको द्विपदाः परिकीर्तिताः।
पापो रोगो अहिर्बुध्न्यो त्र्यश्चैकपदस्मृताः॥५७॥
मुख्यभल्लाटसोमाख्यास्त्रयास्ते त्रिपदा मताः।
सर्पश्च द्विपदः प्रोक्तो ह्यदितिश्च तथैव च॥५८॥
दितिश्चैकपदा प्रोक्ता द्वात्रिंशद् बाह्यतःस्थिताः॥५९॥
ईशानादि चतुष्कोणे संस्थितान्पूजयेद् बुधः।
आपश्चैवाऽथ सावित्रो जयो रुद्रस्तथैव च॥६०॥
तदन्तगाश्चैकपदानीशानादिषु विन्यसेत्।
अर्यमा त्रिपदाः पूर्वे सविता च तथैकपात्॥६१॥
विवस्वांस्त्रिपदो याम्ये इन्द्रश्चैकपदस्तथा।
नैर्ऋते पश्चिमे मित्रः त्रिपदः परिकीर्तितः॥६२॥
वायव्ये राजयक्ष्मा च एकपादः प्रकीर्तितः।
उत्तरे त्रिपदा पृथ्वी धरायश्चैकपात्तथा॥६३॥

इक्यासी पद के वास्तु में प्रत्येक देवता के पास कितने कोष्ठक (पद) होते हैं, यह बताया जा रहा है—

१. शिखि तथा २. पर्जन्य से एक-एक पद के होते हैं। ३. जयन्त, ४. कुलिशायुध, ५. सूर्य, ६. सत्य, तथा ७. भृश ये दो-दो पद में स्थित रहते हैं। ८-९. अन्तरिक्ष तथा वायु ये दोनों एक-एक पद के होते हैं। १०. पूषा एक पद का तथा ११. वितथ दो पद का होता है (वे सभी ईशान से अग्निकोण तक पूर्वदिशा में रहते हैं)। दक्षिण दिशा में १२. गृहक्षत, १३. यम, १४. गन्धर्व, १५. भृङ्गराज, ये दो-दो पद के होते हैं। फिर (नैर्ऋत्यकोण में) १६. मृग, १७. पितृ तथा १८. दौवारिक एक-एक पद के होते हैं। फिर (पश्चिम में) १९. सुग्रीव, २०. पुष्पदन्त, २१. वरुण, २२. असुर, २३. शोक—ये सब दो-दो पद के होते हैं। फिर (वायव्यकोण में) २४. पाप, २५. रोग, २६. अहिर्बुध्न्य—ये तीन एक-एक पद के होते हैं। फिर (उत्तर में) २७. मुख्य, २८. भल्लाट, २९. सोम, ३०. सर्प तथा ३१. अदिति—ये दो-दो पद के होते हैं। फिर २३. एक पद दिति का होता है। इस प्रकार ये बत्तीस देवता चक्र में बाहर की ओर (आठो दिशाओं के पदों में) स्थित रहते हैं॥५३-५९॥

अब बुद्धिमान् को (मध्य के ब्रह्माजी से) ईशानादि चारों कोणों में स्थित देवताओं की पूजा इस प्रकार करनी चाहिये। ईशान में ३३. आप (जल) आग्नेय में, ३४. सावित्र, नैर्ऋत्य में ३५. जय तथा वायव्य में ३६. रुद्र को (एक-एक पद) में जान लें॥६०॥

फिर तीन पद के ३७. अर्यमा को पूर्व में एक पद के ३८. सविता को आग्नेय में, तीन पद के विवस्वान् को ३९. दक्षिण में एक पद के ४०. इन्द्र (विबुधाधिप) को नैर्ऋत्य में,तीन पद के ४१. मित्र को पश्चिम दिशा में, एक पद के ४२. राजयक्ष्मा को वायव्य में, ४३. तीन पद के पृथ्वीधर को उत्तर में तथा एक पद के ४४. आपवत्स को ईशान में स्थापित तथा पूजित करे (आपवत्स को ही एकपाद कहा है)॥६१-६३॥

ब्रह्मा के मन्त्र एवं वर्णों (रंगों) का कथन

मध्ये नवपदो ब्रह्मा पीतः श्वेतश्चतुर्भुजः।
आब्रह्मन्ब्राह्मण इति मन्त्रोऽयं समुदाहृतः॥६४॥

इक्यासी पद गृहवास्तु चक्र में मध्य में ९ पदों का ब्रह्मा होता है जो या तो श्वेतवर्ण का अथवा पीतवर्ण का (चावलों या धान्यों में) बनाना चाहिये। ब्रह्मा के पूजन का मन्त्र 'आब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्' इत्यादि मन्त्र से करना चाहिये। (इस प्रकार इक्यासी पदों में ब्रह्मासहित ४५ (पैंतालीस) देवता विराजमान होते हैं॥६४॥

विमर्श—देवताओं के क्रम का चक्र पीछे श्लोक-१२ की व्याख्या में देखें तथा उनके साधारण पूजन-मन्त्र भी वहाँ दिये गये हैं।

अन्य देवताओं के मन्त्रों एवं वर्णों का कथन

अर्यमा कृष्णवर्णश्च अर्यम्णा च बृहस्पतिः।
सविता रक्तवर्णस्तु उपयाम गृहीतकम्॥६५॥
विवस्वाञ्छुक्लवर्णश्च विवस्वान्नादित्यमन्त्रतः।
इन्द्रो रक्तेन्द्र सुत्रामा मन्त्रोऽयं समुदाहृतः॥६६॥
मित्रः श्वेतश्च तन्मित्रं वरुणस्याभिचक्षे त्विति।
राजयक्ष्मा रक्तवर्णो ह्यभिगोत्राणि मन्त्रतः॥६७॥
पृथ्वीधरो रक्तवर्णः पृथ्वीछन्दमन्त्रतः।
आपवत्सः शुक्लवर्णो भव तन्नेति मन्त्रतः॥६८॥

अर्यमा को कृष्णवर्ण का बनाना चाहिये तथा 'अर्यम्णां बृहस्पतिमिन्द्रं' इत्यादि मन्त्र से उसका पूजन करना चाहिये। सविता को रक्तवर्ण का बनाकर 'उपयाम गृहीतोऽसि' इत्यादि मन्त्र से पूजना चाहिये। विवस्वान् को शुक्लवर्ण का बनाकर 'विवस्वान्नादित्येषते सोमपीथु०' इत्यादि मन्त्र से पूजना चाहिये। इन्द्र (विबुधाधिप) को रक्तवर्ण का बनायें तथा 'इन्द्रस्थुत्राम स्वषां०' इत्यादि वैदिक मन्त्र से उसे पूजें॥६५-६६॥

मित्र देवता को श्वेतवर्ण से बनाते हैं, तथा उसका वैदिक मन्त्र 'तन्मित्रस्य वरुणास्यभिचक्षे०' इत्यादि है। राजयक्ष्मा को रक्तवर्ण का बनायें तथा उसका पूजन 'अभिगोत्राणि सहस्रगाहमानोदयो वीरः०' इत्यादि मन्त्र से करें। पृथ्वीधर नामक देवता को रक्तवर्ण का बनाकर उसका पूजन 'पृथ्वीच्छन्दोऽन्तरिक्षश्च्छन्दः' इत्यादि वैदिक मन्त्र से करना चाहिये। आपवत्स देवता को शुक्लवर्ण से बनाकर उसका पूजन 'भवतन्नस्यमनसौ सचेतसा वरेपसौ०' इत्यादि वैदिक मन्त्रों से करते हैं॥६७-६८॥

आपः शुक्लवर्णश्च तद्बाह्ये आप अस्मान्मातरेति च।
सवित्राग्नेयदिग्भागे शुक्लवर्णैकपात्तथा॥ ६९॥
उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसीति मन्त्रतः।
जयश्च श्वेतो नैर्ऋत्ये मर्माणितेति मन्त्रतः॥ ७०॥
रुद्रो रक्तश्च वायव्ये सुत्रामा इति मन्त्रतः।
ईशाने रक्तवर्णश्च तमीशानेति वै शिखी॥ ७१॥
पर्जन्यः पीतवर्णश्च महाँ इन्द्रेति वै तथा।
जयन्तः पीतवर्णश्च धन्वनागा इति स्मृतः॥ ७२॥

श्वेतवर्ण के आप देवता को 'आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो०' इत्यादि मन्त्र से पूजना चाहिये तथा अग्निकोण में एक पद के सवित्र को 'सवितात्वा सवानाँ सुवता' (शुक्ल यजुर्वेद ९। ३९) इत्यादि मन्त्र से बात करना चाहिये। जय देवता को श्वेत वर्ण का एक पद में नैर्ऋत्यकोण में बनाये तथा 'मर्माणि ते वर्मणाच्छादयामि' इत्यादि वैदिक मन्त्र से उसका पूजन करे॥ ६९-७०॥

वायव्य कोण में रक्तवर्ण का रुद्र बनाकर 'सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसꣳ' इत्यादि वैदिक मन्त्र से पूजन करे। ईशानकोण में शिखी देवता को रक्तवर्ण का बनाकर उसका पूजन 'तमीशानं जगतस्थुषस्पतिं' इत्यादि यजुर्वेद के मन्त्र से करना चाहिये। पीतवर्ण के पर्जन्य का पूजन 'महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः।' इत्यादि (शुक्लयजुर्वेद ७। ३९) मन्त्र से करे। पीतवर्ण के जयन्त का 'धन्वना मा धन्वनाऽऽजिं जयेम०' इत्यादि मन्त्र से पूजन करें॥ ७१-७२॥

कुलिशायुधः पीतवर्णो महाँ इन्द्रेति वै तथा।
सूर्यो रक्तः सूर्यरश्मिर्हरिकेशेति मन्त्रतः॥ ७३॥
सत्यश्च शुक्लो व्रतेन दीक्षामाप्नोति मन्त्रतः।
भृशः कृष्णो मन्त्रमस्य भद्रं कर्णेभिरेव च॥ ७४॥
अन्तरिक्षः कृष्णवर्णो वयं सोमश्च इत्यपि।
वायुर्धूम्रस्तथावर्ण आवयोरिति मन्त्रतः॥ ७५॥
पूषा च रक्तवर्णश्च पूषन्तव इतीरितः।
शुक्लवर्णश्च वितथ सविता प्रथमेति च॥ ७६॥

कुलिशायुध नामक वास्तुदेवता पीतवर्ण का होता है। इसका पूजन 'महाँ इन्द्रो वज्रहस्तः षोडशी शर्म यच्छतु' इत्यादि मन्त्र से करना चाहिये। सूर्यदेवता को रक्त-वर्ण का बनाकर उसका पूजन 'सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्' इत्यादि मन्त्र से किया जाता है॥ ७३॥

सत्य नामक वास्तुदेवता श्वेतवर्ण का बनाकर उसका पूजन 'व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्' इत्यादि वैदिक मन्त्र से किया जाता है। भृशदेवता को कृष्ण-वर्ण से बनाकर उसका पूजन 'भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा०' इत्यादि मन्त्र से करते हैं॥ ७४॥

अन्तरिक्ष नामक देवता कृष्णवर्ण का होकर उसका पूजन 'वयꣳ सोम व्रते तव मनस्तनूषु विभ्रतः। प्रजावन्तःसचेमहि॥' (यजु० ३। ५६) इस मन्त्र से करना चाहिये। वायुदेवता को धूम्रवर्ण का बनाकर 'आवायो भूष शुचिषा उसनः सहस्रन्ते नियुतो विश्ववार। उपोते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयं वायवे त्वा' इस वैदिक मन्त्र से उसे पूजना चाहिये॥ ७५॥

पूषा देवता को रक्तवर्ण का बनाते हैं तथा उसका पूजन 'पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन०' इत्यादि मन्त्र से करें। वितथ देवता को शुक्लवर्ण का रचकर फिर उसका पूजन 'सविता प्रथमेऽहन०' इत्यादि मन्त्र से किया जाता है॥ ७६॥

गृहक्षतः पीतवर्णः सवितात्वेति मन्त्रतः।
यमः कृष्णवपुर्याम्ये यमाय त्वा मखाय च॥ ७७॥
गन्धर्वो रक्तवर्णश्च प्रतद्वोचेति मन्त्रतः।
भृङ्गराजः कृष्णवर्णो सुपर्णेति वा तथा॥ ७८॥
मृगः पीतश्च तद् विष्णोर्मन्त्रेण निर्ऋतिस्थितः।
पितृगणा रक्तवर्णाः पितृभ्यश्चेति पूजयेत्॥ ७९॥
दौवारिको रक्तवर्णो द्रविणोदाः पिपीषति।
शुक्लवर्णः सुग्रीवः सुषुम्णः सूर्यरश्मिना॥ ८०॥

पीतवर्ण के गृहक्षत नामक वास्तुदेवता को बनाकर उसे 'सविता त्वा सवानां सुवतामग्निर्गृहीत्वा' इत्यादि मन्त्र से पूजना चाहिये। कृष्णवर्ण का यम बनाकर 'यमाय त्वा मखाय त्वा सूर्यस्य त्वा तपसे०' इत्यादि मन्त्र से पूजन करते हैं॥ ७७॥

रक्तवर्ण के गन्धर्वराज को बनाकर 'प्रतद्वोचेदमृतं तु विद्वान् गन्धर्वो धाम विभूतं गुहासत्। त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्ता निवेद स पितुः पितासत्॥' इस शुक्लयजुर्वेद के मन्त्र (३२। ९) से पूजन करें। कृष्णवर्ण के भृङ्गराज को बनाकर उनका पूजन 'सुपर्णः पार्जन्य०' नामक मन्त्र से करें॥ ७८॥

पीतवर्ण का मृग बनाकर 'तद्विष्णोः परमं पदं सदा०' इत्यादि मन्त्र से पूजन करें। नैर्ऋत्यकोण में स्थित पितृगणों को रक्तवर्ण का बनाकर 'पितृभ्यः स्वधायिभ्यः०' इस मन्त्र से पूजन करें॥ ७९॥

रक्तवर्ण के दौवारिक का निर्माणकर उनका पूजन 'द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत। नेष्टादृतुभिरिष्यत' इस (यजुर्वेद २६। २२) मन्त्र से करे तथा शुक्लवर्ण के सुग्रीव को बनाकर 'सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमागन्धर्वस्तस्य०' इत्यादि मन्त्र से उसको पूजना चाहिये॥ ८०॥

पुष्पदन्तो रक्तवर्णो नक्षत्रेभ्येति मन्त्रतः।
वरुणः शुक्ल इतरो मित्रास्य वरुणास्यतः॥ ८१॥

आसुरः पीतरक्तश्च ये रूपाणीति मन्त्रतः।
शोकः कृष्णवपुर्मन्त्रमसवे स्वाहेत्यावाहयेत्॥ ८२॥
पापयक्ष्मा पीतवर्णः सूर्यरश्मीति मन्त्रतः।
रक्तवर्णस्तथा रोगः शिरो मे इति कोणके॥ ८३॥
द्विपदोऽहिर्वायुकोणे रक्तो नमोऽस्तु सर्पेभ्यश्च।
मुख्यो रक्तवपुः कार्यं इषे त्वा इति पूजयेत्॥ ८४॥

रक्तवर्ण के पुष्पदन्त का पूजन 'नक्षत्रेभ्यः स्वाहा०' इत्यादि मन्त्र से करें तथा शुक्लवर्ण के वरुणदेव की रचना कर उनका पूजन 'मित्रावरुणाभ्यां त्वा०' इत्यादि मन्त्र से करना चाहिये॥ ८१॥

रक्तवर्ण के असुर का पूजन 'ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तस्वधया चरन्ति। परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँल्लोकात्प्रणुदात्यस्मात्।' (यजु० २। ३०) इस मन्त्र से करना चाहिये। फिर कृष्णवर्ण के शोक का पूजन 'असवे स्वाहा वसवे स्वाहा०' इत्यादि वैदिक मन्त्र द्वारा करे॥ ८२॥

पीतवर्ण के पापयक्ष्मा का पूजन 'सूर्यरश्मिः हरिःकेशा पुरस्तात्'। इस मन्त्र से तथा कोण में रक्तवर्ण के रोग का पूजन 'शिरो मे श्रीर्यशो०' इत्यादि मन्त्र से करते हैं॥ ८३॥

फिर रक्तवर्ण के द्विपद अहिर्बुध्न्य को 'नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च०' इत्यादि मन्त्र द्वारा पूजें तथा रक्तवर्ण के मुख्य का पूजन 'इषे त्वो र्ज्ये त्वा०' इत्यादि मन्त्र से करें॥ ८४॥

भल्लाटको कृष्णवर्णो वणमहाऽसि मन्त्रतः।
सोमः श्वेतश्चोत्तरे च वयं सोमेति मन्त्रतः॥ ८५॥
सर्पः कृष्णवपुः पूज्यः उदुत्यञ्जातवेदसम्।
अदितिः पीतवर्णा तु उत नोऽहिर्बुध्न्य मन्त्रतः॥ ८६॥
दितिः पीताऽदितिर्द्यौर्मन्त्रेणेशानकोणके।
ईशानादिक्रमेणैव स्थाप्याः पूज्याः स्वमन्त्रतः॥ ८७॥
नाममन्त्रेण वा स्थाप्याः पूज्याश्चैव यथाक्रमम्।
भूर्भुवस्वेति मन्त्रेण प्रणवाद्येन नामकैः॥ ८८॥

कृष्णवर्ण के भल्लाट या भल्लाटक का पूजन 'वण्महाँ असि वडादित्या महाँ असि०' इत्यादि मन्त्र से करे। श्वेतवर्ण के सोम का उत्तर दिशा में 'वयं सोमव्रते तव०' इत्यादि मन्त्र द्वारा पूजन करना चाहिये॥ ८५॥

कृष्णवर्ण से सर्प के पद को बनाकर 'उदुत्यञ्जातवेदसं०' इत्यादि मन्त्र से पूजें तथा पीतवर्ण के अदिति देवता का पूजन 'उतनोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्०' इत्यादि वैदिक मन्त्र से करना चाहिये॥ ८६॥

पीतवर्ण के दितिदेवता को 'अदितिर्द्यौ०' इत्यादि मन्त्र से ईशानकोण में स्थापित करे। अथवा प्रत्येक देवता के नाममन्त्र से यथाक्रम उनका पूजन करना चाहिये अथवा आरम्भ में प्रणव (ॐ) लगाकर 'भूर्भुवः स्व' के पूर्व ॐ लगाकर फिर देवता का नाम बाद में जोड़कर पूजन करना चाहिये॥ ८७-८८॥

विमर्श—यहाँ वास्तुदेवों के लिये प्रयुक्त वैदिक मन्त्रों के सम्बन्ध में ग्रन्थान्तरों में भिन्नता है। पीछे श्लोक १२ की व्याख्या में ८१ कोष्ठक के वास्तु का चक्र दिया है, उसमें सरल रूप में प्रत्येक देवता के नाम मन्त्रों को लिखा गया है। आगे इक्यासी पद के वास्तु चक्र में ४५ देवताओं की पदसंख्या तथा उनके वर्ण (रंग) लिखे गये हैं।

इक्यासी पद के गृहवास्तु के वर्गों का चक्र

ईशान पूर्व आग्नेय

१ रक्त	२ पीत	पीत ३	४ पीत	५ रक्त	६ श्वेत	७ कृष्ण	८ कृष्ण	९ धूम्र
३२ पीत	३३ श्वेत	पीत ३	पीत ४	५ रक्त	६ श्वेत	७ कृष्ण	श्वेत ३४	रक्त १०
पीत ३१	पीत ३१	श्वेत ४४	कृष्ण ३७	कृष्ण ३७	कृष्ण ३७	रक्त ३८	श्वेत ११	श्वेत ११
कृष्ण ३०	कृष्ण ३०	रक्त ४३	पीत ४५	पीत ४५	पीत ४५	श्वेत ३९	पीत १२	पीत १२
श्वेत २९	श्वेत २९	४३ रक्त	पीत ४५	पीत ४५	पीत ४५	श्वेत ३९	कृष्ण १३	कृष्ण १३
कृष्ण २८	रक्त २८	रक्त ४३	पीत ४५	पीत ४५	पीत ४५	श्वेत ३९	रक्त १९	रक्त १४
रक्त २७	रक्त २७	रक्त ४२	श्वेत ४१	श्वेत ४१	श्वेत ४१	रक्त ४०	कृष्ण १५	कृष्ण १५
रक्त २६	रक्त २६	कृष्ण २३	पीत २२	श्वेत २१	रक्त २०	श्वेत १९	श्वेत ३५	पीत १६
रक्त २५	पीत २४	कृष्ण २३	पीत २२	श्वेत २१	रक्त २०	श्वेत १९	रक्त १८	रक्त १७

उत्तर दक्षिण

वायव्य पश्चिम नैर्ऋत्य

चक्र के बाहर आठ दिशाओं में चरकी इत्यादि की पूजा

ईशाने चरकी स्थाप्या धूम्रवर्णाय बाह्यगाः।
ईशावास्येति मन्त्रेण स्थाप्या पूज्याः प्रयत्नतः॥ ८९॥
विदारिका रक्तवर्णा अग्निं दूतेति मन्त्रतः।
पूतना पीतहरिता नमः स्वात्याय मन्त्रतः॥ ९०॥
पापराक्षसी कृष्णाभा वामव्यैरिति मन्त्रतः।
बहिरेव च पूर्वादिक्रमेण च ततोऽर्चयेत्॥ ९१॥

रक्तकृष्णास्कन्धघटी एह्यत्र मय मन्त्रतः।
अर्यमा दक्षिणे कृष्ण अर्यम्णा च बृहस्पतिः॥ ९२॥
पश्चिमे रक्तवर्णस्तु जम्भकः परिकीर्तितः।
सरोभ्यो भैरवं मन्त्रं समुच्चार्य प्रपूजयेत्॥ ९३॥
पिलिपिच्छकः पीतवर्णः कारम्भरेति मन्त्रतः।
भीमरूपस्तथेशाने यमाय त्वेति रक्तकः॥ ९४॥
त्रिपुरारिः कृष्णवर्णस्त्र्यम्बके त्वग्निकोणके।
अग्निजिह्वस्तु नैर्ऋत्ये असुन्वन्तेति पीतकः॥ ९५॥
कराला रक्तवर्णा तु वातोहत्वाहणास्थितः।
हेतुकः पूर्वदिक् कृष्णो हेमन्ते ऋतुना तथा॥ ९६॥
अग्निवेतालके याम्ये कृष्णोऽग्नि दूतमित्यपि।
कालाख्यः पश्चिमे कृष्णो वरुणस्योत्तम्भनं तथा॥ ९७॥
एकपादः पीतवर्णः कुविदङ्गेति चोत्तरे।
ईशानपूर्वयोर्मध्ये गन्धमाल्यश्च पीतकः॥ ९८॥
गन्धद्वारेति मन्त्रेण पूज्यमानोऽन्तरिक्षके।
नैर्ऋत्यां बुद्धिमध्यस्थो ज्वालास्यः श्वेतरूपधृक्॥ ९९॥
महीद्यौरिति मन्त्रेण पूजनीयः विधानतः।

चक्र के बाहर ईशानदिशा में चरकी को धूम्रवर्ण में स्थापित करके 'ईशावास्यमिदं सर्व०' इत्यादि मन्त्र से पूजन करे तथा अग्निकोण में विदारिका (विदारी) को रक्तवर्ण में स्थापितकर 'अग्निं दूतं पुरोदधे०' इत्यादि मन्त्र से पूजे। नैर्ऋत्यकोण में हरितवर्ण में पूतना को 'स्वात्याय०' इस मन्त्र से पूजे तथा वायव्य-कोण में पापराक्षसी को कृष्णाभवर्ण में 'वायव्यै०' इत्यादि मन्त्र से पूजना चाहिये। तथा पूर्वादिक्रम से इन चक्र के बाहर स्थित देवताओं की पूजा का विधान है॥ ८९-९१॥

रक्तकृष्णवर्ण के स्कन्द घटी को पूर्व दिशा में 'एह्यत्रमय०' इत्यादि मन्त्र से तथा दक्षिण दिशा में 'अर्यम्णा च बृहस्पतिः०' इत्यादि मन्त्र से कृष्णवर्ण में स्थापित कर पूजना चाहिये॥ ९२॥

पश्चिम दिशा में रक्तवर्ण के जम्भक को 'सरोभ्यो भैरवे०' इत्यादि मन्त्र से तथा उत्तर में पिलिपिच्छ को पीतवर्ण में स्थापितकर 'कारम्भभर०' इत्यादि मन्त्र से पूजना चाहिये तथा ईशानकोण में भीमरूप का रक्तवर्ण में 'यमाय त्वा०' इत्यादि मन्त्र से पूजन करते हैं॥ ९३-९४॥

अग्निकोण में कृष्णवर्ण के त्रिपुरारि को स्थापितकर 'त्र्यम्बकं०' इत्यादि मन्त्र से पूजते हैं तथा नैर्ऋत्य में 'असुन्वन्त०' इत्यादि मन्त्र से पीतवर्ण के अग्निजिह्व को पूजना चाहिये॥ ९५॥

वायव्यकोण में रक्तवर्ण के कराल का पूजन 'वातोहत्वाहणास्थितः०' इत्यादि मन्त्र से तथा पूर्व दिशा में कृष्णवर्ण के हेतुक का स्थापन एवं पूजन 'हेमन्ते ऋतुना०' इत्यादि मन्त्र से करना चाहिये॥ ९६॥

फिर दक्षिण दिशा में कृष्णवर्ण के अग्निवेताल का पूजन 'अग्निं दूतं पुरोदधे०' इत्यादि मन्त्र से करते हैं तथा पश्चिम दिशा में कृष्णवर्ण के काल को 'वरुणस्योत्तम्भन-मसि०' इत्यादि मन्त्रोच्चारणपूर्वक पूजते हैं॥ ९७॥

फिर उत्तर दिशा में पीतवर्ण के तथा एकपाद को 'कुविदङ्ग०' इत्यादि मन्त्र से पूजते हैं॥ ९७½॥

ईशान तथा पूर्वदिशा के मध्य में पीतवर्ण के गन्धमाल्य (ब्रह्मन्) का पूजन 'गन्धद्वारां दुराधर्षां०' इत्यादि मन्त्र से करते हैं। इसके विपरीत दिशा अर्थात् नैर्ऋत्य तथा पश्चिम के मध्य के स्थान में (चक्र के बाहर ही) श्वेतवर्ण के ज्वालास्य को 'मही द्यौ०' इत्यादि मन्त्र से पूजना चाहिये। इस प्रकार विधिपूर्वक वास्तुचक्र के बाहर दसों दिशाओं (पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ईशान, ऊर्ध्व = पूर्व-ईशान के मध्य तथा अधः = नैर्ऋत्य-पश्चिम के मध्य देवताओं का पूजन करे॥ ९८-९९½॥

चौंसठ पद के वास्तु में देवताओं के वर्ण का चक्र
(देवालय में उपयोग के लिये)

ईशान | पूर्व | अग्निकोण

उत्तर (बायें) | दक्षिण (दायें)

रक्त १ / पीत ३२	पीत	शुक्ल	पीत	रक्त	शुक्ल	कृष्ण	कृष्ण ८ / धूम्र ९
पीत ३१	पीत २ / पीत	शुक्ल ३	पीत ४	रक्त ५	शुक्ल ६	कृष्ण ७ / रक्त १०	रक्त
कृष्ण ३०	कृष्ण	शुक्ल ३४ / ३३ शुक्ल	कृष्ण ३५	कृष्ण ३५	रक्त ३६ / ३७ रक्त	शुक्ल ११	शुक्ल
शुक्ल २९	शुक्ल	रक्त ४४	श्वेत ४५	श्वेत ४५	शुक्ल ३८	पीत १२	पीत
कृष्ण २८	कृष्ण	रक्त ४४	श्वेत ४५	श्वेत ४५	शुक्ल ३८	कृष्ण १३	कृष्ण
रक्त २७	रक्त	रक्त ४३ / ४२ रक्त	शुक्ल ४१	शुक्ल ४१	रक्त ३९ / श्वेत ४०	रक्त १४	रक्त
रक्त २६	रक्त / कृष्ण	पीत	शूक्ल	रक्त	शुक्ल	कृष्ण १५ / रक्त	कृष्ण
रक्त २५ / २४ पीत	कृष्ण २३	पीत २२	शुक्ल २१	रक्त २०	शुक्ल १९	रक्त १८	पीत १६ / १७ रक्त

वायव्य | पश्चिम | नैर्ऋत्य

देवालय आदि में चौंसठ पद के वास्तुपूजन का कथन

या बाह्यदेवता प्रोक्ता प्रासादे ताः प्रपूजयेत्॥ १००॥
दुर्गे देवालये चैव शल्योद्धारे तथैव च।
विशेषेणैव पूज्याश्च चतुःषष्टिपदं तथा॥ १०१॥

दुर्ग (किला), देवालय (मन्दिर, गुरुद्वारा, यज्ञशाला, यज्ञकुण्ड, अग्निशाला, पूजागृह, उपासनागृह, साधनागृह, मठ (प्रार्थना-स्थल) आदि से शल्योद्धार कर्म में विशेषरूप से चतुःषष्टि पद के वास्तुचक्र (चौंसठ कोठेवाले) में वास्तुदेवताओं का पूजन करना चाहिये। इस चक्र में भी चक्र के बाहर के देवताओं की पूजा इसी प्रकार से मन्त्रों द्वारा करनी चाहिये॥ १००-१०१॥

कलश-स्थापन तथा पूजन-विधि

कलशे स्थापयेदेवं वरुणं पूजयेत्ततः।
कलशं पूरयेत् तीर्थवारिणा सर्वबीजकैः॥ १०२॥
सर्वौषधैः सर्वरत्नगन्धैश्च विविधैस्तथा।
पल्लवैः पञ्चकाषायैर्मृदा शुद्धोदकेन वा॥ १०३॥

फिर भूमि पर धान्यराशि पर कलश को स्थापित कर उस पर वरुणदेवता का आवाहन तथा पूजन करना चाहिये। कलश को तीर्थों के जल से पूरित करके उसमें सभी प्रकार के बीज (धान्य), सर्वौषधि, रत्न, विविध प्रकार की गन्ध, पञ्चपल्लव, पञ्चकषाय, सप्तमृत्तिका डालना चाहिये। यदि तीर्थजल या गंगाजल न मिले तो कलश में शुद्धजल भरना चाहिये॥ १०२-१०३॥

नवग्रहपूजन का निर्देश

ग्रहाणां पूजनं तत्र कारयेद् वेदिकोपरि।

नवग्रह वेदी बनाकर (नवग्रहपीठ पर) सूर्यादि नवग्रहों, उनके अधिदेवताओं तथा प्रत्यधि देवताओं का पूजन करना चाहिये (अथवा नवग्रहपीठ के अभाव में फूल पर ही सब देवों का आवाहन तथा पूजन कर सकते हैं)॥ १०३½॥

सर्वौषधि का कथन

मुरा मांसी वचा कुष्ठं शैलेयं रजनीद्वयम्॥ १०४॥
शुण्ठी चम्पकमुस्ता च सर्वौषधिगणस्मृतः।

१. मुरा (Mura), २. जटामांसी (Nardostachys jatamansi), ३. वचा (Acorus calamus), ४. कुष्ठ कूठ (Saussurea lappa), ५. शैलेय = छरीला (Parmelia parforata), ६. हरिद्रा=हल्दी (Carcuma longa), ७. दारुहरिद्रा= दारुहल्दी (Berberis aristata), ८. शुण्ठी=सौंठ (Gingiberis officinalis), ९. चम्पक=चम्पा (Michelia Champaca), १०. मुस्ता=नागरमोंथा (Cypearus rotundus)—ये दस औषधियाँ मिलकर सर्वौषधि कहलाती हैं॥ १०४-१०४½॥

विमर्श—कहीं-कहीं शुण्ठी के स्थान पर शटी पाठान्तर है। शटी का अर्थ नरकचर अर्थात् Gingiter Zerumbet नामक वनौषधि होता है।

पञ्चपल्लव

अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षचूतन्यग्रोधसम्भवाः॥ १०५॥
पञ्चभङ्गा इमे प्रोक्ताः सर्वकर्मसु शोभना।

१. अश्वत्थ=पवित्र पीपल वृक्ष (Ficus religiosa), २. उदुम्बर=गूलर=ऊमर (Ficus glomerata), ३. प्लक्ष=पाकर=पिलखन (Ficus infectoria), ४. चूत= आम=Mangiferra indica) तथा ५. न्यग्रोध=वट=बड़ (Ficus bengalenis)—इन पाँच के पत्तों को पञ्चभङ्ग या पञ्चपल्लव कहते हैं॥ १०५-१०५½॥

शतौषधि के प्रतिनिधि द्रव्य

तुलसी सहदेवी च विष्णुक्रान्ता शतावरी॥ १०६॥
मूलान्येतानि गृहणीयाच्छतालाभे विशेषतः।

शतौषधि के अन्तर्गत एक सौ औषधियाँ होती हैं, उनका एकत्रित करना सामान्य व्यक्ति के लिये असम्भव होता है, अतः उनके अभाव में तुलसी (Ocimum sanctum), सहदेवी (Vernoia cineria), विष्णुक्रान्ता=अपराजिता=कोमल (Clitoria teranatea) तथा शतावरी (Asparagus recemosus) इनकी मूल (जड़ों) को ग्रहण करना चाहिये॥ १०६-१०६½॥

पञ्चकाषाय

वटीर्वटोदुम्बरस्य वेतसस्य तथैव च॥ १०७॥
अश्वत्थश्चैव मूलश्च पञ्चकाषायकाः स्मृताः।

वट (बड़), ऊमर (गूलर), पाकर (वटी), वेतस तथा अश्वत्थ (पीपल) इनके मूलों का क्वाथ पञ्चकाषाय कहा जाता है॥ १०७-१०७½॥

सप्तमृत्तिका

अश्वस्थानाद् गजस्थानाद् वल्मीकात्सङ्गमात् ह्रदात्॥ १०८॥
राजद्वाराच्च गोकुलाच्च मृदमानीय निक्षिपेत्।

१. घुड़शाल की मिट्टी, २. गजशाला (हाथी के स्थान) की मिट्टी, ३. बांबी की मिट्टी, ४. नदियों के संगम-स्थल की मिट्टी, ५. ह्रद (जलकुण्ड) की मिट्टी, ६. राजद्वार की मिट्टी तथा गोशाला की मिट्टी—ये सात मिट्टियाँ सप्तमृदा या सप्तमृत्तिका कहलाती हैं। इनको लाकर कलश आदि में डालना चाहिये॥ १०८-१०८½॥

कलशादि पूजनों का निर्देश

'सर्वे समुद्राः सरितः सरांसि जलदा नदाः॥ १०९॥
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः॥ ११०॥

'सभी तीर्थ, समुद्र, जलद स्रोत नदी-नद यजमान के दुःखों को दूर करने के लिये इस कलश में आयें' इस मन्त्र से कलश का पूजन करे॥ १०९-११०॥

शिख्यादि ४५ देवों का पूजन

शिख्यादि पञ्चचत्वारिंशद् देवांस्तत्र प्रपूजयेत्।
वेदमन्त्रैर्नाममन्त्रैः प्रणवव्याहृतिभिस्तथा॥ १११॥

वास्तुपीठ के ४५ देवताओं शिखि आदि का पूजन वेदमन्त्रों या नाममन्त्रों से प्रणवपूर्वक तथा व्याहृतिपूर्वक करना चाहिये॥ १११॥

होम विधि

होमस्त्रिमेखले कार्यः कुण्डे हस्तप्रमाणके।
यवैः कृष्णातिलैस्तद्वत् समिद्भिः क्षीरवृक्षकैः॥ ११२॥
पालाशैः खादिरैर्वापामार्गोदुम्बरसम्भवैः।
कुशदूर्वामयैर्वापि मधुसर्पिसमन्वितैः॥ ११३॥
कार्यस्तु पञ्चभिर्विल्वैः विल्वैबीजैरथापि वा।
होमान्ते भक्ष्यभोज्यैश्च वास्तुदेशे बलिं हरेत्॥ ११४॥
नमस्कारान्तयुक्तेन प्रणवाद्येन सर्वतः।
वेदोक्तेनैव मन्त्रेण सम्पूज्य देवताः क्रमात्॥ ११५॥
ततो व्याहृतभिर्होमः स्विष्टकृद् होममेव च।
पूर्णाहुतिञ्च जुहुयात् संस्रवप्राशनं तथा॥ ११६॥

एक हाथ लम्बा एक हाथ चौड़ा तथा एक हाथ गहरा (२४×२४ अंगुल ×२४)= १३८६४ घन अंगुल का कुण्ड बनाकर उसमें तीन मेखला (योनिसहित) बनायें। फिर उसमें जौ, काले तिल, क्षीरीवृक्षों की समिधाएँ, पलाश, खदिर, अपामार्ग, ऊमर, कुश, दूर्वा आदि की (नवग्रह समिधाएँ) घृत तथा मधु मिलाकर पाँच बेलफलों (प्रत्येक के तीन-तीन खण्ड करके) अथवा बिल्व के बीजों से हवन करना चाहिये॥ ११२-११३½॥

होम की समाप्ति पर भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थों की बलि (लोकपाल, दिक्पाल, भूत-प्रेत, क्षेत्रपाल आदि के लिये) देना चाहिये। फिर प्रत्येक देवता के नाम के पूर्व ॐ तथा चतुर्थी विभक्ति नामान्त में लगाकर नमः जोड़कर पूजनादि करना चाहिये तथा वास्तु प्रदेश में भी बलिदान करे॥ ११४-११५॥

फिर अन्त में व्याहृति होम तथा स्विष्टकृद् होम करके पूर्णाहुति तथा संश्रवप्राशन करे॥ ११६॥

विमर्श—स्विष्टकृद् होम का अर्थ है मीठे पदार्थ खीर, हलुवा, पेड़ा आदि का होम करना। 'सु' उपसर्ग के साथ इष्ट शब्द जुड़कर स्विष्ट शब्द बनता है। स्विष्ट का अर्थ भली-भाँति सम्पन्न किया गया यज्ञ, पूजन अथवा अन्य मांगलिक कार्य। कोई भी कार्य जो कि मधुरतापूर्वक सम्पन्न हो तो उसे स्विष्टकृत् जानना चाहिये। हमारे उदर में जो अग्नि है, उसमें भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थों का होम किया जाता है। वह भी तब पूर्ण होता है, जब मुँह मीठा कर लिया जाता है। अतः भारत में 'मधुरेण समापयेत्' की

कहावत प्रचलित है। मंगलकार्यों के भोजनों में इसी कारण से मिठाइयाँ आवश्यक रूप से बनती हैं। अंग्रेजी भाषा में मिठाइयों के लिये प्रयुक्त Sweets शब्द देववाणी संस्कृत की ही देन है। संस्कृत का 'स्विष्ट' शब्द ही अंग्रेजी में कुछ परिवर्तन के साथ Sweets बन गया है। भोजन, पान एवं श्रवण सबमें ही मनुष्य को स्विष्ट ही रुचिकर लगता है। अंग्रेजी का Sweets भी इन तीनों अर्थों में प्रयुक्त होता है—

'Sweets—1. tasting like sugar, not sour, salty or bitter. 2. pleasing to any of the senses specially smell and hearing. 3. likeable, charming.'

—Chambers Dictionary.

वास्तुदेवों के लिये बलिद्रव्यों का कथन

चतुःषष्टिपदे पीठे एकाशीति पदेपि वा।
वास्तुमण्डलदेवेभ्यो बलिं दद्याद् विधानतः॥ ११७॥
घृतान्नं शिखिने दद्यात् पर्जन्याय सोत्पलम्।
जयन्ते दधिवास्तूकं बलिं दद्याद् विचक्षणः॥ ११८॥
कुलिशायुधाय पञ्चरत्नं पौष्टिकसम्भवम्।
कौशं सूर्याय गोधूमं सगुडापूपसक्तवैः॥ ११९॥
सत्याय घृतगोधूमं मत्स्यान्नञ्च भृशाय च।
अन्तरिक्षाय शष्कुली मांसं वापि च शाकुनम्॥ १२०॥

फिर चौंसठ पद के वास्तुपीठ अथवा इक्यासी पद के वास्तुपीठ पर (जैसी भी आवश्यकता हो अथवा जो भी पीठ कार्य में विहित हो उस पर) वास्तु देवताओं के निमित्त विधिपूर्वक बलिदान करना चाहिये। (अलग-अलग देवताओं के लिये बलिपदार्थ अग्रलिखित है)॥ ११७॥

१. शिखि देवताओं के लिये घृतान्न की बलि देना चाहिये।

२. पर्जन्य देवता के लिये घृतान्न तथा कमल (मखाना) की बलि दें।

३. जयन्त के लिये वास्तूक (बथुआ शाक) तथा दधि की बलि दें।

४. कुलिशायुध के लिए पञ्चरत्न तथा पौष्टिक भोजन की बलि दें।

५. सूर्य के लिये कुश, लाल गेहूँ तथा गुड़ के पूए एवं सत्तू की बलि देना चाहिये।

६. सत्य के लिये घी-गेहूँ तथा मत्स्यान्न की बलि देना चाहिये।

७. भृश के लिये मछली एवं भात की बलि देते हैं।

८. आकाश (अन्तरिक्ष) के लिये पूड़ी-कचौड़ी तथा पक्षियों का मांस दें॥ ११८-१२०॥

वायवे सक्तवः प्रोक्ताः पूष्णे लाजाः स्मृता बुधैः।
वितथाय चणकान्नं च मध्वन्नञ्च गृहक्षते॥ १२१॥

यमाय पिशितान्नं तु गन्धर्वाय गन्धोदनम्।
भृङ्गराजाय मेषस्य जिह्वायाश्च बलिं हरेत्॥ १२२॥
मृगाय यावकं दद्याद् बलिं नीलपदस्तथा।
पितृभ्यः कृशरान्नञ्च तथा दौवारिकाय च॥ १२३॥
दन्तकाष्ठं कृष्णापिष्टं सुग्रीवाय बलिं तथा।
यावकं पुष्पदन्ताय आनूपं वरुणाय च॥ १२४॥
असुराय सुरा प्रोक्ता शोषाय च घृतौदनम्।
गोधाया वै यक्ष्मणे च रोगाय घृतमौदनम्॥ १२५॥
अहये फलपुष्पाणि नागकेशर इत्यपि।
मुख्याय घृतगोधूमं भल्लाटे मुद्गमोदनम्॥ १२६॥

९. वायु—वायु को सत्तुओं की बलि देना चाहिये।
१०. पूषा—पूषा को धान की लाजा (खील) की बलि देते हैं।
११. वितथ—वितथ (असत्य) को चने (उबले हुए) की बलि देना चाहिये।
१२. गृहक्षत—गृहक्षत को मधुमिश्रित अन्न देते हैं।
१३. यम—यम को कच्चे मांस की बलि देते हैं।
१४. गन्धर्व—गन्धर्वराज को सुगन्धित भात की बलि प्रदान की जाती है।
१५. भृंगराज—भृंगराज को मेष (मेढ़े या बकरे) की जीभ की बलि देनी चाहिये।
१६. मृग—मृगदेवता के लिये जौ के भात बलि में दें।
१७. पितृ—पितरों के लिये नीलपद (काले या नीले लम्बे जौ) के भात की बलि दें।
१८. दौवारिक—दौवारिक के लिये खिचड़ी की बलि देते हैं।
१९. सुग्रीव—सुग्रीव के लिये दन्तकाष्ठ, उड़द के आटे की बलि प्रदान करे।
२०. पुष्पदन्त के लिये जौ के भात की बलि दें।
२१. वरुण के लिये आनूप (जलचर) जीवों की बलि दें। या पापग्रह की बलि दें।
२२. असुरों के लिये सुरा (मद्य) की बलि दी जाती है।
२३. शोष के लिये—घृत एवं भात की बलि प्रशस्त है।
२४. पापयक्ष्मा के लिये गोधा (गोह) के मांस की बलि देते हैं।
२५. रोग के लिये घी तथा भात की बलि उत्तम है।
२६. अहिर्बुध्न्य के लिये फल-पुष्प तथा नागकेशर की बलि प्रदान करना चाहिये।
२७. मुख्य—मुख्य के लिये घी तथा गेहूँ की बलि प्रशस्त है।
२८. भल्लाट—भल्लाट के लिये मूँग एवं भात की बलि दें॥ १२१-१२६॥

सोमाय पायसघृतं नागे पौष्टिक शालकम्।
अदित्यै पौलिका दित्यै पूरिकाया बलिस्मृतः॥ १२७॥
अद्‌भ्योऽपि क्षीरञ्च सवित्रे च कुशौदनम्।
लड्डुका मरिचञ्चैव जयाय घृतचन्दनम्॥ १२८॥
रुद्राय पायसगुडमर्यम्णे शर्करान्वितम्।
पायसञ्च सवित्रे तु गुडापूपबलिः स्मृतः॥ १२९॥
विवस्वते च तथा देयं रक्तचन्दनपायसम्।
इन्द्राय सघृतं देयं हरितालौदनं तथा॥ १३०॥
घृतौदनञ्च मित्राय आममांसमधुस्तथा।
राजयक्ष्मणे च पृथ्वीधरायामितौजसे॥ १३१॥
मांसानि कूष्माण्डमिति आपवत्साय वै दधि।
ब्रह्मणे पञ्चगव्यञ्च यवं तिलाक्षतं दधि॥ १३२॥

२९. सोम—सोम नामक वास्तुदेवता के लिये घृत तथा खीर की बलि दें।
३०. सर्प—नागदेवता के लिये पौष्टिक भात की बलि दें।
३१. अदिति—अदिति देवता के लिये पूड़ी की बलि दें।
३२. दिति—दिति के लिये कचौड़ियों की बलि दी जाती है।
३३. आप—आप (जल) देवता के निमित्त दूध की बलि दें।
३४. सविता—सविता के लिये कुश तथा कुश के बीजों का बना भात दें।
३५. जयन्त—जयन्त के लिये लड्डू, काली मिर्च, घृत तथा चन्दन की बलि दें।
३६. रुद्र—रुद्रदेवता के लिये गुड़ तथा पायस का बलिदान करें।
३७. अर्यमा—अर्यमा के निमित्त शर्करायुक्त पायस देना चाहिये।
३८. सवित्र—सवित्र के लिये गुड़ के गुलगुले या मालपूड़े की बलि दें।
३९. विवस्वान्—विवस्वान् के लिये रक्त चन्दन तथा पायस की बलि देते हैं।
४०. विबुधान्पति (इन्द्र)—इन्द्र के लिये घृत, हरिताल तथा भात की बलि दें।
४१. मित्र—मित्र के लिये घृत-भात की बलि प्रशस्त है।
४२. राजयक्ष्मा—राजयक्ष्मा के लिये कच्चा मांस तथा मधु की बलि दें।
४३. पृथ्वीधर (अमितौजस) के लिये मांस तथा कूष्माण्ड (पेठा) की बलि देते हैं।
४४. आपवत्स—आपवत्स के लिये दही की बलि प्रशस्त है।
४५. ब्रह्मा—सबसे अन्त में पीठ के मध्य में विराजमान श्रीब्रह्माजी को पञ्चगव्य (गाय का दूध, गाय का दही, गाय का घी, गोमूत्र तथा गोबर), जौ का भात, काले तिल, चावल तथा दही की बलि देनी चाहिये॥ १२७-१३२॥

सम्पूर्ण देवताओं को सुवर्णदान

विविधान् भक्ष्यभोज्यांश्च फलानि विविधानि च।
यवं दत्त्वा बलिं सम्यग् दद्यात्तेभ्यो हिरण्मयम्॥ १३३॥
प्रणवाद्यैश्चतुर्थ्यन्तैर्नाममन्त्रेण मन्त्रवित्।
सर्वेभ्योऽपि हिरण्यञ्च ब्रह्मणे गां पयस्विनीम्॥ १३४॥

सभी देवताओं को विविध प्रकार के भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थों के साथ विविध प्रकार के फल तथा यव बलि में देना चाहिये फिर उनके साथ सुवर्णदान भी करें॥ १३३॥

बलिदान के लिये देवता के नाम के पूर्व ॐ लगाकर तथा नाम के अन्त में चतुर्थी विभक्ति को जोड़कर मन्त्रवेत्ता सभी देवताओं को सुवर्णदान तथा गोदान करायें। विशेषरूप से ब्रह्मा के लिये दुधारू गाय का दान अवश्य करें॥ १३४॥

विमर्श—मान लो शिखि देवता को बलि देना है तो 'ॐ शिखिने नमः' कहकर बलि दे। पर्जन्य के लिये 'ॐ पर्जन्याय नमः' कहकर बलि दे।

अभाव में पायसदान एवं दीपदान

अथवा पायसं दद्यात् सर्वेभ्यः सदीपकम्।
ततो बाह्यस्थ देवानां बलिं दद्यात् प्रयत्नतः॥ १३५॥

वित्त के अभाव में सभी देवताओं (वास्तुदेवताओं) को खीर तथा दीपक दान कर बलि देना चाहिये फिर इन पैंतालीस (४५) देवताओं के बलिदान के पश्चात् वास्तुपीठ के सभी ओर चरकी आदि देवताओं को भी प्रयत्नपूर्वक बलिदान देते हैं॥ १३५॥

विमर्श—यहाँ अनेक स्थलों पर मांस की बलि लिखी है, वह तो मांसाहारी यजमानों के लिये है। जिस प्रकार मांसाहार पाप है, उसी प्रकार प्राणियों के मांस की बलि देना भी भयंकर पाप है। अतः सभी को पायस (रबड़ी-मलाई) की बलि दीपक सहित देना चाहिये। वैधानिक दृष्टि से भी सामिष बलि अपराध है। गोह आदि जीव तथा पक्षी आदि को मारना 'वन्यजीव सुरक्षा अधिनियम' के अधीन भी अपराध घोषित है, अतः लोक-परलोक दोनों के बिगड़ने से बचने के लिये मांस के सभी प्रकार के उपयोग से जीवन में दूरी बनाये रखें।

चरकी आदि बाह्य देवताओं को बलिदान का कथन

चरक्यै माषभक्तञ्च सघृतं पद्मकेशरम्।
हविश्चैव तथाग्नेये वितानक विदारिके॥ १३६॥
माषभक्तं सरुधिरं हरिद्राभक्तमेव च।
नैर्ऋत्याञ्च पूतनायै माषभक्तेन संयुतम्॥ १३७॥
रुधिरास्थिपीतरक्तं बलिं देव्यै निवेदयेत्।
वायव्ये पापराक्षस्यै मत्स्यमांसं सुरासवम्॥ १३८॥

१. ईशानकोण में चरकी के लिये उड़द, भात, घृत तथा कमल केशर का भोग लगाना चाहिये। २. अग्निकोण में विदारिका के लिये उड़द, भात, रुधिर (जवारों का रस) तथा हल्दीयुक्त भात की बलि के साथ पितान (कुकुरमुत्ता शाक) का भोग लगाना चाहिये। ३. नैर्ऋत्यकोण में पूतना के लिये उड़द-भात तथा रुधिरास्थि (गाजर) एवं पीतरक्त (नारंगीफल) की बलि देनी चाहिये। ४. वायव्यकोण में पापराक्षसी के निमित्त मत्स्य (बैगन) तथा माष (उड़द) एवं सुरा या आसव की बलि देना चाहिये॥ १३६-१३८॥

चारो दिशाओं के बाहर स्कन्दादि के लिये बलि कथन

ततः प्रागादितो दिक्षु स्कन्दाय रुधिरं सुरा।
अर्यम्णोमाषभक्तं च दक्षिणे विनिवेदयेत्॥ १३९॥
जम्भकाय तथा माषं रुधिरं पश्चिमे न्यसेत्।
पिलिपिच्छकायोत्तरे च असृक्मयबलिस्मृतः॥ १४०॥
इत्येतेषां देवानां बलिं दद्यात् प्रयत्नतः।
प्रासादादौ तथैतेषां बलिं दद्यात् विचक्षणः॥ १४१॥

१. फिर वास्तुचक्र के बाहर पूर्वदिशा में स्कन्द के लिये रुधिर (गेहूँ के जवारे या भुंजरिया का स्वरस) तथा द्राक्षासव की बलि दें।

२. दक्षिण दिशा में अर्यम्ण को उड़द की बलि दें।

३. पश्चिम दिशा में जम्भक के निमित्त उबले हुए उड़द तथा रुधिर (गेहूँ के हरे जवारे) की बलि देना चाहिये।

४. इसी प्रकार उत्तर दिशा में पिलिपिच्छक के लिये गेहूँ के ताजे जवारों का रस बलि में देना चाहिये॥ १३९-१४०॥

इस प्रकार इन देवताओं के लिये गृह-निर्माण में तथा देवालयारम्भ में एवं इनके प्रवेश तथा प्रतिष्ठादि में वास्तुपूजा के साथ बुद्धिमान् व्यक्ति को बलिदान देना चाहिये॥ १४१॥

ईशानादि कोणों में भीमरूपादि के लिये बलि का कथन

भीमरूपाय ईशाने कपोतक सुरा बलिः।
वसारुधिरमाषानां कृशरायास्तथैव च॥ १४२॥
आग्नेयीदिशि सन्धारी त्रिपुरान्तकरूपधृक्।
अग्निजिह्वास्तु नैर्ऋत्ये दुग्धं सैन्धवसंयुतम्॥ १४३॥
माषञ्च रुधिरं देयं तस्मै दिक्पालिने नमः।
करालिके पक्वमाषरुधिरं सैन्धवं पयः॥ १४४॥

१. ईशानकोण में भीमरूप के लिये कपोतक सुरा (द्राक्षासव), वसा (नारियल का तेल), रुधिर (जवारों का रस) तथा उड़द के साथ बलि देना चाहिये।

२. अग्निकोण में त्रिपुरान्तक रूप धरनेवाले आग्नेयास्त्रधारी को खिचड़ी की बलि देवें।

३. नैर्ऋत्यकोण में अग्निजिह्वा को सैन्धव मिश्रित दुग्ध की बलि देना चाहिये तथा जवारों को भी अर्पित करें।

४. वायव्यकोण में करालिक को नमस्कार करके उबले उड़द, जवारों का रस तथा सैन्धवयुक्त दूध का बलिदान करें॥ १४२-१४४॥

पुनःपूर्वादि दिशाओं में हेतुक आदि देवताओं के लिये बलि

हेतुके पूर्वदिग्भागे बलिस्यात् पायसं ह्यसृक्।
अग्निवैतालिके याम्ये रुधिरं माषमेव च॥ १४५॥
कालाख्ये पश्चिमे दद्याद् बलिं मांसौदनस्य च।
एकपादे उत्तरस्यां कृशराया बलिस्तथा॥ १४६॥

१. पूर्व दिशा में हेतुक नामक देवताओं को खीर तथा गेहूँ के जवारे अर्पित करना चाहिये।

२. दक्षिण दिशा में अग्निवेताल नामक वास्तुदेव को जवारों तथा उबले उड़द की बलि दें।

३. पश्चिम दिशा में काल नामक देवता को उड़द तथा भात की बलि देते हैं।

४. उत्तर दिशा में एकपाद देवता को खिचड़ी की बलि दें॥ १४५-१४६॥

अवशिष्ट वास्तुदेवों को बलि का विधान

आग्नेयपूर्वयोर्मध्ये गन्धमाल्यैर्वितानकम्।
नैर्ऋत्यपश्चिमान्तस्थौ ज्वालास्यः परिकीर्तितः॥ १४७॥
तस्मै दध्यक्षतयुत मोदकानि च दापयेत्॥ १४८॥

१. अग्निकोण तथा पूर्व के मध्य में गन्धमाला आदि से वितानक नामक वास्तुदेव को बलि प्रदान करें।

२. नैर्ऋत्य तथा पश्चिम के मध्य में ज्वालास्य नामक देवता का स्थान कहा जाता है उस ज्वालास्य को दही-भात तथा लड्डू की बलि देना चाहिये॥ १४७-१४८॥
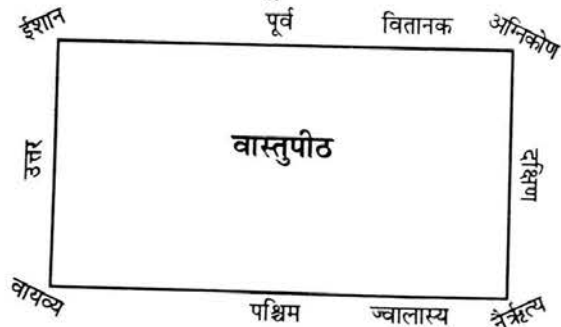
दिक्पाल बलि तथा क्षेत्रपाल बलि

दिक्पालानां बलिं दत्त्वा क्षेत्रपालबलिं ततः।
आगमोक्तेन मन्त्रेण वेदमन्त्रेण वै तथा॥ १४९॥

दश दिक्पालों १. अपूर्व में इन्द्र, २. आग्नेय में अग्नि, ३. दक्षिण में यम, ४. नैर्ऋत्य में निर्ऋति, ५. पश्चिम में वरुण, ६. वायव्य में वायु, ७. उत्तर में सोम, ८. ईशान में ईशान (शिव), ९. ईशान तथा पूर्व के मध्य में = ऊर्ध्व में धाता तथा पश्चिम एवं नैर्ऋत्य के मध्य में, १०. अनन्त को बलि देने के उपरान्त फिर क्षेत्रपाल को भी बलि देना चाहिये। यह बलि तांत्रिक या पौराणिक मन्त्रों से दें॥ १४९॥

क्षेत्रपाल प्रार्थना मन्त्र

नमो भगवते क्षेत्रपालाय, त्रयस्त्रिंशत्कोटिदेवाधिदेवाय, निर्जित-भाराय,भासुरिनेत्राय, स्वाङ्गकिङ्किणि, ज्वालामुख, भैरवरूपिणे तुरु मुरु मुरु लल, षषषष केङ्का दुरितदिङ्मुख महाबाहो अद्य कर्त्तव्ये वास्तुकर्मणि अमुकं यजमानं पाहि-पाहि आयुष्कर्त्ता, क्षेमकर्त्ता भव अमुं पशुदीपसहितं मुण्डमाषभक्तबलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा॥ १५०॥

'हे भगवन्! क्षेत्रपाल! आपके लिये जो कि तैंतीस करोड़ देवताओं में श्रेष्ठ हैं, जिन्हें कोई भी कार्य भारस्वरूप (कठिन) नहीं है। जो कि प्रकाशमान नेत्रोंवाले हैं, जिनके अङ्क में किङ्किणि धारित हैं, जो ज्वालामुख भैरव के रूप में हैं, उनको नमस्कार है। आप तुरु-मुरु-मुरु लल षषषष केङ्का दुरितमुख हैं। हे महाबाहो! आज आप इस वास्तुकर्म के कर्त्ता अमुक नामवाले यजमान की रक्षा करने की कृपा करो। रक्षा करो। आप उसके दीर्घायुकर्त्ता तथा क्षेम (कल्याण) कर्त्ता रहें। दीपक सहित इस बलि पदार्थ मुण्ड माष (उड़द की कौंहरी) को ग्रहण करो-ग्रहण करो स्वाहा' इस मंत्र से बलि दें॥ १५०॥

नैर्ऋत्यकोण में भूतबलि का विधान

नैर्ऋत्यां दिशि भूतेभ्यो सन्ध्याकाले विशेषतः।
बलिं दद्याद् विधानेन मन्त्रविन्नक्तभुग्यमी॥ १५१॥
पुरोहितस्तथा याज्यं गुडोदनमथापि वा।
कुल्माषेण तु सम्मिश्रैर्यावकापूपसंयुतैः॥ १५२॥
बहुपक्वान्नं संयुक्तैर्बलक्रीडनकैस्तथा।
फलैश्च दाडिमीबीजैः कालपुष्पैः मनोरमैः॥ १५३॥
मात्रा न नाशनमिता बलिकर्मणि चोदिताः।
बलिं भूतादि सत्वेभ्यो बलिमन्त्रैः विचक्षणः॥ १५४॥

नैर्ऋत्यदिशा में विशेषकर सन्ध्याकाल के समय पुरोहित (आचार्य) तथा यजमान दोनों नक्त भुक् (दिन में उपवास तथा रात्रि में भोजन करनेवाले होकर) तथा

संयमी होकर विधिपूर्वक भूतादि सत्वों को आगे लिखे मन्त्रों के द्वारा गुड़, भात, कुल्माष (उबले हुए चने-मूँग-उड़द-मोंठ-गेहूँ-ज्वार-बाजरा आदि), जौ के गुलगुले तथा पुए एवं बहुत से पकवानों के साथ, बच्चों के खिलौने, अनार तथा ऋतु के अनुसार उपलब्ध पुष्पों एवं फलों को इतनी थोड़ी मात्रा में लें, जो कि आहार योग्य न हों, बलिकर्म में यही मात्रा कही गयी है। बलिदान करें ॥ १५१-१५४॥

भूतादि बलि के मन्त्र

देव्यो देवा मुनीन्द्राः त्रिभुवनपतयो वनस्पतयो दानवाः सर्वसिद्धाः
यक्षा रक्षांसि नागा गरुडमुखखगा गुह्यका देवदेवाः।
डाकिन्यो देववेश्या हरिदधिपतयो मातरो विघ्ननाथाः
प्रेता भूताः पिशाचाः पितृवननगराद्याधिपाः क्षेत्रपालाः॥ १५५॥
गन्धर्वाः किन्नराः सर्वे जटिलाः पितरो ग्रहाः।
कूष्माण्डाः पूतना रोगाः ज्वरा वैतालिकाः शिवाः॥ १५६॥
असृक्प्लुताश्च पिशुना मांसभक्षास्त्वनेकशः।
लम्बक्रोडास्तथा ह्रस्वा दीर्घाः शुक्लास्तथैव च॥ १५७॥
खञ्जा स्थूलास्तथैकाक्षा नानापक्षिमुखास्तथा।
व्यालास्या उष्ट्रवक्त्राश्च अवक्त्रा क्रोडवर्जिताः॥ १५८॥
धमनाभास्तमालाभा द्विपाभा मेघसन्निभाः।
बगलाभा क्षितिनिभा अशनिभा अशनिस्वनसन्निभाः॥ १५९॥
द्रुतगाश्च मनोगाश्च वायुवेगसमाश्च ये।
बहुवक्त्रा बहुशिरा बहुबाहुसमन्विताः॥ १६०॥
बहुपादा बहुदृशः सर्पाभरणभूषिताः।
विकटा मुकुटाः केचित् तथा वै रत्नधारिणः॥ १६१॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशा विद्युत्सदृशवर्चसाः।
कपिलाहुतभुक्वर्णाः प्रमथा बहुरूपिणः॥ १६२॥
गृह्णन्तु बलयस्सर्वे तृप्ता यान्तु बलिर्नमः।
सर्वे प्रसन्नतां यान्तु कृपाङ्कुर्वन्तु सर्वतः॥ १६३क॥

हे देवियों, देवों, मुनीन्द्रों, तीनों लोकों के स्वामियों, वनस्पतियों, दानवों, सम्पूर्ण सिद्धजनों, यक्षगण, राक्षसगण, नाग, गरुडमुख खगगण, गुह्यक, देवदेव, डाकिनी, देववेश्या, हरिदधिपति, मातृकागण, विघ्ननाथगण, प्रेतगण, भूतगण, पिशाचगण (कच्चा मांस खानेवाले), पितृगण, वनदेव, नगरदेव, ग्रामदेव, क्षेत्रपाल, गन्धर्व, किन्नर, सभी जटाधारी, पितृग्रह,कूष्माण्डगण (कुम्हड़े के समान शिरवाले), पूतनाएँ, रोगसमूह Bacteria, Amoeba, Protozoa etc.) ज्वर, वैतालिक (मुर्दे के शरीर में रहनेवाले जीव), शिवा (लोमड़ी) या अघोरीजन, असृक्प्लुता (शरीर में रक्त लपेटने

वाले), चुगलखोर, मांसभक्षक, लम्बक्रोड (बड़ी तोंदवाले या बड़ी छातीवाले), ठिगने, लम्बे, श्वेत, लंगड़े, मोटे, एकाक्ष (एक आँखवाले), अनेक पक्षियों के मुखवाले, सर्पमुख, उष्ट्रमुख, मुखहीन, वक्षस्थल से विहीन, धमनाभा (सरकण्डे या धौंकनी-जैसी शक्ल के), तमालाभा (तमाल वृक्ष के समान काले रंगवाले), द्विपाभा (हाथी-जैसी त्वचा वाले), मेघ के समान कान्तिवाले, बगला के समान आभावाले, मटमैले रंग के, बिजली की कड़क के समान गर्जनेवाले, शीघ्रगामी, मनोगामी तथा जो वायुवेग के समान गमन करते हैं वे। बहुत मुखोंवाले, बहुत शिरोंवाले, बहुत भुजाओंवाले, बहुत पैरोंवाले, बहुत नेत्रोंवाले, सर्पाभरण से भूषित, विकट, मुकुटधारी, रत्नधारी, करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशित होनेवाले, बिजली-जैसी चमकवाले, कपिलवर्ण, अग्निवर्ण, प्रमथगण, अनेक रूप धारण करनेवाले आप सब भूतगण मेरी बलियों को ग्रहण करें तथा तृप्ति को प्राप्त हों। बलि को नमस्कार है। आप सब प्रसन्न होकर मेरे ऊपर सब प्रकार से कृपालु रहें॥ १५५-१६३क॥

विमर्श— भारतीय सनातन धर्म तथा संस्कृति का दृष्टिकोण सर्वतोभावेन 'सर्वे भवन्तु सुखिनः। सर्वे सन्तु निरामयाः।' पर आधारित है। इस भूतबलि का उद्देश्य है कि भवन या प्रासाद या अन्य वास्तुकर्म के कारण जिन दृश्य-अदृश्य जीवों को कष्ट पहुँचा है, उसकी प्रतिपूर्ति या क्षतिपूर्ति हो जाये। अतः उन सभी के भक्षणार्थ विभिन्न प्रकार के पदार्थों को बलि के नाम पर अर्पित किया जाता है। इस व्यवस्था के कारण जीवों की प्रजातियाँ भी लुप्त नहीं होती हैं, जिससे पर्यावरण की रक्षा होती है। पर्यावरण की रक्षा करने की क्षमता केवल वैदिक आचार-व्यवहार में है। अन्य किसी पद्धति में नहीं है। अब तो अमेरिका-जैसे देश में भी भूतप्रेतों के अस्तित्व को स्वीकारा जाने लगा है। अनेक वैज्ञानिक इन पर शोधकार्य भी कर रहे हैं। भूत शब्द का अर्थ विविध प्रकार के दृश्य-अदृश्य जीव होता है। प्रेत का अर्थ मृत्यु के उपरान्त जब तक मुक्ति न हो अथवा अन्य योनि में जन्म न मिले तब तक की भटकाववाली स्थिति होती है। वैदिक धर्म ही नहीं, उससे उद्भूत जैन एवं बौद्ध सम्प्रदायों में भी भूतादि की मान्यता तथा उनको बलि आदि से तृप्त करने का निर्देश है। प्रेतों को भोजन देने का स्पष्ट निर्देश भगवान् बुद्ध के वचनों में प्राप्त होता है। महायान तथा हीनयान अर्थात् थेरवाद दोनों में ही ऐसे अनेक प्रसंग उपस्थित हुए हैं। पालि त्रिपिटक के तीन पिटकों में एक पिटक का नाम सुत्तपिटक है। सुत्तपिटक में पाँच निकाय कहलाता है। खुद्दक निकाय में पन्द्रह ग्रन्थ हैं, जिनमें प्रथम ग्रन्थ का नाम खुद्दक पाठ है। इस खुद्दकपाठ के ७वें सूक्त तिरोकुड्डसुत्त में प्रेतों को भोजन कराने की बात निम्न शब्दों में कही गयी है—

'तिरोकुड्डेसु तिट्ठन्ति सन्धि सिङ्घाटकेसु च।
द्वारबाहासु तिट्ठन्ति आगन्त्वानसकं घरं॥
पहूते अन्नपानम्हि खज्ज भोज्जे उपट्ठिते।
न तेसं कोचि सरति सत्तानं कम्मपच्चया॥

एवं ददन्ति ञातीनं ये होन्ति अनुकम्पका।
सुचिपणीतं कालेन कप्पियं पान भोजनं।
इदं वो ञातीनं होतु सुखिता होन्तु ञातयो॥

ते च तत्थ समागन्त्वा ञाति पेता समागता।
पहूते अन्न पानम्हि सकच्चं अनुमोदरे॥
चिरं जीवन्तु नो ञाती येसं हेतु लभामसे।
अम्हाकञ्च कता पूजा दायका च अनिप्फला॥
न हि तत्थ कसी अत्थि गोरक्खेत्थ न विज्जति।
वणिज्जा तादिसी नत्थि हिरञ्जेन कयाक्कयं॥
उन्नते उदकं वुट्ठं यथा निन्नं पवत्तति।
एवमेव इतो दिन्नं पेतानं उपकप्पति॥
यथावारि वहापूरा परिपूरेन्ति सागरं।
एवमेव इतो दिन्नं पेतानं उपकप्पति॥
अदासि में अकासि मे ञाति मित्ता सखा च मे।
पेतानं दक्खिणं दज्जा पुब्बे कतमनुस्सरं॥
नहि रुण्णं वा सोको वा या चञ्ञा परिदेवना।
नतं पेतानमत्थाय एवं तिट्ठन्ति ञातयो॥
अयं च खो दक्खिणा दिन्ना सङ्घम्मि सुप्पतिट्ठिता।
दीघरत्तं हितायस्स ठानसो उपकप्पति॥
सो ञाति धम्मो च अयं निदस्सितो,
पेतानपूजा च कता उलारा।
बलञ्च भिक्खूनमनुप्पदिन्नं,
तुम्हेहि पुञ्ञं पसुतं अनप्पकं॥'

—खुद्दकपाठ पालि ७। १-१२

वैदिक संस्कृत साहित्य में भूत शब्द के अर्थ—संस्कृत व्याकरण के अनुसार भूत शब्द 'भू' धातु में 'क्त' प्रत्यय लगने से बनता है। कृदन्त के रूप में इसके अर्थ— जो हो चुका हो, जो वर्तमान में है, उत्पन्न, निर्मित, वस्तुतः होनेवाला, यथार्थ, ठीक, अतीत, सदृश मिश्रित, उपलब्ध आदि होते हैं। संज्ञा के रूप में इसके अर्थ—१. पुत्र, २. बालक, ३. शिव, ४. चान्द्रमास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी, ५. प्राणी, ६. जन्तु, ७. प्रेत-भूत-पिशाच, दानव, ८. तत्त्व, ९. तथ्य, १०. संसार, ११. कल्याण, १२. पाँच की संख्या आदि होता है।

बौद्ध पालि साहित्य में भूत शब्द का अर्थ—भदन्त बुद्धघोष ने मज्झिम निकाय, अट्ठकथा में भूत शब्द के सात अर्थ दिये हैं। उनके अनुसार 'भूत' शब्द का

प्रयोग बुद्धवचनों में १. पञ्चमहाभूतों तथा चतुर्महाभूतों के लिये, २. साथ ही पञ्चस्कन्धों के लिये, ३. भूत-प्रेत जैसे अमानुष प्राणियों के लिये, ४. प्राणिमात्र के लिये, ५. क्षीणास्रव मनुष्यों के लिये, ६. विद्यमान पदार्थों के लिये, तथा ७. वनस्पतियों के लिये हुआ है। जिस प्रकार से संस्कृत में भूतग्राम शब्द का प्रयोग हुआ है तथैव पालि भाषा में भूतगाम शब्द का प्रयोग किया गया है। बहुवचन में भूतानि शब्द भी प्रयुक्त है—

'यानीध भूतानि समागतानि ;
भुम्मानि वा यानि व अन्तलिक्खे।
सब्बेवभूता सुमना भवन्तु ;
अथोऽपि सक्कच्च सुणन्तु भासितं॥'

—खुद्दकपाठ ६। १

पालि साहित्य में प्रेत के लिये 'पेत' शब्द का प्रयोग होता है। खुद्दक पाठ में पेतवत्थु सातवाँ ग्रन्थ है, जिसमें विविध प्रकार के प्रेतों का रोचक वर्णन उपलब्ध है। यहाँ विश्वकर्मप्रकाश में श्लोक १५५ से १६२ तथा भूतों के जिन विविध रूपों का वर्णन मिलता है, उन सबकी कथा पेतवत्थु में उपलब्ध है। श्लोक १५९ में क्षितिनिभा शब्द आया है, जिसका अर्थ क्षिति (पृथ्वी या खेती) के समान रूपवाले। ऐसे ही एक प्रेत का नाम पेतवत्थु में 'खेत्तूपम पेत' है, वह कहता है 'जो प्रेतों को बलि देता है उनकी पूजा करता है, उसका पुण्य बढ़ता है तथा प्रेत उसकी कुशलता करते हैं'—

'खेत्तूपमा अरहन्तो दायका कस्सकूपमा।
बीजूपमं देय्य धम्मं एत्तो निब्बत्तते फलं॥
एतं बीजं कसि खेत्तं पेतानं दायकस्स च।
तं पेतापरि भुञ्जन्ति दाता पुञ्ञेन वड्ढति॥
इधेव कुसलं कत्वा पेते च पटिपूजिय।
भग्गञ्च कमतिट्ठानं कम्मं कत्वान भद्दकं॥'

—पेतवत्थुपालि १। १-३

जैन प्राकृत साहित्य में भूत-प्रेत—प्राकृत (अर्धमागधी) में भूत शब्द (संस्कृत भूत से घिसकर) 'भूअ' बन जाता है। इस भूत (भूअ) के अर्थ— १. वृत्तान्त, सञ्जात, बना हुआ, २. अतीत, गुजरा हुआ, ३. प्राप्त, लब्ध, ४. समान, सदृश, तुल्य, ५. वास्तविक, यथार्थ, ६. विद्यमान, ७. उपमा, औपम्य, ८. तादर्थ्य, तदर्थभाव, ९. एक देव जाति, १०. प्रकृति, ११. पिशाच, १२. भूत नामक समुद्र, १३. भूत नामक द्वीप, १४. जन्तु, प्राणी। १५. पञ्चमहाभूत, १६. वृक्ष-पेड़-वनस्पति इत्यादि होते हैं।

इसी प्रकार 'प्रेत' शब्द से बिगड़कर प्राकृत भाषा में 'परेअ' शब्द बना है।

अन्य भाषाओं में भूत-प्रेत शब्दों के अपभ्रंश—भारत से पश्चिम की ओर प्रचलित प्राचीन एवं अर्वाचीन भाषाओं में भी भूत-प्रेत शब्द के अपभ्रंश लगभग इसी अर्थ में प्रयुक्त हो रहे हैं।

प्राचीन ग्रीक भाषा का Phos (फॉस) शब्द संस्कृत के 'भासः' तथा 'भासक' शब्दों का अपभ्रंश मात्र है, जिसका अर्थ प्रकाश (light) होता है। संस्कृत का 'भास' प्राचीन ग्रीक में फास हो गया है। भूत-प्रेत भी भास या आभास मात्र होते हैं, उन्हें स्पर्श नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार प्राचीन ग्रीक का Photos शब्द आजकल अंग्रेजी में Photo हो गया है, जिसका अर्थ छाया तथा प्रकाश दोनों ही होता है अंग्रेजी 'Photograph' को हिन्दी में छायाचित्र कहते हैं, प्रकाशचित्र नहीं कहते हैं। वास्तव में जब भूत-प्रेत दिखते हैं तब वे प्रकाश होते हैं तथा जब वे लुप्त हो जाते हैं तो उनकी छायामात्र दृष्टा के मस्तिष्क में विद्यमान रह जाती है। 'Photos' शब्द संस्कृत के भूतः (भूतस्) शब्द का ही घिसा हुआ रूप है। किसी फोटोग्राफ का निगेटिव तो उस प्राणी के भूत-जैसा ही दिखता है।

प्राचीन तथा अर्वाचीन अरबी भाषा में 'भूत' शब्द का अपभ्रंश फ़ौत (فوت) शब्द है, जिसका अर्थ मरा हुआ व्यक्ति होता है, जो वर्तमान में अस्तित्व में नहीं है परन्तु भूतकाल में विद्यमान था। अतः भूत तथा उसके अरबी अपभ्रंश फ़ौत दोनों का ही अर्थ 'हुआ था' या 'हो चुका है' ऐसा होता है।

प्राचीन फारसी भाषा में प्रेत शब्द का अपभ्रंश पलीद हो गया है, जिसका अर्थ पुराने समय में मुर्दा तथा आजकल अपवित्र होता है। संस्कृत प्रेत शब्द का अर्थ भी मरा हुआ व्यक्ति ही होता है। इसी का अन्य पर्यायवाची 'गतः' (गतस्) शब्द है, जिसका बिगड़ा रूप गतस् के स्थान पर गस्त हो गया, जो आज भी अंग्रेजी में Ghost हो गया है। जबकि जार्मनिक भाषा (Gmc.) में यह Gast है। संस्कृत में 'मृत' के लिये 'गतासु' का भी प्रयोग प्रचुर है।

आचार्य द्वारा यजमान का अभिषेक

आचार्यस्तु ततो नीत्वा कलशं मन्त्रमन्त्रितम्।
स्वयं प्रत्यङ्मुखो भूत्वा प्राङ्मुखं यजमानकम्॥ १६३॥
स्वशाखोक्तेन मन्त्रेण आगमोक्तेन वा तथा।
स्नापयेत् कुम्भतोयेन मन्त्रैः पौराणिकैस्तथा॥ १६४॥
वैदिकैर्वा तथा मन्त्रैः सवस्त्रस्थः कुटुम्बवान्।
सदारपुत्रमेतस्य यजमानस्य ऋत्विजः॥ १६५॥

भूतादि बलि से निवृत्त होकर आचार्य अभिमन्त्रित कलश को लेकर स्वयं पश्चिम की ओर मुख करके खड़ा हो जाये तथा यजमान को पूर्व की ओर मुख करके उसकी पत्नी पुत्र एवं कुटुम्ब को उसी के साथ बिठाकर अपनी शाखा के वैदिक मन्त्रों से

अथवा तान्त्रिक मन्त्रों से अथवा पौराणिक मन्त्रों से उस कलश के जल से अभिषेक (स्नान) कराये (अभिषेक के समय यजमान एवं उसका परिवार वस्त्र पहने रहे)॥ १६३-१६५॥

अभिषेक मन्त्र

सुरास्त्वामभिसिञ्चन्तु ये च सिद्धाः पुरातनाः।
ब्रह्माविष्णुश्च शम्भुश्च साध्याश्च समरुद्गणाः॥ १६६॥
आदित्यावसवो रुद्रा अश्विनौ च भिषग्वरौ।
अदितिर्देवमाता च स्वाहा सिद्धिः सरस्वती॥ १६७॥
कीर्तिर्लक्ष्मी द्युतिश्रीश्च सिनीवाली कुहूस्तथा।
दितिश्च सुरसा चैव विनता कद्रुरेव च॥ १६८॥
देवपत्न्यश्च यः प्रोक्ता देवमातर एव च।
सर्वास्त्वामभिसिञ्चन्तु शुभाश्चाप्सरसां गणाः॥ १६९॥
नक्षत्राणि मुहूर्ताश्च याश्चाहोरात्रसन्धयः।
सम्वत्सरा दिनेशाश्च कला काष्ठा क्षणा लवाः॥ १७०॥
सर्वे त्वामभिषिञ्चन्तु कालस्यावयवाः शुभाः।
एते चान्ये च मुनयो वेदव्रतपरायणाः॥ १७१॥
सशिष्यास्तेऽभिसिञ्चन्तु सदानाश्च तपोधनाः।
वैमानिकाः सुरगणाः सरवैः सागरैः सह॥ १७२॥
मुनयश्च महाभागा नागा किम्पुरुषा खगाः।
वैखानसा महाभागा द्विजा वैहायसाश्च ये॥ १७३॥
सप्तर्षयः सदाराश्च ध्रुवस्थानानि यानि च।
मरीचिरत्रि पुलहः पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः॥ १७४॥
भृगुः सनत्कुमारश्च सनकोऽथ सनन्दनः।
सनातनश्च दक्षश्च जैगीषव्यो भलन्दनः॥ १७५॥
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितो जाबालिकश्यपौ।
दुर्वासा दुर्विनीतश्च कण्वः कात्यायनस्तथा॥ १७६॥
मार्कण्डेयो दीर्घतपाः शुनःशेफो विदूरथः।
और्वः सम्वर्तकश्चैव च्यवनोऽत्रिपराशरः॥ १७७॥
द्वैपायनो यवक्रीतो देवराजो सहानुजः।
पर्वतास्तरवो वल्यः पुण्यान्यायतनानि च॥ १७८॥
प्रजापतिर्दितिश्चैव गावो विश्वस्य मातरः।
वाहनानि च दिव्यानि सर्वेलोकाश्चराचराः॥ १७९॥

अग्नयः पितरस्तारा जीमूताः खं दिशो जलम्।
एते चान्ये च बहवो वेदव्रतपरायणाः॥ १८०॥
सेन्द्राःदेवगणाः सर्वे पुण्यश्रवणकीर्तनाः।
तोयैस्त्वामभिसिञ्चन्तु सर्वोत्पातनिबर्हणे॥ १८१॥
यथाभिषिक्तो मघवाने तैर्मुदितमानसैः।
तथात्वामभिषिञ्चन्तु पूर्णा सन्तु मनोरथाः॥ १८२॥

मन्त्रार्थ—हे यजमान! देवगण, प्राचीन सिद्धगण, ब्रह्मा, विष्णु, शम्भु, साध्य-गण, मरुद्गण, आदित्यगण, वसु, रुद्रगण, अश्विनीकुमार-जैसे श्रेष्ठभिषग्वर, देवमाता अदिति, स्वाहा, सिद्धि, सरस्वती, कीर्ति, लक्ष्मी, द्युति, श्रीः, सिनीवाली, कुहू, दिति, सुरसा, विनता, कद्रु आदि देवपत्नियाँ एवं देवमाताएँ तथा शुभ अप्सरसगण आपका अभिषेक करें॥ १६६-१६९॥

सभी नक्षत्र, मुहूर्त, अहोरात्र, सन्धियाँ, सम्वत्सरगण, दिन के स्वामी (सप्तवारेश), कला, काष्ठा, क्षण, लव आदि जो भी काल के अवयव हैं, वे आपका अभिषेक करें। इनके अतिरिक्त जो वेदपरायण मुनि हैं तथा दानशील तपोधन हैं, वैमानिक, सुरगण, गर्जना करते हुए समुद्र तथा अपने शिष्यों (अनुचरों-सेवकों) सहित आपका अभिषेक करें॥ १७०-१७२॥

महाभाग्यशाली मुनिजन, नागजन, किम्पुरुष, खग, वैखानस, वैहायसद्विज (आकाशगामी पक्षी), सपत्नीक सप्तर्षिगण, ध्रुवस्थान, मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरा, भृगु, सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, दक्ष, जैगीषव्य, भलन्दन, एकत, द्वित, त्रित, जाबालि, कश्यप, दुर्वासा, दुर्विनीत, कण्व, कात्यायन, मार्कण्डेय, दीर्घतपा, शुनःशेफ, विदूरथ, और्व, च्यवन, अत्रि, पराशर, द्वैपायन, यवक्रीत, अनुजसहित देवराज मुनि आदि (आपका अभिषेक करें)॥ १७३-१७७½॥

पर्वत, वृक्ष, वल्ली, पुण्यस्थान, प्रजापति, दिति, विश्व की माताएँ गौवें, दिव्यवाहन, सभी चराचर लोक, अग्नियाँ, पितर, तारागण, मेघगण, आकाश, दिशाएँ, जल—ये सब तथा अन्य सभी वेदव्रतपरायण मनुष्य, इन्द्रसहित देवतागण, सभी पुण्यश्लोक मानव, आपका अभिषेक इस जल के द्वारा सभी उत्पातों की शान्ति के लिये करें। जिस प्रकार देवताओं ने अभिषेककर इन्द्र को प्रसन्न किया, उसी प्रकार वे देवगण आपका भी अभिषेक करें, जिससे आपके मनोरथ पूर्ण हों॥ १७८-१८२॥

अभिषेक के उपरान्त स्नान

इत्येतैश्चार्थकल्पैस्तु सहितैः समरुद्गणैः।
अभिषेकं प्रकुर्वीत मन्त्रैः पौराणिकैस्तथा॥ १८३॥
ततः शुद्धोदकस्नानं यजमानस्य कारयेत्।

इस प्रकार ऊपर कहे गये मन्त्रों से यजमान का अभिषेक उसके परिवार सहित करायें अथवा पौराणिक मन्त्रों से अभिषेक करायें कलश के जल से अभिषेक के उपरान्त फिर यजमान को शुद्धोदक से स्नान करना चाहिये॥ १८३-१८३½॥

ब्रह्मस्थली का पूजन

वास्तुमण्डलमध्यस्थे ब्रह्मस्थाने प्रपूजयेत्॥ १८४॥
सुरूपां पृथिवीं दिव्यरूपाभरणसंयुताम्।
स्त्रीरूपां प्रमदावेषधारिणीं सुमनोहराम्॥ १८५॥
महाव्याहृतिपूर्वेण पूजयेत्तां धरां पुनः।
धारयेति च मन्त्रेण सम्प्रार्थ्य च पुनः पुनः॥ १८६॥

वास्तुमण्डल के बीचोंबीच जो ब्रह्मस्थली है, उसकी पूजा पृथ्वीदेवी के रूप में करें। उनकी सुन्दरी, दिव्य वस्त्रभूषणधारिणी ऐसे रूप में महाव्याहृतियाँ पूर्व में जोड़-कर 'धारय०' इस मन्त्र से बार-बार प्रार्थना करके पूजा करनी चाहिये॥ १८४-१८६॥

वास्तुदेव का उत्तरपूजन

सर्वदेवमयं वास्तु वास्तुदेवमयं परम्।
ततः स्वनाममन्त्रेण ध्यात्वा तत्र च पूजयेत्॥ १८७॥

वास्तुपुरुष सर्वदेवमय हैं तथा सर्वदेव वास्तुमय है, अतः वास्तुपीठ के सभी ४४ देवताओं का पूजन उनके नाममन्त्रों से करके उन-उन के स्थानों में पूजन करें॥ १८७॥

चतुर्मुख (ब्रह्मा) का पूजन

ततश्चतुर्मुखं देवं प्रजेशं चाह्वयेत्ततः।
गन्धादिभिश्च तं पूज्य प्रणम्य च पुनः पुनः॥ १८८॥

फिर प्रजापति चतुर्मुख ब्रह्मा का (पीठ के मध्य में) आवाहन करके उनका गन्धादि द्रव्यों से पूजन करे तथा उन्हें बार-बार प्रणाम करे॥ १८८॥

वास्तुपुरुष की प्रार्थना

वास्तुपुरुष नमस्तेऽस्तु भूमिशय्यारत प्रभो।
मद्गेहे धनधान्यादिसमृद्धिं कुरु सर्वदा॥ १८९॥

हे वास्तुपुरुष! आपको नमस्कार है, आप भूमिशय्या पर शयन कर रहे हैं। आप मेरे घर में सर्वदा धन एवं धान्य की समृद्धि बनाये रखें॥ १८९॥

जलधारा तथा बीजपातनकर्म

वाचयित्वा ततः स्वस्ति कर्कस्थं परिगृह्य च।
सूत्रमार्गेण तोयस्य धारां प्रादक्षिणेन च॥ १९०॥
पातयेत्तेन मार्गेण सर्वबीजानि चैव हि।
सर्वबीजे जलेरेव तन्मार्गेणापि सञ्चरेत्॥ १९१॥

ऊपर का प्रार्थना मन्त्र बोलकर फिर जहाँ शिला रखी है, उस स्थान पर (स्नान मण्डप से चलने पर) जाने के लिये कर्क (करवा = टोंटीदार मिट्टी का घड़ा) में जल भरकर उसकी पतली धार सूत्र (धागे) की भाँति लम्बाई में भूमि पर गिराता हुआ चले तथा यजमान की पत्नी सभी प्रकार के बीजों को उस जल की रेखा पर गिराती हुई (शिलान्यास के स्थान पर) जाये॥ १९०-१९१॥

सूत्रधार द्वारा शिला का आनयन

इति वास्तुविधानं तु कृत्वा तां स्नानमण्डपात्।
समानीय शिलां तत्र सूत्रधारो गुणान्वितः॥ १९२॥

जब इस प्रकार से वास्तुविधान सम्पन्न हो जाये तब सूत्रधार (थवई=स्थपति= राजमिस्त्री=कारीगर) अच्छे लक्षणों युक्त उस शिला को लाकर निर्माण-स्थल पर रखे॥ १९२॥

दिक्साधन तथा शिलान्यासविधि

तत्र दिक्साधनं कुर्याद् गृहमध्ये सुसाधिते।
ईशानादिक्रमेणैव स्वर्णकुद्दालकेन तु॥ १९३॥
खनित्वा कोणभागे तु मध्ये चैव विशेषतः।
नाभिमात्रे तथा गर्ते शिलानां स्थापनं शुभम्॥ १९४॥

निर्माण-स्थल पर सर्वप्रथम पूर्वादि दिशाओं का साधन करे। दिक्साधन निर्माणाधीन गृह के मध्य भाग से करना चाहिये। खननकार्य ईशानादि क्रम से स्वर्ण कुद्दालक (सोने की गैंती या कुदाल) से करना चाहिये। चारो कोणों तथा मध्य भाग में खननकर नाभि के बराबर गहराई का गर्त (गड्ढा) खोदकर उसमें शिलाओं का स्थापन करना शुभ होता है॥ १९३-१९४॥

विमर्श—दिक्साधन से सही दिशा का ज्ञान हो जाता है। इसके लिये शास्त्रों में वर्णित विधियों से दिक्साधन करे, अन्यथा सुविधा के लिये दिक्सूचक यन्त्र का उपयोग कर लेना चाहिये।

शिलान्यास के समय सूत्र डालने पर अशुभ शकुन

सूत्रच्छेदे भवेन्मृत्युः कीले चार्वाङ्मुखे गदः।
स्कन्धाच्च्युते शिरोरोगः कराद् गृहपतेः क्षयः॥ १९५॥
गृहेशस्थपतीनाञ्च स्मृतिलोपोऽथ मृत्युदः।
भग्ने कीर्तिर्वधः कुम्भे कुम्भस्योत्सर्गवर्जिते॥ १९६॥
सूत्रे प्रसार्यमाणे तु गर्दभो यदि रौति चेत्।
तत्रास्थिशल्यं जानीयात् श्वशृगालादिलंघितम्॥ १९७॥
रविर्दीप्तादिशायातु तत्र चेत्परुषो रवः।
संस्पृष्टाङ्गसमाने च तस्मिञ्छल्यं विनिर्दिशेत्॥ १९८॥

शिलाविन्यासकाले तु वाशन्ते द्विरदादयः।
तस्मिंस्तद्देहसम्भूतमस्थिशल्यं विनिर्दिशेत्॥ १९९॥
कुब्जं वामनकं भिक्षुं वैद्यं रोगातुरानपि।
दर्शनं सूत्रकाले तु वर्जयेच्छुभमिच्छता॥ २००॥

यदि सूत्र से नाप करते समय सूत्र (फीता आदि भी) टूट जाये तो गृहस्वामी के लिये मृत्युभय होता है। यदि भूमि में गाड़ी जानेवाली कील (सूत्र के बाँधने में प्रयुक्त) अधोमुख हो जाय तो रोग उत्पन्न होता है। यदि सूत्र कन्धे से गिर जाये तो शिरोरोग तथा हाथ से गिरने पर गृहस्वामी की हानि होती है॥ १९५॥

यदि गृहस्वामी अथवा रथपति (थवई) की स्मृति का लोप सूत्रदान के समय पर हो जाये तो मृत्युदायक होता है। यदि विसर्जन के पूर्व ही कुम्भ फूट जाये तो कुल की कीर्ति नष्ट होती है॥ १९६॥

सूत्र के फैलाते समय यदि गधा रेंकता है (हौंची-हौंचीं / हैंचूं-हैंचू / चीपों-चीपों शब्द करता है) तो शिलान्यास-स्थल में शल्य होता है। यदि उक्त सूत्र को कुत्ता या सियार आदि लाँघ जायें तो भी अशुभ होता है॥ १९७॥

सूत्र-प्रकरण के समय सूर्य जिस दिशा में हो यदि उसी दिशा में कठोर शब्द हो तो स्थपति के जिस अंग की ओर वह कठोर शब्द हो, वास्तुपुरुष के उसी अंग में शल्य होता है॥ १९८॥

यदि शिलान्यास के समय हाथी आदि पशु शब्द करते हैं तो जो पशु शब्द करे, उसी की अस्थि उस निर्माणस्थल में बताना चाहिये॥ १९९॥

उक्त समय पर निर्माण-स्थल पर कोई कुबड़ा, बौना, भिक्षुक, चिकित्सक तथा रोगी के दर्शन लक्ष्मी के चाहनेवाले को नहीं करना चाहिये॥ २००॥

विमर्श—श्लोक १९९ में ''वाशन्ते द्विरदादयः'' वाक्यांश का प्रयोग हुआ है। 'वाशन्ते' 'वाश्' धातु के आत्मनैपद में प्रथम पुरुष बहुवचन का रूप है। दिवादिगण की 'वाश्' धातु का अर्थ पशुओं का बोलना होता है। तात्पर्य यह है कि हाथी का चिंघाड़ना, घोड़े का हिनहिनाना, कुत्ते का भौंकना, गाय-बैल का रँभाना आदि अर्थ 'वाशन्ते' का समझें।

शुभ शकुन

श्रुतौ हुलहुलानाञ्च मेघानां गर्जितेन च।
गर्जतामपि सिंहानां स्वनितं धनदं भवेत्॥ २०१॥
सूत्रे प्रसार्यमाणे तु दीप्तोऽग्निर्यदि दृश्यते।
पुरुषो घोटकारूढो भवेद्राज्यमकण्टकम्॥ २०२॥
शंखतूर्यादिनिर्घोषं वस्तुभिर्विपुलं गृहम्।
योषिताञ्च कन्यकानां क्रीडनं वित्तवर्धनम्॥ २०३॥

प्रारम्भे च शुभागेह गोपने मृत्युरोगदा।
स्तम्भाद्यारोपणे मध्या प्रवेशे पुष्टिरुत्तमा॥ २०४॥
दारुणाञ्छेदने चैव दुःखशोकामयप्रदा।
परीक्षासमये चैव न तु सौख्यप्रदा स्मृता॥ २०५॥
छत्रध्वजपताकानां दर्शने निधिसम्भवः।
पूर्णकुम्भे तु सम्प्राप्तिः स्थैर्यं कलकलध्वनौ॥ २०६॥

यदि सूत्र प्रसारण के समय हुदहुद पक्षी (कठफोड़वा) की ध्वनि सुनायी पड़े अथवा मेघों का गर्जन हो अथवा सिंहों की गर्जना सुनायी पड़े तो धनप्राप्तिकारक शुभ शकुन होता है। यदि उस समय प्रज्वलित अग्नि के दर्शन हों अथवा कोई पुरुष घोड़े पर सवार होकर आता-जाता दिखाई पड़े तो अकंटक राज्य (पद या अधिकार) की प्राप्ति होती है॥ २०१-२०२॥

यदि उक्त समय पर शंख-तुरही आदि वाद्यों के बजने का शब्द सुनायी पड़े तो उस निर्मित होनेवाले गृह में वस्तुओं की विपुलता होती है अर्थात् वह गृह साधन सम्पन्न होता है। उस अवसर पर स्त्रियों या कन्याओं का क्रीडन (खेलना) धन की वृद्धि करता है। कन्याओं का क्रीडन यद्यपि गृहारम्भ में शुभ होता है, परन्तु गृहाच्छादन में मृत्युकारक तथा रोगकारक होता है॥ २०३-२०४॥

इसी प्रकार स्त्रियादि क्रीडा स्तम्भारोपण में समफल तथा गृहप्रवेश के समय उत्तम पुष्टिकर शकुन होती है। लकड़ी काटते समय कन्यकादि की क्रीड़ा दुःख-शोक तथा रोगप्रद होती है तथा परीक्षा के समय भी स्त्रियादि की क्रीडा शकुन न होकर अपशकुन जानना चाहिये॥ २०५॥

यदि गृहारम्भ के समय छत्रध्वज, पताका आदि के दर्शन हों तो उस घर में निधि का वास होता है। यदि उस समय जलपूर्ण घट के दर्शन हों तो सम्यक् रूप से लाभ होता है तथा कलकल ध्वनि का श्रवण गोचर घर में स्थिरता देता है॥ २०६॥

शिलान्यास का क्रम

ग्रहकोणेषु सर्वेषु पूजां कृत्वा विधानतः।
ईशानमादितः कृत्वा प्रादक्षिण्येन विन्यसेत्॥ २०७॥
अनेनैव विधानेन स्तम्भद्वारादिरोपणम्।
वास्तुविद्या विधानन्तु कारयेत्सुसमाहितः॥ २०८॥
नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा नाम्नी यथाक्रमम्।

ईशानादि कोणों में प्रदक्षिण क्रम से पूजा करके इसी क्रम से शिलाओं (पाँच शिलाओं) का न्यास करना चाहिये॥ २०७॥

ईशानादि में ही प्रदक्षिण क्रम से स्तम्भारोपण तथा द्वारादि का निर्माण दिशाओं में प्रदक्षिण क्रम से ही करना चाहिये। वास्तुविद्या के विशारद को सुसमाहित चित्त से इसी विधान से नन्दा, भद्रा, जयारिक्ता तथा पूर्णा—इन पाँच शिलाओं को यथाक्रम से रखना चाहिये॥ २०८-२०८½॥

विमर्श—१. सर्वप्रथम ईशानकोण में नन्दा नाम की शिला रखें। २. फिर अग्निकोण में भद्रा नाम की शिला रखें। ३. फिर नैर्ऋत्यकोण में जया नाम की शिला का स्थापन करें। ४. फिर वायव्यकोण में रिक्ता नाम की चौथी शिला रखें। ५. सबके अन्त में पूर्णा नाम की शिला को गृह के मध्यभाग के गर्त (गड्ढे में रखना चाहिये)। यही अभिप्राय है। काष्ठ के, लौह के, प्रस्तर के या आर. सी. सी. के स्तम्भ भी इसी क्रम से बनाना चाहिये।

पाँचों शिलाओं पर चित्रों का लेखन

नन्दायां पद्ममालिख्य भद्रां सिंहासनं तथा॥ २०९॥
जयां यां तोरणं छत्रं रिक्तायां कूर्म एव च।
पूर्णायाञ्च चतुर्बाहुं विष्णुं संल्लेखयेद् बुधः॥ २१०॥

१. नन्दा नामक प्रथम शिला में कमलपुष्प लिखना चाहिये। २. भद्रा नामक शिला पर सिंहासन का चित्र लिखना चाहिये। ३. जया नामक शिला में छत्र या तोरण का लेखन करें तथा ४. रिक्ता नामक चौथी शिला में कूर्म (कछुवा का चित्र) लिखना चाहिये। ५. पाँचवीं पूर्णा नाम्नी शिला में चतुर्भुज विष्णु का चित्र बनाया जाता है॥ २०९-२१०॥

ईशान १. नन्दा ← कमल	पूर्व	अग्नि सिंहासन → २. भद्रा
उत्तर	५. पूर्णा ↑ चतुर्भुज विष्णु	दक्षिण
४. रिक्ता ← कूर्म वायव्य	पश्चिम	छत्र या तोरण ↓ ३. जया नैर्ऋत्य

पञ्चदेव तथा पञ्च तत्त्वों का आवाहन

ॐ भूर्भुवः स्वरिति तथा सर्वानावाहनस्मृतम्।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईशानश्च सदाशिवः॥ २११॥
एते पञ्चैव पञ्चेषु भूतानामावाहयेत् पुनः।
स्वपनञ्च ततः कुर्याद् विधिदृष्टेन कर्मणा॥ २१२॥

नाम के पूर्व ॐ भूर्भुवः स्वः उच्चारण करके पाँचों शिलाओं, पंचदेवों तथा पंचभूतों का आवाहन करें। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईशान तथा सदाशिव ये पंचदेव हैं। फिर जिसने विधिपूर्वक शिलान्यास कर्म देखा हो ऐसे वास्तुविद्याविशारद कर्मकाण्डी विद्वान् ब्राह्मण से पाँच शिलाओं का स्नान कराना चाहिये॥ २११-२१२॥

स्नपन के लिये पञ्च कलशों के विधान का कथन

पञ्चभिर्कलशैर्युक्तास्तासां नामान्यतः शृणु।
पद्मञ्चैव महापद्मं शङ्खञ्च विजयं तथा॥ २१३॥
पञ्चमं सर्वतोभद्रो मन्त्रेणावाहयेत् तु तम्।
अग्निमूर्द्धेति च मृदा यज्ञायज्ञेति वारुणैः॥ २१४॥
अश्वत्थेति कषायेण पल्लवेन जलेन च।
गायत्र्याञ्च गवां मूत्रैर्गन्धद्वारेति गोमयैः॥ २१५॥
आप्यायस्वेति क्षीरेण दधिक्राव्णोति वै दधि।
घृतवतीति घृतेन च मधुवातेति वै मधु॥ २१६॥
पयः पृथिव्यामिति च पञ्चगव्येन संस्नपेत्।
देवस्य त्वेति कुशैः काण्डात् काण्डाच्च दूर्वया॥ २१७॥
गन्धद्वारेति गन्धेन पञ्चगव्येन वै तथा।
या औषधीरोषधीभिर्याफलिनीतिफलोदकैः॥ २१८॥
नमस्तेति वृषशृङ्ग मृदा धान्यमसीति च।
धान्यादीन्याजिघ्रमिति च कलशेन तथैव च॥ २१९॥
औषधय इत्यक्षतैश्च यवोऽसीति यवोदकैः।
तेजोऽसीति तिलैः पञ्च नद्येति च नदीजलैः॥ २२०॥
इमम्मे गङ्गेति च तथा तीर्थानामुदकेन च।
नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो मृदा न गदन्ति समुद्भवात्॥ २२१॥
स्योना पृथिवी च मृदासीतया मधुमिश्रया।
हिरण्यगर्भ इति वा सुवर्णोदकसम्भवैः॥ २२२॥
रूपेणेति रौप्येण पदस्यायेति वस्त्रजैः।
संस्नाप्य तीर्थपयसा ततः शुद्धोदकेन च॥ २२३॥

सम्मार्ज्य शुभवस्त्रेण गन्धानालिप्य सर्वतः।
ब्रह्मादीन् पूजयेत्तत्र नाममन्त्रेण वा तथा॥ २२४॥
उपचारैः षोडशभिमूलमध्य शिरस्वपि।
स्नपनञ्चाभिषेकन्तु वेदमन्त्रैश्च कारयेत्॥ २२५॥
आब्रह्मन्निति नन्दायां भद्रं कर्णेति वै तथा।
जातवेदसेति तथा यमाय त्वेति मन्त्रकैः॥ २२६॥
पूर्णादर्वीति पूर्णायां क्रमेणापि समाचरेत्।
मूलमध्येऽपि च तथा नामभिर्मतमन्त्रकैः॥ २२७॥

स्नान कार्य के लिये पाँच कलशों का उपयोग करना चाहिये। उनके नाम सुनो। १. पद्म, २. महापद्म, ३. शंख, ४. विजय तथा ५. सर्वतोभद्र यह पाँचवाँ होता है। मन्त्रों से कलशों पर उनके अधिष्ठाताओं का आवाहन करे। 'अग्निमूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः' इत्यादि मन्त्र से शिलाओं को मृत्तिका स्नान करायें तथा 'यज्ञायज्ञावो अग्नये०' इत्यादि मन्त्र से जल-स्नान करायें॥ २१३-२१४॥

'अश्वत्थे वो निषदनं पर्णोवः वसतिस्कृतः' इत्यादि मन्त्र से पञ्चपल्लव कषाय द्वारा स्नान, गायत्री मन्त्र से गोमूत्र-स्नान, 'गन्धद्वारां दुराधर्षां०' मन्त्र से गोमय-स्नान कराये॥ २१५॥

'आप्यायस्व मदिन्तम सोम०' इत्यादि मन्त्र से दुग्ध-स्नान, दधिक्राव्णो अकारिषं (शु०यजु० २३। ३२) से दधिस्नान, 'घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधु दुघे सुपेशसा। द्यौवा पृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कम्भिते अजरेमूर्ति रेतसा'॥ इस मन्त्र द्वारा घृतस्नान तथा 'मधुव्वाता ऋतायते०' इस मन्त्र से मधुस्नान करायें॥ २१६॥

'पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु०' इत्यादि मन्त्रसे पञ्चगव्य-स्नान करायें। 'देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनो०' इस मन्त्र से कुशोदक-स्नान तथा 'काण्डात् काण्डात् प्ररोहन्ती०' मन्त्र से दूर्वा स्नान (दूर्वोदक से) कराना चाहिये॥ २१७॥

'गन्धद्वारां०' इस मन्त्र से गन्धोदक-स्नान तथा पञ्चगव्य-स्नान, 'या ओषधी पूर्वे जाता०' इत्यादि मन्त्र से औषधिजल-स्नान तथा 'या फलिनीर्याऽफलाश्च०' से फलोदक-स्नान कराना चाहिये॥ २१८॥

'नमस्ते रुद्र मन्यव०' इत्यादि मन्त्र से वृषश्रृंगोदक द्वारा मृदास्नान करायें। 'धान्यमसीति धिनू हि देवा०' इत्यादि मन्त्र से धान्योदक-स्नान तथा 'आजिघ्रकलशं मह्या त्वा०' इत्यादि मन्त्र से कलश से स्नान करायें॥ २१९॥

विमर्श—गाय या बैल के सींग पर जो जल डालकर उसका संग्रह किसी पात्र में कर लेते हैं, उसी को गोश्रृंगोदक अथवा वृषश्रृंगोदक कहते हैं। इस जल से यदि मनुष्य स्नान करे तो नियमित स्नान करने से उसकी कैंसर तथा एड्स-जैसी भयंकर व्याधियाँ भी कुछ ही दिनों में ठीक हो जाती हैं।

'ओषधय: समवदन्त सोमेन सह राज्ञा।
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्त ँ राजन् पारयामसि॥'

इस मन्त्र से अक्षतोदक (चावलों के जल) से स्नान करायें। 'यवोऽसि यवयास्मद् द्वेषो यवयाराती:' इस मन्त्र से यवोदक-स्नान करायें तथा 'तेजोऽसि शुक्रममृतमायुष्पा आयुर्मे पाहि। देवस्य त्वा सवितु: प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णोहस्ताभ्यामाददे॥' इस मन्त्र से तिलोदक से तथा 'पञ्चनद्य: सरस्वतीमपि यन्तिसस्रोतस:। सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित्॥' इस मन्त्र से नदी-जल से स्नान करायें॥ २२०॥

'इमम्मे गङ्गे०' मन्त्र से तीर्थोदक-स्नान, 'नमोस्तु रुद्रेभ्यो०' से गजमृदास्नान तथा हस्तिदन्तोदक स्नान कराना चाहिये॥ २२१॥

'स्योना पृथिवी नो०' इत्यादि मन्त्र से मधुमिश्रित हल की नोंक से लगी खेत की मिट्टी से स्नान करायें तथा 'हिरण्यगर्भ: समवर्त्तताग्रे०' इत्यादि मन्त्र से सुवर्णोदक से स्नान करायें 'रूपेण वो रूपमभ्यागां तुथो वो विश्ववेदा विभजतु। ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्र दक्षिणां वि स्व: पश्य व्यन्तरिक्षं यतस्व सदस्यै:॥' (शु० य० ७।४५) इस मन्त्र के द्वारा चाँदी के जल से स्नान करायें। फिर 'यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै। सन्दानमर्वन्तं पड्वीशं प्रिया देवेष्वायामयन्ति॥' (शु०य० २५।३९) इस मन्त्र से वस्त्रजोदक से स्नान करायें। फिर पुन: तीर्थोदक तथा शुद्धोदक से शिलाओं को स्नान कराके उनको श्वेत वस्त्र से पोंछकर शिलाओं के सर्वांग में गन्ध का लेपन करें, फिर वास्तुमण्डल में वेदमन्त्रों अथवा नाममन्त्रों से ब्रह्मादि देवताओं का पूजन करें॥ २२२-२२४॥

यह पूजन षोडशोपचार होना चाहिये, फिर शिलाओं के मूल-मध्य तथा शीर्ष का स्नान एवं अभिषेक कराके अलग-अलग वेदमन्त्रों से अलग-अलग शिलाओं का पूजन करना चाहिये॥ २२५॥

१. नन्दा नाम्नी शिला का पूजन 'आब्रह्मन् ब्रह्मणो०' इत्यादि मन्त्र से करें। २. भद्रानाम की शिला का पूजन 'भद्रं कर्णेभि: शृणुयाम देवा०' इस मन्त्र से करना चाहिये।

'जातवेदसे सुनवाम सममरातीयतो निदहाति वेद:।
स न: पर्षदति दुर्गाणि विश्वानावेव दुरितात्यग्नि:॥'
—(ऋ० १।९९।१)

इस मन्त्र से जया नाम्नी शिला का तथा 'यमाय त्वा०' इत्यादि मन्त्र से रिक्ता नामवाली शिला का पूजनादि करना चाहिये॥ २२६॥

'पूर्णादर्वीपरापत०' इत्यादि मन्त्र से पूर्णा नामक शिला का पूजन मूल-मध्य तथा शिर में करायें अथवा शिलाओं का स्नान-पूजनादि उनके नाममन्त्रों से कराना चाहिये॥ २२७॥

विमर्श—देवताओं, शिलाओं एवं यजमानादि के स्नान में पञ्चगव्य, वनस्पतियों, अनेक प्रकार की मिट्टियों, फूलों, फलों, गन्धों की स्नान विधि को पढ़कर आधुनिक इंजीनियरों को यह सब व्यर्थ का कर्मकाण्ड प्रतीत हो सकता है, परन्तु इस सबका कारण पूर्णत: वैज्ञानिक है। दूध, दही एवं घी के भीतर प्राप्त रसायन तथा अम्लों में मकान में जो लौना (नौना) लग जाता है। उसको रोकने की क्षमता होती है। यदि भवन-निर्माण के कार्य में प्रयुक्त सीमेण्ट एवं रेत को गाय के मट्ठे में सानकर उपयोग किया जाये तो उस मकान में लौना नहीं लगता है, यह अनुभवसिद्ध बात है।

जहाँ तक देवताओं एवं व्यक्तियों के स्नान में इन पदार्थों के प्रयोग की बात है तो इन विविध वस्तुओं के मानव शरीर पर स्नान द्वारा सम्पर्क से स्नान करनेवाले व्यक्ति की रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। वामी की मिट्टी को दीमक तैयार करती है, अत: उसमें दीमक के शरीर से निकले जैविक रसायनों में जीवाणु तथा विषाणुओं के नाशन की अद्भुत क्षमता होती है।

विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों के पत्र, पुष्प-फल-मूल-छाल-निर्यास आदि के कषाय अथवा जलों के द्वारा स्नान करने से रोगों का नाश होना सर्वविदित तथा ग्रामीण अञ्चलों में आज भी अनुभूत है।

गोशाला, गजशाला, अश्वशाला तथा खेत में से छाल की नौक से कुरेदी गयी मिट्टी में विभिन्न रोगों के उत्पादक अर्धमृत जीवाणु रहते हैं। यही बात राजद्वार की मिट्टी में होती है, अत: इन मिट्टियों के स्नान से वही प्रभाव होता है जो कि टीकाकरण (Vaccination) का होता है। इस स्नान से मनुष्य की रोग-प्रतिरोधक क्षमता की वृद्धि होती है, अत: यह सब कर्मकाण्ड ढकोसला न होकर वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित तथा सहस्राब्दियों से अनुभूत मानव जीवन को सुखी बनानेवाली धार्मिक क्रिया है।

धातुओं के जल से स्नान करने से उनके आयनों (Ions) का प्रभाव रोगनिवारक होता है।

'Ion—strictly any atom or molecule which has resultant electric charge due to loss or gain of valency electrons. Free electrons are sometimes loosely classified as negative ions. Ionic crystals are formed of ionized atoms and in solution exibit ionic conduction. In gases ions are normally molecular and cases of double or triple ionization may be encounterd. When almost completely ionized, gases form a fourth state of matter known as a plasma. Since matter is electrically neutral, ions are normally produced in pairs.'

—Chambers Dictionary of Science and Technology.

भस्म-स्नान का भी वैज्ञानिक कारण है। भस्म में अनेक प्रकार के क्षारीय तत्त्व रहते हैं, जो शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाते हैं। भगवान् शंकर के लिङ्ग पर चिताभस्म का लेपन भी वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है। मानव शरीर की भस्म में

शरीर के आवश्यक सभी खनिज, लवण एवं धातुएँ होती हैं, उनका लेप जब शिवलिङ्ग पर किया जायेगा तब उस भस्म को लगानेवाले व्यक्ति के हाथों के द्वारा उन तत्त्वों के सूक्ष्म अंश हथेली की त्वचा द्वारा तथा कुछ अंश गन्ध द्वारा नासिका के माध्यम से शरीर में प्रविष्ट होकर उसके शरीर को रोगरहित तथा दीर्घायु करता है। भस्म में जीवाणुओं तथा विषाणुओं को नष्ट करने की भी अद्भुत क्षमता है। रोगनाशन का जो कार्य डॉ० शूश्लर (जर्मनी) की बारह बायोकैमिक दवाइयाँ सूक्ष्म शक्ति के द्वारा करती हैं, ठीक वही कार्य मानव शरीर में केवल आलेप करने से चिता-भस्म करती है। अन्य भस्मों में गोमय की भस्म उत्तम होती है। जिसका शरीर में लेप करने से त्वचा पर एलर्जी नहीं होती है।

शिलास्थापन से पूर्व मन्त्रों का जप तथा पुण्याहवाचन

ब्रह्मजज्ञानमिति च विष्णो रराटमेव च।
नमस्ते रुद्र इति च इमन्देवेति सञ्जपेत्॥ २२८॥
शीर्षे चावाहनं कार्यं तद्विष्णोः परमं पदम्।
इदं विष्णोः विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्॥ २२९॥
समख्ये देव्या धिया इति च त्र्यम्बकं यजामहेति च।
मूर्द्धानं दिवेत्यृचया सम्पूज्य च यथा विधिः॥ २३०॥
तेभ्यो हिरण्यं दत्त्वा च वस्त्रालंकारवाससी।
ततस्तु पुण्यघोषेण शिलान्यासं प्रकल्पयेत्॥ २३१॥

प्रथम 'ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्०' इत्यादि मन्त्र, 'विष्णोरराटमसि०' मन्त्र, 'नमस्ते रुद्र मन्यव०' मन्त्र तथा 'इमन्देवा असपत्नं०' इस मन्त्र का जप (प्रत्येक १०८ बार) करना चाहिये॥ २२८॥

फिर शिला के शीर्ष पर 'तद्विष्णोः परमं पदम्०' 'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्०' इन मन्त्रों से विष्णु का आवाहन करें॥ २२९॥

'समख्ये देव्याधिया सं दक्षिणयो रुचसा।
माम आयुः प्रमोषीयो अहं तव वीरं विदेय तव देवि सन्दृशि॥
त्र्यम्बकं यजामहे सुगिन्धं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धानान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥'

इन मन्त्रों से भगवान् शिव का आवाहन करें। फिर 'मूर्द्धानं दिवो अरतिं पृथिव्यां वैश्वानरामृत आजातमग्निनम्। कवि ॐ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः॥' इस मन्त्र से उनका पूजन विधिपूर्वक करें॥ २३०॥

फिर सभी देवों को स्वर्ण देकर वस्त्रालंकार आदि अर्पित कर पुण्याहवाचन कराने के उपरान्त शिला-स्थापन-कार्य प्रारम्भ करना चाहिये॥ २३१॥

शुभमुहूर्त में प्रथम नन्दा शिला का स्थापन

ततस्तु लग्ने सम्प्राप्ते पञ्चवाद्यानि वादयेत्।
नन्दा प्रगृह्य च शिलां तत्राधारशिलां न्यसेत्॥ २३२॥
तत्रोपरिन्यसेत्सप्त कलशं मंत्रमंत्रितम्।
सर्वौषधिजलोपेतं पारदाज्यमधुप्लुतम्॥ २३३॥
पिहितं रत्नगर्भञ्च तेजोराशिभिरन्वितम्।
सदाशिवस्वरूपी च ध्यात्वा पञ्चोपचारकैः॥ २३४॥
सम्पूज्य दीपं विन्यस्य वामभागेऽथ गर्त्तकैः।
तत्रोपरिन्यसेन्नन्दां सम्पूज्य च यथाविधिः॥ २३५॥
नाभिर्मेति च मन्त्रेण स्थिरो भवेति वै तथा।
प्रार्थनाञ्च तथा कुर्यादागमोक्तेन मन्त्रवित्॥ २३६॥

फिर जब ज्योतिषी द्वारा बताया हुआ शुभलग्न का समय आ जाये तब उस समय पाँच प्रकार के वाद्यों को बजवाकर नन्दा नामक शिला को ग्रहणकर आधारशिला का स्थापन करना चाहिये। उस पर अभिमंत्रित करके सात (छोटे-छोटे) कलशों को रखें। उन सप्त कलशों में सर्वौषधि, जल, पारद, घृत, मधु, रत्न तथा सप्त धातु को रखना तथा सदाशिव के रूप का ध्यानकर पञ्चोपचार पूजन कर, शिलान्यास के उस गड्ढे में वामभाग में दीपक को भी सम्पूजित करके रख दे तथा उसी पर नन्दा नामक शिला को भी रख दे।

फिर 'नाभिर्मे०' इत्यादि मन्त्र तथा 'स्थिरो भव वीड्वङ्ग आशुर्भव वाज्यर्वन्। पृथुर्भव सुषदस्त्वमग्रेः पुरीष वाहणः॥' इस मन्त्र को कहना चाहिये॥ २३२-२३६॥

नन्दा की प्रार्थना

'नन्दे त्वं नन्दिनीपुंसां त्वामत्र स्थापयाम्यहम्।
प्रासादे तिष्ठ संहृष्टा यावच्चन्द्रार्कतारकाः॥ २३७॥
आयुष्कामाञ्छ्रियं देहि देववासिनि नन्दिनि।
अस्मिन् रक्षा त्वया कार्या प्रासादे यत्नतो मम॥ २३८॥

हे नन्दे! तुम मनुष्यों को आनन्दित करनेवाली हो, मैं तुम्हें इस स्थान में स्थापित कर रहा हूँ। तुम इस प्रासाद में प्रसन्न होकर जब तक सूर्य, चन्द्र एवं तारागणों का अस्तित्व है तब तक स्थिर रहो। हे देववासिनी नन्दे! तुम आयु, काम एवं लक्ष्मी प्रदान करते हुए मेरे इस भवन की रक्षा करती रहना—यह कृपा चाहता हूँ॥ २३७-२३८॥

महापद्मकलश का न्यास तथा भद्रा का स्थापन

महापद्मं न्यसेत्तत्र पूजयेद्रत्नगर्भितम्।
तत्र भद्राञ्च संस्थाप्य पूजयेन्नाममन्त्रकैः॥ २३९॥
भद्रङ्कर्णेति ऋचया स्थापयेद् वारुणैस्तथा।

रत्नों से भरकर महापद्म नामक कलश को दूसरे (अग्निकोण के गर्त) गड्ढे में रखें तथा उस पर नाममन्त्रों से पूजा करके 'भद्रा' नाम की दूसरी शिला का स्थापन करना चाहिये। भद्रा का स्थापन 'भद्रं कर्णे०' इस मन्त्र से तथा वारुण मन्त्रों के वाचन द्वारा करें॥ २३९-२३९½ ॥

भद्रा की प्रार्थना

भद्रे त्वं सर्वदा भद्रा लोकानां कुरु काश्यपि॥ २४०॥
आयुर्दा कामदा देवि सुखदा च सदा भव।
त्वामत्र स्थापयाम्यद्य गृहेऽस्मिन् भद्रदायिनी॥ २४१॥

हे काश्यपि भद्रे! तुम लोकों का कल्याण करनेवाली हो। तुम मेरे घर में स्थापित होकर आयु, काम तथा सुख को सदैव देती रहो तथा कल्याण करती रहो॥ २४०-२४१॥

शङ्ख कलश तथा जया शिला का स्थापन

आधारोपरि विन्यस्य कलशं शङ्खसंज्ञकम्।
कोणे सम्पूज्य विधिवत् जयां संस्थापयेत्ततः॥ २४२॥

फिर नैर्ऋत्यकोण में आधार (जीव) पर अथवा आधारशिला पर कोने में शंख नामक कलश रखकर उसकी पूजा-प्रार्थनाकर वहीं पर पूजित जया शिला को भी रखें॥ २४२॥

जया की प्रार्थना

गर्गगोत्रसमुद्भूतां त्रिनेत्राञ्च चतुर्भुजाम्।
प्रासादे स्थापयाम्यद्य जयाञ्चारुविलोचनाम्॥ २४३॥
नित्यञ्जयाय भूत्यै च स्वामिनो भव भार्गवि।

हे भार्गवी जयो! तुम गर्गगोत्र में उत्पन्न हो, तुम्हारे तीन नेत्र तथा चार भुजाएँ हैं। मैं आज तुम सुन्दर नेत्रोंवाली को अपने भवन की नींव में स्थापित कर रहा हूँ। तुम इस घर में सदैव जय तथा कीर्ति देती रहो॥ २४३-२४३½ ॥

विजय कलश तथा रिक्ता शिला की स्थापना

जातवेदसिमन्त्रेण पूर्वोक्तेन मन्त्रतः॥ २४४॥
आधारोपरि विन्यस्य विजयं कलशं ततः।
रिक्तां संस्थापयेत्तत्र मन्त्रेणानेन मन्त्रवित्॥ २४५॥
त्र्यम्बकं यजामहेति तथा वारुणमन्त्रकैः।
स्थापयेत् प्रार्थयेत् तद्वद् रिक्तां रिक्तार्त्तिहारिणीम्॥ २४६॥

फिर वायव्यकोण में जातवेदस् मन्त्र से अथवा पूर्वोक्त मन्त्र से विजय नामक कलश को आधार पर स्थापित करने के उपरान्त 'त्र्यम्बकं यजामहे०' तथा वारुण मन्त्रों का पाठ करके रिक्तार्ति (निर्धनताजन्य पीड़ा) को हरण करनेवाली रिक्ता नामक चौथी शिला को स्थापित कर फिर उसकी प्रार्थना करें॥ २४४-२४६॥

रिक्ता की प्रार्थना

रिक्ते त्वं रिक्तदोषघ्ने सिद्धिभुक्तिप्रदे शुभे।
सर्वदोषघ्नि तिष्ठास्मिन्प्रासादे तत्र नन्दिनि॥ २४७॥

हे रिक्ते! तुम रिक्त दोष (निर्धनता=खालीपन) को नष्ट करनेवाली हो। तुम सिद्धि (सफलता) तथा भुक्ति (भोजन, पान, वस्त्र, वाहन, आवास, पशु, पुत्र, सेवक आदि) देनेवाली हो। तुम मेरे इस भवन में रहकर कभी किसी वस्तु को कम न होने देना॥ २४७॥

सर्वतोभद्रकलश तथा पूर्णा शिला का स्थापन

आधारे विन्यसेन्मध्ये सर्वतोभद्रसंज्ञकम्।
पूर्णरत्नान्वितं पुष्टं सर्वमन्त्राभिमन्त्रितम्॥ २४८॥
तां च सम्पूज्य विधिवद् ध्यात्वा तत्र सदाशिवम्।
तत्रोपरि न्यसेत्पूर्णां पूर्णानन्दप्रदायिनीम्॥ २४९॥

फिर भवन भूखण्ड के मध्यवर्ती स्थान में (अथवा चारो शिलाओं के मध्य में जैसी भी प्रथा प्रचलित हो) आधार के ऊपर सर्वतोभद्रसंज्ञक पाँचवाँ कलश रत्नों से पूरितकर तथा सभी मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके उसको विधिपूर्वक पूजकर श्रीसदाशिव का ध्यान करके उसके ऊपर आनन्द देनेवाली पूर्णा नाम की पाँचवीं शिला रखें॥ २४८-२४९॥

पूर्णा की प्रार्थना

पूर्णे त्वं सर्वदा पूर्णे लोकानां कुरु काश्यपि।
आयुर्दा कामदा देवि धनदा सुतदा तथा॥ २५०॥
गृहाधारा वास्तुमयी वास्तुदीपेनसंयुता।
त्वामृते नास्ति जगतामाधारश्च जगत्प्रिये॥ २५१॥

हे पूर्णे काश्यपि! तुम लोकों को सदैव पूर्ण करनेवाली हो। हे देवि! तुम हमारे घर में आयु, काम, धन तथा पुत्रदायिनी रहो। हे ग्रहाधारा वास्तुमयी तथा वास्तुदीप से संयुक्त पूर्णे जगत्प्रिये! तुम्हें छोड़कर अन्य कोई दूसरा आधार जगत् के लिये नहीं है॥ २५०-२५१॥

अन्य शिलाओं के पूजन के मन्त्र

पूर्णादर्वीति मन्त्रेण इमम्मे देवेति वै।
मूर्द्धानं दिवेति च तथा शान्तिमन्त्रस्तथैव च॥ २५२॥
सहर्षशीर्षेति षोडशभिरग्निमीलेति वै तथा।
इषेत्वोर्ज्जेत्यग्न्य आयाहीति तथा पुनः॥ २५३॥
शन्नो देवीति मन्त्रेण स्थापयेत्प्रयतः शुचिः।
मृदादिना दृढीकृत्य प्रादक्षिण्येन सर्वतः॥ २५४॥

ईशानादिक्रमेणैव स्थाप्या सर्वार्थसिद्धये।
आग्नेयी सर्ववर्णानामाग्नेयादिक्रमेण वा॥ २५५॥

फिर दृढ़ मिट्टी की बनी कच्ची या पक्की अन्य शिलाओं की चिनाई का कार्य 'पूर्णादर्विपरापत०' इत्यादि मन्त्र, 'इमन्देवा०' 'मूर्द्धानं दिवि०', शान्ति मन्त्रों, 'सहस्र शीर्षा० इत्यादि षोडश ऋचाओं. 'अग्निमीलेति०' 'इषेत्वोर्जे त्वा०' 'अग्न आप्याहि०' तथा 'शन्नो देवी०' इन सब मन्त्रों के पाठ के साथ आरम्भ करे॥ २५२-२५४॥

१. ईशानकोण से ब्राह्मणों के भवन की अन्य शिलाओं का स्थापन प्रदक्षिण क्रम से करना चाहिये। २. क्षत्रियों का अग्निकोण से, ३. वैश्यों का नैर्ऋत्यकोण से, ४. शूद्रों का वायव्यकोण से अन्य शिलाओं का स्थापन करे अथवा सभी वर्णों के लिये ५. अग्निकोण से शिलास्थापन शुरू करना चाहिये॥ २५५॥

विमर्श—ईशान से आरम्भ करने पर १. ईशान से पूर्व→आग्नेय→दक्षिण→नैर्ऋत्य→पश्चिम→वायव्य→उत्तर→ईशान यह क्रम प्रदक्षिण है। २. अग्नि-कोण से—आग्नेय→दक्षिण→नैर्ऋत्य→पश्चिम→वायव्य→ईशान→पूर्व→आग्नेय यह क्रम प्रदक्षिण क्रम होता है। इसी प्रकार से समझें।

देवविसर्जन मन्त्र

यान्तु देवगणास्सर्वे पूजामादाय मामकीम्।
इष्टकामसमृद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च॥ २५६॥

हे देवगणो! आप लोग हमारे अभीष्ट कार्य की सिद्धि के लिये इस पूजा को ग्रहण करके अपने-अपने स्थान को जायें तथा ऐसे ही मंगलकार्य के अवसर पर आवाहन करने पर पुनः पधारने की कृपा करें॥ २५६॥

आचार्य तथा ब्रह्मा को गोदान एवं दक्षिणा

ततस्तु प्राङ्मुखो भूत्वा आचार्याय निवेदयेत्।
दक्षिणां ब्रह्मणे तद्वत् यथा वित्तानुसारतः॥ २५७॥
उदङ्मुखाय च ततः क्षमस्वेति पुनः पुनः।
गां सवत्सां स्वर्णयुतां तथा वासो युगान्विताम्॥ २५८॥
गवार्थे तुषतृणादिं दद्यादाचार्य ब्रह्मणे।
यज्ञान्ते आप्लुतान्वस्त्रान् आचार्याय निवेदयेत्॥ २५९॥

फिर यजमान पूर्व की ओर मुख करके आचार्य को दक्षिणा निवेदित करे। अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार दक्षिणा आचार्य को देनी चाहिये॥ २५७॥

फिर उत्तराभिमुख होकर ब्रह्मा को बार-बार क्षमायाचना करते हुए बछड़े सहित स्वर्णयुक्त गाय तथा एक जोड़ी वस्त्र देना चाहिये। गाय के खाने के लिये एक वर्ष के लिये भूसा तथा चारा भी दान करना चाहिये तथा यज्ञ की समाप्ति पर आचार्य के वस्त्र भी धुलवा देना चाहिये॥ २५८-२५९॥

विमर्श—आजकल गोदान गाय का न करके रुपयों में किया जाता है, यह अधर्म है, सदैव सवत्सा गाय ही देना चाहिये तथा उसके साथ एक वर्ष के चारा की व्यवस्था भी करनी चाहिये, तभी गोदान सार्थक होता है। ब्राह्मण को भी गाय का विक्रय कभी नहीं करना चाहिये। बड़े खेद की बात है कि आजकल कसाईखानों में कटने से गायों की संख्या निरन्तर घट रही है और देश की सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक तथा सामरिक व्यवस्था दिन-प्रतिदिन क्षतिग्रस्त होती जा रही है। लोग गोपालक के स्थान पर कुत्तापालक हो गये हैं। महाभारत में कहा है कि जिसके घर में कुत्ता-कुतिया-मुर्गा-मुर्गी पले होते हैं, उनके घर का प्रसाद देवता ग्रहण नहीं करते हैं—''कुक्कुटे शुनके चैव हविनाश्नन्ति देवताः॥''

दैवज्ञ, स्थपतियों तथा अन्य ब्राह्मणों को दक्षिणादान

दैवज्ञश्च ततः तोष्य स्थपतीन् ब्राह्मणानपि।
दक्षिणाञ्च तयोर्दद्यात् घृतच्छायां विलोकयेत्॥ २६०॥
रक्षाबन्धो मन्त्रपाठस्त्वायुषञ्च समाचरेत्।
विनयशीलयुतो कर्त्ता वित्तशाठ्यविवर्जितः॥ २६१॥

फिर ज्योतिषियों, स्थपतियों तथा अन्य विद्वान् ब्राह्मणों को भी दानमानादि से सन्तुष्ट करें, उन्हें दक्षिणा देकर फिर घृत में अपना मुख देखना चाहिये॥ २६०॥

हाथ में रक्षासूत्र बँधवाकर मन्त्रपाठ तथा भस्मधारण करना चाहिये। इस कार्य को यजमान को अहंकार तथा वित्तशाठ्य से रहित होकर करना चाहिये॥ २६१॥

अन्यों को भी दक्षिणादि दान

ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्याच्छिष्टेभ्यश्च स्वशक्तितः।
दीनान्धकृपणेभ्यश्च दद्याद् वित्तानुसारतः॥ २६२॥
शिल्पिवर्गांस्तु सन्तोष्य दानमानैस्तथैव च।
सम्प्राप्नोति नरो लक्ष्मीं पुत्रपौत्रधनान्विताम्॥ २६३॥

इति श्रीविश्वकर्मप्रकाशे वास्तुशास्त्रे शिलान्यासो नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

अन्य ऋत्विजों को दक्षिणा देकर दीन, अन्ध, कृपण (विकलांग) आदि को भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार दक्षिणा दे तथा शिल्पिवर्ग को सन्तुष्ट करे तो लक्ष्मी, पुत्र-पौत्र तथा धन की प्राप्ति होती है॥ २६२-२६३॥

इस प्रकार श्रीविश्वकर्मप्रकाश वास्तुशास्त्र ग्रन्थ की महर्षि अभयकात्यायनविरचित 'अभया' हिन्दी टीका का पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

●

षष्ठोऽध्यायः

प्रासादनिर्माणाध्यायः

देवालय-निर्माण-योग्य भूमि

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रासादानां विधानकम्।
देवो रुद्रस्तथा विष्णुर्ब्रह्माद्याः सुरसत्तमाः॥ १ ॥
प्रतिष्ठाप्याः शुभे स्थाने अन्यथा ते भयावहाः।
गर्त्तादिलक्षणा धात्री गन्धस्वादेन या भवेत्॥ २ ॥
वर्णेन च सुरश्रेष्ठा सा मही सर्वकामदा।

अब मैं प्रासाद (देवालय-मन्दिर आदि) के निर्माण का विधान कह रहा हूँ। ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र (शिव) इत्यादि देवताओं का मन्दिर सदैव श्रेष्ठ स्थान तथा उत्तम भूमि पर बनवाना चाहिये। जो भूमि गन्ध एवं वर्ण में तथा स्वाद में श्रेष्ठ हो तथा जिसमें अधिक गड्ढे न हों तथा गर्त्त में पानी भरकर जो परीक्षा करने पर उत्तम हो,वह इन उत्तम देवताओं के देवालय हेतु शुभ होती है। यदि निकृष्ट भूमि पर मन्दिर निर्माण किया जाता है तो विपरीत फल होकर भय उत्पन्न होता है॥ १-२½ ॥

देवालय-निर्माण का फल

पितामहस्य पुरतः कुलान्यष्टौ तु यानि वै॥ ३ ॥
तारयेदात्मना सार्धं विष्णोर्मन्दिरकारकः।
अपि नः सत्कुले कश्चिद् विष्णुभक्तो भविष्यति॥ ४ ॥
ये ध्यायन्ति सदा भक्त्या करिष्यामो हरेर्गृहम्।
तेषां विलीयते पापं पूर्वजन्मशतोद्भवम्॥ ५ ॥
सुरवेश्मनि यावन्तो द्विजेन्द्राः परमाणवः।
तावद् वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ ६ ॥

जो व्यक्ति भगवान् विष्णु का मन्दिर बनवाता है, वह अपने को तो तारता ही है अपितु अपने पितामह से आगे की आठ पीढ़ियों को भी तार देता है। जो मन में ऐसी इच्छा करता है कि हमारे वंश में कोई विष्णुभक्त उत्पन्न हो तथा मैं श्रीविष्णु का मन्दिर बनवाऊँगा ऐसा संकल्प करता है तो उस व्यक्ति के एक सौ जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं। हे विद्वानो! देवालय में जितने परमाणु होते हैं, उतने सहस्रवर्ष पर्यन्त ऐसा शुभ संकल्पी मनुष्य स्वर्गलोक में रहता है॥ ३-६ ॥

विभिन्न पदार्थों से निर्मित देवालयों के फल

प्रासादे मृण्मये पुण्यं मयैतत्कथितं पुरा।
तस्माद् दशगुणं पुण्यं कृते शैलमये भवेत्॥ ७ ॥
ततो दशगुणं लौहे ताम्रे शतगुणं ततः।
सहस्रगुणितं रौप्ये तस्माद् रौक्मे सहस्रभम्॥ ८ ॥
अनन्तं फलमाप्नोति रत्नचित्रे मनोहरे।
कनिष्ठं मध्यमं श्रेष्ठं कारयित्वा हरेगृहम्॥ ९ ॥
स्वर्गं च वैष्णवं लोकं मोक्षञ्च लभते क्रमात्।
बाल्ये च क्रीडमाना ये पांसुभिर्भवनं हरेः॥ १० ॥
वासुदेवस्य कुर्वन्ति तेऽपि तल्लोकगामिनः।

यदि कोई श्रद्धालु मिट्टी से कच्चा मन्दिर बनवाता है तो उसे ऊपर वर्णित पुण्य मिलता है। परन्तु पत्थरों से बनवाए हुए मन्दिर में उससे दश गुना फल मिलता है॥ ७ ॥

पत्थरों से दश गुना फल लोहे के बनवाए प्रासाद से मिलता है; उससे भी दश गुना फल ताम्रनिर्मित प्रासाद का होता है। उससे सहस्र गुना चाँदी का मन्दिर बनवाने से तथा उससे भी सहस्र गुना फल स्वर्णनिर्मित प्रासाद का होता है॥ ८ ॥

रत्नजटित मन्दिर बनवाने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है। भगवान् विष्णु के मन्दिर को (अपनी सामर्थ्य के अनुसार) कनिष्ठ (छोटा), मध्यम (मझोला) तथा श्रेष्ठ बनवाने से क्रमशः स्वर्गलोक, विष्णुलोक तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है। जो बचपन में विष्णु भगवान् के मन्दिर में खेलते हुए धूल-मिट्टी सानकर खिलौनों के रूप में बनाते हैं, उन्हें भी भगवान् के लोक की प्राप्ति होती है॥ ९-१०½ ॥

प्रासाद निर्मित करने में शिलाएँ

या भूमिः शस्यते गेहे सा प्रासादविधौ तथा॥ ११ ॥
यो विधि गृहनिर्माणे शिलान्यासस्य कर्मणि।
प्रासादादिषु संज्ञेयाश्चतस्रस्तु शिलास्तथा॥ १२ ॥
नन्दा भद्रा जया पूर्णा आग्नेयादिषु विन्यसेत्।

जिस प्रकार की भूमि गृहनिर्माण के लिये श्रेष्ठ बतायी जा चुकी है, उसी प्रकार की भूमि मन्दिर-निर्माण के लिये भी प्रशस्त होती है॥ ११ ॥

गृहनिर्माण के लिये शिलान्यास की विधि में पाँच शिलाओं का स्थापन होता है परन्तु प्रासाद (मन्दिर) के निर्माण में केवल चार शिलाओं नन्दा-भद्रा-जया तथा पूर्णा का उपयोग होता है। इनका न्यास आग्नेयादि क्रम से होता है॥ १२-१२½ ॥

विमर्श—गृहनिर्माण में रिक्ता नामक शिला होती है परन्तु मन्दिर में उसका उपयोग नहीं होता है। गृह के शिलान्यास में मध्य में भी शिला रखते हैं। परन्तु प्रासाद

के मध्य में शिला नहीं रखते हैं। जहाँ गृह-निर्माण में इस ग्रन्थ के अनुसार क्रम ईशानादि प्रदक्षिण होता है, वही मन्दिर में यह क्रम आग्नेयादि होता है।

ईशान ४. पूर्णा	पूर्व	अग्नि ३. नन्दा
उत्तर	प्रासाद में शिलान्यास का क्रम	दक्षिण
३. जया वायव्य	पश्चिम	२. भद्रा नैर्ऋत्य

वास्तु पूजा विधि

चतुःषष्टिपदं वास्तुं प्रासादादिषु विन्यसेत्॥ १३॥
ब्रह्मा चतुष्पदो यत्र शेषाः स्वस्वपदे स्थिताः।
वास्तुपूजाविधिश्चात्र गृहस्थापनाकर्मवत्॥ १४॥

प्रासाद निर्माण में चौसठ पद के वास्तुचक्र को बनाते हैं ; उसमें चार पद में ब्रह्मा होते हैं शेष को अपने-अपने पदों (कोठों) में पूजना चाहिये। वास्तुपूजा के मन्त्र भी गृहस्थापन की भाँति ही हैं॥ १३-१४॥

प्रासादनिर्माण में प्रयुक्त चार शिलाओं के लक्षण

सम्पूज्य वास्तुं विधिवच्छिलान्यासं ततश्चरेत्।
आदावेव समासेन शिलालक्षणमुत्तमम्॥ १५॥
शिलान्यासविधानन्तु प्रोच्यते तदनन्तरम्।
शिला वाऽपीष्टका वापि चतस्रो लक्षणान्विताः॥ १६॥

प्रासादादौ विधानेन न्यस्तव्याः सुमनोहराः।
चतुरस्राः समा कृत्वा समन्ताद् हस्तसम्मिताः॥ १७॥
विस्तारस्य त्रिभागेन बाहुल्येन सुसम्मिताः।
शिलानामिष्टकानां च प्रमाणं लक्षणं स्मृतम्॥ १८॥
नन्दाद्यधिष्ठितां ज्ञेया शिलावाप्यथेष्टकाः।
शिलारूपाण्यथो विन्द्यान्नन्दाद्या चेष्टका स्मृताः॥ १९॥
सम्पूर्णाः सुतलाः स्निग्धाः सुसमा लक्षणान्विताः।
कुशदूर्वाङ्किता धन्याः सध्वजच्छत्रचामराः॥ २०॥
सकुशास्तरोपेता कूर्ममत्स्यफलान्विताः।
हस्तिदर्पणवज्राङ्काः प्रशस्तद्रव्यलाञ्छिताः॥ २१॥
शस्तपक्षिमृगाङ्काश्च वृषाङ्कास्सर्वदाहिताः।
स्वस्तिकावेदिकायुक्ता नन्दावर्त्ताङ्कलाञ्छिताः॥ २२॥
पद्मादिलक्षणोपेता शिवा सर्वार्थसिद्धिदाः।
तथा गोवाजिपादाङ्काः शिला धन्याः सुखावहाः॥ २३॥

वास्तुपूजा करने के उपरान्त विधिपूर्वक शिल्यान्यास करना चाहिये। अब प्रारम्भ में उत्तम शिलाओं के लक्षण संक्षेप में कहता हूँ॥ १५॥

उसके उपरान्त शिलान्यास का विधान कहा जायेगा। प्रासाद के निर्माण में उत्तम लक्षणों से युक्त चार शिलाओं की आवश्यकता होती है। वे चार शिलाएँ मनोहर, चारो ओर से सम तथा एक हाथ लम्बी तथा लम्बाई के उतनी ही चौड़ी तथा त्रिभाग अर्थात् ८ अंगुल मोटी होनी चाहिये (हाथ=२४ अंगुल का $\frac{1}{3}$=८ अंगुल)। यह शिलाओं अथवा इष्टकाओं (ईंटों) का माप कहा है। ये शिलाएँ नन्दादि होती हैं, इनका रूप उत्तम होना चाहिये॥ १६-१९॥

ये चारो शिलाएँ सम्पूर्ण, सब ओर समतल, चिकनी, सुसम, कुश, दूर्वा, ध्वज, छत्र, चामर आदि के चिह्नों से अंकित हों। पक्षी, मृग, वृष, स्वस्तिक, नन्द्यावर्त्त आदि के चिह्नों से युक्त शिलाएँ तथा इष्टकाएँ उत्तम होती हैं॥ २०-२२॥

जो शिलाएँ अथवा इष्टकाएँ पद्म आदि लक्षणों से युक्त होती हैं, वे कल्याणकारिणी और समस्त सिद्धियों को देने वाली होती हैं। जो गाय, घोड़ा आदि के खुरों से अंकित हों, वे धन्य तथा सुखदायी होती हैं॥ २३॥

अप्रशस्त शिलाएँ

क्रव्याद् मृगपादाङ्काः न शस्ता पक्षिणस्तथा।
दिङ्मुखा बहुजीर्णा च दीर्घा ह्रस्वाः क्षतान्विताः॥ २४॥
विवर्णाः स्फुटिता भग्नाः सन्त्याज्याः लक्षणच्युताः।

जिन ईंटों पर या शिलाओं पर मांसाहारी पक्षियों तथा पशुओं के पैरों के चिह्न अंकित हों, जो किनारों पर फटी (दिङ्मुख) हों, बहुत पुरानी हों, अधिक लम्बी या छोटी हों, जिनमें गड्ढे, छेद आदि हों, जो विवर्ण (अधपकी) हों, टूटी-फूटी हों तथा उत्तम लक्षणों से रहित हों, उन्हें गृहनिर्माण में त्याग देना चाहिये॥ २४-२४१/२॥

पुनः प्रशस्त शिलाओं के लक्षण

प्रशस्तप्राणिरूपाङ्काः प्रशस्तद्रव्यलाञ्छिताः॥ २५॥
यथोक्तलक्षणोपेताः शिला नित्यं सुखावहाः।
इष्टकानां समासेन लक्षणं शृणु साम्प्रतम्॥ २६॥
एकवर्णा सुपक्वाश्च बहुजीर्णाश्च वर्जिताः।
अप्यङ्गारान्विता नेष्टाः कृष्णवर्णा सशर्कराः॥ २७॥
भग्नाश्च विभ्रमैर्हीना वर्जनीया प्रयत्नतः।
सुप्रमाणा रक्तवर्णाश्चतुरस्रा मनोरमाः॥ २८॥
नन्दाद्याः गृहमानेन अङ्गुलैः परिकल्पिताः।
शिलान्यासः प्रकर्त्तव्यः प्रासादे तु शिलामये॥ २९॥

जो शिलाएँ शुभ प्राणियों के चित्रों से अंकित, प्रशस्त द्रव्यों से चिह्नित तथा शुभ लक्षणों से युक्त होती हैं, उनको सुखदायक जानना चाहिये। अब संक्षेप में शिलाओं के और भी लक्षण सुनो। शिलाओं को एक वर्णवाली तथा अच्छी तरह पकी हुई होना चाहिये। बहुत जीर्ण इष्टकाएँ त्याज्य हैं। कोयलादि से युक्त, काले रंग की, किरकिरी तथा कंकड़ों से युक्त, फूटी हुई तथा विषम इष्टकाओं को प्रयत्नपूर्वक त्याग देना चाहिये।

नन्दादि चारो शिलाएँ उचित प्रमाण की, लाल रंग की, चौकोर, मनोरम, गृह के मान के अनुकूल, अंगुलादि के मान से युक्त शिलाओं का उपयोग पत्थरों से बननेवाले प्रासाद में करना चाहिये॥ २५-२९॥

आधारशिलाओं का कथन

इष्टकानां विन्यासः प्रासादे चेष्टकामये।
तस्याः पीठं प्रकुर्वीत तावदेव प्रमाणतः॥ ३०॥
आधारनामा तु शिला सुदृढा सुमनोहरा।
शैलजे शैलजः पीठश्चैष्टिके चैष्टकस्मृतः॥ ३१॥

जो प्रासाद ईंटों का बना हो, उसमें आधारशिला भी नन्दादि शिलाओं के लिये उसी आकार एवं प्रमाण की ईंटों से ही बनानी चाहिये। वह आधार नामक शिला सुदृढ़ तथा मनोहर होनी चाहिये। पत्थरों से बननेवाले मन्दिर में आधारशिला भी पत्थर की ही होनी चाहिये तथा ईंटोंवाले में ईंटों की बनायें॥ ३०-३१॥

शिलान्यासविधान

शिलान्यासादिको भद्रे मूलपादो विधीयते।
गर्त्तान् विधायकोणेषु चतुर्वेदिसमन्वितान्॥ ३२॥
तत्रोपरि शुक्लानां तण्डुलानाञ्च पूरणम्।
आग्नेयादि क्रमेणैव तासां स्थानानि कल्पयेत्॥ ३३॥
तत्राधारशिलां न्यस्य स्थिरो भवेति मन्त्रतः।
प्रतिष्ठाप्य चतुर्ष्वेव कोणेषु च निधाय च॥ ३४॥
तेषां क्रमेण तन्मध्ये कलशं स्थापयेत्क्रमात्।
पद्मश्चैव महापद्म शंखो मकरकस्तथा॥ ३५॥
चत्वारः कलशा ह्येते दिव्या मन्त्रेणमन्त्रिताः।
पल्लवैस्सर्वगन्धैश्च सर्वौषधिभिरन्विताः॥ ३६॥
रत्नैः समुजैर्युक्ताश्चाष्टधातुभिरन्विताः।
पुण्यतीर्थोदकैर्युक्ताः कृत्वोदुम्बरसम्भवाः॥ ३७॥

भद्रनामक प्रासाद में आधार पीठ के स्थान पर मूलपाद कहा जाता है। प्रासाद के चारो कोणों में चार गर्त्त (गड्ढे) खोदकर उनमें चार वेदियाँ बना दें। उनके ऊपर श्वेत चावल रखें। इन वेदियों के स्थान आग्नेयादि प्रदक्षिणक्रम (अग्निकोण→नैर्ऋत्य-कोण→वायव्यकोण→ईशानकोण) से रखें। फिर इस क्रम से उन वेदियों पर आधार शिला रखनी चाहिये। उन शिलाओं को 'स्थिरा भव०' इत्यादि मन्त्रों से प्रतिष्ठित करें। फिर उन आधारशिलाओं के बीच में १. पद्म, २. महापद्म, ३. शंख तथा ४. मकर नामक चार कलशों को जो कि सुन्दर हों, वैदिक मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर पञ्चपल्लव, सर्वगन्ध, सर्वौषधि, सामुद्रीरत्न, अष्टधातु, पुण्यतीर्थोदक तथा ऊमर के पत्तों से युक्त रखना चहिये॥ ३२-३७॥

तत्रोपरि न्यसेन्नन्दां सुलग्ने च शुभे दिने।
संस्नाप्य पूर्णतोये स्त्रायफडिति मन्त्रतः॥ ३८॥
स्नापयित्वाऽथ मन्त्रेण सम्मार्ज्य परिपूरयेत्।
ॐ नन्दायै नमो गन्धाद्युपचारान्प्रदापयेत्॥ ३९॥
गीतावादित्यघोषेण वेदध्वनियुतेन च।
प्रागुत्तरशिरस्कां तां स्थापयेत्प्रयतः शुचिः॥ ४०॥
ततोस्त्रतोयं सङ्गृह्य फडिति पूजयेत्पुनः।
दिव्यरूपां सुवर्णाभां सर्वाभरणभूषिताम्॥ ४१॥
सर्वलक्षणसम्पूर्णां परितुष्टां स्मिताननाम्।
ध्यात्वा स्वमन्त्रमुच्चार्य प्रणम्य च पुनः पुनः॥ ४२॥

आवाहयेत् ततो नन्दां मन्त्रैर्वैदिकतान्त्रिकैः।
सम्पूजयेत् पुनस्ताञ्च वस्त्रगन्धादि मानतः॥ ४३॥
धूपयित्वा सामान्यमुद्रां बध्वाथ मन्त्रवित्।
कल्पयेच्चैव नैवेद्यं दधिमाषादिसंयुतम्॥ ४४॥
नन्दायै नमः एह्येहि पूजयेच्छुद्धमानसः।
ॐ नन्दे त्वं नन्दिनी पुंसां त्वामत्र स्थापयाम्यहम्॥ ४५॥
प्रासादे तिष्ठ संहृष्टा यावद्वै चन्द्रतारकम्।
आयुष्कामं श्रियं नन्दे ददासि त्वं सदा नृणाम्॥ ४६॥
अस्मिन् रक्षा त्वया कार्या प्रासादे यत्नतः सदा।
इति मन्त्रं समुच्चार्य आग्नेये तु ततः परम्॥ ४७॥

फिर (आग्नेयादि क्रम से) शुभदिन तथा शुभलग्न में नन्दा नामक प्रथम शिला को स्नान कराके 'अस्त्राय फट्' इस मन्त्र से सम्मार्जन कर (धोकर) पूर्णरूप से जल में भिगो दें। फिर 'ॐ नन्दायै नमः' इस मन्त्र से गन्धादि उपचारों से पूजन करे। पवित्र मन से गीत-वाद्यादि मंगल घोषों के साथ सावधानी से वेदध्वनि कराते हुए शिला का शिर पूर्व में करके स्थापित करे॥ ३८-४०॥

फिर उसका 'ॐ अस्त्राय फट्' इस मन्त्र से पुनः नन्दा की अधिष्ठात्री देवी जो दिव्यरूपा, सुवर्णाभा सर्वाभरणभूषिता, सर्वलक्षणसम्पूर्णा तथा स्मिताननना हैं का ध्यान करके बार-बार प्रणाम करे। फिर नन्दादेवी का उस शिला में वैदिक एवं तांत्रिक मन्त्रों से आवाहन तथा पूजन करे। पूजन में वस्त्र-गन्धादि का उपयोग करें। फिर धूप देकर सामान्य मुद्रा बाँधकर दही, माषादि से युक्त नैवेद्य बनाकर (अर्थात् दही तथा उबले उड़द मिलाकर) 'हे नन्दे! तुम यहाँ आओ, तुम लोगों को आनन्द देनेवाली हो, तुम्हें मैं यहाँ स्थापित करता हूँ, तुम इस देवालय में प्रसन्न होकर तब तक निवास करो, जब तक चन्द्र-तारागण ब्रह्माण्ड में स्थित हैं। तुम मनुष्यों को सदैव आयु, काम और लक्ष्मी प्रदान करती रहो तथा इस प्रासाद की यत्नपूर्वक रक्षा करती रहो।' इस मन्त्र का समुच्चारणकर अग्निकोण में उस नन्दा को स्थापित कर दे॥ ४१-४७॥

भद्रां सम्पूजयेत् तद्वत् नाममन्त्रेण पूर्ववत्।
भद्रे त्वं सर्वदा भद्रं लोकानां कुरु काश्यपि॥ ४८॥
आयुष्कामप्रदा देवि लोकानां चैव सिद्धिदा।
नैर्ऋत्ये स्थापयेत्ताञ्च जयां तद्वत्प्रपूजयेत्॥ ४९॥
नाममन्त्रेण पूर्वोक्त मन्त्रेण च तथा पुनः।
ॐ जये त्वं सर्वदा भद्रे सन्तिष्ठ स्थापयाम्यहम्॥ ५०॥
नित्यं जयावहा दिव्या स्वामिनः शीघ्रदा भव।
वायव्ये स्थापयेत्ताञ्च जयां सर्वार्थसिद्धये॥ ५१॥

फिर जैसे नाममन्त्र से नन्दा का पूजन किया है, उसी प्रकार भद्रा नामक द्वितीय शिला का भी पूजन करना चाहिये। 'हे भद्रे काश्यपि! आप लोगों का कल्याण करें तथा उन्हें आयुष्य, काम तथा सफलता प्रदान करें।' इस प्रकार कहकर नैर्ऋत्यकोण में भद्रा को स्थापित कर दें।

फिर नाममन्त्र से पूजितकर तथा 'हे जये! तुम इस प्रासाद में स्थित होकर इसके निवासियों और पूजकों का कल्याण करो, हे जय प्रदान करनेवाली! तुम्हें मैं स्थापित करता हूँ।' इस प्रकार कहकर वायव्य कोण में जया को स्थापित करे॥ ४८-५१॥

ईशाने स्थापयेत्पूर्णां पूर्ववत्सम्प्रपूज्य च।
'ॐ पूर्णे त्वं तु महाविद्ये सर्वसन्दोहलक्षणे॥ ५२॥
सम्पूर्णं सर्वमेवात्र प्रासादे कुरु सर्वदा'।
शिलानामिष्टकानान्तु वाचनं तदनन्तरम्॥ ५३॥
च कर्त्तव्यं तु मनसा पितुस्तु शुभमिच्छता।

फिर ईशानकोण में पूर्णा नामक शिला को पूर्व की भाँति पूजित करके 'ॐ हे पूर्णे! तुम महाविद्या हो, तुम सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाली हो, अतः इस प्रासाद के द्वारा सभी सिद्धियों को प्रदान करो।' इसके उपरान्त मन से स्वामी के कल्याण को चाहनेवाले प्रधान प्रतिनिधि को शिलाओं के स्तुतिवाक्यों को पढ़ना चाहिये॥ ५२-५३½॥

दक्षिणादान तथा ब्राह्मणभोजन

आचार्याय च गां दद्यात् सवत्सां हेमसंयुताम्॥ ५४॥
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्यात् शिष्टेभ्यश्च स्वशक्तितः।
दैवज्ञं पूजयेच्छक्त्या स्थपतिञ्च विशेषतः॥ ५५॥
ब्राह्मणान् योजयेच्छक्त्या दीनान्धांश्चैव तोषयेत्।

१. आचार्य को बछड़ासहित गाय स्वर्ण की दक्षिणा के साथ दान करे। २. ऋत्विजों को दक्षिणा देना चाहिये। ३. अन्य जो शिष्ट (विद्वान् वेदज्ञ ब्राह्मण) वहाँ उपस्थित हों, उनको भी यथाशक्ति दक्षिणा दे। ४. ज्योतिषी विद्वान् ब्राह्मण की भी पूजा करें। ५. स्थपति (राजमिस्त्री=प्रासाद बनानेवाला कारीगर) को विशेषरूप से सन्तुष्ट करें। ६. शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन करायें तथा ७. दीनों एवं अन्धों को भी सन्तुष्ट करें॥ ५४-५५½॥

वास्तुबलि तथा प्रासाद के विभिन्न भागों की माप

एवं वास्तुबलिं कृत्वा भजेत् षोडश भागिकाम्॥ ५६॥
तस्य मध्ये चतुर्भागं तस्मिन् गर्भञ्च कारयेत्।
भागद्वादशकं सार्द्धं ततस्तु परिकल्पयेत्॥ ५७॥
चतुर्भागेन भित्तीनामुच्छ्रायः स्यात्प्रमाणतः।
द्विगुणः शिखरोच्छ्रायो भित्त्युच्छ्रायाश्च मानतः॥ ५८॥

शिरोर्द्धार्द्धस्य चार्द्धेन विधेया तु प्रदक्षिणा।
चतुर्दिक्षु तथा ज्ञेयो निर्गमेषु तथा बुधैः॥ ५९॥

फिर वास्तु देवताओं को बलिदान करके देवालय-निर्माण-भूमि के सोलह भाग करे। उन सोलह भागों में मध्य के चार भागों (खण्डों) में उसका गर्भगृह बनाना चाहिये। साढ़े बारह भागों में मन्दिर के अन्य अंगों की कल्पना करे। चार भागों के बराबर मन्दिर की दीवालों की ऊँचाई रखनी चाहिये। उससे दुगुने प्रमाण में शिखरों की ऊँचाई रखनी चाहिये। मन्दिर की भी ऊँचाई के आठवें भाग ($\frac{1}{8}$) के बराबर मन्दिर की प्रदक्षिणा की चौड़ाई रखनी चाहिये, वह प्रदक्षिणा चारो ओर के निर्गम स्थानों में बनती है॥ ५६-५९॥

गर्भसूत्रद्वयं भागे विस्तारे मण्डपस्य तु।
आयस्तस्य विभागांशैः भद्रयुक्तः सुशोभनः॥ ६०॥
पञ्चभागेन सम्भज्य गर्भमानं विचक्षणः।
भागमेकं गृहीत्वा तु प्राग्जीवं कल्पयेद् बुधः॥ ६१॥
गर्भसूत्रसमोभागादग्रतो मुखमण्डपः।
एतत्सामान्यमुद्दिष्टं प्रासादस्येह लक्षणम्॥ ६२॥

गर्भमण्डप की चौड़ाई दो गर्भसूत्र (एक गर्भसूत्र लम्बी तथा एक गर्भसूत्र चौड़ी) होती है। उनका आय विभाग के अंशों से भद्रयुक्त तथा सुन्दर होता है। बुद्धिमान् को गर्भ के $\frac{1}{5}$ भाग के तुल्य द्वार अर्थात् प्राग्जीव की कल्पना करनी चाहिये। गर्भरूप के समान उसका (द्वार का) मुखमण्डप (द्वार के ऊपर का छोटा गुम्बद) बनाना चाहिये। प्रासाद के भागों के ये सामान्य माप लिखे गये हैं॥ ६०-६२॥

लिङ्गप्रासाद (शिवालय) के विभिन्न अंगों की माप

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि प्रासादं लिङ्गमानतः।
लिङ्गपूजाप्रमाणेन कर्त्तव्या पीठिका बुधैः॥ ६३॥
पीठिकार्द्धेन भागे स्यात्तन्मानेन तु भित्तयः।
बाह्यभित्तिप्रमाणेन उत्सेधस्तु भवेत्ततः॥ ६४॥
भित्युच्छ्रायात्तु द्विगुणः शिखरस्य समुच्छ्रयः।
शिखरस्य चतुर्भागाः कर्तव्यास्स्युः प्रदक्षिणाः॥ ६५॥
प्रदक्षिणायास्तु समस्त्वग्रतो मण्डपो भवेत्।
तस्य चार्द्धेन कर्त्तव्यस्त्वग्रतो मुखमण्डपः॥ ६६॥
प्रासादान्निर्गतौ कार्यौ कपोतौ गर्भमानतः।
ऊर्ध्वं भित्त्युच्छ्रयौ तस्य मञ्जरीं तु प्रकल्पयेत्॥ ६७॥

मञ्जर्या सार्द्धमानेन शुकनासं प्रकल्पयेत्।
ऊर्ध्वं तथार्द्धभागेन वेदी बन्धो भवेदिह॥ ६८॥
वेद्याश्चोपरि यच्छेषं कण्ठमामलसारकम्।
एवं विभज्य प्रासादं शोभनं कारयेद् बुधः॥ ६९॥

अब दूसरे प्रकार के प्रासाद शिवमन्दिर के विभिन्न भागों के प्रमाण कहता हूँ। जितना प्रमाण लिङ्गपूजा का हो, उसके अनुसार उसकी पीठिका का निर्माण करना चाहिये। पीठिका के आधे भाग के तुल्य प्रमाण से उस शिवालय की भित्तियों की मोटाई रखें तथा बाहरी भीत के तुल्य उसकी ऊँचाई रखें। भित्ति की ऊँचाई से दुगुनी ऊँचाई का शिखर बनाना चाहिये। शिखर के चौथाई भाग के तुल्य मन्दिर में प्रदक्षिणा बनवाना उचित है॥ ६३-६५॥

प्रदक्षिणा के समान प्रमाण का अग्रमण्डप होता है, उसका आधा मुखमण्डप होता है, प्रासाद से निकलते हुए दिखें ऐसे दो कपोत गर्भ के प्रमाण के अनुसार बनवाना चाहिये जिनकी ऊँचाई भित्ति के समान हो उन कपोतों की मंजरी बनवाएँ। मंजरी के आधे प्रमाण में शुकनासा तथा शुकनासा के माप से आधे प्रमाण में उसके ऊपर वेदीबन्ध बनवाते हैं। वेदी के ऊपर जो शेष भाग होता है, वह 'आमलकसार' कहा जाता है। इस प्रकार विभाजन कर सुन्दर शिवालय (प्रासाद) बनवाना चाहिये॥ ६६-६९॥ (आगे के श्लोक ७५ में कपोत के स्थान पर कपोल पाठ है)।

अन्य प्रकार से प्रासाद के अवयवों की माप

अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि प्रासादस्येह लक्षणम्।
गर्भमानेन प्रासादप्रमाणं शृणुत द्विजाः॥ ७०॥
विभज्य नवधा गर्भं मध्ये लिङ्गस्य पीठिका।
पादाष्टकं तु रुधिरं पार्श्वतः परिकल्पयेत्॥ ७१॥
मानेनानेन विस्तारो भित्तीनान्तु विधीयते।
पादे पञ्चगुणं कृत्वा भित्तीनामुच्छ्रयो भवेत्॥ ७२॥
स एव शिखरस्यापि द्विगुणः स्यात्समुच्छ्रयः।
चतुर्धा तु शिरो भज्य अर्धं भागद्वयस्य वा॥ ७३॥
शुकनासं प्रकुर्वीत तृतीये वेदिका मता।
कण्ठमामलसारं च चतुर्थे परिकल्पयेत्॥ ७४॥
कपोलयोस्तु संहारो द्विगुणोऽस्य विधीयते।
शोभनैव प्रवल्लीभिरण्डकैश्च विभूषितः॥ ७५॥
प्रासादे यस्तृतीयस्तु मया तुभ्यं निवेदितः।

अब अन्य प्रकार से प्रासाद के लक्षण कहता हूँ, इसमें गर्भ के मान के अनुसार शेष भागों का प्रमाण होता है, उसे हे द्विजो! आप लोग सुनें ॥ ७० ॥

प्रासाद के गर्भमान को नौ भागों में विभाजित करें। उनके $\frac{१}{९}$ भाग में मध्य में पीठिका की कल्पना करें (जिसमें लिङ्ग स्थापित होता है) उसके चारो ओर शेष ८ खण्डों (पादाष्टक) की कल्पना करे। इनके एक भाग में भित्तियों की चौड़ाई का मान होता है। एक पाद (खण्ड) के पाँच गुना अर्थात् भित्तियों की चौड़ाई से पाँच गुनी भित्तियों की ऊँचाई रखनी चाहिये। भित्तियों की ऊँचाई से दोगुनी शिखर की ऊँचाई होती है। फिर शिखर की ऊँचाई का आधा प्रमाण अथवा चतुर्थांश शुकनासा बनवाना चाहिये। उसके तृतीयांश वेदिका बनवाये। चतुर्थांश में आमलकसार अर्थात् कण्ठ को बनवाकर कपोलों को दुगुने प्रमाण में बनवाये व प्रवल्ली एवं अण्डकों से शोभित करे। इस प्रकार प्रासाद के मापों का वह तीसरा प्रकार तुम्हें बताया गया ॥ ७१-७५$\frac{१}{२}$ ॥

विमर्श—पीछे श्लोक ६७ में कपोल के स्थान पर 'कपोत' शब्द का प्रयोग हुआ है।

चौथे प्रकार से प्रासाद के लक्षण

सामान्यमपरं तद्वत्प्रासादं शृणुत द्विजाः ॥ ७६ ॥
त्रिभेदं कारयेत्क्षेत्रं यत्र तिष्ठन्ति देवताः।
रथं कृत्वा तु मानेन बाह्यभागविनिर्गतम् ॥ ७७ ॥
नेमी पादेन विस्तीर्णा प्रासादस्य समन्ततः।
गर्भं तु द्विगुणं कुर्यान्नेमिमानं भवेदिह ॥ ७८ ॥
स एव भित्तिनामुत्सेधो द्विगुणो शिखरो मतः।
प्राग्ग्रीवं पञ्चभागेन निश्वासस्तस्य चोच्यते ॥ ७९ ॥
कारयेत् शिखरं तद्वत् प्राकारस्य विधानतः।
प्राग्ग्रीवं तस्य मानेन निष्कांशेन विशेषतः ॥ ८० ॥
कुर्याद्वा पञ्चभागेन प्राग्ग्रीवं कर्णमूलतः।
कारयेत्कनकं तत्र गर्भान्ते हारमूलतः ॥ ८१ ॥
एवं तु त्रिविधं कुर्याज्ज्येष्ठमध्यकनीयसम्।
लिङ्गमानानुभेदेन रूपभेदेन वा पुनः ॥ ८२ ॥

अब प्रासाद का चौथा लक्षण सुनें। प्रासाद भूमि के तीन भाग करके उसके तृतीयभाग के तुल्य रथ को बाह्यभाग में निकला हुआ बनाये। प्रासाद के चारो ओर एक पाद (चतुर्थांश) की नेमि का निर्माण करें (रथ की नेमि) निमि का मान गर्भ से दुगुना होता है। इतनी ही भित्तियों की ऊँचाई होती है। उससे दुगना शिखर होता है। शिखर का पाँचवाँ भाग प्राग्ग्रीव होता है, जिसे निःश्वास भी कहते हैं ॥ ७६-७९ ॥

प्रासाद के शिखर को विधिपूर्वक बनवाना चाहिये। उसके निष्क अंश के प्रमाण से शिखर की ग्रीवा को पूर्व की ओर बनवाये। अथवा कर्णमूल के पंचमांश में प्राग्ग्रीव का निर्माण करे। उसमें गर्भमूल से आरम्भकर हारमूल तक कनक बनाना चाहिये ॥ ८०-८१ ॥

इस प्रकार से ज्येष्ठ शिखर, मध्यम शिखर तथा कनिष्ठ शिखर—ये तीन भेद शिखर के होते हैं। इन तीन प्रकार के शिखरों का निर्माण शिवालय में स्थापित किये जानेवाले शिवलिङ्ग के अनुपात के अनुसार करना चाहिये अर्थात् ज्येष्ठ लिङ्ग में ज्येष्ठ शिखर, मध्यम लिङ्ग में मध्यम शिखर तथा कनिष्ठ लिङ्ग का कनिष्ठ शिखर बनवाना उचित है ॥ ८२ ॥

शिखरों के आधार पर प्रासादों के नाम

एते सामान्यतः प्रोक्ता नामतः शृणुताधुना।
मेरुमन्दरकैलासकुम्भगजमृगास्तथा ॥ ८३ ॥
विमानच्छन्दकं तद्वत् चतुरस्रस्तथैव च।
अष्टास्रः षोडशास्रश्च वर्त्तुलः सर्वभद्रकः ॥ ८४ ॥
गरुडो नन्दनश्चैव नन्दिवर्धन एव च।
सिंहो वृषः सुवर्णश्च पद्मकोऽथ समुद्रकः ॥ ८५ ॥
प्रासादानामतः प्रोक्ता विभागं शृणुत द्विजाः।

शिखरों के आकारानुसार ये तो मैंने सामान्यतः प्रासादों के प्रकार कहे हैं, अब नामों के अनुसार उनके भेद सुनो।

मेरुप्रासाद, मन्दरप्रासाद, कैलासप्रासाद, कुम्भप्रासाद, गजप्रासाद, मृगप्रासाद, विमानच्छन्दक, चतुरस्र, अष्टास्र, षोडशास्र, वर्त्तुल, सर्वतोभद्र, गरुड, नन्दन, नन्दिवर्धन, सिंह, वृष, सुवर्ण, पद्मक तथा समुद्रक—ये प्रासादों के नाम हैं। अब उनके अलग-अलग वर्णन सुनो ॥ ८३-८५$\frac{१}{२}$ ॥

शतशृङ्गश्चतुर्द्वारो भूमिका षोडशोच्छ्रितः ॥ ८६ ॥
नानाविचित्रशिखरो मेरुप्रासाद उच्यते।
मन्दरो द्वादशः प्रोक्तः कैलासो नवभूमिकः ॥ ८७ ॥
विमानच्छन्दकं तद्वत् अनेकशिखरान्वितः।
सचाष्ट भूमिकस्तद्वत् सप्तभिर्नन्दिवर्धनः ॥ ८८ ॥
विंशाण्डकसमायुक्तो नन्दनः समुदाहृतः।
षोडशास्रकसंयुक्तो नानारूपसमन्वितः ॥ ८९ ॥
अनेकशिखरस्तद्वत् सर्वतोभद्र उच्यते।
चन्द्रशालासमोपेता विज्ञेयः पञ्चभूमिकः ॥ ९० ॥

वल्लभीच्छन्दकस्तद्वच्छुकनासस्त्रयान्वितः ।
वृषस्योच्छ्रायस्तुल्यो मण्डितश्चित्रवर्जितः ॥ ९१ ॥

जिसमें शतशृङ्ग (सौ कंगूरे) तथा चार द्वार हों, उसमें सोलह भूमिका (मंजिलें) हों तथा जिसके शिखर विचित्र प्रकार के हों उस प्रासाद को मेरु कहा जाता है। बारह भूमिकाओं (मंजिलों) से युक्त प्रासाद को मन्दर कहते हैं तथा कैलास नामक प्रासाद में नौ भूमिकाएँ होती हैं ॥ ८६-८८ ॥

जिस प्रासाद में अनेक शिखर होते हैं, उसे विमानच्छन्दक कहते हैं। विमानच्छन्दक में आठ भूमिकाएँ होती हैं। इसी भाँति नन्दिवर्धन प्रासाद में सात भूमिका होती हैं ॥ ८९ ॥

जिसमें बीस अण्डक हो उस प्रासाद को नन्दन कहते हैं, जो षोडशास्त्र से युक्त अनेक प्रकार का तथा अनेक शिखरों से युक्त होता है उसे सर्वतोभद्र कहते हैं, उसमें पाँच भूमियाँ तथा चन्द्रशाला होती हैं ॥ ९० ॥

जिसकी ऊँचाई एवं आकार वृष के समान हो, जिसमें तीन शुकनासा हों तथा जिसका मण्डल बिना चित्रों के किया गया हो, उस प्रासाद को वल्लभीछन्दक कहते हैं ॥ ९१ ॥

सिंहः सिंहाकृतिर्ज्ञेयो गजो गजसमस्तथा।
कुम्भः कुम्भाकृतिस्तद्वत् भूमिकानवकोच्छ्रयः ॥ ९२ ॥
अङ्गुलीपुटसंस्थानं पञ्चाण्डकविभूषितः ।
षोडशास्त्रः समन्तात्तु विज्ञेयः स समुद्रकः ॥ ९३ ॥

सिंह के समान आकृतिवाला प्रासाद सिंहाकृति कहा जाता है। गजप्रासाद गज के समान होता है। कुम्भप्रासाद कुम्भ (घड़े) की आकृति-जैसा होता है तथा उसकी ऊँचाई नौ भूमिका (Stories) युक्त होती है ॥ ९२ ॥

जो प्रासाद अंजलिपुट (अंगुलिपुट) के समान आकार का पाँच अण्डकों से शोभित, सोलह कोणवाला होता है, उस प्रासाद को समुद्रक कहा जाता है ॥ ९३ ॥

पार्श्वयोश्चन्द्रशालस्य उच्छ्रायो भूमिकाद्वयम्।
तथैव पद्मकः प्रोक्तः तथैव भूमिकाद्वयम् ॥ ९४ ॥
षोडशास्त्रः स विज्ञेयो विचित्रशिखरः शुभः ।
मृगराजस्तु विख्यातश्चन्द्रशालाविभूषितः ॥ ९५ ॥

जिसकी ऊँचाई दो भूमिकावाली हो तथा जिसके पार्श्व में चन्द्रशाला हो वह कमल के समान आकृति का प्रासाद पद्मक कहा जाता है। उसी प्रकार दो भूमिकावाला तथा षोडशास्त्र एवं विचित्र शिखरों एवं चन्द्रशाला से विभूषित प्रासाद मृगराज होता है ॥ ९४-९५ ॥

प्राग्ग्रीवेन विशालेन भूमिका सषडुन्नता।
अनेकचन्द्रशालस्तु गजप्रासाद उच्यते ॥ ९६ ॥
पर्यङ्कगृहराजो वै गरुडो नामनामतः ।
सप्तभूम्युच्छ्रयस्तद्वच्चन्द्रशाला त्रयान्वितः ॥ ९७ ॥
भूमिकास्तु षडशीतिर्बाह्यतः सर्वतो भवेत्।
तथान्यो गरुडस्तद्वदुच्छ्रायो दशभूमिकः ॥ ९८ ॥

जिस प्रासाद की विशाल प्राग्ग्रीवा हो तथा जिसकी ऊँचाई छह भूमिकात्मक हो एवं जिसमें अनेक चन्द्रशालाएँ हों, उसे गजप्रासाद कहते हैं ॥ ९६ ॥

सात भूमि की ऊँचाईवाला, तीन चन्द्रशालाओं से युक्त पर्यङ्कसदृश प्रासाद गरुड प्रासाद कहलाता है ॥ ९७ ॥

दूसरे प्रकार के गरुड प्रासाद में चारो ओर छियासी कक्ष बने होते हैं तथा उसकी ऊँचाई दश भूमिकायुक्त होती है ॥ ९८ ॥

पद्मकः षोडशास्त्रस्तु भूमिद्वयथाधिकः ।
पद्मतुल्यप्रमाणेन श्रीतुष्टक इति स्मृतः ॥ ९९ ॥
पञ्चाण्डकः त्रिभूमिस्तु गर्भे हस्तचतुष्टयम्।
वृषो भवति नाम्नायः प्रासादः सार्वकामिकः ॥ १०० ॥

पद्मकग्रह षोडशास्त्र होता है उससे दो भूमिका अधिक वाला कमलाकृति गृह श्री तुष्टक कहा जाता है ॥ ९९ ॥

पाँच अण्डक, तीन भूमि तथा चार हाथ के गर्भगृहवाला प्रासाद वृष कहलाता है, जो कि सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करनेवाला होता है ॥ १०० ॥

सिंह प्रासाद के लक्षण

सप्तकाः पञ्चकाश्चैव प्रासादा ये मयोदिताः ।
सिंहस्य ते समा ज्ञेया ये चान्येऽन्यप्रमाणतः ॥ १०१ ॥
चन्द्रशालैस्समोपेताः सर्वे प्राग्ग्रीवसंयुताः ।
ऐष्टिका दारवाश्चैव शैलजाश्च सतोरणाः ॥ १०२ ॥

मैंने पूर्व में जो प्रासाद कहे हैं, वे जब पाँच भूमिकावाले तथा छह भूमिकावाले होकर सिंहाकृति रूप में बनते हैं तथा अन्यान्य प्रमाणवाले होने पर भी जो सिंहाकृति बनाये जाते हैं, वे सिंह प्रासाद कहलाते हैं। वे चान्द्रशाला एवं प्राग्ग्रीवा से युक्त हैं। ईंटों, शिलाओं अथवा काष्ठ किसी से भी बननेवाले प्रासाद मैंने यहाँ पर वर्णित किये हैं ॥ १०१-१०२ ॥

प्रासादों के विस्तार का कथन

मेरुः पञ्चाशद् हस्तः स्यान्मन्दारः पञ्चहीनकः ।
चत्वारिंशस्तु कैलासश्चतुस्त्रिंशद् वितानकः ॥ १०३ ॥

नन्दिवर्धनकस्तद्वत् द्वात्रिंशत्समुदाहृतः।
त्रिंशद्भिर्नन्दनः प्रोक्तः सर्वतोभद्रकस्तथा॥ १०४॥
एते षोडशहस्तास्युश्चत्वारो देववल्लभाः।

मेरु ५० हाथ का, मन्दार ४५ हाथ का, कैलास ४० हाथ का, वितानक ३४ हाथ, नन्दिवर्धन ३२ का, नन्दन ३० हाथ का तथा सर्वतोभद्र ९६ हाथ का होता है। आगे कहे गये चार प्रासाद भी देवताओं को प्रिय होते हैं॥ १०३-१०४½॥

कैलासो मृगराजस्तु वितानच्छन्दको गजः॥ १०५॥
एते द्वादशहस्तास्युरेतेषां सिंहनादकः।
गरुडोऽष्टकरो ज्ञेयः सिंहो दश उदाहृतः॥ १०६॥
एवमेव प्रमाणेन कर्त्तव्याः शुभलक्षणाः।

कैलास को १२ हाथ का भी बनाया जाता है। इसी प्रकार वितानक, मृगराज तथा गज को भी १२ हाथ में बनाना चाहिये। गरुड प्रासाद तथा सिंहनाद प्रासाद आठ हाथ के होते हैं। सिंह दस हाथ होता है। इस प्रकार के प्रमाण से प्रासादों का निर्माण करना चाहिये॥ १०५-१०६½॥

यक्ष, राक्षसों एवं नागों के प्रासाद

यक्षराक्षसनागानामष्टहस्तः प्रशस्यते॥ १०७॥

यक्षों, राक्षसों तथा नागों के प्रासादों का विस्तार आठ हाथ रखना चाहिये॥ १०७॥

अन्य प्रासादों के फल

तथा मेर्वादयः सप्त ज्येष्ठलिङ्गाः शुभावहाः।
श्रीतुष्टकादयश्चाष्टौ मध्ये यस्य उदाहृताः॥ १०८॥
तथा हंसादयाः पञ्च उक्तास्ते शुभदा मताः।

१. पूर्व में जो मेरु आदि सात प्रासाद कहे गये हैं, वे ज्येष्ठ लिङ्ग (बड़ी मूर्ति या लिङ्ग) के लिये शुभ होते हैं।

२. श्रीतुष्टक (श्री वृक्षक) आदि आठ प्रासाद मध्यम लिङ्ग के लिये उपयुक्त हैं।

३. तथा हंस आदि जो पाँच अन्य प्रासाद कहे हैं वे कनिष्ठ लिङ्ग के लिये शुभ होते हैं॥ १०८-१०८½॥

विमर्श—इस अध्याय में इस प्रसंग में कुछ मूलपाठ नष्ट हो गया है; क्योंकि हंस आदि पाँच प्रासादों के नाम का उल्लेख ही नहीं आया है, जबकि अन्य वास्तुग्रन्थों में उनका भी वर्णन है।

लिङ्गादि के लक्षण एवं प्रमाण का कथन

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शक्त्या लिङ्गस्य लक्षणम्॥ १०९॥
लिङ्गदैर्घ्यांगुलैर्लिङ्गं विस्तारं गणयेद् बुधः।
लिङ्गविस्तारमानेन त्रिगुणं पीठविस्तरम्॥ ११०॥

गर्भगेहप्रविस्तारं त्रिभागं परिकल्पयेत्।
तेषु भागेषु चैकेन पीठविस्तारमाचरेत्॥ १११॥
दीर्घं कुर्वन्ति पीठानां विष्णुभागावसानकम्।
मूले मध्ये तथोर्ध्वे च ब्रह्मविष्णुहरांशकम्॥ ११२॥

अब मैं शक्तिसहित लिङ्ग के लक्षणों को कहता हूँ। बुद्धिमान् व्यक्ति को अंगुलों से लिङ्ग के दैर्घ्य (लम्बाई) तथा विस्तार (चौड़ाई) को नापना चाहिये। लिङ्ग का विस्तार जितना हो उससे तिगुना विस्तार उसकी पीठिका का होना चाहिये॥ १०९-११०॥

गर्भगृह का जो विस्तार है उसके तृतीयांश मान से मध्य में पीठ का विस्तार करे। पीठ की ऊँचाई या दीर्घता लिङ्ग के विष्णु भाग तक करनी चाहिये। लिङ्ग के मूल में ब्रह्मा, मध्य में विष्णु तथा ऊपरी भाग में शिव होते हैं (इनके ये अंश होते हैं)॥ १११-११२॥

पीठिका के लक्षण

पीठिकालक्षणं वक्ष्ये यथावदनुपूर्वशः।
पीठोच्छ्राये यथावच्च भागान् षोडश कारयेत्॥ ११३॥
भूमावेकौ प्रविष्टः स्याच्चतुर्भिर्जगती मता।
वृत्तो भागस्तस्यैकः स्याद् वृत्तादूर्ध्वस्तु भागतः॥ ११४॥
भागैस्त्रिभिस्तथा कण्ठं पदं कण्ठत्रिभागतः।
भागैकमूर्ध्वकेयश्च शेषभागेव पट्टिका॥ ११५॥
प्रविष्टं भागमेकं तु जगती यावदेव तु।
निर्गमस्तु पुनस्तस्या यावद्वै पोषपट्टिका॥ ११६॥
वारिनिर्गमनार्थन्तु तत्र कार्या प्रमाणतः।
बाणलिङ्गादिकं कुर्यात् सप्तांशं वा त्रिभागितम्॥ ११७॥
पञ्चभागं द्विभागं वा यथायोग्यं यथास्थिरम्।
सप्तभागकृते लिङ्गे चतुरंशान्निवेदयेत्॥ ११८॥
पीठमध्यगते गर्ते त्रिभागं चैकभागकम्।
पञ्चभागे तु भागांस्त्रीन्द्विभागेऽर्धं यथाक्रमम्॥ ११९॥
एवं बाणादिलिङ्गानां प्रवेशः शङ्करोदितः।
स्थूलं शिरः कृशं मूलमुन्नते तन्मुखं शिरः॥ १२०॥
निम्नपृष्ठमिति ख्यातं बाणगेहादिलिङ्गके।
अज्ञातमुखपृष्ठानां कन्यास्पृष्टं मुखं शिरः॥ १२१॥

अब मैं पीठिका (शिवलिङ्ग का अधिष्ठान) के लक्षण क्रमशः कहता हूँ। पीठिका की जो ऊँचाई हो उसके सोलह भाग कर ले। उसका (पीठिका का) एक भाग भूमि में प्रविष्ट होना चाहिये। उसके ऊपर के चार भागों में जगती का निर्माण करना चाहिये।

उसके ऊपर एक भाग ($\frac{1}{16}$) के तुल्य वृत्त का निर्माण करे। फिर वृत्त के ऊपर तीन भाग करे उनमें प्रथम भाग फिर कण्ठ, फिर पद होता है। शेष भाग पट्टिका होती है। पट्टिका तक जल का निर्गम जगती में बनाना चाहिये। जल के निर्गम के लिये उसका निर्माण प्रमाण (विहित नाप) के अनुसार करना चाहिये॥ ११३-११५$\frac{1}{2}$॥

लिङ्ग तथा बाण आदि का सप्तमांश ($\frac{1}{7}$) अथवा त्रिभाग ($\frac{1}{3}$) जगती में प्रविष्ट करना चाहिये। अथवा उसकी दीर्घता के अनुसार पञ्चमांश या दो भाग जैसे भी वह भली-भाँति स्थिर हो सके प्रविष्ट करना चाहिये। यदि लिङ्ग के कुल सात भाग किये जायें तो उसके चार भागों को जगती में प्रविष्ट करे। पीठ के मध्यभाग में जो गड्ढा होता है उसमें तीन भागों में एक भाग प्रविष्ट करे अथवा पाँच भाग में तीन भाग प्रविष्ट करे अथवा दो भागों में आधा भाग यथाक्रम से प्रविष्ट करना चाहिये। इस प्रकार भगवान् शंकर ने बाणादि लिङ्गों का प्रवेश कहा है।

लिङ्ग में स्थूल भाग शिर, कृशभाग मूल तथा उन्नत भाग उसका शिर होता है। निम्न भाग उसका पृष्ठ होता है। बाणलिङ्ग तथा गेहलिङ्ग में इस प्रकार के चिह्न होते हैं। जिस लिङ्ग के आकार से लिङ्ग के मुखपृष्ठादि का पता न चल रहा हो तो किसी कन्या से उसपर हाथ रखवा लें उसका हाथ जिस स्थान पर स्पर्श करे उस स्थल को मुख (शिर) मान लेना चाहिये॥ ११६-१२१॥

ब्रह्मशिलादि का कथन तथा लिङ्ग स्थापना

ज्येष्ठा मध्या कनिष्ठा च त्रिविधा ब्रह्मणशिलाः।
त्रिगुणं विस्तृतं कुर्यादन्यथा वा प्रकारकः॥ १२२॥
उक्तानामपि पीठानां विस्तारादधिकाङ्गुलैः।
त्रिभागपीठविस्तारं कृत्वा तत्रैकभागतः॥ १२३॥
दीर्घं कुर्यात् प्रणालञ्च तं त्रिभागैकविस्तरम्।
ब्रह्मसूत्र चतुष्केतु स्थाप्य कूर्मशिलां ततः॥ १२४॥
तद्गर्भे विन्यसेत् कूर्मं सौवर्णं द्वादशं मुखम्।
तत्र रत्नादिभिस्सार्धं भूमिञ्च हृदये न्यसेत्॥ १२५॥
तद्गर्भं हि तस्यैव नीरन्ध्रं वज्रलेपकैः।
लिप्तोऽथ शान्तितोयेन प्रोक्ष्योल्लिख्योक्तवत्ततः॥ १२६॥
ततस्तेजाभिधां शक्तिं कलितासनरूपिणीम्।
स्थापयेच्च सुलग्ने तु दैवज्ञोक्तं मुहूर्तके॥ १२७॥

ब्रह्मशिला लिङ्ग के अनुपात के अनुसार ज्येष्ठा, मध्या तथा कनिष्ठा होती है। ब्रह्मशिला के तिगुने विस्तार से उसका प्राकार बनवाना चाहिये॥ १२२॥

पूर्वकथित पीठों का जो विस्तार है उसके अंगुलात्मक मान को तिगुनाकर उसके एक भाग से प्रणाल (पनाले) की लम्बाई रखें। लम्बाई के त्रिभाग ($\frac{1}{3}$) प्रणाल का विस्तार (चौड़ाई) बनानी चाहिये। ब्रह्मसूत्र के चतुष्क में कूर्मशिला का स्थापन करे। तत्पश्चात् उस कूर्मशिला के गर्भ में सोने (Gold) का बारह मुख का कूर्म (कछुआ) बनवाकर उसे स्थापित करे। फिर उस कूर्म के ऊपर उसी कूर्म के हृदय भाग में रत्न आदि सहित भूमि (पृथ्वीदेवी) को स्थापित करे। फिर उस गर्भ को (कूर्म के गर्भ) को वज्रलेप से नीरन्ध्र (छिद्ररहित) बना दे। फिर शान्तिपाठ से उस पर जल सिंचन करे तथा उसे सम (चिकना) कर दे। फिर तेज नामिका शक्ति जो कि कलितासन-रूपिणी हो उसे सुलग्न तथा सुमुहूर्त में जो कि ज्योतिषी द्वारा बताया हुआ हो स्थापित कर दे॥ १२३-१२७॥

सत्ताईस मण्डपों के नामों का कथन

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मण्डपानाञ्च लक्षणम्।
मण्डपान् प्रवरान् वक्ष्ये प्रासादस्यानुरूपतः॥ १२८॥
विविधा मण्डपाः कार्याः श्रेष्ठमध्यकनीयसः।
नामस्तान् प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं द्विजसत्तमाः॥ १२९॥
पुष्पकः पुष्पभद्रस्तु सुवृत्तोऽमृतनन्दनः।
कौशल्यो बुद्धिसङ्कीर्णो गजभद्रो जयावहः॥ १३०॥
श्रीवृक्षो विजयश्चैव वास्तुकोऽर्ण श्रुतन्धरः।
जयभद्रो विलासश्च सश्लिष्टः शत्रुमर्दनः॥ १३१॥
भाग्यपञ्चो नन्दनश्च मानवो मानभद्रकः।
सुग्रीवो हर्षणश्चैव कर्णिकारः पदाधिकः॥ १३२॥
सिंहश्च यामभद्रश्च शत्रुघ्नश्च तथैव च।
सप्तविंशतिराख्याता लक्षणं शृणुत द्विजाः॥ १३३॥

अब मैं मण्डपों के मान (माप-जोख) तथा लक्षण कहता हूँ। तथा प्रासादों (देवालयों) के अनुरूप मण्डपों का वर्णन करता हूँ। श्रेष्ठ, मध्यम तथा कनिष्ठ प्रकार से विविध प्रकार के मण्डप बनाना चाहिये। हे द्विजश्रेष्ठो! अब उन मण्डपों के नाम सुनो॥ १२८-१२९॥

१. पुष्पक, २. पुष्पभद्र, ३. सुवृत्त, ४. अमृतनन्दन, ५. कौशल्य, ६. बुद्धि संकीर्ण, ७. गजभद्र, ८. जयावह, ९. श्रीवृक्ष, १०. विजय, ११. वास्तुक, १२. अर्णश्रुतन्धर, १३. जयभद्र, १४. विलास, १५. सश्लिष्ट, १६. शत्रुमर्दन, १७. भाग्यप, १८. नन्दन, १९. मानव, २०. मानभद्र, २१. सुग्रीव, २२. हर्षण, २३. कर्णिकार, २४. पदाधिक, २५. सिंह, २६. यामभद्र तथा २७. शत्रुघ्न—ये २७

(सत्ताईस) नामवाले मण्डप देवालयों में निर्मित होते हैं। हे द्विजो! अब इन सभी मण्डपों के पृथक्-पृथक् लक्षणों को सुनिये॥ १३०-१३३॥

सत्ताईस मण्डपों के लक्षणों का कथन

स्तम्भो यत्र चतुःषष्टिः पुष्पकः स उदाहृतः।
द्वाषष्टिः पुष्पभद्रस्तु षष्टिस्तु वृत्त उच्यते॥ १३४॥
स्तम्भोऽष्टपञ्चाशद् वापि कथ्यतेऽमृतनन्दनः।
कौशल्योऽथ द्विपञ्चाशत् चतुःपञ्चाशत् पुनः॥ १३५॥
नाम्ना तु बुद्धिसंकीर्णो द्विहीनो राजभद्रकः।
जयावहस्त्रिपञ्चाशच्छ्रीवत्सस्तु द्विहीनकः॥ १३६॥

जिस मण्डप में ६४ खम्भे होते हैं, उसे पुष्पक कहा जाता है। जिसमें बासठ खम्भे हों, वह पुष्पभद्र नामक मण्डप होता है। जिसमें साठ खम्भे होते हैं, उसे सुवृत्त कहते हैं। जिसमें अट्ठावन खम्भे होते हैं, उसे अमृतनन्दन कहा जाता है। बावन खम्भोंवाला कौशल्य (अथवा बुद्धिकौशल्य) तथा चौवन खम्भोंवाला मण्डप बुद्धि-सङ्कीर्ण कहा जाता है। पचास खम्भोंवाला मण्डप राजभद्रक होता है। तिरपन स्तम्भों का जयावह तथा इक्यावन खम्भों का श्रीवत्स होता है॥ १३४-१३६॥

द्वात्रिंशद् हर्षणो ज्ञेयः कर्णिकारश्च विंशतिः।
पदद्विकोऽष्टाविंशतिभिर्द्विरष्टो सिंह उच्यते॥ १३७॥
द्विहीनो यामभद्रस्तु शत्रुघ्नश्च निगद्यते।
यामभद्रः क्वचित् प्रोक्तो द्वादशस्तम्भसंयुतः॥ १३८॥

बत्तीस स्तम्भोंवाला हर्षण, बीस स्तम्भोंवाला कर्णिकार, २८ स्तम्भोंवाला पदाधिक तथा सोलह स्तम्भों का सिंह होता है। चौदह खम्भों का यामभद्र तथा शत्रुघ्न होता है। किसी-किसी आचार्य ने बारह स्तम्भों का यामभद्र कहा है॥ १३७-१३८॥

विमर्श—यहाँ कई नाम शेष रह गये हैं, जिनके लक्षणों का वर्णन नहीं है। इससे अनुमान है कि यह पाठ मूलग्रन्थ में नष्ट होने से अप्राप्य है। क्योंकि प्रारम्भ में ६४ हाथ से दो-दो हाथ कम करके मण्डपों का माप बताया है। इस प्रकार से यदि मध्यम रूप से २७ मण्डपों का माप घटते क्रम में लें तो २७×२=५४ को ६४ में घटा देने पर १० हाथ से ऊपर सभी मण्डप आ जाते हैं, परन्तु यहाँ जो मूल प्राप्त है, उसमें ५१ हाथ से फिर ३२ हाथ पर आ जाते हैं। अतः मूल का पाठ पूरा नहीं है—यह निश्चित है। यहाँ विजय से सुग्रीव तक के लक्षण लुप्त हैं।

मण्डपों के आकारों का कथन

मण्डपाः कथिता ह्येते यथावल्लक्षणान्विताः।
त्रिकोणवृत्तमध्ये तु अष्टकोणं द्विरष्टकम्॥ १३९॥

चतुष्कोणञ्च कर्त्तव्यं संस्थानं मण्डपस्य तु।
राज्यञ्च विजयञ्चैव आयुर्वर्द्धनमेव च॥ १४०॥
पुत्रलाभः श्रियः पुष्टिः श्रीपुत्राद् क्रमाद् भवेत्।
एवन्तु शुभदः प्रोक्तो अन्यथा तु भयावहः॥ १४१॥

इति श्रीविश्वकर्मप्रकाशे वास्तुशास्त्रे प्रासादविधानं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

यहाँ मण्डपों के लक्षण कहे गये हैं। त्रिकोणाकार, वृत्त के मध्य में अष्टकोण अथवा द्विरष्टक कोण (षोडशकोण) अथवा चतुष्कोण इस प्रकार के मण्डप बनाने चाहिये। इनमें त्रिकोण मण्डप में राज्यप्राप्ति एवं अष्टकोण में विजय, षोडशकोण में आयुवृद्धि तथा चतुष्कोण मण्डप स्त्री-पुत्रादि की समृद्धि करता है। इन प्रकारों के अतिरिक्त अन्य आकार के मण्डप भयप्रद होते हैं॥ १३९-१४१॥

इस प्रकार श्रीविश्वकर्मप्रकाश वास्तुशास्त्र की महर्षि अभयकात्यायनविरचित 'अभया' हिन्दी टीका का छठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

●

सप्तमोऽध्यायः

द्वारनिर्माणाध्यायः

द्वारविन्यास के पञ्चदशपक्ष (१५ मत)

अथातः श्रृणु विप्रेन्द्र द्वारलक्षणमुत्तमम्।
द्वाराणाञ्चैव विन्यासाः पक्षाः पञ्चदशस्मृताः॥ १ ॥
त्रिषु त्रिषु च मासेषु नभस्यादिषु वै क्रमात्।
यद् दिङ्मुखो वास्तुनरः तन्मुखं सदनं शुभम्॥ २ ॥

हे विप्रेन्द्र! अब द्वार के उत्तम लक्षणों को सुनो। गृह में होनेवाले मुख्यद्वार के विन्यास के पन्द्रह पक्ष कहे गये हैं। भाद्रपद आदि तीन-तीन मासों के क्रम से जिस दिशा में वास्तुपुरुष का मुख (शिर) हो, उसी दिशा में उन मासों में द्वार बनाना चाहिये। ऐसा करने से द्वार शुभफल देता है॥ १-२॥

अन्य दिङ्मुखगेहं तु दुःखशोकभयप्रदम्।
तस्मात्तदिङ्मुखद्वारं प्रशस्तं नान्य दिङ्मुखम्॥ ३ ॥

ऊपर कहे अनुसार गृह-निर्माण न करने पर अर्थात् वास्तुपुरुष के मुख की दिशा में द्वार न करने पर दुःख-शोक-भय प्राप्त होता है। अतः वास्तुपुरुष के मुख की दिशा में ही द्वार बनवाना चाहिये॥ ३॥

विमर्श—यह प्रथम पक्ष है, अब गृहद्वार बनाने के शेष पक्षों का विवरण आगे लिखा जा रहा है।

द्वितीय पक्ष

त्रिषु त्रिषु च राशीनां कन्यादीनां स्थिते रवौ।
पूर्वादिषु न कर्त्तव्यं द्वारं चैव यथाक्रमम्॥ ४ ॥

१. कन्या-तुला-वृश्चिक के सूर्य में पूर्व दिशा का द्वार न बनवायें।

२. धनु-मकर-कुम्भ के सूर्य में दक्षिण का द्वार न बनवायें।

३. मीन-मेष-वृष के सूर्य में पश्चिम का द्वार न बनवायें।

४. तथा मिथुन-कर्क-सिंह के सूर्य में उत्तर-दिशा में द्वार नहीं बनवाना चाहिये॥ ४॥

तृतीय पक्ष

कर्ककुम्भगते सूर्ये मुखं स्यात् पूर्वपश्चिमे।
मेषकीटगते वापि मुखं चोत्तरदक्षिणे॥ ५ ॥

मुखानि चान्यथा कर्त्तुर्व्याधिशोकभयानि च।
अन्यराशिगते सूर्ये न विदध्यात् कदाचन॥ ६ ॥

कर्क तथा कुम्भ राशि में जब सूर्य हों तब गृह का द्वार पूर्व या पश्चिम दिशा में करना चाहिये। मेष-वृश्चिक राशियों के सूर्य में उत्तर एवं दक्षिण दिशा के द्वार करना चाहिये॥ ५॥

ऊपर कहे अनुसार यदि इन राशियों में विपरीत दिशा में द्वार किया जाये तो व्याधि-शोक एवं भय प्राप्त हो जाता है। अन्य राशि के सूर्यों में से किसी भी दिशा में द्वार करना शुभ नहीं होता है॥ ६॥

चतुर्थ पक्ष (मत)

सिंहे तु पश्चिमं द्वारं तुलायां चोत्तरे तथा।
कर्कटे पूर्वदिग्द्वारं द्वारं पश्चिमवर्जितम्॥ ७ ॥
कर्कटेऽर्के च सिंहस्थे पूर्वद्वारं न शोभनम्।
तुलायां वृश्चिके चैव द्वारं पश्चिमवर्जितम्॥ ८ ॥
कर्कटे च सिंहस्थे याम्यद्वारं न शोभनम्।
सूर्ये मकरकुम्भस्थे सौम्यद्वारञ्च निन्दितम्॥ ९ ॥
नृयुक्कन्याधनुर्मीनसंस्थितेऽर्के न कारयेत्।
द्वारस्तम्भौ तथा दारुसञ्चयञ्च विवर्जयेत्॥ १०॥
माघे सिंहे च दारूणां सञ्चयो नैव कारयेत्।
मोहात्कुर्वन्ति ये मूढास्तद्गेहेऽग्निभयं भवेत्॥ ११॥

सिंह के सूर्य में पश्चिम दिशा में तथा तुला के सूर्य में उत्तर दिशा में द्वार का निर्माण नहीं करना चाहिये। कर्क के सूर्यों में पूर्व का द्वार बनाना शुभ नहीं होता है। साथ ही पश्चिम दिशा में भी द्वार न करें॥ ७॥

कर्क तथा सिंह के सूर्यों में पूर्व दिशा का द्वार शुभ नहीं होता है। तथैव तुला-वृश्चिक के सूर्यों में पश्चिम दिशा का द्वार वर्जित है॥ ८॥

मकर-कुम्भ के सूर्य में उत्तर दिशा में द्वार निन्दित होता है। मिथुन-कन्या-धनु-मीन के सूर्यों में द्वार-निर्माण, स्तम्भरोपण, काष्ठादि का संचय नहीं करना चाहिये। कर्क-सिंह के सूर्य में दक्षिण दिशा का द्वार भी शुभ नहीं होता है॥ ९-१०॥

माघ मास में तथा भाद्रपद में लकड़ी का काटना तथा संचय आदि कार्य नहीं करना चाहिये। जो लोग मोह से करते हैं तो उनके घर में अग्निभय होता है॥ ११॥

विमर्श—भाद्रपद मास तथा माघ मास क्रमशः शरद एवं वसन्त ऋतु के पूर्ववर्ती मास हैं, इनमें वृक्षों की वृद्धि होती है, अतः पर्यावरण की दृष्टि से इनमें लकड़ी काटने का निषेध किया गया है।

पञ्चम मत

पूर्णादि त्वष्टमी यावत्पूर्वास्यं परिवर्जयेत्।
उत्तरास्यं न कुर्वीत नवम्यादि चतुर्दशीम्॥ १२॥

पूर्णिमातिथि से लेकर कृष्णपक्ष की अष्टमी तक पूर्वदिशा में द्वार नहीं बनाना चाहिये। कृष्णपक्ष की नवमी से लेकर शुक्लपक्ष की चतुर्दशी पर्यन्त उत्तर दिशा में द्वार नहीं करना चाहिये (यह पाँचवाँ मत है जो चान्द्रमास की तिथियों के आधार पर दिया गया है)॥ १२॥

षष्ठ मत

प्रत्यङ्मुखं ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां तथोत्तरे।
वैश्यानां पूर्व दिग्द्वारं शूद्राणां दक्षिणे शुभम्॥ १३॥

१. ब्राह्मणों के घर का द्वार पश्चिम दिशा में करना शुभ होता है।
२. क्षत्रियों के गृह का द्वार उत्तर दिशा में शुभ होता है।
३. वैश्यों के गृह का द्वार पूर्व में हो तो शुभ है।
४. शूद्रों के घर का द्वार दक्षिण दिशा में उत्तम होता है॥ १३॥

सप्तम मत

कर्कटो वृश्चिको मीनो ब्राह्मणः परिकीर्तितः।
मेषः सिंहो धनुर्धारी राशयः क्षत्रियाः स्मृताः॥ १४॥
वैश्या वृषमृगौ कन्या शूद्राः शेषाः प्रकीर्तिताः।
वर्णक्रमेण पूर्वादिग् दक्षिणे पश्चिमे तथा॥ १५॥
यो यस्य राशिर्मर्त्यस्य तस्य द्वारं ततश्चरेत्।
दिशि तद् विपरीतं तु कर्त्तुर्नेष्टफलं भवेत्॥ १६॥

कर्क-वृश्चिक-मीन राशियाँ ब्राह्मण कहलाती हैं। मेष-सिंह तथा धनु—ये तीन राशियाँ क्षत्रिय हैं। वृष-मकर-कन्या—ये तीनों वैश्य हैं तथा शेष राशियाँ (मिथुन-तुला-कुम्भ) शूद्र राशियाँ होती हैं। अत: जिस वर्ण की जो राशि है, उसी राशि की दिशा में उसका द्वार हो विपरीत दिशा में करने वाले को नेष्टफल मिलता है॥ १४-१६॥

विमर्श—तात्पर्य यह है कि उत्तर दिशा में तथा कर्क-वृश्चिक-मीन में ब्राह्मणों का द्वार, मेष-सिंह-धनु के सूर्य में पूर्वदिशा में क्षत्रियों का द्वार, वृष-कन्या-मकर में वैश्यों का द्वार दक्षिण में तथा तुला-मिथुन-कुम्भ में पश्चिमाभिमुख शूद्रों को द्वार बनाना चाहिये। यह सातवाँ मत है।

अष्टम मत

धनुर्मेषसिंहे यदा रात्रिनाथस्तदा पूर्वभागे न्यसेद्द्वारमाद्यम्।
मृगे कन्यका गोषु द्वारं च याम्ये तुलायुग्मकुम्भे तथा पश्चिमायाम्॥ १७॥

कर्कटे वृश्चिके मीने राशिस्थे चोत्तरे न्यसेत्॥ १८॥

१. मेष-सिंह-धनु राशि के चन्द्रमा में पूर्व दिशा में द्वार करना चाहिये। २. मकर-कन्या तथा वृष के चन्द्रमा में दक्षिण दिशा में द्वार शुभ होता है। ३. मिथुन-तुला-कुम्भ में पश्चिम में द्वार उत्तम है तथा कर्क-वृश्चिक-मीन में जब चन्द्रमा हो तब द्वार का निर्माण उत्तर दिशा में करना चाहिये॥ १७-१८॥

विमर्श—अभी तक दिये गये सात पक्षों में सूर्य की राशियों के अनुसार द्वार-विचार किया गया है परन्तु इस मत में चन्द्रमा की राशियों को वरीयता दी गयी है।

नवम मत

कृत्तिकाद्यं सप्त पूर्वे मघाद्यं सप्त दक्षिणे।
मैत्राद्यं पश्चिमे ज्ञेयं धनिष्ठाद्यं सप्तोत्तरे॥ १९॥
यद्दिग्भसंस्थिते चन्द्रे तद्दिग्द्वारं प्रशस्यते।
पृष्ठदक्षिणवामस्थे न विदध्यात् कदाचन॥ २०॥

१. कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य तथा आश्लेषा—ये सात नक्षत्र पूर्व दिशा के स्वामी हैं।

२. मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती तथा विशाखा—ये सात नक्षत्र दक्षिण दिशा के हैं।

३. अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, अभिजित् तथा श्रवण—ये सात नक्षत्र पश्चिम दिशा के नक्षत्र हैं।

४. धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी तथा भरणी—ये सात नक्षत्र उत्तर दिशा के हैं।

जिस दिशा में द्वार करना हो उसी दिशा के नक्षत्र पर जब चन्द्रमा हो तब द्वार बनायें। पृष्ठ के नक्षत्रों, वाम नक्षत्रों तथा दक्षिण नक्षत्रों में द्वार कदापि न बनायें॥ १९-२०॥

	कृ.	रो.	मृ.	आर्द्रा	पुन.	पु.	श्ले.	
भरणी								मघा
अश्विनी								पूफा.
रेवती								उ.फा.
उ.भा.								हस्त
पू.भा.								चित्रा
शत.								स्वाती
धनि.								विशाखा
	श्रवण	अभि.	उ.षा.	पू.षा.	मूल	ज्ये.	अनु.	

दशम मत

प्रागादि विन्यसेद् वर्गान् सव्यमार्गेण वै द्विज।
सिंहे चोत्तरदिग्द्वारं पश्चिमास्यं विवर्जयेत्॥ २१॥

हे द्विजो! पूर्वादि दिशाओं में सव्यमार्ग (वामक्रम) से वर्गों (गरुडादि वर्गों) का न्यास करें। इनमें सिंह आय में उत्तर तथा पश्चिम दिशा में द्वार न करें॥ २१॥

पूर्व

अवर्ग=गरुड
तवर्ग=सर्प

उत्तर — कवर्ग=विडाल, पवर्ग=मूषक

दक्षिण — टवर्ग=श्वान, शवर्ग=मेष

यवर्ग=मृग
चवर्ग=सिंह

पश्चिम

विमर्श—भवन के क्षेत्रफल के आधार पर वर्गों का ज्ञान पूर्व में वर्णित है, तदनुसार उस भवन का जो वर्ग आये उसके अनुसार द्वार की दिशा निर्धारित करें। जिस दिशा का जो स्वामी है, उस वर्ग के भवन का द्वार उस दिशा में किया जा सकता है परन्तु सिंह वर्ग के भवन का द्वार पूर्व या दक्षिण दिशा में ही करें। उत्तर तथा पश्चिम दिशा में सिंह आयवाले का द्वार न करें—यह अभिप्राय है। क्योंकि पश्चिम में द्वार करने पर सिंह आयवाले को सिंह आय सम्मुख तथा उत्तर द्वार में प्रवेश के समय दक्षिण दिशा में होगा, जो ठीक नहीं।

ग्यारहवाँ मत

प्राग्दक्षिणे अजेद्वारं वृषे प्राच्या न चान्यदिक्।
पृष्ठद्वारं न कर्त्तव्यं कोणेष्वेव विशेषतः॥ २२॥

मेष के सूर्य में पूर्व दिशा में तथा दक्षिण दिशा में द्वार करें। वृष के सूर्य में पूर्व में द्वार करें अन्य दिशा में नहीं। (शेष सूर्यों में किसी भी दिशा में द्वार कर सकते हैं)। परन्तु जिस राशि की जो दिशा है, उसकी पीठ की दिशा में उस राशि के सूर्य में द्वार नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार चारो कोणों में भी कभी द्वार नहीं बनाना चाहिये॥ २२॥

बारहवाँ पक्ष

त्रिषु त्रिषु च मासेषु मार्गशीर्षादिषु क्रमात्।
पूर्वदक्षिणतोयेश पौलस्त्याशां क्रमादगुः॥ २३॥

तद् दिशायां न कर्त्तव्यं द्वारं स्तम्भनिवेशनम्।
द्वारे वह्निभयं प्रोक्तं स्तम्भे वंशविनाशनम्॥ २४॥

मार्गशीर्ष, पौष तथा माघ में तीन-तीन मास के हिसाब से पूर्वादि चारो दिशाओं में राहु रहता है। राहु की दिशा में द्वार नहीं करना चाहिये और न स्तम्भारोपण करें। क्योंकि राहु की दिशा में घर का द्वार करने पर अग्निभय होता है तथा स्तम्भ गाड़ने से वंश का विनाश होता है॥ २३-२४॥
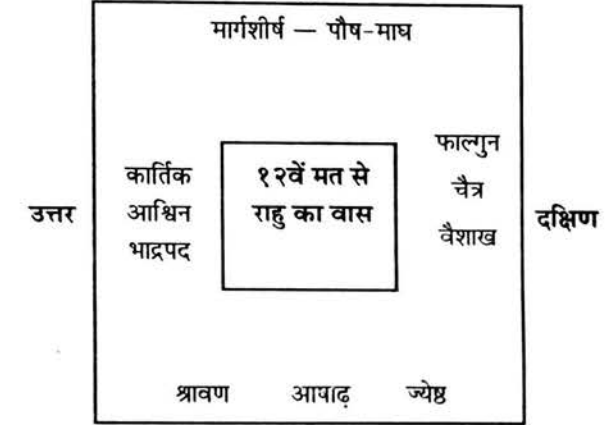
तेरहवाँ मत

रक्षः कुबेराग्निजलेशयाम्ये वायव्यकाष्ठासु च भानुवारात्।
वसेत्तमश्चाष्टसु दिक्षु चक्रे मुखे विवर्ज्यो गमने गृहे च॥ २५॥

रविवार को नैर्ऋत्य में, सोमवार को उत्तर में, मंगल को आग्नेय में, बुध को पश्चिम में, गुरु को ईशान में, शुक्रवार को दक्षिण में तथा शनिवार को वायव्य में इस प्रकार राहु का आठों दिशाओं में मुख रहता है। इसे गृह निर्माण के द्वारारम्भ तथा यात्रा में वर्जना चाहिये॥ २५॥

चौदहवाँ मत

ध्रुवं त्वाद्यं गृहं प्रोक्तं सर्वद्वारविवर्जितम्।
धान्ये पूर्वदिशिद्वारं दक्षिणे जयसंज्ञकम्॥ २६॥
प्राग्दक्षिणे नन्दगृहे पश्चिमे खरमेव च।
प्राक्पश्चिमे तथा कान्ते प्रत्यग्याम्ये मनोरमे॥ २७॥
सुवक्त्रे चोत्तरे वर्ज्यं दुर्मुखे चोत्तरे तथा।
प्रागुत्तरे क्रूरसंज्ञे विपदो दक्षिणे तथा॥ २८॥

धनदे पश्चिमे वर्ज्यं क्षयं चोत्तरपश्चिमे।
आक्रन्दे दक्षिणं त्याज्यं विपुले पूर्वमेव च॥ २९॥
विजयाख्यं चतुर्द्वारं आलिन्दैः सर्वतोयुतम्।
राज्ञां सिद्धिकरं प्रोक्तं सर्वतोभद्रसंज्ञकम्॥ ३०॥

१. ध्रुव नामक जो पहला घर होता है उसमें कोई द्वार होता ही नहीं है (ऊपर द्वार होता है।) अतः उसमें दिशा-विचार की आवश्यकता नहीं होती है।

२. धान्य नामक गृह में पूर्वदिशा में द्वार बनाना चाहिये।

३. जय नामक गृह में पूर्व तथा दक्षिण में द्वार बनायें।

४. नन्द नामक गृह में पूर्व तथा दक्षिण में द्वार करना चाहिये।

५. खर नामक गृह में पश्चिम दिशा में द्वार बनायें।

६. कान्त नामक गृह में पूर्व एवं पश्चिम दोनों दिशाओं में द्वार करें।

७. मनोरम गृह में पश्चिम तथा दक्षिण में द्वार होता है।

८. सुवक्त्र (सुमुख) में उत्तर में द्वार न करके शेष तीन दिशाओं में द्वार करते हैं।

९. दुर्मुख गृह में उत्तर दिशा में द्वार करते हैं।

१०. क्रूर नामक गृह में पूर्व तथा उत्तर में द्वार बनायें, उसमें दक्षिण द्वार विपत्तिकारक होता है।

११. धनद गृह में पश्चिम में द्वार नहीं करते हैं।

१२. क्षय गृह में उत्तर-पश्चिम में द्वार वर्जित है।

१३. आक्रन्द गृह में दक्षिण दिशा त्याज्य है।

१४. विपुल गृह में पूर्व दिशा त्याज्य है।

१५. विजय में चारो दिशाओं में द्वार होता है तथा उसमें सब दिशाओं में अलिन्द होते हैं।

१६. सर्वतोभद्र प्रासाद राजाओं को सिद्धिकारक होता है॥ २६-३०॥

पन्द्रहवाँ पक्ष

द्वारचक्रं प्रवक्ष्यामि यथोक्तं ब्रह्मणा पुरा।
सूर्यभाद् चतुष्कं तु द्वारस्योपरि विन्यसेत्॥ ३१॥
द्वे द्वे कोणे प्रदातव्यं शाखायुग्मे चतुष्ककम्।
अधश्च त्रीणि देयानि वेदा मध्ये प्रतिष्ठिताः॥ ३२॥
राज्यं स्यादूर्ध्वनक्षत्रे कोणेषूद्वासनं भवेत।
शाखायां लभते लक्ष्मीं ध्वजे चैव मृतिर्भवेत्॥ ३३॥
मध्यस्थेषु भवेत्सौख्यं चिन्तनीयं सदा बुधैः।
द्वारचक्रमिदं प्रोक्तं द्वारनिर्माणहेतवे॥ ३४॥

सूर्य नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक द्वारचक्र शुद्धि चक्र (श्लोक ३१-३४ के अनुसार)

सूर्य नक्षत्र	ऊर्ध्व नक्षत्र (राज्य)				शाखा के नक्षत्र (लक्ष्मीप्रद)								मध्य के नक्षत्र (सौख्य)			
आश्वि. भ. कृ. रो.	अश्वि. भ. कृ. रो.	भ. कृ. रो. मृ.	कृ. रो. मृ. आर्द्रा	रो. मृ. आर्द्रा पुन.	ह. चि. स्वा. वि.	चि. स्वा. वि. अनु.	स्वा. वि. अनु. ज्ये.	वि. अनु. ज्ये. मू.	अनु. ज्ये. मू. पू.षा.	ज्ये. मू. पू.षा. उ.षा.	मू. पू.षा. उ.षा. श्र.	पू.षा. उ.षा. श्र. ध.	श. पू.भा. उ.भा. रे.	पू.भा. उ.भा. रे. अश्वि.	उ.भा. रे. अश्वि. भ.	रे. अश्वि. भ. कृ.
मृ. आर्द्रा पुन. पुष्य	मृ. आर्द्रा पुन. पुष्य	आर्द्रा पुन. पुष्य. आश्ले.	पुन. पुष्य आश्ले. म.	पुष्य आश्ले. भ. पू.फा.	अनु. ज्ये. मू. पू.षा.	ज्ये. मू. पू.षा. उ.षा.	मू. पू.षा. उ.षा. श्र.	पू.षा. उ.षा. श्र. ध.	उ.षा. श्र. ध. श.	श्र. ध. श. पू.भा.	ध. श. पू.भा. उ.भा.	श. पू.भा. उ.भा. रे.	अश्वि. भ. कृ. रो.	भ. कृ. रो. मृ.	कृ. रो. मृ. आर्द्रा	रो. मृ. आर्द्रा पुन.
आश्ले. म. पू.फा. उ.फा.	आश्ले. म. पू.फा. उ.फा.	म. पू.फा. उ.फा. ह.	पू.फा. उ.फा. ह. चि.	उ.फा. ह. चि. स्वा.	उ.षा. श्र. ध. श.	श्र. ध. श. पू.भा.	ध. श. पू.भा. उ.भा.	श. पू.भा. उ.भा. रे.	पू.भा. उ.भा. रे. अश्वि.	उ.भा. रे. अश्वि. भ.	रे. अश्वि. भ. कृ.	अश्वि. भ. कृ. रो.	मृ. आर्द्रा पुन. पुष्य.	आर्द्रा पुन. पुष्य. आश्ले.	पुन. पुष्य. आश्ले. म.	पुष्य आश्ले. म. पू.फा.
हस्त. चि. स्वा. वि.	ह. चि. स्वा. वि.	चि. स्वा. वि. अनु.	स्वा. वि. अनु. ज्ये.	वि. अनु. ज्ये. मू.	पू.भा. उ.भा. रे. अश्वि.	उ.भा. रे. अश्वि. भ.	रे. अश्वि. भ. कृ.	अश्वि. भ. कृ. रो.	भ. कृ. रो. मृ.	कृ. रो. मृ. आर्द्रा	रो. मृ. आर्द्रा पुन.	मृ. आर्द्रा पुन. पुष्य	आश्ले. म. पू.फा. उ.फा.	म. पू.फा. उ.फा. ह.	पू.फा. उ.फा. ह. चि.	उ.फा. ह. चि. स्वा.
अनु. ज्ये. मू. पू.षा.	अनु. ज्ये. मू. पू.षा.	ज्ये. मू. पू.षा. उ.षा.	मू. पू.षा. उ.षा. श्र.	पू.षा. उ.षा. श्र. ध.	भ. कृ. रो. मृ.	कृ. रो. मृ. आर्द्रा	रो. मृ. आर्द्रा पुन.	मृ. आर्द्रा पुन. पुष्य	आर्द्रा पुन. पुष्य आश्ले.	पुन. पुष्य आश्ले. म.	पुष्य आश्ले. म. पू.फा.	आश्ले. म. पू.फा. उ.फा.	ह. चि. स्वा. वि.	चि. स्वा. वि. अनु.	स्वा. वि. अनु. ज्ये.	वि. अनु. ज्ये. मू.
उ.षा. श्र. ध. श.	उ.षा. श्र. ध. श.	श्र. ध. श. पू.भा.	ध. श. पू.भा. उ.भा.	श. पू.भा. ट.भा. रे.	आर्द्रा पुन. पुष्य आश्ले.	पुन. पुष्य आश्ले. म.	पुष्य आश्ले. म. पू.फा.	आश्ले. म. पू.फा. उ.फा.	म. पू.फा. उ.फा. ह.	पू.फा. उ.फा. ह. चि.	उ.फा. ह. चि. स्वा.	ह. चि. स्वा. वि.	अनु. ज्ये. मू. पू.षा.	ज्ये. मू. पू.षा. उ.षा.	मू. पू.षा. उ.षा. श्र.	पू.षा. उ.षा. श्र. ध,
पू.भा. उ.भा. रे.	पू.भा. उ.भा. रे.	उ.भा. रे. अश्वि.	रे. अश्वि. भ.	अश्वि. भ. कृ.	म. पू.फा. उ.फा.	पू.फा. उ.फा. ह.	उ.फा. ह. चि.	ह. चि. स्वा.	चि. स्वा. वि.	स्वा. वि. अनु.	वि. अनु. ज्ये.	अनु. ज्ये. मू.	उ.षा. श्रव. ध,	श्र. ध, श.	ध, श. पूभा.	शत. पूभा. उ.भा.

अब मैं ब्रह्माजी ने जैसा पूर्व में कहा है उस द्वार चक्र को कहता हूँ। सूर्य जिस नक्षत्र पर हो उससे लेकर चार नक्षत्र द्वार के ऊपर रखें। फिर दो-दो नक्षत्र द्वार के कोनों में रखना चाहिये। फिर दोनों शाखा पर चार-चार नक्षत्रों का न्यास करे तथा मध्य में चार नक्षत्र रखे॥ ३१-३२॥

यदि सूर्य के नक्षत्र से गिनने पर द्वारस्थापन नक्षत्र द्वार के ऊपर पड़े तो उसमें से गृहस्वामी की उन्नति होती है। कोणों में पड़े तो उद्वासन (घर छोड़ना) होता है। शाखाओं में लक्ष्मी प्राप्त होती है। तथा अधोभाग मृत्युभय देता है, मध्य में सुख होता है—ऐसा विचारकर विद्वानों को बताना चाहिये। द्वारस्थापन के लिये यह द्वारचक्र कहा गया है॥ ३३-३४॥

विमर्श—प्रधान द्वार की स्थापना के लिये शुभ नक्षत्र चयन के साथ सूर्य नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक गिनकर द्वारशुद्धि चक्र भी देखना चाहिये जो कि ऊपर दिया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि सूर्य जिस नक्षत्र पर हो अभीष्ट चन्द्र नक्षत्र (दिन नक्षत्र) तक उससे गिने। प्रथम चार नक्षत्र शुभ, फिर आठ नक्षत्र अशुभ, फिर आठ नक्षत्र शुभ, फिर तीन नक्षत्र शुभ तथा अन्त में चार नक्षत्र अशुभ होते हैं। इनमें से केवल जो नक्षत्र गणना में एक से चार तक तथा तेरह से बीस तक एवं चौबीस से सत्ताईस तक हो, वे ही ग्रहण किये जाते हैं ; क्योंकि वे क्रमशः ऊर्ध्व, शाखा तथा मध्य के नक्षत्र होते हैं। जैसे कि यदि अश्विनी नक्षत्र में सूर्य हैं तो अश्वि०, भ०, कृ०, रो०, ह०, चि०, स्वा०, वि०, अनु०; ज्ये०, मू०, पूषा०, शत०, पू०भा०, उ०भा० तथा रेवती शुभ होंगे (चक्र देखिये)।

द्वारनिर्माण में शुभ नक्षत्र

अश्विनी चोत्तरा हस्ततिष्यश्रुतिमृगाश्शुभाः।
स्वातौ पूष्णे च रोहिण्यां द्वारशाखावरोपणे॥ ३५॥

द्वारशय्या (चौखट) लगाने में अश्विनी, तीनों उत्तरा, हस्त, पुष्य, श्रवण, मृगशिरा, रेवती तथा रोहिणी नक्षत्र शुभ होते हैं॥ ३५॥

द्वारनिर्माण में तिथियों का फल

पञ्चमी धनदा चैव मुनिनन्दावसौ शुभम्।
प्रतिपत्सु न कर्त्तव्यं कृते दुःखमवाप्नुयात्॥ ३६॥
द्वितीयायां द्रव्यहानिः पशुपुत्रविनाशनम्।
तृतीया रोगदा ज्ञेया चतुर्थी भङ्गकारिणी॥ ३७॥
कुलक्षयं तथा षष्ठी दशमी धननाशिनी।
विरोधकृत्त्वमावास्या नास्यां शाखावरोपणम्॥ ३८॥

द्वारशाखा अथवा द्वार आरम्भ में पञ्चमी धनदायक होती है। सप्तमी (मुनितिथि), नवमी (नन्दतिथि), अष्टमी (वसुतिथि)—ये तीनों अशुभ होती हैं। इसी प्रकार प्रतिपदा को भी द्वार नहीं करें, यदि किया जाये तो दुःख की प्राप्ति होती है॥ ३६॥

द्वितीया तिथि में द्रव्य की हानि होती है तथा पशुओं एवं पुत्रादि का विनाश होता है। तृतीया तिथि को रोगदायक जानना चाहिये। चतुर्थी तिथि भङ्ग (कार्यनाश) करती है। षष्ठी तिथि में यदि द्वार शाखा रखी जाये तो कुल की हानि होती है, तथा दशमी में धननाश होता है। अमावस्या विरोधकारक होती है अतः इसमें चौखट नहीं लगानी चाहिये॥ ३७-३८॥

द्वार शाखा में तिथि फल चक्र

तिथियाँ	फल
प्रतिपदा	दुःखकारक
द्वितीया	द्रव्यहानि
तृतीया	रोगप्रद
चतुर्थी	कार्यहानि
पञ्चमी	धनदायक
षष्ठी	कुलक्षय
सप्तमी	अशुभ
अष्टमी	अशुभ
नवमी	अशुभ
दशमी	धननाशक
एकादशी	शुभ
द्वादशी	शुभ
त्रयोदशी	शुभ
चतुर्दशी	अशुभ
पूर्णिमा	शुभ
अमावस्या	विरोधकारक

विमर्श—इसमें बहुत-सी तिथियों के फल का मूलपाठ अप्राप्त है।

द्वारशाखा में लग्नशुद्धि

केन्द्रत्रिकोणेषु शुभैः पापैस्त्र्यारिगैस्तथा।
द्यूनाम्बरे शुद्धियुते द्वारशाखावरोपणम्॥ ३९॥

लग्न से जब केन्द्र एवं त्रिकोणों में शुभग्रह हों तथा तृतीय, षष्ठ, एकादश में पापग्रह हों, एवं दशम भाव तथा सप्तम में कोई ग्रह न हों तब द्वारशाखा का रोपण करना चाहिये॥ ३९॥
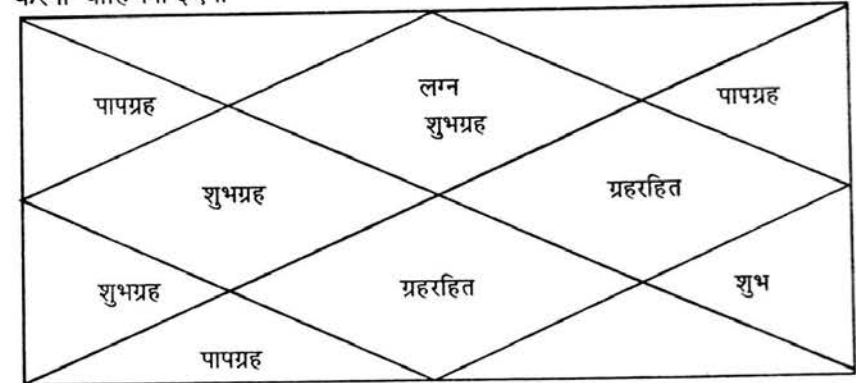
द्वारशाखा में विशेष विचार

शुभं स्याच्छुभवारे च पञ्चके न त्रिपुष्करे।
आग्नेय धिष्ण्ये सौम्ये हि न कुर्यात् काष्ठरोपणम्॥ ४०॥

द्वारशाखा रोपण में शुभवार (सोमवार-गुरुवार-शुक्रवार) शुभफल करते हैं। पञ्चक में तथा त्रिपुष्कर एवं द्विपुष्कर योगों में कृत्तिका एवं विशाखा नक्षत्रों में तथा बुधवार को काष्ठरोपण तथा द्वारशाखारोपण नहीं करना चाहिये॥ ४०॥

विमर्श—द्विपुष्कर योग में यदि कोई कार्यारम्भ किया जाये तो वह पुनः दूसरी बार करना पड़ता है। इसी प्रकार त्रिपुष्कर में तीन बार उसकी पुनरावृत्ति होती है।

त्रिपुष्कर योग—जब २।७।१२ में से कोई तिथि हो और उसके साथ रविवार-मंगलवार तथा शनिवार में से कोई वार हो एवं विशाखा उत्तराफाल्गुनी, पूर्वा-भाद्रपद, पुनर्वसु, कृत्तिका तथा उत्तराषाढ़ा में से कोई नक्षत्र हो तब इस प्रकार के तिथिवार-नक्षत्र तीनों का योग एक साथ होने पर त्रिपुष्कर योग होता है।

द्विपुष्कर योग—जब २-७-१२ (भद्रातिथियों) के साथ रवि-मंगल-शनिवार एवं चित्रा, मृगशिरा, धनिष्ठा—इन नक्षत्रों का योग बनने पर द्विपुष्कर नामक योग बनता है।

द्वारशाखा-स्थापन-विधि

प्रणम्य वास्तुपुरुषं दिक्पालं क्षेत्रनायकम्।
द्वारशाखारोपणञ्च कर्त्तव्यं तदनन्तरम्॥ ४१॥

वास्तुपुरुष को प्रणाम करके तथा दिक्पाल एवं क्षेत्रपाल का स्मरण करते हुए द्वारशाखा का रोपण करे॥ ४१॥

द्वारशाखारोपण में वर्जनीय

शुभं निरीक्ष्य शकुनमन्यथा परिवर्जयेत्।
कुड्यां भित्वा न कुर्वीत द्वारं तत्र सुखेप्सुभिः॥ ४२॥

१. शुभशकुन को देखकर ही द्वारशाखा का रोपण करे। यदि उस समय अशुभ शकुन हों तो द्वारशाखारोपण का कार्य रोक देना चाहिये।

२. कभी भी भीत (दीवाल=कुड्य) को फोड़कर द्वार नहीं बनाना चाहिये; क्योंकि दीवाल तोड़कर बनाया हुआ द्वार सुखकारक नहीं होता है॥ ४२॥

पुनः दिग्द्वार नक्षत्रों का कथन

कृत्तिका भगमैत्रं तु विशाखा च पुनर्वसुः।
तिष्यं हस्तं तथार्द्रा च क्रमात्पूर्वेषु विन्यसेत्॥ ४३॥
मैत्रं विशाखा पौष्णं च नैर्ऋत्यं यमदैवतम्।
वैश्यदेवाश्विनी चित्राः क्रमाद् दक्षिणमाश्रिताः॥ ४४॥
पित्र्ये प्रौष्ठपदार्यम्णं तथा मांसान्न दैवतम्।
वारुणाश्विनसावित्र्यं क्रमात् पश्चिमसंस्थितम्॥ ४५॥
स्वात्याश्लेषाभिजित् सौम्यं वैष्णवं वासवं तथा।
याम्यं ब्राह्मं क्रमात्सौम्यं द्वारेषु च विनिर्दिशेत्॥ ४६॥
द्वारर्क्षेस्तद् दिशाद्वारं स्थापयेद्वा विचक्षणः।
स्तम्भाद्यारोपणं शस्तं तथैव विधिना बुधैः॥ ४७॥

१. कृत्तिका, पूर्वाफाल्गुनी, अनुराधा, विशाखा, पुनर्वसु, हस्त, पुष्य तथा आर्द्रा—ये नक्षत्र प्रथम पूर्व दिशा में स्थापित करें।

२. अनुराधा, विशाखा, रेवती, भरणी, उत्तराषाढ़ा, अश्विनी तथा चित्रा—ये नक्षत्र दक्षिण दिशा के हैं। इनमें दक्षिण में द्वार बनायें।

३. मघा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, मूल, शतभिषा, अश्विनी तथा हस्त—ये पश्चिम द्वारीय नक्षत्र हैं। इनमें पश्चिम का द्वार बनायें।

४. स्वाति, आश्लेषा, अभिजित्, मृगशिरा, श्रवण, धनिष्ठा, भरणी एवं रोहिणी—ये नक्षत्र उत्तर दिशा के द्वार के लिये शुभ हैं।

जो जिस दिशा के द्वार का नक्षत्र है, उस नक्षत्र में ही उस दिशा में द्वार बनाना चाहिये तथा दिशानुसार स्तम्भ आदि का रोपण भी उन दिशाओं के नक्षत्रों में करना चाहिये॥ ४३-४७॥

नक्षत्रों के मुखानुसार गृह-निर्माण के विभिन्न कर्म

अधोमुखैश्च नक्षत्रैः देहलीखातमेव च।
तिर्यङ्मुखर्क्षैर्द्वारर्क्षे स्तम्भद्वारावरोपणम्॥ ४८॥
प्रासादेषु च हर्म्येषु गृहेष्वन्येषु सर्वदा।
ऋक्षमुखानुसारेण कर्त्तव्यं च सदा बुधैः॥ ४९॥

अधोमुख नक्षत्रों में देहलीखात को करना चाहिये। तिर्यङ्मुख नक्षत्रों में तथा द्वार के नक्षत्रों में स्तम्भारोपण, द्वारारोपण आदि कार्य प्रासादों तथा गृह में विधिपूर्वक बुद्धिमान् मनुष्यों को करना चाहिये॥ ४८-४९॥

पूर्व

	ईशान	कृत्तिका, पू०फा०, अनु०, विशाखा, पुन०, हस्त, पुष्य, आर्द्रा	आग्नेय	
उत्तर	रोहिणी, भरणी, धनि०, श्रवण, मृगशिरा, अभिजित्, आश्लेषा, स्वाति	**श्लोक ४३-४७ के अनुसार चारो दिशाओं में दिशानुसार द्वार बनाने के नक्षत्र**	अनुराधा, विशाखा, रेवती, भरणी, उत्तराषा०, अश्विनी, चित्रा	दक्षिण
	वायव्य	अश्वि०, हस्त०, शत०, मूल, उ०फा०, पूर्वाभाद्र, मघा	नैर्ऋत्य	

पश्चिम

प्रथम स्तम्भ का स्थापन तथा शुभाशुभ शकुन

आग्नेय्यां प्रथमं स्तम्भं स्थापयेत्तद् विधानतः।
स्तम्भोपरि यदा पश्येत् काकगृध्रादिपक्षिणः॥५०॥
दुर्निर्मित्तानि सम्वीक्ष्य तदा कर्त्तुर्न शोभनम्।
तस्मात्स्तम्भोपरिच्छत्रं शाखां फलवतीं तथा॥५१॥
धारयेदथवा वस्त्रं बुधो रत्नादि निक्षिपेत्।
एवंकृत्वा दुर्निमित्ताः नश्यन्ते नात्र संशयः॥५२॥

पहले स्तम्भ का रोपण सदैव विधानपूर्वक अग्निकोण में स्थापित करना चाहिये। परन्तु यदि उस स्तम्भ पर उसके खड़े करने के तुरन्त पश्चात् काक, गृध्र आदि अशुभ पक्षी बैठ जायें अथवा अन्य प्रकार के दुर्निमित्त हों तो शुभ नहीं होता है। इसके दोष को निवारण करने के लिये जैसे ही वह प्रथम स्तम्भ खड़ा हो जाये तो उसके शीर्ष पर फलवती शाखा (डाली या टहनी) अथवा वस्त्र या रत्नादि डाल देना चाहिये। ऐसा करने से दुर्निमित्त नष्ट हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है॥५०-५२॥

दिक्साधन का निर्देश

दिक्साधनञ्च कर्त्तव्यं शिराद्द्वारावरोपणम्।
स्तम्भे च वास्तुविन्यासे तथा च गृहकर्मणि॥५३॥
प्रासादे वा तथा यज्ञे मण्डपे बलिकर्मसु।

१. यदि वास्तुपुरुष के शिर का ज्ञान करना हो तो सही दिशा के ज्ञान के लिये दिक्साधन कर लेना चाहिये। २. द्वार बनाने तथा चौखट लगाने में भी दिक्साधन कर्त्तव्य है। ३. स्तम्भ गाड़ने में तथा वास्तुविन्यास में भी गृहसाधन आवश्यक है। ४. वास्तुपुरुष के स्थापन में तथा शिलान्यास में भी सही दिशा का ज्ञान कर लेना चाहिये। ५. प्रासाद-निर्माण, यज्ञमण्डप-निर्माण का आरम्भ करने से पहले दिक्साधन आवश्यक है। ६. बलिकर्म में भी दिक्साधन अति अनिवार्य है, अन्यथा दिक्साधन के नाम से दी गयी बलि किसी अन्य देवता को मिल जाने से अनिष्ट होता है॥५३-५३½॥

नक्षत्रों द्वारा दिक्साधन

कृत्तिकोदयतः प्राची प्राचीस्याच्छ्रवणोदये॥५४॥
चित्रा स्वात्यन्तरे प्राची दिन प्राचीरवेस्थिताः।
विषुवेऽर्के उदये प्राची रात्रौ नक्षत्रतः भवेत्॥५५॥
यदि वा श्रवणे पुष्ये चित्रा स्वात्योर्यदन्तरम्।
स तत्प्राचीदिशारूपं दण्डमात्रोदिते रवौ॥५६॥

१. रात्रि में कृत्तिका नक्षत्र जिस दिशा में उदित होता है, उस दिशा में सही (वास्तविक) पूर्वदिशा होती है।

२. श्रवण नक्षत्र भी ठीक पूर्वदिशा में उदित होता है।

३. चित्रा तथा स्वाति नक्षत्र जहाँ पूर्व में उदित हों, उसके ठीक पूर्व में प्राची दिशा होती है।

४. इसी प्रकार विषुव दिन के समय जिस दिन सूर्य सायन मेष या तुला राशि पर उदित होता है। उस दिन सूर्य के एक घटी उदयपर्यन्त शुद्ध पूर्वदिशा का पता लगाया जा सकता है॥५४-५६॥

विमर्श—आजकल शुद्ध दिक्सूचक यन्त्र का उपयोग भी इस कार्य के लिये कर सकते हैं।

द्वादशाङ्गुल शङ्कु से प्राची निर्धारण

द्वादशाङ्गुलमानेन शङ्कुना वा प्रकल्पयेत्।
शिलातले सुसंशुद्धे सुलिप्ते समताङ्गते॥५७॥
इष्टशङ्कुप्रमाणेन सममण्डलमालिखेत्।
तन्मध्ये स्थापयेच्छङ्कुं वृत्तं कृत्त्वा द्विरैखिकम्॥५८॥
द्युतिप्रवेशे निर्गमे स्थाने चिह्नं प्रकल्पयेत्।
अपरेऽह्नि च तन्मध्ये शङ्कुमारोपयेत्ततः॥५९॥
तत्र चिह्नं च तन्मानं मानयोर्यदनन्तरम्।
तेनानुमानेन विषुवद्दिवसान्तं च साधयेत्॥६०॥
यावन्तो व्यवह्रियन्ते तावद्वृत्ते विनिक्षिपेत्।
शोधयेद् योजयेद्वापि दक्षिणोत्तरयोर्द्वयोः॥६१॥
क्रान्त्योर्यदवशिष्येत् तत्प्राची समुदाहृता।
दिक्साधनमिदमुक्तं प्राचीनैश्च मनीषिभिः॥६२॥

एक द्वादशाङ्गुल शंकु बनाये। फिर किसी शिला के तल पर या शुद्ध लिपी हुई समतल भूमि पर एक बारह अंगुल का वृत्त बनाये। उस वृत्त के मध्य में शंकु को स्थापित करे उस मण्डल में प्रातःकाल के सूर्य की द्युतिवशा शंकु की छाया जिस स्थान पर प्रवेश करे, उस स्थान पर एक चिह्न बना दे तथा दूसरा चिह्न शंकुच्छाया के निर्गम स्थान पर बना दें। इन दोनों चिह्नों के मध्य मध्याह्न का समय पूर्ण होने पर शंकु का रोपण करें। उन दोनों चिह्नों के मध्य जो अन्तर है, उसका साधन तब तक करते रहें जब तक विषुवदिन न आ जाये। जितने चिह्नों का व्यवधान हो उतने प्रतिदिन उस वृत्त पर अंकित करते रहें। फिर विषुवदिन को उनका शोधन (ऋण या धन) करें। इस प्रकार सूर्य की दोनों क्रान्तियों (उत्तरा तथा दक्षिणा) के मध्य का जो अन्तर होता है, उसी बिन्दु पर प्राची (पूर्व) दिशा कही गयी है। इस प्रकार से दिक्साधन प्राचीन मनीषियों ने कहा है॥५७-६२॥

विमर्श—इस विधि में समय एवं श्रम लगेगा, अत: दिक्सूचक यन्त्र का उपयोग कर लेना ही सुविधाजनक होता है।

चारो दिशाओं की सीमाओं का कथन

ईशानमादित: पूर्वे आग्नेयाद् दक्षिणे स्थिता:।
नैर्ऋत्यात्पश्चिमे ज्ञेया वायव्यात्सौम्यदिक्स्थिता: ॥ ६३ ॥

१. ईशानकोण से प्रारम्भकर अग्निकोण तक पूर्वदिशा होती है।

२. अग्निकोण से नैर्ऋत्यकोण पर्यन्त दक्षिण दिशा होती है।

३. नैर्ऋत्यकोण से प्रारम्भकर वायव्य पर्यन्त पश्चिम दिशा होती है।

४. वायव्य से प्रारम्भकर ईशान पर्यन्त उत्तरदिशा स्थित है ॥ ६३ ॥

वास्तुपुरुष (चक्र) में होनेवाले द्वारों का फल

पूर्वादिक्रमयोगेन हुताशेऽग्निभयं भवेत्।
पर्जन्ये प्रचुरा नार्यो जयन्ते बहुवित्तदा: ॥ ६४ ॥
माहेन्द्रे नृपवात्सल्यं सूर्येऽति क्रोधता भवेत्।
सत्येऽनृतत्वं विज्ञेयं क्रूरत्वञ्च भृशं भवेत् ॥ ६५ ॥
अन्तरिक्षे च विज्ञेयो नित्यं चोरसमागम:।
दक्षिणे स्यात् पुत्रनाशो वायव्ये प्रेष्यमेव च ॥ ६६ ॥
नीचतां वितथे ज्ञेयं गृहे तिष्ठति सन्तति:।
शूद्रकर्मा भवेत्पौष्णे नैर्ऋत्ये कर्तृनाशनम् ॥ ६७ ॥

यदि पूर्व दिशा के प्रारम्भ स्थान में जहाँ पर वास्तुचक्र में शिखि (अग्नि) का पद होता है वहाँ पर द्वार बनाया जाये तो उस मकान में अग्नि का भय बना रहता है। यदि पर्जन्य के पद में द्वार बने तो कन्या सन्तति अधिक उत्पन्न होती है। जयन्त के पद में किया गया द्वार बहुत धनदायक होता है ॥ ६४ ॥

यदि इन्द्र के स्थान में द्वार हो तो राजकृपा प्राप्त होती है। सूर्य के पद में द्वार बनने पर क्रोध अधिक आता है। यदि सत्य के पद में द्वार बन जाये तो उस घर में झूठ का बोलबाला हो जाता है। भृश के स्थान में निर्मित द्वार क्रूरता उत्पन्न करता है ॥ ६५ ॥

यदि अन्तरिक्ष पद में द्वार बने तो नित्य चोरों का भय बना रहता है। दक्षिण दिशा का द्वार पुत्रनाशक होता है वायव्य में प्रेष्यता देता है। वितथ के स्थान में निर्मित द्वार नीचता की वृद्धि करता है, परन्तु संतति बढ़ती है। यदि पूषा के पद में द्वार बन जाये तो परिवार में शूद्रकर्म होता है तथा नैर्ऋत्यकोण में बना हुआ द्वार गृहकर्त्ता का नाश करता है ॥ ६६-६७ ॥

अधनं भृङ्गराजाख्ये मृगे पुत्रविनाशनम्।
पश्चिमे पित्र्ये स्वल्पायुरधनं च महद्भयम् ॥ ६८ ॥

सुग्रीवे पुत्रनाश: स्यात् पुष्पदन्ते तु वर्धनम्।
वरुणे क्रोध भोगित्वं नृपभङ्गस्तथाऽसुरे ॥ ६९ ॥
नित्याति शोषिता शोके पापाख्ये पापसञ्चय:।
उत्तरे रोगवधौ नित्यं नागे रिपुभयं महत् ॥ ७० ॥
मुख्ये धन सुतोत्पत्तिर्भल्लाटे विपुला: श्रिय:।
सोमे तु धर्मशीलत्वं भुजङ्गे बहुवैरता ॥ ७१ ॥

यदि भृंगराज नामक पद में द्वार बन जाये तो निर्धनता होती है। मृग के पद में निर्मित द्वार पुत्रविनाशक होता है। पश्चिम में पितर के पद में बना द्वार अल्पायु, निर्धनता तथा महान् भय देता है ॥ ६८ ॥

यदि सुग्रीव नामक भाग में द्वार बन जाये तो पुत्र का नाश होता है। पुष्पदन्त के भाग में निर्मित द्वार वृद्धिकारक होता है। पश्चिम में वरुण भाग में बना द्वार क्रोधाधिक्य तथा भोग की वृद्धि करता है। असुर के पद में बना हुआ द्वार पद एवं अधिकार को छीन लेता है ॥ ६९ ॥

शोक के पद में निर्मित द्वार नित्य ही क्षीणता देता है। पाप नामक पद में बना द्वार पाप संचय करा लेता है। उत्तरदिशा में द्वार रोगकारक तथा अहि के भाग में शत्रु भय होता है ॥ ७० ॥

मुख्य नामक वास्तुपद में यदि द्वार बन जाता है तो धन एवं पुत्रों की उत्पत्ति होती है, भल्लाट के भाग में निर्मित द्वार अतुल लक्ष्मी प्रदान करता है ॥ ७१ ॥

कन्या दोषा सदादित्ये अदितौ धनसञ्चय:।
पदे पदे कृतं श्रेष्ठं द्वारं सत्फलदायकम् ॥ ७२ ॥
पदद्वयं कृतं यच्च यद्वा मिश्रफलप्रदम्।
सूत्रे नवहृते भागे वसुभागं तथैव च ॥ ७३ ॥
प्रासादे कारयेद् विद्वानावासे च विचारणा।
बहुद्वारेष्वलिन्देषु न द्वार नियमस्मृत: ॥ ७४ ॥

यदि आदित्य के भाग में द्वार हो जाये तो धन का सञ्चय कराता है। पद-पद में किया द्वार जो फल कहा है वह पूरा फल देता है, परन्तु जो द्वार दो पदों की सन्धि में होता है वह मिश्रित फल देता है ॥ ७२-७२½ ॥

प्रसाद में उस दिशा की जो भुजा है उसके मापक सूत्र में ९ का अथवा आठ का भाग देकर बुद्धिमान् व्यक्ति को द्वार का निश्चय करना चाहिये। इस प्रकार से द्वार का विचार प्रासाद तथा आवास में करना चाहिये। जिस वास्तु में अनेक द्वार तथा अलिन्द हों, उसके लिये यह नियम नहीं है ॥ ७३-७४ ॥

द्वारों सम्बन्धी अन्य नियम

सदैव सदने जीर्णोद्धारे साधारणेष्वपि।
मूलद्वारं प्रकर्त्तव्यं घटे स्वस्तिकसन्निभम्॥ ७५॥

जिस घर का जीर्णोद्धार किया जाये उसमें तथा सामान्य व्यक्तियों के घरों में द्वार छिद्र-जैसा या घट-जैसा या स्वस्तिक के समान बनाना चाहिये॥ ७५॥

यस्यातपत्रं प्रमथगणाकीर्णं प्रशस्यते।
वीथिप्रमाणात्परतो द्वारं दक्षिणपश्चिमे॥ ७६॥
न कार्यं प्रमथाकीर्णं सुखिनं वा प्रकल्पयेत्।
प्राकारे च प्रपायाश्च द्वारं प्रागुत्तरं न्यसेत्॥ ७७॥
द्विशालासु च तद्वच्च द्वारं प्राग्वत् प्रकल्पयेत्।
चतुर्द्वारमये दुर्गे द्वारदोषो न विद्यते॥ ७८॥

जिस द्वार के ऊपर की छत (आतपत्र) पर प्रमथगणों (सिपाहियों) के चित्र (मूर्तियाँ) बनी हों वह द्वार प्रशस्त होता है, परन्तु वीथिरहित दक्षिण या पश्चिम में द्वार बनाया जाये तो उसे प्रमथगणों से रहित तथा इस प्रकार का बनाये जो सुखदायक हो।

प्राकार (अहाते) तथा प्रपा (प्याऊ=पौ) का द्वार पूर्व या उत्तर में बनाये। द्विशाल गृहों में द्वार पूर्व की भाँति बनाये। जिस दुर्ग (किले) में चारो ओर द्वार हों तो उसमें द्वारदोष नहीं होता है॥ ७६-७८॥

द्वारसम्बन्धी वेधों का कथन

प्रधाने यन्महाद्वारं बाह्यभित्तिषु संस्थितम्।
रथ्याविद्धं न कर्त्तव्यं नृपेण भूमिमिच्छता॥ ७९॥
सरलेन च मार्गेण प्रवेशो यत्र वेश्मनि।
मार्गवेधं विजानीयान्नानाशोकफलप्रदम्॥ ८०॥

किसी घर की बाहरी भीत में जो महान् द्वार होता है, उसे प्रधान द्वार कहते हैं। उस प्रधान द्वार का वेध किसी रथ्या द्वारा (सड़क या गर्त्तों द्वारा) नहीं होना चाहिये। ऐश्वर्य के चाहनेवाले व्यक्ति को अपने गृह के प्रधान द्वार को रथ्यावेध से बचाना चाहिये॥ ७९॥

जब सीधे मार्ग से किसी घर के प्रधान द्वार में बिना दाएँ-बाएँ मुड़े हुए प्रवेश किया जा सकता हो तो उसे मार्गवेध या रथ्यावेध कहते हैं। यह अनेक प्रकार के शोकों को देता है। यह अशुभ होता है॥ ८०॥

विमर्श—जब किसी गृह का प्रधान द्वार किसी गली के छोर पर बना हो अर्थात् उस द्वार में घर की ओर पीठ करके खड़ा होने पर सामने गली बहुत दूर से आती हुई दिखाई देती हो, तब उसे मार्गवेध अथवा रथ्यावेध कहते हैं। यह वेध जिन मकानों में

होता है उनमें असामयिक मौतें होती रहती हैं। आकस्मिक घटनाएँ घटती हैं तथा परिवार के सदस्यों की बदनामियाँ होती रहती हैं तथा धीरे-धीरे धन-जन-पशु-पुत्र आदि की हानि होती ही चली जाती है।

तरुवेध

तरुवेधं विजानीयाद् यदि द्वारमुख्ये स्थितम्।
कुमारमरणं ज्ञेयं नानारोगश्च जायते॥ ८१॥
अपस्मारभयं विद्यात् गृहाभ्यन्तरवासिनाम्।

यदि किसी गृह के प्रधान द्वार के सामने कोई वृक्ष निकट ही हो तो वह मकान तरुवेध (वृक्षवेध) से पीड़ित होता है। उसमें रहनेवाले के बालकों की मृत्यु होती है तथा अनेक प्रकार के रोग भी उसमें रहनेवालों को उत्पन्न होते रहते हैं। विशेषरूप से उन्हें अपस्मार (Epilepsy) अर्थात् मिरगी की बीमारी ग्रस लेती है॥ ८१-८१½॥

विमर्श—यदि वह वृक्ष गृह के सामनेवाली सड़क के दूसरे किनारे पर स्थित हो तो ठीक सामने होने पर भी तरुवेध नहीं माना जायेगा। संस्कृत 'तरु' का अपभ्रंश अंग्रेजी में Tree हो गया है।

गृहद्वार में पंचवेधों का निषेध

द्वाराग्रे पञ्चवेधं तु दुःखशोकामयप्रदम्॥ ८२॥
जलस्त्रावस्तथा द्वारे मूलोऽनर्थश्च यो भवेत्।
द्वाराग्रे देवसदनं बालानामार्त्तिदायकम्॥ ८३॥
देवद्वारं विनाशाय शाङ्करंद्वारमेव च।
ब्रह्मणो यच्च सम्विद्धं तद्भवेत् कुलनाशनम्॥ ८४॥

१. यदि गृह के प्रधान द्वार के आगे पाँच प्रकार के वेध हों तो वे दुःख, शोक तथा रोगप्रद होते हैं।

२. यदि गृहद्वार के आगे पानी बहता हो तो वह अनेक अनर्थों की जड़ होता है।

३. यदि गृहद्वार के सामने ही विष्णु भगवान् मन्दिर हो तो गृह के बालकों को पीड़ा होती है।

४. यदि अन्य देवता का मन्दिर गृह के ठीक सामने हो तो विनाशकारक होता है।

५ शंकर का द्वार भी हानिकर होता है।

६. ब्रह्मा का स्थान यदि गृह के सामने हो तो कुल का नाश करनेवाला होता है॥ ८२-८४॥

गृह के मध्य में द्वार का निषेध

गृहमध्ये कृतं द्वारं द्रव्यधान्यविनाशनम्।
अवस्तु कलहं शोकं नार्यावासं प्रदूषयेत्॥ ८५॥

जो द्वार घर के बीचोबीच अर्थात् गृह के द्वारवाली भुजा के ठीक मध्यवर्ती स्थान में हो वह धन-धान्य का नाश करता है। उसमें अकारण कलह तथा शोक रहता है तथा घर की स्त्रियों के चरित्र प्रदूषित होते हैं ॥ ८५ ॥

ब्रह्मविद्ध द्वार तथा कोण के द्वार का निषेध

उत्तरे पञ्चमं द्वारं ब्रह्मणो विद्धमुच्यते।
तस्मात्सर्व शिरा ह्येव मध्ये चैव विशेषतः ॥ ८६ ॥
द्वारं न कारयेद् धीमान् प्रासादे तु विपर्ययः।

जिस दिशा में द्वार किया जाता है, उस दिशा के ९ भाग करने की विधि प्रारम्भ के अध्यायों में वर्णित है। उस विधि से उत्तर दिशा में जो पाँचवाँ नवभाग है, उसमें द्वार नहीं बनाना चाहिये; क्योंकि वह द्वार ब्रह्मा से विद्ध माना जाता है।

इसी प्रकार सभी शिराओं अर्थात् कोणों (ईशान, नैर्ऋत्य, अग्निकोण, वायव्य में भी बुद्धिमान् व्यक्ति को विशेषरूप से द्वार नहीं बनाना चाहिये। देवप्रासाद में द्वारों का फल विपरीत होता है ॥ ८६-८६½ ॥

पुनः गृह के अन्य वेधों का कथन

देवता सन्निधाने तु श्मशानाभिमुखे तथा ॥ ८७ ॥
स्त्रीनाशं स्तम्भवेधे स्यात्पाषाणे च तथैव च।
देवतासन्निधानस्थे गृहे गृहपतेः क्षयः ॥ ८८ ॥
श्मशानाभिमुखे गेहे राक्षसाद् भयमादिशेत्।

देवता के समीप तथा श्मशान की ओर मुख करके भी गृह नहीं बनाना चाहिये ॥ ८७ ॥

यदि देवालय के स्तम्भ से गृह का वेध या गृह की समीपता हो तो गृहस्वामी की स्त्री का नाश होता है, किसी पाषण से वेध होने पर भी गृह स्वामी की स्त्री का नाश होता है। यदि देवता के सन्निकट ही घर हो तो गृहस्वामी की स्वयं की भी क्षति होती है तथा यदि गृह का प्रधान द्वार श्मशान (मरघट) की ओर मुख करके बना हो तो उस घर में राक्षसों एवं भूत-प्रेतों का भय बना रहता है ॥ ८८-८८½ ॥

द्वारनिर्माण में चतुःषष्टि पदों के विचार का निर्देश

चतुःषष्टिपदं कृत्वा मध्ये द्वारं निवेशयेत् ॥ ८९ ॥

द्वार की अशुभता से बचने के लिये चौंसठ पद के वास्तु के अनुसार ठीक पद में द्वार बनाना चाहिये ॥ ८९ ॥

विमर्श—शुद्ध की वास्तुपूजा में इक्यासी पदों के वास्तुचक्र से ही देवताओं की पूजा (वास्तुपूजा) करनी चाहिये, परन्तु केवल द्वार के विचार में चौंसठ पद के वास्तु के अनुसार ही द्वार के लिये स्थान का चयन करना चाहिये। यह केवल सुविधा की दृष्टि से ही व्यवस्था दी गयी है।

गृहद्वार की मापों का कथन

विस्ताराद् द्विगुणोच्छ्रायः तत्त्रिभागः कटिर्भवेत्।
विस्तारार्धं भवेद् गर्भो वित्तयोन्यः समन्ततः ॥ ९० ॥
गर्भपादेन विस्तीर्णं द्वारं द्विगुणमुच्छ्रितम्।
उच्छ्रायात्पादविस्तीर्णा शाखा तद्वदुदुम्बरा ॥ ९१ ॥
विस्तारपादप्रमितं बाहुल्यं शाखयोः स्मृतम्।
त्रि पञ्च सप्त नवभिः शाखाभिर्द्वारमिष्यते ॥ ९२ ॥
कनिष्ठं मध्यमं ज्येष्ठं यथायोग्यं प्रकल्पयेत्।
विस्ताराद् द्विगुणोच्छ्रायश्चत्वारिंशद्भिरुत्तमम् ॥ ९३ ॥

किसी द्वार की जितनी चौड़ाई हो उससे दुगुनी उस द्वार की ऊँचाई होनी चाहिये। ऊँचाई का तृतीयांश उस द्वार की कटि (द्वार मध्य में द्वार की भित्ति की चौड़ाई) होती है। विस्तार से आधा उसका गर्भ होता है। गर्भ की चौथाई से दुगुनी द्वार की ऊँचाई होती है। ऊँचाई से चतुर्थांश शाखा के उदुम्बर की (देहली की), द्वारशाखा (लिलारी) होती है। विस्तार की चौथाई द्वारशाखाओं की मोटाई होना चाहिये। द्वार में तीन-पाँच-सात अथवा नौ शाखाओं को लगाना उत्तम होता है ॥ ९०-९२ ॥

द्वार कनिष्ठ, मध्यम तथा ज्येष्ठ होता है, ऊँचाई चालीस हाथ की उत्तम होती है ॥ ९३ ॥

उत्तमादि गृहों में द्वारों की संख्या का कथन

धन्यमुत्तममायुष्यं धनधान्यकमेव च।
शतं चाशीति सहितं वातनिर्गमनं भवेत् ॥ ९४ ॥
अधिकं दशभिस्तद्वत्तथाषोडशभिः शतम्।
शतमानं तु तृतीयं तु भवन्त्यशीभिस्तथा ॥ ९५ ॥
दशद्वाराणि चैतानि क्रमेणोक्तानि सर्वदा।
अन्यानि वर्जनीयानि मनसोद्वेगदानि च ॥ ९६ ॥

उत्तम गृह धन्य होता है तथा आयुष्य एवं धनधान्य को देता है, जिसमें एक सौ अस्सी वातनिर्गमन होते हैं ॥ ९४ ॥

इसी प्रकार एक सौ सोलह अथवा एक सौ दश वातनिर्गम (खिड़कियोंवाला, घर मध्यम होता है तथा एक सौ खिड़कियों और अस्सी खिड़कियोंवाला घर कनिष्ठ कहा जाता है ॥ ९५ ॥

मेरे द्वारा ये दश प्रकार के द्वार क्रमशः कहे गये हैं, वही उत्तम होते हैं। शेष प्रकार के द्वार वर्जित हैं; क्योंकि वे मन को उद्वेग (बेचैनी) देनेवाले होते हैं ॥ ९६ ॥

विमर्श—श्लोक ९५ के उपरान्त के मूलपाठ के बहुत से श्लोक नष्ट प्रतीत होते हैं; क्योंकि दश प्रकार के द्वार कौन-कौन हैं उनका वर्णन मूल में कहीं है ही नहीं।

द्वारवेध के अपवाद

द्वारवेधं तु यत्नेन सर्वथा परिवर्जयेत्।
गृहोच्छ्रायाद् द्विगुणितं त्यक्त्वा भूमिं बहिस्थितः॥ ९७॥
न दोषाय भवेद् वेधो गृहस्य गृहिणीस्तथा।
गृहार्धं गृहिणी ज्ञेया गृहात्पूर्वोत्तरा शुभा॥ ९८॥

द्वार का वेध प्रयत्नपूर्वक त्यागना चाहिये। यदि गृह की जितनी ऊँचाई हो उससे दुगुनी दूरी पर घर के मुख्य द्वार से दूर पर वेधस्थित हो तो दोष नहीं होता। वह वेध गृहस्वामी तथा गृहणी के लिये दोषकारक नहीं होता है।

यदि गृह की ऊँचाई के बराबर दूरी पर मुख्य द्वार के सामने वेध हो तो गृहस्वामी को वेध होता है परन्तु गृहिणी को नहीं होता है; क्योंकि गृहिणी आधी होती है॥ ९७-९८॥

घर में पक्षिणी (पखिया) आदि का निषेध

पक्षिणी वा तथैव स्यादन्यगेहा न सिद्धिदाः।
पृष्ठद्वारं न कर्त्तव्यं मुख्यद्वारावरोधनम्॥ ९९॥
पिहिते मुखद्वारे तु कुलनाशो भवेद् ध्रुवम्।
पृष्ठद्वारे सर्वनाशः स्वयमुद्घाटिते तथा॥ १००॥
मानोने व्यसनं कुर्यादधिके नृपतेर्भयम्।
अर्धखण्डं यदि द्वारं दलवेधं विनिर्दिशेत्॥ १०१॥
कपाटछिद्रवेधश्च कपाटै वै क्षयो भवेत्।
यन्त्रविद्धं यदा द्वारंप्रासादे च धनक्षयः॥ १०२॥

किसी गृह के भीतर उसे विभाजित करनेवाली दीवाल को संस्कृत में पक्षिणी, पालि में पक्खिनी, प्राकृत में पक्खीआ तथा हिन्दी में पखिया कहते हैं। उसे घर के बीच में लगाकर आजकल घर का बँटवारा कर देते हैं, वह शुभ नहीं होता। उसी प्रकार एक घर के दाएँ-बाएँ सटे हुए घरों का निर्माण भी शुभ नहीं होता है॥ ९८½॥

घर के मुख्यद्वार को बन्द करके उसके पिछवाड़े में अन्य द्वार नहीं बनाना चाहिये; क्योंकि मुखद्वार (मुख्यद्वार) को पिहित (बन्द) कर देना निश्चित ही कुल-नाशकारक होता है॥ ९९½॥

जिस द्वार के किवाड़ अपने आप बिना जोर लगाए खुल जाते हैं, वह शुभ नहीं होता है। यदि निर्धारित शास्त्रोक्त मान से न्यूनाधिक द्वार बनाया जाता है तो वह शुभ नहीं होता है। यदि मान से न्यून द्वार हो तो घर में संकट करता है तथा मान से अधिक होने पर राजभय होता है॥ १००-१००½॥

यदि द्वार आधा खण्डित हो तो उसे दलवेध कहते हैं॥ १०१॥

यदि द्वार के कपाट में छिद्र हो जाय तो कपाटों का क्षय होता है। जिस द्वार का वेध किसी यन्त्र से हो और वह द्वार किसी प्रासाद का हो तो उस प्रासाद में धन की हानि होती है॥ १०२॥

द्वारों के अन्य विविध दोषों का कथन

स्तम्भं वा रवते यस्य तस्य वंशक्षयो भवेत्।
त्रिकोणं शकटाकारं शूर्पव्यजनसन्निभम्॥ १०३॥
मुरजं वर्त्तुलं द्वारं मानहीनञ्च वर्जयेत्।
त्रिकोणे पीड्यते नारी शकटे स्वामिनो भयम्॥ १०४॥
शूर्पे धनविनाशः स्याद् धनुषि कलहः स्मृतः।
धननाशस्तु मुरजे वर्त्तुले कन्यकोद्भवः॥ १०५॥

जिस गृह का स्तम्भ अथवा कपाटों की शाखा या पल्ला आवाज करता हो, वह वंशक्षयकारक होता है। त्रिकोणाकार, शकटाकार, शूर्पाकार, व्यजनाकार, मुरजाकार तथा वर्त्तुलाकार द्वार को त्यागना चाहिये॥ १०३-१०३½॥

त्रिकोणाकार के द्वार में स्त्री को पीड़ा होती है। शकटाकार द्वार में स्वामी को भय होता है। शूर्पाकार द्वार में धन की हानि तथा धनुषाकार द्वार में गृह में कलह होता है। मुरजाकार द्वार में धननाश तथा वर्त्तुलाकार में कन्याओं की अधिकता होती है॥ १०४-१०५॥
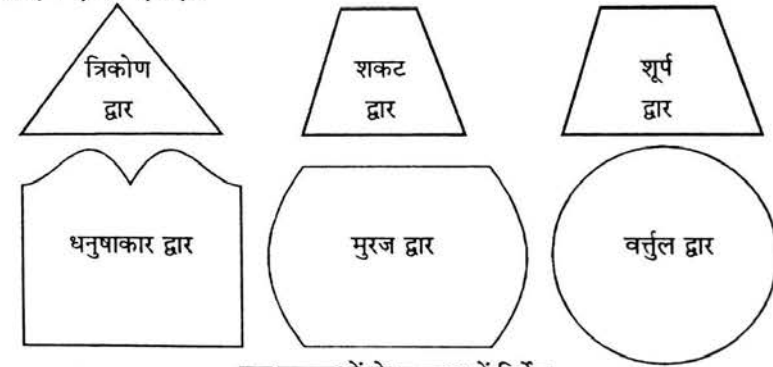
द्वार शाखाओं के सम्बन्ध में निर्देश

मध्यहीनं तु यद्द्वारं नानाशोकफलप्रदम्।
स्तम्भाग्रे विन्यसेत्काष्ठं पाषाणे नैव धारयेत्॥ १०६॥
नृपालये देवगेहे पाषाणानाञ्च कारयेत्।
द्वारशाखा नृपाणान्तु गृहे पाषाणनिर्मिता॥ १०७॥
कर्त्तव्या नेतरेषाञ्च कारयेन्मतिमान्नरः।

जो द्वार मध्यभाग में सँकरा हो वह अनेक प्रकार के क्लेश देता है। स्तम्भ के ऊपरी भाग में गृह में काष्ठ लगवाये पाषाण नहीं लगाना चाहिये, परन्तु राजाओं के घरों एवं देवालयों में पाषाण का ही उपयोग करें। राजाओं के घरों में चौखट भी पाषाण-निर्मित होनी चाहिये, अन्यों के घर में पाषाण की न लगायें॥ १०६-१०७½॥

ब्रह्मस्थान की रक्षा

गृहमध्ये कृतं स्तम्भं ब्रह्मणो वेधमुच्यते॥ १०८॥
भित्तिश्चैव न कर्त्तव्या स ब्रह्मस्थानमुच्यते।
तत्स्थानं यत्नतो रक्षेद् गृही कीलादिकैस्तथा॥ १०९॥
भाण्डेनाशुचिना तद्वच्छल्येन भस्मना तथा।
रोगा नानाविधा शोका जायन्ते तत्र नित्यशः॥ ११०॥

घर के बीचोबीच ब्रह्मस्थल होता है, यदि उस पर कोई स्तम्भ खड़ा कर दिया जाये तो ब्रह्मस्थान का वेध होता है॥ १०८॥

उस ब्रह्मस्थान पर भित्ति (दीवाल) नहीं बनानी चाहिये। उस स्थान की रक्षा यत्नपूर्वक करें। गृहस्थ को उस ब्रह्मस्थान पर कीलकादि कबाड़ का सामान, अपवित्र तथा जूठे बर्तन, शल्य, भस्म, कोयला, अस्थि, जूते-चप्पल आदि नहीं रखना चाहिये। ऐसा करने से उस घर में प्रतिदिन क्लेश, दुःख तथा शोकादि बने रहते हैं॥ १०९-११०॥

शकट द्वार की परिभाषा

द्वारस्योपरि यद्द्वारं तद्द्वारं शकटं स्मृतम्।
चतुःषष्ट्यङ्गुलोत्सेधे चतुस्त्रिंशच्च विस्तरम्॥ १११॥
द्वारस्योपरिवर्ज्येन्न शिवाय शकटं च यत्।

द्वार के ऊपर जो चौंसठ अंगुल ऊँचा तथा ३४ अंगुल चौड़ा द्वार बनता है, वह शकट कहलाता है। उसे यत्नपूर्वक वर्जित करें; क्योंकि वह कल्याणकारक नहीं होता है॥ १११-१११½॥

द्वार के अन्यान्य दोष

अध्माते क्षुद्रजं प्रोक्तं कुले कुलविनाशनम्॥ ११२॥
पीडाकरं पीडितं तु अभावं मध्यपीडितम्।
बाह्योन्नते प्रवासः स्यात् दिग्भ्रान्ते दस्युतो भयम्॥ ११३॥
दौर्भाग्यं निधनं रोगाः दारिद्र्यं कलहं तथा।
विरोधश्चार्थनाशश्च सर्ववेधे क्रमाद् भवेत्॥ ११४॥

यदि द्वार सँकरा तथा छोटा हो तो वह क्षुद्रज कहलाता है, उसमें क्षुद्रसन्तति उत्पन्न होती है। बहुत सँकरा कुल द्वार कुल का नाश करता है। जिस द्वार में प्रवेश करने पर शिर फूटता हो वह पीड़ित करता है, जिसमें कभी-कभार सिर में चोट लगती है वह मध्य पीड़ाकर द्वार होता है। जो द्वार बाहर की ओर का झुका हुआ तथा ऊपर को उठा होता है वह प्रवास कराता है तथा जो सही दिशा में न बना हो उसे दिग्भ्रान्त कहते हैं (अर्थात् जिसकी दिशा का निर्णय न हो वह द्वार दिग्भ्रान्त होता है)। दिग्भ्रान्त द्वार से डाकुओं का भय रहता है॥ ११२-११३॥

सभी प्रकार के द्वारवेधों से दुर्भाग्य, निधन, रोग, दरिद्रता, कलह, विरोध तथा अर्थनाश होता है॥ ११४॥

गृह के चारो ओर शुभ वृक्ष तथा विभिन्न निर्माण

पूर्वेण फलितावृक्षः क्षीरवृक्षाश्च दक्षिणे।
पश्चिमेन जलं श्रेष्ठं पद्मोत्पलभूषितम्॥ ११५॥
सर्वतश्चापि कर्त्तव्यं परिखा वलयादिकम्।
याम्यं तपोवनस्थानमुत्तरे मातृकागृहम्॥ ११६॥
वारुणे श्रीनिवासस्तु वायव्ये ग्रहमालिका।
उत्तरे यज्ञशाला तु निर्माल्यस्थानमुच्यते॥ ११७॥
वारुणे सोमदैवत्ये बलिनिर्वपणं स्मृतम्।
पुरतो वृषभस्थानं शेषं स्यात्कुसुमायुधम्॥ ११८॥
जलवापी तथैशान्ये विष्णुञ्च जलशायिनम्।
एवमायतनं कुर्याच्छुभमण्डपसंयुतम्॥ ११९॥
घण्टावितानकसतोरणचित्र्युक्तं
नित्योत्सवप्रमुदितेन जनेन सार्धम्।
यः कारयेत् सुरगृहं भवनं ध्वजाकं
श्रीस्तं न मुञ्चति सदा दिवि पूज्यते च॥ १२०॥

घर के पूर्व में फलदार वृक्ष लगाये। दक्षिण में क्षीरीवृक्ष (जिनमें दूध निकलता है) शुभ होता है। पश्चिम में जलाशय श्रेष्ठ होता है, जिसमें कमल खिले हों। घर के चारो ओर परिखा (खाई) तथा वलय घेरे आदि बनवाना चाहिये। दक्षिण दिशा में तपोवन का स्थान तथा उत्तर में मातृकागृह बनवायें॥ ११५-११६॥

पश्चिम दिशा में श्रीलक्ष्मीनारायण का मन्दिर, वायव्य में नवग्रहों की पंक्ति स्थापित करे। (अथवा गृहों की पंक्ति बनवाये यदि गृह पाठ है तब) उत्तर में यज्ञशाला, तथा निर्माल्य का स्थान रखें॥ ११७॥

पश्चिम दिशा में सोम देवता के स्थान को बलिनिर्वपण के लिये बनायें। पूर्व में वृषों (बैलों) का स्थान तथा शेषनाग एवं कामदेव का स्थान बनायें॥ ११८॥

ईशानकोण में पानी की बावड़ी बनवायें तथा जलशायी विष्णु का स्थान बनवायें। इस प्रकार देवताओं के स्थान उनके शुभ मण्डपों सहित बनवायें॥ ११९॥

इसी प्रकार से प्रसन्न मन से जो किसी देवालय का निर्माण कराता है तथा उसके आसपास अवश्य निर्माण करवाकर घण्टा, वितानक, तोरण, चित्र आदि से सजाकर नित्य पूजा करता है, उस गृहस्थ को लक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती हैं॥ १२०॥

द्वारार्चन विधि का फल

एवं द्वारार्चनविधिं कृत्वा द्वारबलिं ततः।
महाध्वजं द्वारमुखे प्रवेशसमये कृतम्॥ १२१॥
पुत्रद्वारधनादीनां वृद्धिदं सर्वकर्मणि।
इति द्वारविधिः प्रोक्तो मया ब्रह्ममुखोदितः॥ १२२॥
यः करोति विधानेन स सुखी पुत्रवान्भवेत्।
मोदन्ते च पितृगणाः प्रेत्य स्वर्गे समोदते॥ १२३॥

इति श्रीविश्वकर्मप्रकाशे वास्तुशास्त्रे द्वारनिर्माणं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

इस प्रकार से द्वारार्चन विधि करके तथा बलिदान करके द्वार के मुख पर एक महाध्वज स्थापित करे॥ १२१॥

ऐसा करने से उसके पुत्र, स्त्री, धन आदि की वृद्धि होती है, उसके सभी कार्य सफल होते हैं। इस प्रकार मैंने ब्रह्माजी के मुख से सुनी हुई द्वार विधि का वर्णन किया॥ १२२॥

ऐसा जो कोई विधिपूर्वक करता है, वह सुखी तथा पुत्रवान् होकर मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग को जाता है तथा उसके पितृगण भी आनन्द करते हैं॥ १२३॥

विमर्श—श्लोक १२१ से पूर्व के द्वारार्चनविधि के श्लोक लुप्त हो गये हैं, ऐसा श्लोक १२१ से ही पता चल रहा है।

इस प्रकार श्रीविश्वकर्मप्रकाश वास्तुशास्त्र ग्रन्थ की महर्षि अभयकात्यायन-विरचित 'अभया' हिन्दी टीका का सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

●

अष्टमोऽध्यायः

जलाशयकरणम्

विषय-प्रवेश

अधुना कथयिष्यामि वापीकूपक्रियाविधिम्।
तडागपुष्करोद्यानमण्डपानां यथाक्रमम्॥ १॥

अब मैं वापी, कूप की क्रियाविधि का वर्णन करता हूँ। यथाक्रम से तडाग, पुष्कर, उद्यान तथा मण्डपों की भी क्रियाविधि कहता हूँ॥ १॥

विचारणीय विषय तथा आकार-कथन

आयव्ययादिसंशुद्धिं मासशुद्धिं तथैव च।
यथा गेहे देवगेहे तथैवात्र विचारयेत्॥ २॥
त्रिकोणं चतुरस्त्रञ्च वर्त्तुलं चोत्तसंस्मृतम्।
धनुषं कलशं पद्ममं मध्यमं तज्जलाश्रयम्॥ ३॥
सर्पोरगं ध्वजाकारं न्यूनं प्रोक्तं च निन्दितम्।
कोशो धान्यं भये शोकनाशनं सौख्यमेव च॥ ४॥
भयं रोगं तथा दुःखं कीर्तिं द्रव्याग्निजं भयम्।
यशश्चक्रम तश्चैत्रमासादेस्तत्फलं स्मृतम्॥ ५॥

आय-व्यय की संशुद्धि का जैसा विचार तथा मासशुद्धि का विचार गृह, देवालय में करते हैं; वैसा ही जलाशय के लिये करें॥ १॥

आकार—जलाशय त्रिकोण, चतुरस्त्र तथा वर्त्तुल आकार में उत्तम होता है। धनुष, कलश तथा कमल के आकार का मध्यम होता है तथा सर्प, ध्वज आदि के आकार का जलाशय निन्दित होता है॥ २-३½॥

चैत्रादि बारहमासों में जलाशय-निर्माण का फल क्रमशः १. कोशकारक, २. धान्यकारक, ३. भयकारक, ४. शोकनाशक, ५. सौख्यकारक, ६. भयप्रद, ७. रोगप्रद, ८. दुःखप्रद, ९. कीर्तिप्रद, १०. द्रव्यप्रद, ११. अग्निभय तथा १२. यशप्रद होता है॥ ४-५॥

जलाशयारम्भ मुहूर्त

रोहिणी चोत्तरात्रीणि पुष्यं मैत्रञ्च वारुणम्।
पित्र्यञ्च वसुदैवत्यं भगणो वारिबन्धने॥ ६॥
जलशोषौ भवेत्सूर्ये भौमे रिक्तं विनिर्दिशेत्।
मन्दे च मलिनं कुर्यात् शेषा वाराः शुभावहा॥ ७॥

नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा चैव यथाक्रमम्।
यथा नाम फलं तद्वत् कुर्यादित्याह कर्मकृत्॥ ८ ॥
लग्ने शशाङ्कोऽथ जलोदये वा
पूर्णः शशी केन्द्रगतो व्यये वा।
लग्नेऽथ जीवो भृगुजेऽथे सौम्ये
जलं चिरस्थं सुरसं सुगन्धम्॥ ९ ॥
कुजे तृतीये भृगुजेऽस्तगे च
षष्ठेरवौ लाभगतेऽर्क पुत्रे।
चन्द्रेऽष्ट षष्ठो व्ययवर्जिते च
प्रियं जलं तद् भवतीह चित्रम्॥ १०॥
सौरे तृतीये मदने च चन्द्रे
षष्ठे रवौ लाभगते च भौमे।
केन्द्रे शुभैश्चाष्टमवर्जितैश्च
जलं स्थिरं स्याद् धनपुत्रादश्च॥ ११॥
केन्द्रकोणेषु शुभस्थितेषु
पायेषु केन्द्राष्टम वर्जितेषु।
सर्वेषु कार्येषु शुभं वदन्ति
प्रासाद कूपादि तडाग वाप्याम्॥ १२॥
चन्द्रोदये तद्दिवसे सुरेज्ये
केन्द्रस्थिते चोपचयैः खलैश्च।
उद्यान कूपादि तडागवापी
जलाशयानां करणं प्रशस्तम्॥ १३॥
सर्वेषु लग्नेषु शुभं वदन्ति
विहाय सिंहालि धनुर्धरांश्च।
ग्रहः सदालोकेन योगं सौम्य-
योगात्प्रकुर्यात् जलभांशवर्गे॥ १४॥

नक्षत्र—रोहिणी, उ०फा०, उ०षा०, पू०भा०, पुष्य, अनुराधा, शतभिषा, मघा तथा धनिष्ठा—ये नक्षत्र जलाशयादि में शुभ है॥ ६॥

वारफल—रविवार जल सुखानेवाला, मंगल निर्जल, शनिवार मलिन जलकारक होता है तथा शेष वार शुभ होते हैं॥ ७॥

तिथियाँ—नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता तथा पूर्णा अपने नामों के अनुसार फल करती हैं॥ ८॥

लग्नशुद्धि—जलराशिलग्न हो अथवा अन्य लग्न में भी चन्द्रमा बैठा हो या पूर्ण चन्द्रमा केन्द्र अथवा बारहवें भाव में हो। गुरु लग्न में तथा बुध एवं शुक्र भी लग्नस्थ होने पर चिरस्थायी जल देते हैं तथा वह स्वादिष्ट एवं सुगन्धित होता है॥ ९॥

लग्न से मंगल तृतीय में, शुक्र सप्तम में, सूर्य छठे भाव में तथा शनि ग्यारहवें भाव में हो, चन्द्रमा छठे या आठवें हों किन्तु व्यय भाव में कोई भी ग्रह न हो तो इस योग में अत्यन्त प्रिय तथा स्वादिष्ट जल होता है॥ १०॥

शनि तृतीय भाव में, चन्द्र सप्तम में, सूर्य छठे तथा मंगल ग्यारहवें हों, केन्द्र में शुभग्रह हो तथा अष्टम में कोई ग्रह न हो तब इस योग में निर्मित जलाशय में स्थिर जल होता है तथा ऐसा जलाशय धन एवं पुत्रदायक होता है॥ ११॥

यदि केन्द्र एवं त्रिकोण में शुभग्रह हो, पापग्रह केन्द्र तथा अष्टम भाव में न हों तो यह योग वापी-कूप, तडाग, देवालय—इन सभी कार्यों के लिए शुभ होता है॥ १२॥

जलाशयारम्भ में सिंह, वृश्चिक, धनु इन तीन लग्नों को छोड़कर शेष सभी लग्नें शुभ होती हैं। इनमें श्रेष्ठ ग्रहों की दृष्टि स्थिति तथा जलराशि के नवांश एवं वर्ग होने पर शुभफल होता है॥ १३-१४॥

जलाशय की दिशाएँ एवं उनका फल

सर्वासु दिक्षु सलिलं प्रकुर्यात्
विहाय नैर्ऋत्यमाग्निवायून्।
पूर्वोत्तरेशानजलेशदिक्षु
कृतञ्जलं सौख्यसुतप्रदञ्च॥ १५॥
न पूर्वकं वारुणदिक् स्थितञ्च,
विवर्जयेन्मध्यगृहस्थितञ्च ।
क्रमेण गर्गादिवसिष्ठमुख्या
दिशास्थितानां च जलाशयानाम्॥ १६॥
पुत्रार्तिरग्नेश्च भयं विनाशः
स्त्रीणां कलिर्बाह्यथ दौष्ट्यमेव।
नैःस्वं धनं पुत्रविवृद्धिरुक्ता
पूर्वादिदिक्षु फलमेतदेव॥ १७॥

घर या ग्राम के नैर्ऋत्यकोण, दक्षिण, आग्नेय तथा वायव्य दिशाओं को छोड़कर अन्य शेष चार दिशाओं में अर्थात् पूर्व, उत्तर, ईशान तथा पश्चिम में स्थित जल या जलाशय सौख्यप्रद तथा सुतप्रद होता है॥ १५॥

परन्तु गर्ग ने पूर्व दिशा के जल को तथा वसिष्ठ ने पश्चिम दिशा के जल को और सभी ने गृह मध्य के जल का निषेध किया है। इसी प्रकार ग्राम के मध्य का जलाशय वर्जित है॥ १६॥

उनके अनुसार पूर्व दिशा का जल पुत्रपीड़ा, आग्नेय का अग्निभय, दक्षिण का भय, नैर्ऋत्य का विनाश, पश्चिम का स्त्रीदुष्टता, वायव्य का निर्धनता तथा ईशान का जल पुत्रवृद्धिकारक होता है॥ १७॥

जलीय भूमि के व्यास के गणित से फल-कथन

व्यासप्रमाणं द्विगुणञ्च गुण्यं
हारस्य हारोत्तरतोत्तरस्य।
मध्येऽष्टहारेष्वपि पिण्डसंज्ञ-
मेकादिहारा विषमाः प्रशस्ताः॥ १८॥
एकान्तरं सन्धि समेक्षितानां
व्याधिर्विनाशो भयशोकमुग्रम्।
आद्यन्तयोर्मध्यवियुक्तमेतद्
तदा विनाशङ्कुरुते सपत्न्याः॥ १९॥
पूर्वापरौ चोत्तरयाम्यगेषु
च्छिद्रेषु हारेष्वपि मध्यभागे।
कुर्वन्ति शोकं वधबन्धुनाशं
हारेषु मध्येष्वपि चिन्त्यमेतत्॥ २०॥
आद्यन्तयोर्हारगतेषु सूत्र
सर्वेषु हाराग्रगते शुभा स्यात्।
भ्रातॄन्कलत्रादियथोत्तराणि
हारस्य हारोत्तरतोत्तरस्य॥ २१॥

जलस्थान (कूप-वापी-जलाशय आदि) का जितना व्यास हो, उसको दो से गुणा करे। हार के उत्तरोत्तर के हारों के मध्यवर्ती आठ हार पिण्डसंज्ञक होते हैं। उनमें से एक आदि संख्यक विषमहार (एक, तीन, पाँच, सात) हैं, वे श्रेष्ठ होते हैं॥ १८॥

यदि एक हार के अनन्तर सन्धिस्थल में जलस्थान दिखे तो व्याधि, विनाश, भय, शोक तथा उग्रता होती है। यदि हार के मध्य भाग को छोड़कर हारान्त में जलस्थल पड़े तो सपत्नी (सौति अथवा शत्रु) का नाश होता है॥ १९॥

पूर्व-पश्चिम-उत्तर एवं दक्षिण के जो छिद्र तथा हार होते हैं। यदि उनके मध्य भाग में जल हो तो शोक, बन्धुविनाश आदि फल होता है॥ २०॥

हार सूत्र के आदि-अन्त के बीच में जलस्थान हो तो शुभ होता है, इसी प्रकार हार के उत्तरोत्तर क्रम से जलाशय आदि भ्राता तथा पत्नी आदि के लिये शुभ होते हैं॥ २१॥

दिग्भागों में जलाशय का फल

दिङ्मध्यसंस्थाः शुभदा नराणां
व्यङ्गेषु बन्धुं पशुपत्तिनाशम्।
याम्योत्तरं हीनधनं करोति
हीनोदकं हीनधनं करोति॥ २२॥

दिशा की जो सीमा है और उस दिशा में जलाशय शुभ कहा गया है (जैसे की ईशान में) तो उस दिशा के ठीक बीचोंबीच जलाशय पूर्ण शुभफल देता है। उसके व्यंग (मध्य से इधर-उधर) में बन्धु, तथा पशु आदि की हानि करता है। उस दिङ्मध्य के उत्तर-दक्षिण में यदि जलाशय का निर्माण हो जाये तो हीन जल तथा हीन धन होता है॥ २२॥

जलाशय-निर्माणकाल की लग्न के दोष

चतुर्थाष्टमगैः पापैः लग्नगैः वा खलग्रहैः।
चन्द्रेऽष्टमे तथा कर्त्ता म्रियते मासमध्यतः॥ २३॥
केन्द्रपापग्रहैर्युक्ते अष्टमे च व्ययेऽपि वा।
धर्मस्थानगतैर्वापि तज्जलं क्षीयतेऽचिरात्॥ २४॥
केन्द्रगैः सौरिभौमार्कैरष्टमस्थे निशाकरे।
तज्जलं वर्षमध्ये तु न तिष्ठति जलाशये॥ २५॥
एकः पापोऽष्टमस्थोऽपि चतुर्थे सिंहिकासुतः।
नवमे भूमिपुत्रस्तु तज्जलं विषवत् स्मृतम्॥ २६॥

१. यदि लग्न से ४-८ भावों या लग्न में पापग्रह हों, चन्द्रमा अष्टम में हो तो इस योग में जलाशय निर्माण करने पर कर्त्ता की एक मास में मृत्यु होती है॥ २३॥

२. यदि केन्द्र में पापग्रह हों तथा ८-१२ भावों में भी पापग्रह हों तथा नवम में हों तो जलाशय का जल शीघ्र ही घटने लगता है॥ २४॥

३. यदि शनि, मंगल, सूर्य केन्द्र में; चन्द्रमा अष्टम में हो तो इस योग में बने जलाशय का जल एक वर्ष भी नहीं टिकता है॥ २५॥

४. यदि एक भी पापग्रह अष्टमस्थ हो तथा राहु चतुर्थ में एवं मंगल नवमभाव में हो तो उस जलाशय का जल विष के समान हानिकर होता है॥ २६॥

जलाशयप्रतिष्ठा

नन्दाद्याः पूजनीयाश्च पूर्वोक्तेनैवमार्गतः।
ईशानादिक्रमेणैव न्यसेद्दिक् छोधिते स्थले॥ २७॥
मध्ये पूर्णा विनिक्षिप्य कुम्भोपरि शुभे दिने।
वरुणस्य विधायादौ पूजां मन्त्रैश्च वारुणैः॥ २८॥
वटवेतसकीलानां शिरास्थाने निवेशनम्।
ततो ग्रहार्चनं वास्तुपूजा विधिमतः परम्॥ २९॥

पूर्व में कथित रीति से नन्दादि पंचशिलाओं को ईशानादि कोणों में शोधित स्थल पर रखें तथा मध्य में पूर्णा को कुम्भ के ऊपर रखकर शुभ दिन में वारुण मन्त्रों से पूजा करें। वट एवं वेतस की कीलें शिरा स्थानों में गाड़ें, फिर ग्रहार्चन करें॥ २७-२९॥

जलाशयप्रतिष्ठामुहूर्त

सौम्यायने कीटगते पतङ्गे
मधुं विना शीतकरे सुपूर्णे।
तथा विरिक्ते विकृते च वारे
कार्या प्रतिष्ठा च जलाशयानाम्॥ ३०॥
लग्नेषु सौम्यग्रहवीक्षितेषु
कार्या प्रतिष्ठा खलु तत्र तेषाम्।
जलोदये पूर्णशशी च केन्द्रे
जीवे विलग्ने भृगुजेऽस्तगे वा॥ ३१॥
एकोऽपि चान्ये भवने स्वकीये
केन्द्रस्थितो वा शुभदो नराणाम्।
एकोऽपि जीवज्ञसिताऽसितानां
स्वोच्चस्थितानां भवने स्वकीये॥ ३२॥
केन्द्रत्रिकोणपगता नराणां
शुभावहं तत्सलिलं स्थिरं स्यात्॥ ३३॥

उत्तरायण में जब सूर्य वृश्चिक का हो अथवा चैत्र को छोड़कर शेष मासों में पूर्ण चन्द्रमा होने पर, रिक्तारहित तिथि तथा शुभवार में जलाशय की प्रतिष्ठा करें। जब लग्न पर शुभग्रहों की दृष्टि हो,जलराशिलग्न हो, पूर्ण चन्द्रमा केन्द्र में, गुरु लग्न में अथवा शुक्र सप्तम में हों, तब प्रतिष्ठा शुभ है॥ ३०-३१॥

यदि एक भी ग्रह स्वराशि का होकर केन्द्र में हो अथवा गुरु, बुध, शुक्र एवं शनि में कोई भी उच्च या स्वक्षेत्री होकर केन्द्र-त्रिकोणगत हो तो ऐसे समय में की गयी प्रतिष्ठा का जल स्थिर रहता है॥ ३२-३३॥

जलाशयप्रतिष्ठा का फल

ये कुर्वन्ति नराः पुण्याः पुरे पानीय शालिकाम्।
विष्णुना सह मोदन्ते यावद् भूमण्डले जलम्॥ ३४॥

इति श्रीविश्वकर्मप्रकाशे वास्तुशास्त्रे जलाशयादिकरणेऽष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

जो पुण्यात्मा मनुष्य नगर में प्याऊ लगाते हैं, वे जब तक पृथ्वी पर जल रहता है तब तक विष्णु भगवान् के साथ आनन्दित रहते हैं॥ ३४॥

इस प्रकार श्रीविश्वकर्मप्रकाश वास्तुशास्त्र ग्रन्थ की महर्षि अभयकात्यायन-विरचित हिन्दी टीका का आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

नवमोऽध्यायः

वृक्षच्छेदनाध्यायः

विषय-प्रवेश

अथातः शृणु विप्रेन्द्र दारूणां छेदने विधिम्।
सुरदारुचन्दनशमीमधूकास्तरवस्तथा ॥ १ ॥

हे विप्रेन्द्र! अब मैं वृक्षों के एवं दारु (लकड़ी) के काटने की विधि बता रहा हूँ, जिनमें देवदारु, चन्दन, शमी (छैंकुर या छौंकर) तथा महुआ के तरु (Tree) प्रमुख है॥ १॥

चारो वर्णों के लिये शुभ वृक्षों का कथन

ब्राह्मणानां शुभाः वृक्षाः सर्वकर्म सुशोभनाः।
क्षत्रियाणां खदिरबिल्वार्जुनकशिंशिपाः॥ २ ॥
शालतूनीकसरला नृपवेश्मनि सिद्धिदाः।
वैश्यानां खादिरं सिन्धुस्यन्दनाश्च शुभावहाः॥ ३ ॥
तिन्दुकार्जुन सर्जाश्च वैसराम्राश्च कण्टकाः।
ये चान्ये क्षीरवृक्षाश्च ते शूद्राणां शुभावहाः॥ ४ ॥

देवदारु, चन्दन, छौंकर तथा महुआ—ये वृक्ष ब्राह्मणों के घरों में लगाने के लिये श्रेष्ठ हैं॥ १$\frac{1}{2}$॥

क्षत्रियों के लिये खैर, बेलवृक्ष (Aagal marmelos), अर्जुन (Terminalia arjuna) तथा सीसम (Sisoo) वृक्ष गृह-निर्माण में शुभ होते हैं॥ २॥

राजाओं के भवनों में लगाने के लिये, शाल, तुन्नी, सरल (चीड़) शुभ होते हैं। वैश्यों के लिये खैर, सिन्धुवृक्ष, स्यन्दन वृक्ष घरों में लगाने के लिये श्रेष्ठ होते हैं॥ ३॥

तेंदू, अर्जुन, सर्ज, वैसर, आम तथा कण्टाई या काँटेदार वृक्षों का काष्ठ शूद्रों के घरों में लगाने में शुभफल देनेवाला होता है। अन्य जो क्षीरीवृक्ष (दूधवाले वृक्ष) भी इनके लिये शुभ होते हैं॥ ४॥

काष्ठच्छेदन में निषिद्ध मास

द्व्यङ्गराशिगते सूर्ये माघे भाद्रपदे तथा।
वृक्षाणां छेदनं काष्ठसञ्चयार्थं न कारयेत्॥ ५ ॥

जब सूर्य द्विस्वभाव राशियां (मिथुन-कन्या, धनु-मीन) में तथा भाद्रपद (सिंह) एवं माघ (कुम्भ) में हो तब संग्रह करने के लिये वृक्ष नहीं काटना चाहिये॥ ५॥

वृक्षच्छेदन मुहूर्त का कथन

सूर्यर्क्षाद् वेदगोतर्कदिग्विश्वनखसम्मिते।
चन्द्रर्क्षे दारुकाष्ठानां छेदनं शुभदायकम्॥ ६ ॥

सूर्य जिस नक्षत्र पर हो उससे यदि तत्कालीन चन्द्र नक्षत्र चौथा, दूसरा, छठवाँ, दसवाँ, तेरहवाँ, या बीसवाँ हो तो वृक्ष एवं काष्ठादि का छेदन शुभदायक होता है॥ ६॥

सर्ववर्णों के लिये उपयोगी काष्ठ

सर्वेषामपि वर्णानां दारवः कथिताः शुभाः।
सुरदारुचन्दनशमीशिंशिपाः खदिरस्तथा॥ ७ ॥
शालाः शालविस्तृताश्च प्रशस्ताः सर्वजातिषु।
एकजात्या द्विजात्या वा त्रिजात्या वा महीरुहाः॥ ८ ॥

सभी वर्णों के लिये देवदार, चन्दन, छोंकर, सीसम, खैर, छोटा शाल, बड़ा शाल, आदि काष्ठ शुभ होते हैं। एक जाति के वृक्ष अथवा दो जाति के वृक्षों का अथवा तीन जाति के वृक्षों का काष्ठ गृह-निर्माण में लगाना चाहिये॥ ७-८॥

विभिन्न प्रकार के काष्ठ लगाने के नियम

कारयेत् सर्वगेहेषु तदूर्ध्वं नैव कारयेत्।
एकदारुमया गेहाः सर्वशल्यनिवारकाः॥ ९ ॥
द्विजात्या मध्यमाः प्रोक्तास्त्रिजात्या अधमाः स्मृताः।
क्षीरिणं फलिनं चैव कण्टकाढ्यञ्च वर्जयेत्॥ १०॥

सभी गृहों में तीन प्रकार के काष्ठ से अधिक प्रकार का काष्ठ नहीं लगाना चाहिये। जिस गृह में एक ही प्रकार की लकड़ी का प्रयोग होता है, वह सभी कष्टों को दूर करता है। दो जातियों का काष्ठ एक ही गृह में लगाना मध्यम फल देता है तथा तीन प्रकार की लकड़ी का एक ही घर के निर्माण में प्रयोग अधम कहा गया है। दूधिया वृक्षों एवं फलदार वृक्षों की लकड़ी तथा कँटीले वृक्ष की लकड़ी को गृह-निर्माण में लगाना चाहिये॥ ९-१०॥

गृह-निर्माण में त्याज्य वृक्ष

श्मशानेनाग्निना चैव दूषितेऽप्यथवा भुवा।
वज्रेण मर्दितं चैव वातभग्नं तथैव च॥ ११॥
मार्गवृक्षं पुराच्छन्नं चैत्यं कल्पञ्च दैवकम्।
अर्धभग्नार्धदग्धाश्च अर्धशुष्कास्तथैव च॥ १२॥
व्यङ्गा कुब्जाश्च काणाश्च अतिजीर्णाश्च तथैव च।
त्रिशीर्षा बहुशीर्षाश्च अन्यवृक्षेण भेदिताः॥ १३॥
स्त्रीनाम्नाश्च ये तरवः ते वर्ज्यः गृहकर्मणि।

श्मशान (मरघट) की भूमि पर खड़े वृक्ष, आग से झुलसे वृक्ष अथवा दूषित भूमि पर उत्पन्न वृक्ष, बिजली गिरने से फटे वृक्ष, आँधी से गिरे हुए वृक्ष, मार्ग के किनारे खड़े वृक्ष, लता आदि से आच्छादित वृक्ष, चैत्य वृक्ष (किसी देवस्थान के चबूतरे का वृक्ष, दैववृक्ष (किसी सम्माननीय व्यक्ति के द्वारा अथवा किसी की स्मृति में रोपण किया हुआ वृक्ष), व्यङ्गित वृक्ष, बहुत पुराना वृक्ष, कुबड़ा वृक्ष, कानावृक्ष, बहुत शिरों (बहुत शाखाओंवाला जो वृक्ष के ऊपरी भाग से निकली हों) तीन शिरों से युक्त वृक्ष, दूसरे वृक्ष से भेदा गया वृक्ष, स्त्री नामोंवाले वृक्ष, इन सब वृक्षों को, गृहकर्म में उपयोग के लिये नहीं काटना चाहिये॥ ११-१३½॥

दोषयुक्त वृक्षों का अलग-अलग फल

क्षीरिणः क्षीरनाशाय फलिनः पुत्रनाशनाः॥ १४॥
कण्टकी कलहं कुर्यात् काकच्छत्रं धनक्षयम्।
गृध्रवृक्षं महारोगं श्मशानस्थं मृतिप्रदम्॥ १५॥
वज्राङ्कं वज्रभयदं वातदं वातदूषितम्।
मार्गवृक्षे कुलध्वस्तं पुरच्छत्रं भयप्रदम्॥ १६॥
कुल्यवृक्षे भवेन्मृत्युः देववृक्षे धनक्षयम्।
चैत्ये गृहपतेर्मृत्युः देववृक्षे भयं भवेत्॥ १७॥

गृह-निर्माण में क्षीरी (दूधवाले) वृक्षों का उपयोग गृह में क्षीरनाश (दूध की हानि) करता है। काँटेदार वृक्ष कलह करते हैं। जिन पर कौवे बैठते हैं, उनकी लकड़ी का गृह-निर्माण में उपयोग धनक्षय करता है। जिस वृक्ष पर गीध बैठते हों यदि उसे काटकर उसकी लकड़ी का उपयोग गृह में किया जाता है तो उस घर में किसी महारोग से लोग पीड़ित हो जाते हैं (कुष्ठ, कैंसर, मधुमेह, एड्स आदि महारोग हैं), जो वृक्ष श्मशान पर खड़ा हो उसे काटना मृत्युप्रद है॥ १४-१५॥

वज्रांकित वृक्ष (जिस पर बिजली गिरी हो) उस वृक्ष की लकड़ी घर में लगाने से भय प्राप्त होता है। आँधी से गिरा वृक्ष घर में लगने पर वातविकारों (Nervous diseases) को उत्पन्न करता है। मार्गवृक्ष की लकड़ी घर में लगाने से कुल का नाश होता है। पुरच्छन्न वृक्ष भयप्रद होता है॥ १६॥

कुल्यवृक्ष (कुल में जो पूज्य वृक्ष हो) के काटने से मृत्यु होती है। देववृक्ष से धन की हानि अथवा भय होता है। चैत्यवृक्ष के काटने से गृहपति की मृत्यु होती है॥ १७॥

अर्धभग्नं विनाशाय अर्धशुष्कं धनक्षयम्।
व्यंगे मृतप्रजा ज्ञेयाः कुब्जास्तथैव च॥ १८॥
काणे राजभयं विन्द्यात् अतिजीर्णे गृहक्षयः।
त्रिशीर्षे गर्भपातः स्याद् बहुशीर्षे मृतप्रजाः॥ १९॥

अन्यभेदे शत्रुभयमुद्याने खे भयं तथा।
वल्लीवृते दरिद्रत्वं पुष्पवृक्षे कुलक्षयः॥ २०॥
सर्पयुक्ते सर्पभयं देवालयगते क्षयः।
कन्याजन्म तु कन्याङ्के सच्छिद्रे स्वामिनो भयम्॥ २१॥

अधटूटे वृक्ष की लकड़ी गृह में लगाने से विनाश होता है। अर्धशुष्क वृक्ष की लकड़ी धनहानि करती है। व्यंगयुक्त वृक्ष की लकड़ी के उपयोग से मृत सन्तान उत्पन्न होती है। कुब्जवृक्ष कुब्जता उत्पन्न करता है। कानेवृक्ष की लकड़ी से राजभय होता है तथा बहुत पुराने वृक्ष की लकड़ी गृह-निर्माण में लगाने से मृत सन्तान उत्पन्न होती है। जिस वृक्ष का भेदन दूसरे वृक्ष से हो अर्थात् उस वृक्ष को किसी दूसरे वृक्ष की शाखा तने में छेदकर पार हो गयी हो काटकर घर में लगाने से शत्रुभय होता है। उद्यान के वृक्ष को काटकर उसके काष्ठ को गृह-निर्माण में लगाने से आकाशीय उत्पातों का भय होता है। जो वृक्ष लताओं से वेष्टित हो, उसकी लकड़ी काटकर लगाने से घर में दरिद्रता होती है। फूलोंवाले वृक्ष की लकड़ी लगाने से कुल का क्षय होता है॥ १८-२०॥

जिस वृक्ष पर सर्प रहते हों अथवा जिसके कोटरों एवं जड़ों में सर्पों का निवास हो उस वृक्ष की लकड़ी गृह-निर्माण में लगाने से सर्पभय होता है। जो वृक्ष किसी देवालय में लगा हो, उसे काटकर घर में लगाने से क्षयरोग होता है अथवा परिवार की अवनति होती चली जाती है। जिस वृक्ष में कन्या का चित्र-सा दिखाई देता हो उसकी लकड़ी घर में लगने पर कन्याओं की अधिकता करती है। छेददार वृक्ष की लकड़ी का उपयोग गृहस्वामी को भय देता है॥ २१॥

शिवलिङ्ग, प्रतिमा एवं इन्द्रध्वज-निर्माण में त्याज्य समय

लिङ्गे वा प्रतिमायां वा तथा शक्रध्वजेऽपि च।
आग्नेयपञ्चके चन्द्रे न विदध्यात्कदाचन॥ २२॥
गृहे देवालये वापि परीक्षेत प्रयत्नतः।
मासदग्धं वारदग्धं तिथिदग्धं तथैव च॥ २३॥
रिक्तातिथिं च दर्शं च तिथिं षष्ठीञ्च वर्जयेत्।
एकार्गलं तथा भद्रां ये च योगाः कुसंज्ञकाः॥ २४॥
उत्पातदूषितं ऋक्षं सङ्क्रान्तौ ग्रहणेषु च।
वैधृतौ च व्यतीपाते न विदध्यात्कदाचन॥ २५॥

जब किसी लिङ्ग या प्रतिमा अथवा इन्द्रध्वज का निर्माण करना हो तो उसे अग्नि पंचक में कभी न बनाना शुरू करें॥ २२॥

गृह, देवालय आदि का आरम्भ भी अग्निपंचक तथा अग्रलिखित वर्ज्य समय में नहीं करना चाहिये। मासदग्ध तिथियाँ, वारदग्ध तिथियाँ, रिक्तातिथि (४-९-१४), अमावस्या तथा षष्ठी तिथि भी लिङ्गादि के निर्माण में वर्जित करना चाहिये। एकार्गल

भद्रा (विष्टिकरण) तथा अन्य कुयोग भी वर्जित करें। उत्पात से दूषित नक्षत्र, सङ्क्रान्ति का दिन, ग्रहण का दिन, वैधृति योग तथा व्यतिपात योग में भी यह कार्य नहीं करना चाहिये॥ २३-२५॥

वृक्षच्छेदन के नक्षत्र

सौम्यं पुनर्वसुमैत्रं करं मूलोत्तराद्वये।
स्वातौ च श्रवणश्चैव वृक्षाणां छेदनं शुभम्॥ २६॥

मृगशिरा, पुनर्वसु, अनुराधा, हस्त, मूल, उत्तरा फाल्गुनी तथा उत्तराषाढ़ा (उत्तराभाद्र पंचक का होने से वर्जित है), स्वाति तथा श्रवण इन नक्षत्रों में वृक्षों को काटना चाहिये॥ २६॥

छेदन के पूर्व वृक्ष की पूजाविधि

समभूमिर्वने यस्मिन् तस्मिन् वृक्षे प्रपूजयेत्।
गन्धपुष्पादिनैवेद्यं बलिं दद्यात् विशेषतः॥ २७॥
वस्त्रेणाच्छादितं कृत्वा वेष्टयेत्तन्तुना तथा।
श्वेतवर्णानुवर्णेन वर्णानुक्तक्रमेण च॥ २८॥
मन्त्रैरेतैर्यथा न्यायं प्रार्थयेत्तं पुनः पुनः।
आचार्यः सूत्रधारश्च रात्रौ तमधिवास्य च॥ २९॥
स्पृष्ट्वा वृक्षमिमं मन्त्रं ब्रूयाद् रात्रौ विधानतः॥ ३०॥

समतल भूमि में खड़े वृक्ष के पास वन में जाकर उस वृक्ष की पूजा करनी चाहिये। पूजा में गन्ध, पुष्प, नैवेद्य, बलि आदि विशेषरूप से देना चाहिये। वस्त्र से आच्छादितकर फिर उस वृक्ष को तन्तु (सूत्र=कलावा) से वेष्टित करें। उस सूत्र को श्वेतवर्ण या वर्णानुवर्ण होना चाहिये (कलावा या मौलि में सभी वर्ण होते हैं)। फिर आगे कहे हुए मन्त्रों से उस वृक्ष की बार-बार प्रार्थना करना चाहिए। फिर आचार्य एवं सूत्रधार (शिल्पी) रात्रि में उस वृक्ष के समीप निवास करें तथा वृक्ष का स्पर्श कर निम्न मन्त्र बोलें॥ २७-३०॥

वृक्षपूजामन्त्र

'यानीह वृक्षे भूतानि तेभ्यो स्वस्ति नमोऽस्तु वः।
उपहारं गृहीत्वेमं क्रियतां वास पर्ययः॥ ३१॥
प्रार्थयित्वा वरयते स्वस्ति तेऽस्तु नगोत्तम।
गृहार्थं वान्यकार्यार्थं पूजेयं प्रतिगृह्यताम्॥ ३२॥
परमान्नमोदकौदनदधिपल्लोलादिभिर्दशैः।
मद्यैः कुसुमधूपैश्च गन्धैश्चैवं तरुं पुनः॥ ३३॥
सुरपितृपिशाचराक्षसभुजगासुरविनायकाश्च।
गृह्णन्तु मत्कृतां पूजां कल्याणं कुरु सर्वदा॥ ३४॥

यानीहि भूतानि वसन्ति तानि
बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम्।
अन्यत्र वासं परिकल्पयन्तु
क्षमन्तु तानद्य नमोऽस्तु तेभ्य:'॥ ३५॥

जो भी प्राणी इस वृक्ष पर बसते हों, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ, वे कल्याण करें। इस बलि उपहार को ग्रहण कर वे अन्यत्र जाकर अपना वास करने लगें तथा इस वृक्ष को छोड़ जायें॥ ३१॥

मैं प्रार्थना करके आपका वरण करता हूँ, हे वृक्षोत्तम! आपका कल्याण हो। मेरे गृह के लिये तथा अन्य कार्य में प्रयुक्त करने के लिये मेरी यह पूजा ग्रहण करो॥ ३२॥

परमान्न, मोदक, भात, दही, पल्लोल आदि पदार्थों, मधु, कुसुम, धूप, दीपादि से आपको पूजकर पुन: आपकी प्रार्थना करता हूँ॥ ३३॥

जो भी देवता, पितर, पिशाच, राक्षस, भुजग, असुर, विनायक यहाँ पर हैं, वे सब मेरे द्वारा की हुई इस पूजा को ग्रहणकर मेरा कल्याण करें॥ ३४॥

जो भी प्राणी इस वृक्ष पर बसते हों, वे मेरी इस विधिपूर्वक प्रदान की गयी बलि को ग्रहण करके अन्यत्र जाकर वास करें, इस वृक्ष को छोड़ दें। उनको आज मैं नमस्कार कर रहा हूँ॥ ३५॥

प्रात:कालीन कृत्य

वृक्षं प्रभाते सलिलेन सिक्त्वा
मध्वाज्य लिप्तेन कुठारकेन।
पूर्वोत्तरस्यां दिशि सन्निकृत्य
प्रदक्षिणं शेष मतो विहन्यात्॥ ३६॥
छेदयेद् वर्त्तुलाकारं पतनं चोपलक्षयेत्।
प्राग्दिश: पतनं कुर्याद् धनधान्यसमर्चितम्॥ ३७॥

प्रात:काल में वृक्ष को जल से सींचकर कुल्हाड़ी में मधु तथा घृत लगाकर ईशानकोण में काटना आरम्भ करके शेष वृक्ष को प्रदक्षिण क्रम से काटते हुए गोलाई में वृत्त को गिरनेवाला समझकर उसे पूर्व दिशा में गिरायें। यदि वह पूर्व दिशा में गिरता है तो धनधान्य की वृद्धि करनेवाला होता है॥ ३६-३७॥

विभिन्न दिशाओं में कटे हुए वृक्ष गिरने का फल

आग्नेय्याममग्निदाह: स्याद् दक्षिणे मृत्युमादिशेत्।
नैर्ऋत्ये कलहं कुर्यात् पश्चिमे पशुवृद्धिदम्॥ ३८॥
वायव्ये चौरभीति: स्यादुत्तरे च धनागमम्।
ईशाने च महाश्रेष्ठं नानाश्रेष्ठं तथैव च॥ ३९॥

जो वृक्ष काटने पर अग्निकोण में गिरे तो अग्निदाह का फल होता है, दक्षिण में गिरने पर मृत्यु का भय होता है। नैर्ऋत्य कोण में गिरने पर कलह होता है। पश्चिम में यदि वह काटा हुआ वृक्ष गिरता है तो पशुओं की वृद्धि करता है। यदि वायव्य कोण में वह वृक्ष गिरे तो चोरों का भय होता है। उत्तर दिशा में वृक्ष के गिरने पर धन का आगमन कराता है। काटने पर यदि वृक्ष का पतन ईशान कोण की ओर होता है तो फिर वह महाश्रेष्ठ फल देता है तथा नाना प्रकार की श्रेष्ठताएँ उत्पन्न करता है॥ ३८-३९॥

काष्ठ के दोष तथा उनका फल

भग्नं यद्वा भवेत्काष्ठं यच्चान्यतरुमध्यगम्।
तन्न शस्तं गृहे वर्ज्यं दोषदं कर्म कारयेत्॥ ४०॥
भग्नकाष्ठे हता नारी स्वामिनायुधसंज्ञके।
कर्मकर्त्तारमन्तस्थं धननाशकरं महत्॥ ४१॥
एकमाद्यं महाश्रेष्ठं धनधान्यसमृद्धिदम्।
पुत्रदारपशूंश्चैव नानारत्नसमन्वितम्॥ ४२॥
द्विभागं सकलं प्रोक्तं त्रिभागं दुखदं स्मृतम्।
चतु: षष्ठे बन्धनं पञ्चमे मृत्युमादिशेत्॥ ४३॥

जो काष्ठ टूटा हुआ एवं फटा हुआ हो, जो बीच से लम्बाई में फटा हो (तरुमध्यग), उसे गृह-निर्माण में उपयोग में न लायें। वह अनेक प्रकार से दोषकारक होता है॥ ४०॥

यदि टूटा काष्ठ भवन में उपयोग में आये तो गृहस्वामी की पत्नी का मरण होता है। जिस काष्ठ में कुल्हाड़ी का घाव बीच में कहीं हो, वह गृहस्वामी की मृत्यु करता है। जो काष्ठ अपने अन्तिम भाग में त्रुटित हो, वह कर्मकार (कारीगर) के लिये हानिकर तथा धननाशकारक होता है॥ ४१॥

यदि किसी भवन में लकड़ी की पूरी लौद (Log) समूची ही लगायी जाये तो वह धन-धान्य-समृद्धिकारक होती है। वह पुत्र, स्त्री, पशुधन, वाहन एवं नाना प्रकार के रत्नों से समृद्धि देती है॥ ४२॥

एक काष्ठ को लम्बाई में चीरकर दो भाग किये जायें तो श्रेष्ठ होते हैं। यदि तीन भाग किये जायें तो दु:खप्रद होते हैं। एक वृक्ष के चार या छह भाग बन्धनकारक तथा पाँच भाग मृत्युकारक होते हैं॥ ४३॥

पुन: काष्ठ के दोषों एवं फल का कथन

जर्जरे धननाश: स्यान्मध्ये छिद्रं गदप्रदम्।
निष्फले निष्फलं गेहं सफले फलमेव च॥ ४४॥
विरूपे धननाश: स्यात् सक्षते रोगमेव च।
हीनाङ्गे क्षीरनाशश्च विकटे कन्यकोद्भवम्॥ ४५॥

यदि काष्ठ जर्जरित हो तो धननाशकारक होता है। यदि उसके मध्य में छेद हो तो रोगकारक होता है॥ ४४॥

यदि काष्ठ विरूप (बदशक्ल) हो तो धननाश करता है। काठ में घाव होने पर रोगकारक होता है। यदि वह अंगहीन हो तो घर में दूध-घी की हानि करता है। विकट आकार का काष्ठ कन्या सन्तति की अधिकता करता है॥ ४५॥

विमर्श—तात्पर्य यह है कि काष्ठ सुडौल तथा सुदृढ़ होना ही शुभ होता है।

काष्ठ की परीक्षा

काष्ठं नो भुज्यते कीटैर्यदि पक्षं धृते जले।
कृष्णपक्षे च छेदने न शुक्ले कारयेद् बुधः॥ ४६॥

उस काष्ठ को पूरे एक पक्ष तक पानी में डुबोकर रखना चाहिये। यदि इतने समय तक उसमें कीड़ा न लगे तो उसे उत्तम जानना चाहिये। तब फिर उसका छेदन कृष्णपक्ष में करना चाहिये। शुक्लपक्ष में उस काष्ठ का छेदन न करे। यही समझदारी का काम है॥ ४६॥

काष्ठ की वाहन द्वारा ढुलाई में शुभाशुभ शकुन

उद्धृत्य काष्ठं शकटैर्मनुष्यैर्वा समन्ततः।
वैन्या नाशे तस्य नाशः आरभङ्गे बलक्षयः॥ ४७॥
अर्थक्षयोऽक्षभेदे च तथा भङ्गे वर्धके।
विजयाय भवेच्छ्वेतः पीतो रोगप्रदो मतः॥ ४८॥
जयदो चित्ररूपश्च रक्तैः शस्त्राद् भयं भवेत्।
प्रवेशे चैव दारूणां बालकाश्चापि तारुणाः॥ ४९॥
यद्वावाचं कथयन्ति तत्तथैव भविष्यति।
रज्जुच्छेदे बालपीडा यन्त्रभेदे तथैव च॥ ५०॥
इति प्रोक्तं मया वृक्षच्छेदनार्थं विधानतः।
शकुनानि परीक्षेत दारुच्छेदनकर्मणि॥ ५१॥

इति श्रीविश्वकर्मप्रकाशे वास्तुशास्त्रे वृक्षच्छेदनविधिर्नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

जिस समय शकट (वाहन) से उस काष्ठ का परिवहन किया जा रहा हो अथवा मनुष्यों से ढोया जा रहा हो, तब शकट या मनुष्यों के द्वारा प्रयुक्त वैन्या (बेनी या बैंड़ी नामक लकड़ी) यदि टूट जाये तो गृहस्वामी का नाश होता है। यदि वाहन के पहिये के अरे (आर = तान) टूट जायें तो बल की हानि होती है॥ ४७॥

यदि अक्ष (पहिये की धुरी) टूट जाये तो गृहस्वामी के धन का नाश होता है। यदि वर्धक बैलों के हाँकने की रस्सी टूट जाये (अथवा) वाहन का क्लच या एक्सीलिरेटर टूट जाये तो भी धनहानि होती है। यदि ढुलाई के समय कोई बालक या

तरुण श्वेतवर्ण के वस्त्र पहनकर आ जाये जो विजयसूचक शुभ शकुन होता है। यदि पीले वस्त्र पहने हो तो रोग का सूचक होता है॥ ४८॥

यदि रंग-बिरंगे चित्ररूप (छींट) के कपड़े पहने हो तो जयप्रद शकुन होता है। यदि वहीं कोई रक्तवस्त्रधारी दिखे तो शस्त्रों से भय होता है। ये सब शकुन लकड़ियों को निर्माण-स्थल तक ले जाते समय विचार करने चाहिये—ये सत्य घटित होते हैं॥ ४९॥

उस समय उस स्थल पर जैसी वाणी सुनने में आये, उसका फल वैसा ही शुभाशुभ होता है। यदि वहाँ मंगल शब्द सुनने को मिलें तो मंगल होता है, यदि अनर्थकारक वाणी (शाप-गाली) आदि सुनायी पड़े तो अशुभ फल होता है। उस समय रस्सी टूटने से बालकों को पीड़ा होती है तथा निर्माण-कार्य में प्रयुक्त होनेवाला कोई यन्त्र टूट जाये तो भी बाल-पीड़ा होती है॥ ५०-५१॥

इस प्रकार श्रीविश्वकर्मप्रकाश वास्तुशास्त्र ग्रन्थ की महर्षि अभयकात्यायन-विरचित हिन्दी टीका का नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

●

दशमोऽध्यायः

नवगृहप्रवेशाध्यायः

गृहप्रवेशमुहूर्त

अथ प्रवेशो नवमन्दिरस्य
सौम्यायने जीव सिते बलाढ्ये।
स्याद् वेशनं ज्येष्ठतपोऽन्त्यमाधवे
मार्गे शुचौ मध्यफलप्रदः स्यात्॥ १ ॥

नवीन गृह में प्रवेश करने के लिये जब सूर्य उत्तरायण में हो तथा गुरु, शुक्र बलवान् हों तथा ज्येष्ठ, माघ, वैशाख तथा आषाढ़ मासों में करना चाहिये। आषाढ़ में प्रवेश मध्यम फल देता है॥ १॥

गृहप्रवेश में मासों का विशेष फल

माघेऽर्थलाभः प्रथम प्रवेशे,
पुत्रार्थलाभः खलु फाल्गुने च।
चैत्रेऽर्थहानिः धनधान्यलाभो,
वैशाखमासे पशु पुत्रलाभः॥ २ ॥
ज्येष्ठे च मार्गे शुचौ च मासे
मध्यप्रदिष्टः प्रथम प्रवेशः।

यदि प्रथम बार (नूतन) गृहप्रवेश हो तो माघ के महीने में प्रवेश करने से अर्थलाभ होता है तथा फाल्गुन के प्रवेश में पुत्रलाभ तथा धनलाभ होता है। चैत्र में प्रवेश करने से धनहानि होती है, वैशाख में धनधान्य का लाभ होता है। ज्येष्ठ में पशु एवं पुत्रों का लाभ होता है। मार्गशीर्ष (अग्रहायण) तथा आषाढ़ मास में प्रथम प्रवेश मध्यम कहा गया है॥ २-२½ ॥

यात्रानिवृत्ति के उपरान्त दिक्पाल-बलिदान-कथन

यात्रानिवृत्तौ मनुजाधिपानां
वास्त्वर्चनं भूतबलिश्च पूर्वे॥ ३ ॥
दिने प्रदद्याद् दिक्क्रमेण
मांसं ह्यसृक् चाज्ययुतं चतुर्षु।
माषं दधिश्चेत् कुलमाषसहितं
बलिं प्रदद्याद् दिक्पालकेभ्यः॥ ४ ॥

यात्रा से वापसी पर राजा लोगों को वास्तु की पूजाकर, भूतबलि करके फिर दिशाओं के क्रम से दिक्पालों को दिन के समय में भी बलि देना चाहिये। भूतादि के लिये मांसरक्त तथा घृत की बलि दें तथा दिक्पालों के लिये उड़द, दही, भात, कौंहरी आदि की बलि दें॥ ३-४॥

विमर्श—यह बलि ग्राम-प्रवेश के पूर्व चतुष्पथ पर दें।

गृहमूल में बलिदान

ये भूतानीति मन्त्रेण चतुर्दिक्षुबलिं हरेत्।
गृहमूले बलिं दद्याद् गृहस्योर्ध्वे तथैव च॥ ५ ॥
दद्याद् दीपं पूर्वदिने बलिपूजां ततश्चरेत्।
घृतं दुग्धञ्च मांसं च लड्डुकं मधुसंयुतम्॥ ६ ॥
पूर्वादिक्रमयोगेन बलिं दद्याद् विशेषतः।

'ये भूतानिं' इस मन्त्र से चारो ओर बलि रखना चाहिये। गृह के मूल में तथा गृह के ऊर्ध्व में भी बलि देना चाहिये। पूर्वदिन दीपदानकर फिर बलिपूजा करनी चाहिये। घी, दूध, मांस, लड्डू, मधु से युक्त बलि पूर्वादि क्रम से दें॥ ५-६½ ॥

वृक्षों के लिये बलि

यक्षादीनां कृते तत्र बलिं कुर्यात् विचक्षणः॥ ७ ॥
स्कन्धधरादियक्षाणामीशानादिक्रमेण च।
चकोरादिबलिश्चैव विदिक्षु विनिवेदयेत्॥ ८ ॥

बुद्धिमान् व्यक्ति को यक्षादि के लिये भी बलि देनी चाहिये। स्कन्धधरादि यक्षों के लिये बलि ईशानादि क्रम से कोणों में दी जाती है, फिर पुनः इसी क्रम से चकोरादि बलि भी कोणों में देना चाहिये॥ ७-८॥

अपूर्वसंज्ञक गृहप्रवेश में वास्तुपूजादि का कथन

विष्णोरराट मन्त्रेण पूजयेद् वास्तुपूरुषम्।
नमोऽस्तु सर्पेभ्यो इति सर्पराजं प्रपूजयेत्॥ ९ ॥
अन्येषामपि देवानां गायत्रीमन्त्र ईरितः।
अपूर्वसंज्ञे तु गृहे विधिरेष उदाहृतः॥ १०॥

१. 'विष्णोरराटमसि०' इत्यादि मन्त्र द्वारा वास्तुपुरुष को पूजें तथा २. 'नमोऽस्तु सर्पेभ्यो०' इस मन्त्र से सर्पराज (नागराज) की पूजा करनी चाहिये। ३. अन्यान्य देवताओं की पूजा भी उनके पृथक्-पृथक् गायत्री मन्त्रों के द्वारा करना चाहिये। यह विधि 'अपूर्वसंज्ञक गृहप्रवेश' के लिये कही गयी है॥ ९-१०॥

विमर्श—नया घर बनने पर जो पहली बार गृहप्रवेश किया जाता है, वह 'अपूर्व संज्ञक गृहप्रवेश' कहा जाता है। इसी प्रकार यात्रा की समाप्ति पर जो गृहप्रवेश किया जाता है, वह 'सपूर्वसंज्ञक गृहप्रवेश' होता है। जो गृहप्रवेश अग्निभय इत्यादि उत्पन्न

होने के पश्चात् पुन: किया जाता है, वह द्वन्द्व गृहप्रवेश होता है। यह तीसरे प्रकार का गृहप्रवेश होता है। जैसा कि वसिष्ठजी ने कहा है—

'अपूर्वसंज्ञः प्रथमो प्रवेशो यात्रावसाने च सपूर्वसंज्ञकः।
द्वन्द्वो भयस्त्वग्निभयादिजातः त्वेवं प्रवेशः त्रिविधः प्रदिष्टः॥'

नूतन गृहप्रवेश में वर्जनीय कालादि

**कालशुद्धिविचारोऽत्र कर्त्तव्या शुभमिच्छता।
कुम्भेऽर्के फाल्गुने मार्गे कार्तिके च शुचौ तथा॥ ११॥
नववेश्मप्रवेशन्तु सर्वथा परिवर्जयेत्।
द्वन्द्वसौपूर्विकगृहे मासदोषो न विद्यते॥ १२॥**

यहाँ अपना कल्याण चाहनेवाले को कालशुद्धि का विचारकर ही नूतन गृहप्रवेश करना चाहिये। कुम्भ के सूर्य में फाल्गुन मास में, कार्तिक में, अगहन में तथा आषाढ़ में नवीन गृह का प्रवेश सर्वथा वर्जित है। जो घर द्वन्द्व (दो मालिकों का) हो, उसमें तथा जीर्णगृह में प्रवेश करने में मासदोष नहीं होता है॥ ११-१२॥

चिरप्रवासादि में गृहप्रवेश का विचार

**सुचिरप्रवासे नृपतेः दर्शने गृहवेशने।
भानुशुद्धिः प्रकर्त्तव्या चान्द्रमासे प्रवेशनम्॥ १३॥**

बहुत दिनों के यात्रा के पश्चात् लौटकर यदि गृहप्रवेश करना हो, अथवा राजदर्शन के उपरान्त लौटकर गृहप्रवेश करना हो तो केवल सूर्य की शुद्धि देखकर अर्थात् मीन तथा धनु के सूर्य को छोड़कर चान्द्रमासों में प्रवेश कर लेना चाहिये॥ १३॥

विमर्श—तात्पर्य यह है कि चैत्र एवं पौष मासों में भी यदि मीन एवं धनु के सूर्य नहीं हैं तो प्रवेश कर लेना चाहिये तथा शेष मासों (चान्द्रमासों) में कोई दोष नहीं है।

निर्गम के उपरान्त प्रवेश में नौवें वर्षादि का निषेध

**निर्गमान्नवमे वर्षे मासे वा दिवसेऽपि वा।
प्रवेशं निर्गमञ्चैव नैव कुर्यात् कदाचन॥ १४॥**

निर्गम के उपरान्त नौवें वर्ष में अथवा नौवें मास में अथवा नौवें दिन में कदापि प्रवेश नहीं करना चाहिये। नौवें वर्ष-मास-दिन की संख्या घर लौटने के लिये अशुभ होती है॥ १४॥

निर्गम एवं प्रवेश एक ही दिन होने पर विशेष

**यद्येकदिवसे राज्ञः प्रवेशो निर्गमस्तथा।
तदा प्रावेशिकं चिन्त्यं बुधैर्नैव तु यात्रिकम्॥ १५॥**

यदि जिस दिन यात्रा करनी हो, उसी दिन वापसी भी हो तो केवल यात्रा के मुहूर्त का विचार करना चाहिये, वापसी (प्रवेश) के मुहूर्त का नहीं॥ १५॥

प्रवेशसम्बन्धी अन्य नियम

**गृहारम्भदिने मासे धिष्ण्ये वारे विशेद् गृहम्।
विशेत् सौम्यायने हर्म्यं तृणागारं तु सर्वदा॥ १६॥
कुलीरकन्यकाकुम्भे दिनेशे न विशेद् गृहम्।
ग्रामं वा नगरं वापि पत्तनं वा तथैव च॥ १७॥**

गृहारम्भ के दिन, मास, नक्षत्र एवं वार में प्रवेश किया जा सकता है। उत्तरायण में हर्म्य (पक्के मकान) में प्रवेश करना चाहिये, पर तृणादि निर्मित कच्चे घर में दक्षिणायन में भी प्रवेश किया जा सकता है॥ १६॥

कर्क राशि, कन्या राशि, कुम्भ राशि—इन तीनों के सूर्यों में गृह-प्रवेश, ग्राम-प्रवेश तथा नगर-प्रवेश नहीं करना चाहिये॥ १७॥

विमर्श—हर्म्य शब्द गृह का पर्यायवाची है। इसका पालि एवं प्राकृत रूप 'हम्य' होता है। अंग्रेजी का 'होम' (Home) शब्द भी हर्म्य का ही अपभ्रंशमात्र है।

गृह-प्रवेश के नक्षत्र तथा उनका फल

**मृदु ध्रुवर्क्षे शुभदं नववेश्मप्रवेशनम्।
पुष्यस्वातीयुतैस्तैश्च जीर्णे स्याद् वासवद्वये॥ १८॥
क्षिप्रैश्चरैश्च नक्षत्रे नववेश्मप्रवेशनम्।
न कुर्यादुग्रनक्षत्रैर्दारुणैर्वा कदाचन॥ १९॥
उग्रो हन्ति गृहपतिं दारुणेषु कुमारकम्।
द्विदैवभे पत्नीनाशमग्निभे त्वग्निजं भयम्॥ २०॥
प्रवेशनं द्वारभैः स्यादन्यदिक्स्थैर्न कारयेत्।
रिक्तातिथिं भौमवारं शनिं वा नैव कारयेत्॥ २१॥
केचिच्छनिं प्रशंसन्ति चौरभीतिस्तु जायते।
अभावे अन्यवारस्य प्रवेशं स्यात् शनैर्दिने॥ २२॥
कुयोगे पापलग्ने वा चरलग्ने चरांशके।
शुभकर्मणि वर्ज्यास्ते वर्ज्यास्मिन् प्रवेशने॥ २३॥**

मृदु नक्षत्रों (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा), ध्रुवनक्षत्रों (उ०फा०, उ०षा०, उ०भा०, रोहिणी), इनमें नवीन गृह में प्रवेश शुभ होता है। पुष्य, स्वाती, धनिष्ठा एवं शतभिषा सहित मृदु एवं ध्रुव नक्षत्रों में पुराने घर में प्रवेश प्रशस्त होता है॥ १८॥

चल नक्षत्रों (स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा), उग्र तथा दारुण नक्षत्रों (त्रिपूर्वा, भरणी, मघा, मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा) क्षिप्रनक्षत्रों (हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्) में कदापि नूतन गृह-प्रवेश नहीं करना चाहिये॥ १९॥

उग्र नक्षत्र गृहपति को मारते हैं, दारुण नक्षत्र उसके पुत्र की हानि करते हैं, विशाखा स्त्रीनाशक होता है। कृत्तिका में अग्निभय होता है॥ २०॥

जिस द्वार के जो नक्षत्र पूर्व में कहे हैं, उन्हीं में उस दिशा के द्वारवाले गृह में प्रवेश करना चाहिये। अन्य दिशा में स्थित नक्षत्रों में प्रवेश न करें। रिक्ता तिथि (४-९-१४) मंगलवार तथा शनिवार को भी प्रवेश वर्जित है॥ २१॥

कोई-कोई विद्वान् शनि को प्रवेश में शुभ मानते हैं, परन्तु शनिवार के गृह-प्रवेश में चौरभय होता है, अतः अन्य मुहूर्त उपलब्ध न होने पर आवश्यकता में ही प्रवेश में शनिवार का उपयोग करना चाहिये॥ २२॥

कुयोग, पापलग्न, चरलग्न, चरनवांश तथा जो शुभकर्म में त्याज्य हैं—उन सबमें गृह-प्रवेश नहीं करें॥ २३॥

गृह-प्रवेश में तिथियों का फल

नन्दायां दक्षिणद्वारं भद्रायां पश्चिमेन तु।
जयायामुत्तरद्वारं पूर्णायां पूर्वमाविशेत्॥ २४॥

नन्दातिथियों (१।६।११) में दक्षिण के द्वारवाले गृह में प्रवेश शुभ होता है। भद्रा तिथियों (२।७।१२) में पश्चिम द्वारवाले गृह में प्रवेश करना शुभ होता है। जया तिथियों (३।८।१३) में उत्तर द्वारवाले गृह में प्रवेश करें तथा पूर्णा तिथियों (५।१०।१५) में पूर्व दिशा के द्वारवाले गृह में प्रवेश करना चाहिये॥ २४॥

विमर्श—रिक्तातिथियाँ त्याज्य हैं। केवल ये चार प्रकार की तिथियाँ दिग्द्वार तिथियाँ होती हैं, अतः जिस द्वार की जो तिथि हो उस दिशा के द्वार में उसी तिथि में प्रवेश करें।

दिग्द्वार तिथि चक्र

पूर्व द्वार गृह में	दक्षिण द्वार गृह में	पश्चिम द्वार गृह में	उत्तर द्वार गृह में	गृह द्वार
पञ्चमी दशमी पूर्णिमा	प्रतिपदा षष्ठी एकादशी	द्वितीया सप्तमी द्वादशी	तृतीया अष्टमी त्रयोदशी	दिग्द्वार तिथियाँ
पूर्णा	नन्दा	भद्रा	जया	तिथि संज्ञा

जन्म लग्न से प्रवेश लग्न एवं जन्म राशि से प्रवेश राशि का फल

व्याधिहा धनहा चैव वित्तदो बन्धुनाशकृत्।
पुत्रहा शत्रुहा स्त्रीघ्नः प्राणहा पिटकप्रदः॥ २५॥
सिद्धिदो धनदश्चैव भयकृज्जन्मराशितः।
लग्नस्थ क्रमतः राशिर्जन्मलग्नात् प्रवेशने॥ २६॥

जन्म लग्न से गृह-प्रवेश की लग्न किस भाव में है, तथैव जन्म की चन्द्रराशि से गृहप्रवेशकालीन चन्द्रराशि का फल इस प्रकार होता है—

१. यदि जो जन्म लग्न हो, वही गृह-प्रवेश की भी लग्न हो तथा जो जन्म-राशि हो, वही गृह-प्रवेश की राशि हो तो व्याधिनाश करनेवाली होती है।

२. जन्म-राशिलग्न से गृहप्रवेशराशिलग्न यदि द्वितीय राशि हो तो धननाशक होती है।

३. जन्म-राशिलग्न से प्रवेश राशि-लग्न तीसरी हो तो धनदायक होती है।

४. जन्म-राशिलग्न से गृहप्रवेश की राशिलग्न चौथी होने पर बन्धुनाशक होती है।

५. जन्म-राशिलग्न से पाँचवीं राशिलग्न गृहप्रवेश की होने पर पुत्रनाशक होती है।

६. छठी होने पर शत्रुनाशक होती है।

७. सातवीं प्रवेश लग्न एवं राशि स्त्री को नष्ट करती है।

८. जन्म-राशिलग्न से आठवीं राशिलग्न यदि गृहप्रवेश की हो तो प्राणनाशक होती है।

९. जन्म-राशिलग्न से गृहप्रवेश की राशिलग्न नवमी होने पर पिटकप्रद (तिजोरी में रखे धन) को देती है।

१०. जन्म-राशिलग्न से गृहप्रवेश राशिलग्न दसवीं हो तो सिद्धिदायक होती है।

११. जब कर्त्ता की जन्म-राशिलग्न से गृहप्रवेशकालीन राशिलग्न ग्यारहवीं हो तो धनदायक होती है।

१२. जन्म की राशि या लग्न से गृहप्रवेश की राशि या लग्न बारहवीं होने पर भयकारक होती है॥ २५-२६॥

जन्म की राशि लग्न से गृहप्रवेश की राशि

प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ	पंचम	षष्ठ	सप्तम	अष्टम	नवम	दशम	एकादश	द्वादश	(जन्म लग्न या राशि से)
व्याधिहा	धनहा	वित्तदा	बन्धुनाश	पुत्रहा	शत्रुहा	स्त्रीघ्नः	प्राणहा	पिटकप्रद	सिद्धिदा	धनदा	भयकारक	गृहप्रवेश लग्न का फल

गृह-प्रवेश में लग्नशुद्धि

लग्नं सौम्यान्वितं कार्यं न तु क्रूरैः कदाचन।
निन्दिता अपि लग्नांशाश्चरराशिगता यदि॥ २७॥

जो लग्न शुभग्रह से युक्त हो, उसमें गृहप्रवेश करना चाहिये। जिसमें क्रूरग्रह बैठे हों, उसमें गृहप्रवेश नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार निन्दित नवांश तथा चरराशि का नवांश भी त्याज्य है॥ २७॥

कर्त्ता के उपचय स्थान की लग्न की शुभता

शुभांशसंयुता कार्या कर्तृभोपचयस्थिताः।
अशुभांशयुता त्याज्या सुखरन्ध्रव्ययस्थिताः॥ २८॥

जो लग्न शुभ नवांश से युक्त हो तथा कर्त्ता की जन्म राशिलग्न से उपचय (३-६-१०-११) में स्थित हो, उसे गृहप्रवेश में ग्रहण करना चाहिये तथा जो अशुभ नवांश से युक्त तथा चौथी, आठवीं, बारहवीं हो उसे त्याग देना चाहिये॥ २८॥

गृहप्रवेश में चर लग्नों का फल

भूयो यात्रा भवेन्मेषे नाशं कर्कटकेऽपि वा।
व्याधिं तुलाधरे लग्ने मकरे धान्यनाशनम्॥ २९॥
एतदेवांशकफलं यदि सौम्ययुते क्षितौ।
चरांशे चरलग्ने च प्रवेशं नैव कारयेत्॥ ३०॥

१. यदि गृहप्रवेश मेष लग्न में हो तो गृहस्वामी को निरन्तर यात्रा करनी पड़ती है।

२. यदि कर्क लग्न में गृहप्रवेश हो तो हानि होती है।

३. यदि तुला लग्न में गृहप्रवेश हो तो व्याधि होती है।

४. यदि मकर लग्न में गृहप्रवेश हो तो धान्यनाश होता है॥ २९॥

यही फल चर राशियों के सौम्यग्रहों से युत तथा वीक्षित नवांशों का होता है। अत: चर लग्नों एवं चर नवांशों में गृहप्रवेश नहीं करना चाहिये॥ ३०॥

वास्तुपूजा के नक्षत्र

चित्रा शतभिषा स्वाती हस्तो पुष्यः पुनर्वसुः।
रोहिणी रेवती मूलं श्रवणोत्तरफाल्गुनी॥ ३१॥
धनिष्ठा चोत्तराषाढ़ा भाद्रपदोत्तरान्विता।
अश्विनी मृगशीर्षञ्च अनुराधा तथैव च॥ ३२॥
वास्तुपूजनमेतेषु नक्षत्रेषु करोति यः।
सम्प्राप्नोति नरो लक्ष्मीमिति शास्त्रेषु निश्चयः॥ ३३॥

चित्रा, शतभिषा, स्वाती, हस्त, पुष्य पुनर्वसु, रोहिणी, रेवती, मूल, श्रवण, उ०फा०, धनिष्ठा, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, अश्विनी, मृगशिरा, अनुराधा—इन नक्षत्रों में जो वास्तुपूजन करता है, उस व्यक्ति को लक्ष्मी प्राप्त होती है। ऐसा शास्त्रों का निश्चय है॥ ३१-३३॥

गुरु-शुक्र के अस्त का परिहार

नित्ययाने गृहे जीर्णे प्राशने परिधानके।
वधूप्रवेशे माङ्गल्ये न मौढ्यं गुरुशुक्रयोः॥ ३४॥

प्रतिदिन की जानेवाली यात्रा (जिसमें गमन तथा प्रवेश लगातार होते रहते हैं) में, प्रवेश एवं यात्रा में, जीर्णगृह के प्रवेश में, अन्नप्राशन में, तथा मंगलकार्य (गीत-वादित्र आदि में गुरु-शुक्र के मौढ्य (अस्त-बाल-वृद्ध) होने का दोष नहीं होता है॥ ३४॥

गृहप्रवेश में लग्नशुद्धि

त्रिकोणकेन्द्रगैः सौम्यैः स्थिरे द्व्यङ्गे खलग्रहैः।
द्विकत्रिकोणकेन्द्राष्टवर्जितैः प्रविशेद् गृहम्॥ ३५॥

जब शुभग्रह केन्द्र तथा त्रिकोण (१-४-५-७-९-१०) में बैठे हों तथा स्थिर या द्विस्वभाव लग्नों (वृष-मिथुन, सिंह-कन्या, वृश्चिक-धनु, कुम्भ-मीन) में से कोई लग्न हो। पापग्रह द्वितीय, पंचम, नवम तथा अष्टमभाव को छोड़कर अन्यत्र भावों में बैठे हों, तब गृह में प्रवेश करना चाहिये॥ ३५॥
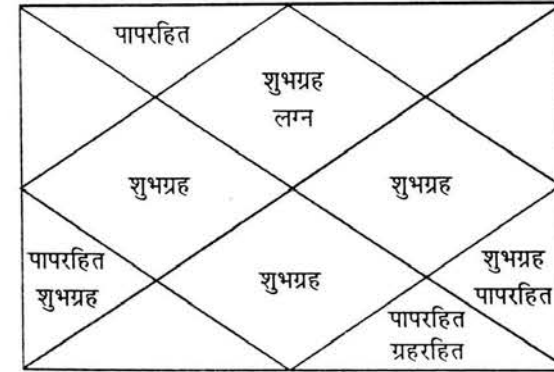
सूतिकागृह के प्रवेश में विशेष

अभिजिच्छ्रवणयोर्मध्ये प्रवेशे सूतिकागृहे।
नृपादीनां ब्राह्मणानां न विधेयं कदाचन॥ ३६॥

अभिजित् तथा श्रवण—इन नक्षत्रों में राजा लोगों तथा ब्राह्मण जातियों को सूतिका गृह में प्रवेश नहीं करना चाहिये॥ ३६॥

प्रवेश में निषिद्ध नक्षत्र

क्रूरयुक्तं क्रूरविद्धं मुक्तं क्रूरग्रहेण च।
यद् गन्तव्यं न तच्छस्तं त्रिविधोत्पातदूषितम्॥ ३७॥
लत्तया निहतं यच्च क्रान्तिसाम्येन दूषितम्।
प्रवेशे त्रिविधे त्याज्यं ग्रहणेनाभिदूषितम्॥ ३८॥
यावच्चन्द्रेण भुक्तं तद् ऋक्षे नैव तु शोभनम्।
जन्मभाद् दशमं कर्म सांघातार्क्षं तु षोडशं॥ ३९॥
अष्टादशं सामुदायं त्रयोविंशं विनाशकम्।
मानसं पञ्चविंशाख्यं नाचरेदेषु शोभनम्॥ ४०॥

१. जो नक्षत्र किसी क्रूरग्रह से युक्त हो अथवा क्रूरगृह से (सप्तशलाका चक्र में) विद्ध हो, उस नक्षत्र को गृहप्रवेश में त्याग देना चाहिये।

२. जिस नक्षत्र को किसी क्रूरग्रह ने भोगकर तुरन्त ही छोड़ा हो अथवा क्रूरग्रह उस नक्षत्र में जानेवाला हो, उस नक्षत्र को भी प्रवेश में त्यागना चाहिये।

३. जो नक्षत्र तीन प्रकार के उत्पातों (दिव्य-भौम तथा अन्तरिक्षजन्य) में से किसी के द्वारा दूषित हो, उसे भी त्यागना आवश्यक है; क्योंकि वह शुभ नहीं होता है॥ ३७॥

४. जो चन्द्र नक्षत्र किसी पापग्रह की लात से पीटा गया हो अथवा जो नक्षत्र क्रान्ति साम्य से दूषित हो, उसे त्रिविध प्रवेश में त्याग देना चाहिये।

५. जिस नक्षत्र पर सूर्यग्रहण अथवा चन्द्रग्रहण हो चुका हो, वह नक्षत्र भी त्रिविध प्रवेश में वर्जित है॥ ३८॥

६. ग्रहणादि से दूषित नक्षत्र पर जब तक चन्द्रमा रहे, तब तक उसमें प्रवेशादि न करें; क्योंकि वह शुभ नहीं होता है।

७. जन्म नक्षत्र से दशम नक्षत्र कर्म नक्षत्र होता है। जन्म से सोलहवीं संख्यावाला नक्षत्र संघात नक्षत्र होता है। जन्म नक्षत्र से अठारहवाँ नक्षत्र समुदाय नक्षत्र, तेईसवाँ वैनाशिक, तथा पच्चीसवाँ नक्षत्र मानस होता है अत: जिस समय कर्त्ता के जन्म नक्षत्र से प्रवेश नक्षत्र दसवाँ, सोलहवाँ, अठारहवाँ, तेईसवाँ अथवा पच्चीसवाँ हो तो उस नक्षत्र को भी गृहप्रवेशादि कर्म में त्यागना चाहिये॥ ३९-४०॥

विमर्श—इसको ताराबल कहते हैं। ताराबल देखकर ही गृहप्रवेश करना उचित है। गृहप्रवेश तथा अन्य प्रवेश में सप्तशलाका चक्र के अनुसार ही वेध देखना चाहिये। उस सप्तशलाका चक्र में रेखा के एक सिरे पर चन्द्रनक्षत्र हों तथा दूसरे सिरे पर पापग्रह हों, तब वह चन्द्रनक्षत्र (दिन नक्षत्र) क्रूरविद्ध होता है।

सप्तशलाका चक्र

ताराबल चक्र

१ जन्म तारा	२ सम्पत् तारा	३ विपत् तारा	४ क्षेम तारा	५ प्रत्यरि तारा	६ साधक तारा	७ बध तारा	८ मित्र तारा	९ अतिमित्र तारा	**ताराओं के नाम**
पहला नक्षत्र	दूसरा नक्षत्र	तीसरा नक्षत्र	चौथा नक्षत्र	पाँचवाँ नक्षत्र	छठा नक्षत्र	सातवाँ नक्षत्र	आठवाँ नक्षत्र	नौवाँ नक्षत्र	**जन्म या नाम नक्षत्र से प्रथम नवक**
दसवाँ	ग्यारहवाँ	बारहवाँ	तेरहवाँ	चौदहवाँ	पन्द्रहवाँ	सोलहवाँ	सत्रहवाँ	अठारहवाँ	**द्वितीय नवक**
उन्नीसवाँ	बीसवाँ	इक्कीसवाँ	बाईसवाँ	तेईसवाँ	चौबीसवाँ	पच्चीसवाँ	छब्बीसवाँ	सत्ताईसवाँ	**तृतीय नवक**
अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	शुभ	**फल**

गृह-प्रवेशादि में सौख्यप्रद योग

स्वोच्चसंस्थे गुरौ लग्ने शुक्रे वा वेश्मसंस्थिते।
यस्यात्रवेशो भवति तद्गृहं सौख्यसंयुतम्॥ ४१॥

जिस प्रवेश लग्न कुण्डली में लग्न में उच्च का गुरु (कर्क लग्न में) बैठा हो अथवा उच्च का शुक्र चतुर्थ (वेश्म) में स्थित हो तो ऐसे योग में गृहप्रवेश करने पर वह गृह सदैव सौख्ययुक्त रहता है॥ ४१॥

विमर्श—इस श्लोक में दो योग हैं। प्रथम योग कर्क लग्न में बनेगा, जबकि चरलग्न में प्रवेश वर्जित कहा है परन्तु कर्क में गुरु अपनी उच्चराशि में होने से अतीव शुभ फल करेगा और चर लग्न का दोष समाप्त हो जायेगा। इसमें पापग्रह त्रिषडाय में होना चाहिये।

दूसरा योग धनु लग्न में बनेगा; क्योंकि तब चतुर्थ में मीन राशि में शुक्र अपने उच्च में होगा साथ ही वह दिग्बली भी होगा। इसलिये विशेष शुभ फल देगा तथा घर में दूध-दही-मट्ठा-घी-फल-मेवा आदि की सम्पन्नता भी रखेगा।

प्रवेश में सम्पादाढ्य गृह का योग

स्वोच्चस्थलग्नगे सूर्ये चतुर्थे देवपूजिते।
यस्यात्र योगो भवति सम्पदाढ्यं गृहं भवेत्॥ ४२॥

यदि सूर्य उच्च का होकर लग्न में तथा गुरु उच्च का होकर चतुर्थ में हो तो इस योग में प्रवेश करने पर वह घर सम्पदा से युक्त रहता है॥ ४२॥

विमर्श—यहाँ भी दो ग्रहों की उच्चता से चरलग्न का दोष नहीं रहा है।

शत्रुविनाशक

गुरौ लग्नेऽस्तगे शुक्रे षष्ठेऽर्के लाभगो शनौ।
प्रवेशकाले यस्यायं योगः शत्रुविनाशदः॥ ४३॥

यदि गृह-प्रवेशकालीन कुण्डली में गुरु लग्न में, शुक्र सप्तम (अस्त) भाव में तथा शनि ग्यारहवें भाव में हो तो यह शत्रुनाशकर होता है॥ ४३॥

ऐश्वर्यप्रद गृहयोग

गुरुशुक्रौ च शिवके लाभगौ कुजभास्करौ।
प्रवेशो यस्य भवति तद्गृहं भूतिदायकम्॥ ४४॥

यदि गुरु तथा शुक्र चतुर्थ(शिवक) भाव में हों तथा सूर्य एवं मंगल ग्यारहवें भाव में हों तो इस योग में गृह-प्रवेश ऐश्वर्य (भूति) देता है॥ ४४॥

विमर्श—चतुर्थ स्थान जल (शिव) का स्थान होने से शिवक कहलाता है। इसी का अपभ्रंश हिबुक है।

शुभ ग्रहों की उच्चादि स्थिति का फल

एकोऽपि जीवज्ञ शशि सितानां स्वोच्चगः सुखे।
स्वभे वा तद्गृहं सौख्यदायकं लग्नगेऽपि वा॥ ४५॥

यदि गुरु-शुक्र-चन्द्र-बुध—इन चारो शुभग्रहों में से एक भी ग्रह स्वराशि-उच्चराशि का होकर लग्न में अथवा चतुर्थ भाव में बैठा हो तो भी गृहप्रवेश सुखदायक होता है॥ ४५॥

अष्टमस्थ चन्द्र से शुभयोगों का भङ्ग

अष्टमस्थे निशानाथे यदि योगशतैरपि।
तदा ते निष्फला ज्ञेया वृक्षा वज्रहता इव॥ ४६॥

यदि ऊपर कहे शुभयोगों में कोई एक या अधिक योग भले ही हों परन्तु उनके साथ यदि चन्द्रमा अष्टमभाव में बैठा हो तो वे गृह-प्रवेश के शुभयोग इसी प्रकार से नष्ट हो जाते हैं जैसे कि बिजली गिरने से वृक्ष नष्ट हो जाते हैं॥ ४६॥

भार्यानाशक योग

क्षीणचन्द्रोऽऽन्त्य षष्ठाष्टसंस्थितो लग्नस्तथा।
भार्याविनाशनं वर्षात् सौम्ययुक्ते त्रिवर्षतः॥ ४७॥

यदि क्षीण चन्द्रमा छठवें-आठवें या बारहवें भावों में से किसी में बैठा हो अथवा लग्न में बैठा हो तो गृहप्रवेश के एक वर्ष के उपरान्त भार्या का नाश हो जाता है। यदि लग्न में कोई शुभग्रह बैठा हो तो तीन वर्ष के उपरान्त भार्या नष्ट होती है॥ ४७॥

जन्म लग्न या राशि से अष्टमस्थ राशि लग्न की त्याज्यता

जन्मभादष्टमं स्थानं लग्नाद्वाथ तदंशकम्।
त्यजेच्च सर्वकर्माणि दुर्लभं यदि जीवितम्॥ ४८॥

१. जन्म की राशि से अभीष्ट कार्य के समय की राशि या लग्न यदि आठवीं हों तो जीवन की इच्छावाले को उसे त्याग देना चाहिये।

२. यदि जन्मराशि से अभीष्ट कार्य के समय का लग्न नवांश अथवा चन्द्र नवांश आठवाँ हो तो भी उसे त्यागना चाहिये॥ ४८॥

प्रवेश लग्न से अष्टमस्थ क्रूर ग्रहों का प्रभाव

प्रवेशलग्नान्निधने यः कश्चित् पापखेचरः।
क्रूरर्क्षे हन्ति वर्षार्द्धाच्छुभर्क्षे वाष्टवासरात्॥ ४९॥

यदि गृहप्रवेश की लग्न में अष्टम भाव में कोई भी पापग्रह यदि पापराशि में बैठा है तो प्रवेश कर्त्ता की एक वर्ष उपरान्त मृत्यु हो जाती है। यदि अष्टमस्थ पापग्रह शुभ राशि में हो तो उसकी मृत्यु आठ वर्ष में हो जाती है॥ ४९॥

गृहप्रवेश में वामार्क विचार

रन्ध्रात् पुत्रात् धनादायात् पञ्चस्वर्के स्थिते क्रमात्।
पूर्वाशादिमुखं गेहाद्विशेद्वामो भवेद्यतः॥ ५०॥

१. यदि प्रवेशकालिक लग्न से सूर्य ८, ९, १०, ११, १२ स्थानों में से किसी में भी हो तो पूर्व द्वारवाले गृह में प्रवेश करना शुभ होता है। २. यदि ५, ६, ७, ८, ९ स्थानों में सूर्य गृहप्रवेशकालिक लग्न से हो तो दक्षिण द्वारवाले गृह में प्रवेश करना शुभ होता है। ३. यदि प्रवेशकालीन लग्न से २, ३, ४, ५, ६ स्थानों में सूर्य स्थित हो तो पश्चिम द्वारवाले गृह में प्रवेश प्रशस्त होता है। ४. यदि प्रवेशकालीन लग्न से ११वें, १२वें, ९वें, दूसरे, तीसरे इन पाँच स्थानों में से किसी में भी सूर्य हो तो उत्तरद्वारीय गृह में प्रवेश करना शुभ होता है, यही वामार्क या वामरविक कहा जाता है॥ ५०॥

गृहप्रवेशकालीन वाम रवि चक्र

पूर्वद्वारीय गृह में प्रवेश के समय पर लग्न से सूर्य की स्थिति	दक्षिणद्वारीय गृह में प्रवेश के समय पर लग्न से सूर्य की स्थिति	पश्चिमद्वारीय गृह में प्रवेश के समय पर लग्न से सूर्य की स्थिति	उत्तरद्वारीय गृह में प्रवेश के समय पर लग्न से सूर्य की स्थिति
अष्टम भाव / नवम भाव /दशम भाव / एकादश / द्वादश में	पञ्चम भाव / षष्ठ / सप्तम / अष्टम या नवम में	द्वितीय भाव / तृतीय भाव / चतुर्थ भाव / पंचम भाव / षष्ठ भाव में	एकादश / द्वादश / प्रथम / द्वितीय या तृतीय में

गुरुदेवाग्निगोविप्रान् अग्रे कृत्वा गृहे विशेत्।
सदीपं पूर्णकलशं सपत्नीकं समङ्गलम्॥ ५१॥

गुरु, पुरोहित, देव, अग्नि, गो, विप्र, दीप, जलपूर्ण कलश को आगे करके पत्नीसहित गृहस्वामी को मंगलगीतादि के साथ गृह में प्रवेश करना चाहिये॥ ५१॥

गृहप्रवेश में कलशचक्रशुद्धिचक्र

सूर्य नक्षत्र	कलशचक्र में शुद्ध चन्द्रनक्षत्र													
अश्वि. भर. कृ. रो.	आर्द्रा पुन. पुष्य आश्ले.	पुन. पुष्य आश्ले. म.	पुष्य आश्ले. म. पू.फा.	आश्ले. म. पू.फा. उ.फा.	म. पू.फा. उ.फा. ह.	पू.फा. उ.फा. ह. चि.	उ.फा. ह. चि. स्वा.	ह. चि. स्वा. वि.	श्रव. ध. श. पू.भा.	ध. श. पू.भा. उ.भा	शत. पू.भा. उ.भा. रे.	पू.भा. उ.भा. रे. अश्वि.	उ.भा. रे. अश्वि. भ.	रे. अश्वि. भ. कृ.
मृग. आर्द्रा. पुन. पुष्य	मघा. पू.फा. उ.फा. ह	पू.फा. उ.फा. ह. चि.	उ.फा. ह. चि. स्वा.	ह. चि. स्वा. वि.	चि. स्वा. वि. अनु.	स्वा. वि. अनु. ज्ये.	वि. अनु. ज्ये. मृ.	अनु. ज्ये. मृ. पू.षा.	उ.भा. रे. अश्वि. भ.	रे. अश्वि. भ. कृ.	अश्वि. भ. कृ. रो.	भ. कृ. रो. मृ.	कृ. रो. मृ. आर्द्रा	रो. मृ. आर्द्रा पुन.
आश्ले. मघा. पू.फा. उ.फा.	चि. स्वा. वि. अनु.	स्वा. वि. अनु. ज्ये.	वि. अनु. ज्ये. मू.	अनु. ज्ये. मू. पू.षा.	ज्ये. मू. पू.षा. उ.षा.	मृ. पू.षा. उ.षा. श्रव.	पू.षा. उ.षा. श्रव. ध.	उ.षा. श्रव. ध. श.	कृ. रो. मृ. आर्द्रा	रो. मृ. आर्द्रा पुन.	मृ. आर्द्रा पुन. पुष्य	आर्द्रा पुन. पुष्य आश्ले.	पुन. पुष्य आश्ले. म.	पुष्य आश्ले. मघा. पू.फा.
हस्त. चित्रा स्वा. विशा.	ज्ये. मू. पू.षा. उ.षा.	मू. पू.षा. उ.षा. श्रव.	पू.षा. उ.षा. श्रव. ध.	उ.षा. श्र. ध. श.	श्रव. ध. श. पू.भा.	ध. श. पू.भा. उ.भा.	श. पू.भा. उ.भा. रे.	पू.भा. उ.भा. रे. अश्वि.	पुन. पुष्य आश्ले. म.	पुष्य आश्ले. म. पू.फा.	आश्ले. म. पू.फा. उ.फा.	म. पू.फा. उ.फा. ह.	पू.फा. उ.फा. ह. चि.	उ.फा. ह. चि. स्वा.
अनु. ज्ये. मू. पू.षा.	श्रव. ध. श. पू.भा.	ध. श. पू.भा. उ.भा.	श. पू.भा. उ.भा. रे.	पू.भा. उ.भा. रे. अश्वि.	उ.भा. रे. अश्वि. भ.	रे. अश्वि. भ. कृ.	अश्वि. भ. कृ. रो.	भ. कृ. रो. मृ.	पू.फा. उ.फा. ह. चि.	उ.फा. ह. चि. स्वा.	ह. चि. स्वा. वि.	चि. स्वा. वि. अनु.	स्वा. वि. अनु. ज्ये.	वि. अनु. ज्ये. मू.
उ.षा. श्रव. ध. शत.	उ.भा. रे. अश्वि. भ.	रे. अश्वि. भ. कृ.	अश्वि. भ. कृ. रो.	भ. कृ. रो. मृ.	कृ. रो. मृ. आर्द्रा.	रो. मृ. आर्द्रा. पुन.	मृ. आर्द्रा. पुन. पुष्य	आर्द्रा. पुन. पुष्य आश्ले.	स्वा. वि. अनु. ज्ये.	वि. अनु. ज्ये. मू.	अनु. ज्ये. मू. पू.षा.	ज्ये. मू. पू.षा. उ.षा.	मू. पू.षा. उ.षा. श्रव.	पू.षा. उ.षा. श्रव. ध.
पू.भा. उ.भा. रेव.	कृ. रो. मृ.	रो. मृ. आर्द्रा.	मृ. आर्द्रा. पुन.	आर्द्रा. पुन. पुष्य	पुन. पुष्य आश्ले.	पुष्य आश्ले. म.	आश्ले. म. पू.फा.	म. पू.फा. उ.फा.	मू. पू.षा. उ.षा.	पू.षा. उ.षा. श्रव.	उ.षा. श्रव. ध.	श्रव. ध. श.	ध. श. पू.भा.	श. पू.भा. उ.भा.

विमर्श—ज्योतिष के अन्य ग्रन्थों में एक कलशशुद्धिचक्र भी रहता है, अतः उपयोगी होने से उसे यहाँ दिया जा रहा है।

शयनसम्बन्धी विचार

सौम्यं प्रत्यक्छिरो मृत्युर्वंशाद्यारुक्सुतार्तिदा।
प्राक्छिरा शयने विद्याद् दक्षिणे सुखसम्पदः॥५२॥
पश्चिमे प्रबलां चिन्तां हानिं मृत्युं तथोत्तरे।
स्वगेहे प्राक्छिराः सुप्याच्छ्वशुरे दक्षिणा शिराः॥५३॥
प्रत्यक्छिराः प्रवासे तु नोदक्सुप्यात्कदाचन।
यदि सुप्यात्तदा रोगो शोको उत्पद्यते चिरात्॥५४॥

१. उत्तर अथवा पश्चिम को शिर करके कभी नहीं सोना चाहिये। इस प्रकार सोने (शयन करने) वालों तथा उनके पुत्र एवं परिवारादि को पीड़ा होती है।

२. शयन में पूर्वदिशा की ओर अथवा दक्षिण की ओर शिर करके सोने से सुख-सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।

३. पश्चिम की ओर सिरहाना रखने से प्रबल चिन्ता होती है।

४. उत्तर की ओर सिरहाना करने से हानि तथा मृत्यु होती है।

५. अपने घर में पूर्व को शिर करके तथा ससुराल में दक्षिण में शिर करके सोना उचित है।

६. यात्रा में पश्चिम की ओर शिर करके सोना उत्तम होता है।

७. परन्तु उत्तर की ओर सिर तथा दक्षिण की ओर पैर करके तो कभी भी कहीं भी नहीं सोना चाहिये। यदि सोया जाता है तो शयनकर्त्ता को कालान्तर में रोग-शोकादि प्राप्त होते हैं॥५२-५४॥

शय्या तथा आसनादि के लक्षण

कथयामि समासेन दारुकर्म क्रमेण च।
आय शुद्धा तथा कार्या यथा गोहरि कुञ्जराः॥५५॥
तथैव दोलिकायानं यथा शोभं विधीयते।
प्रमाणं शृणु विप्रेन्द्र यत्प्राप्तोऽहं बृहद्रथात्॥५६॥
कथयामि तथा शय्यां येन सौख्यमवाप्नुयात्।

अब मैं संक्षेप में लकड़ी से सम्बन्धित कार्य आदि का वर्णन क्रमशः करता हूँ। शय्या आदि के निर्माण में आयशुद्धि का ध्यान रखना आवश्यक है। वृष आय, सिंह आय आदि की शुद्धि के साथ पालकी, यान आदि शोभा के अनुसार बनायें।

हे विप्रेन्द्र! मुझे इन वस्तुओं की जो माप बृहद्रथ ने बतायी है, उसे कहता हूँ। साथ ही मैं शय्या-निर्माण की विधि भी कहता हूँ, जिससे सुख की प्राप्ति होती है॥५५-५६½॥

उपस्कर में उपयोगी वृक्षों के काष्ठ

अशनस्पन्दनचन्दनहरिद्रुसुरदारुतिन्दुकीशालाः ॥५७॥
काश्मर्यार्जुनपद्मकशाकाम्राः शिंशिपा च शुभाः।

अशन (विजयसार), स्पन्दन, चन्दन, हल्दुआ, देवदारु , तेंदू, शाल, गंभारी, अर्जुन, पद्मक, शाक (सागोन), आम्र तथा शीशम का काष्ठ शय्या तथा उपस्कर के लिये शुभ होता है॥५७½॥

उपस्कर में निषिद्ध काष्ठ

अशनिजलानिल हस्तिप्रपातिता मधुविहङ्गकृतनिलया॥५८॥
चैत्यश्मशानपथिजार्धशुष्कवल्लीनिबद्धाश्च ।
कण्टकिनो येस्युर्महानदीसङ्गमोद्भवा ये च॥५९॥
सुरप्रासादगा ये च याम्यपश्चिमदिग्गताः।
प्रतिषिद्धवृक्षजा ये ये चान्येऽपि अनेक वा॥६०॥
त्याज्या ते दारवस्सर्वे शय्याकर्मणि कर्मवित्।
कृते कुलविनाशः स्यात् व्याधिः शत्रोर्भयानि च॥६१॥

जो वृक्ष बिजली की मार से गिर गया हो, जो जल के प्रवाह से गिर गया हो, जो वायु के प्रवाह से गिर गया हो, जिसे हाथी ने गिरा दिया हो, जिस पर शहद के छत्ते लगे हों, जो वृक्ष किसी चैत्य, श्मशान एवं मार्ग के किनारे खड़े हों, जिन पर सूखी बेलें लिपटी हुई हों, जो काँटेदार हों, जो बड़ी नदियों के संगम में खड़े हों। जिन पर पक्षियों के घर हों, जो देवालय में खड़े हों, जो किसी गाँव की दक्षिण दिशा या पश्चिम दिशा में उत्पन्न हुए हों, जो अन्य अनेक वृक्ष प्रतिषेध किये गये हों, उनसे उत्पन्न काष्ठ हों—ये सभी काष्ठ शय्या-निर्माण में उपयोग में न लाये जायँ—यह बात वास्तुकर्म का ज्ञान रखनेवाले को ध्यान में रखनी चाहिये॥५८-६०½॥

जो इन निषिद्ध काष्ठों का उपयोग शय्या के निर्माण में करता है, उसके कुल का विनाश होता है। वह व्याधियों से पीड़ित होता है तथा शत्रुओं से उसे भय उत्पन्न होता है॥६१॥

विमर्श—चैत्य, श्मशान, मार्ग आदि के वृक्ष सार्वजनिक स्थान के होते हैं, यहाँ अनेक लोगों को छाया मिलती है तथा इन पर जीव-जन्तुओं का निवास होता है, इन वृक्षों के कट जाने के उपरान्त वे जन्तु निराश्रित होकर नष्ट हो जाते हैं, जिसका दुष्प्रभाव वातावरण पर पड़ता है। इस पाप का अभिशाप भोगना पड़ता है। यह अनुभवसिद्ध बात है। गाँवों के जो लोग चोरी छिपे जंगल से वृक्षों का काटते रहते हैं, उनके परिवारों पर विपत्तियों के पहाड़ों को टूटते हुए देखा जा सकता है।

पूर्वतः छिन्नकाष्ठ की परीक्षा का कथन

पूर्वच्छिन्नं यत्र दारुभवेदारम्भयेत्ततः।
शकुनानि परीक्षेत् कुर्यात्तस्य परिग्रहम्॥६२॥
श्वेतपुष्पाणि दन्त्यश्च दध्यक्षतफलानि च।
पूर्णकुम्भाश्च रत्नाश्च माङ्गल्यानि च यानि च॥६३॥
तानि दृष्ट्वा प्रकुर्वीत् अन्यानि शकुनानि च।

जहाँ खाट बनवाने के लिये स्वयं लकड़ी न कटवाई हो, अपितु पूर्व से ही कटी रखी हो वहाँ उसका उपयोग करने से पूर्व शकुनों द्वारा उसके शुभाशुभ होने की परीक्षा कर लेनी चाहिये।

श्वेत पुष्प, हाथी, दही, अक्षत, फल, जलपूर्ण कुम्भ, रत्न, मांगलिक पदार्थ, मंगल गीत आदि का श्रवण—ये सब शुभ शकुन होते हैं, इनको देख-सुनकर ही उस काष्ठ से शय्या आदि का निर्माण प्रारम्भ करना चाहिये॥६२-६३½॥

शय्यादि के अङ्गुलादि मानों का कथन

यवाष्टकानामुदरे वितुषैरङ्गुलं स्मृतम्॥६४॥
तेन मानेन स्थपतिः शय्यादीनां प्रकल्पयेत्।
शताङ्गुला च महती शय्या स्याच्चक्रवर्तिनाम्॥६५॥
अष्टांशहीनमस्यार्द्धं विस्तारं परिकीर्तितम्।
आयामस्त्र्यंशको भागः पादोच्छ्रायः सकुक्षिकः॥६६॥
सामन्तानां सा भवति सा षडूना तथैव च।
कुमाराणाञ्च सा प्रोक्ता दशोना चैव मन्त्रिणाम्॥६७॥
त्रिषट्कोना बलेशानां विंशोना च पुरोधसाम्।
षडंशहीनमस्यार्धं विस्तारपरिकीर्तितम्॥६८॥
आयामस्त्र्यंशको भागस्त्र्यंशहीनस्तथैव हि।
पादोच्छ्रायश्च कर्त्तव्यश्चतुस्त्रिद्व्यङ्गुलैः क्रमात्॥६९॥
सर्वेषामेव वर्णानां सार्द्धहस्तत्रयं भवेत्।
एकाशीत्यङ्गुलैः कार्या शय्या देवविनिर्मिताः॥७०॥

तुषरहित जौ के मध्यभाग से आठ गुना एक अंगुल होता है। निर्माता स्थपति (बढ़ई=वर्धकी) को उसी मान (अंगुलात्मक मान) ही से शय्या (खाट=खट्वा) का निर्माण करना चाहिये। बड़ी शय्या का मान एक सौ अंगुल लम्बाई का होता है। एक सौ अंगुल की शय्या एक चक्रवर्ती राजा की होती है। लम्बाई के आधे में १/८ भाग कम करके उस बड़ी शय्या की चौड़ाई (अर्थात् १००/८ अंगुल = साढ़े बारह अंगुल कम अर्थात् ४३¾ अंगुल की चौड़ाई) उस महती शय्या की होनी चाहिये तथा चौड़ाई का

३/४ उस खाट के पावों की ऊँचाई होनी चाहिये अर्थात् खाट के पाए की ऊँचाई १४ अंगुल ४ जौ के लगभग होनी चाहिये॥ ६४-६६॥

सामन्तों की शय्या उस महती शय्या से ६ अंगुल कम लम्बी अर्थात् ९४ अंगुल की होती है। सामन्तों से दश अंगुल कम राजकुमारों तथा मन्त्रियों की शय्या होती है। अठारह अंगुल कम (८२ अंगुल) सेनापतियों तथा पुरोहितों की होती है। इस लम्बाई में छह भाग कम करके उसका आधा खाट की चौड़ाई होती है। पादों की ऊँचाई सामन्तादि के लिये क्रमशः ४-३-२ अंगुल कम कर देनी चाहिये॥ ६७-६९॥

सभी वर्णों की शय्या साढ़े तीन हाथ (८४ अंगुल) की होनी चाहिये तथा ८१ अंगुल की शय्या देव विनिर्मित कहलाती है॥ ७०॥

शय्यादि में विभिन्न वृक्षों के काष्ठ के गुण

असनो रोगहर्त्ता च पित्तकृत्तिन्दुकोद्भवः।
रिपुहा चन्दनमयो धर्मायुर्यशदायकाः॥ ७१॥
शिंशिपावृक्षसम्भूतः समृद्धिं कुरुते महान्।
यस्तु पद्मकपर्यङ्को दीर्घमायुः श्रियं सुतम्॥ ७२॥
वित्तं बहुविधं धत्ते शत्रुनाशं तथैव च।
शालः कल्याणदः प्रोक्तः शाकेन रचितस्तथा॥ ७३॥
केवलं चन्दने नैव निर्मितं रत्नचित्रितम्।
सुवर्णगुप्तमध्यासं पर्यङ्कं पूज्यते सुरैः॥ ७४॥
अनेनैव समायुक्ता शिंशिपा तिन्दुकीति च।
शुभासनं तथा देवदारु श्रीपर्णिनापि वा॥ ७५॥
शुभदौ शाककालौ तु परस्परयुतौ पृथक्।
तद्वत् पृथक् प्रशस्तौ हि कदम्बकहरिद्रकौ॥ ७६॥

असन (विजय सार) के पलंग पर शयन करने से रोग दूर होता है। तेंदू के काठ से बना पलंग पित्तकारक होता है। चन्दन से निर्मित पर्यङ्क शत्रुनाशक तथा धर्म, आयु एवं यशदायक होता है। सीसम के काठ से निर्मित शय्या महान् आर्थिक समृद्धि करता है। पद्मक (पदमाख) के काठ से निर्मित जो पलंग होता है, वह दीर्घायु, लक्ष्मी तथा पुत्रदायक होता है॥ ७१-७२॥

अनेक प्रकार से धनसमृद्धि तथा शत्रुओं का नाश भी पद्मक की खाट करती है। शाल तथा साखू से बनायी गयी खाट कल्याणकारक होती है॥ ७३॥

केवल चन्दन मात्र के काष्ठ से निर्मित तथा रत्नजटित, मध्य भाग में सुवर्णमण्डित पलंग की पूजा देवता लोग भी करते हैं॥ ७४॥

चन्दन के समान ही अकेले सीसम तथा तेंदू से बनी शय्या का फल होता है। विजयसार, देवदारु, श्रीपर्णी आदि से निर्मित शय्या भी शुभ होती है। शाक तथा शाल

दोनों से मिलकर बनी शय्या (तख्त) भी शुभ होती है तथा ये अलग-अलग भी शुभ होते हैं, इसी प्रकार कदम्ब तथा हल्दुआ वृक्षों के काष्ठ से निर्मित शय्याएँ भी शुभफलप्रद होती है॥ ७५-७६॥

निषिद्ध वृक्षों तथा मिश्रित काष्ठों की शय्या का फल

सर्वकाष्ठेन रचितो न शुभः परिकल्पितः।
आम्रेण वा प्राणहरो चासनो दोषदायकाः॥ ७७॥
अन्येन सहितो ह्येव करोति धनसंक्षयम्।

अनेक काष्ठों को मिलाकर बनाया गया पलंग शुभ नहीं होता है। आम एवं विजयसार दोनों को मिलाकर बना पलंग दोषप्रद होता है। आम तथा अशन वृक्ष के काष्ठों के साथ अन्य काष्ठों का मिश्रण धन की हानि करता है॥ ७७-७७१/२॥

फलदार वृक्षों के पलंग तथा आसन का फल

आम्रोदुम्बरवृक्षाणां चन्दनस्पन्दनाः शुभाः॥ ७८॥
फलिनां तु विशेषेण फलदं शयनासनम्।
गजदन्ताश्च सर्वेषां योगे शुभफलाः स्मृताः॥ ७९॥
प्रशस्तं चन्दनं तेन कार्योऽलङ्कार एतयोः।
दन्तस्य मूलपरिधीव्यायतं प्रोह्य कल्पयेत्॥ ८०॥
शय्याफलकमूले तु चिह्नश्चासनकोणके।
न्यूनङ्किरिचराणान्तु किञ्चित् किञ्चित् प्रशस्यते॥ ८१॥

आम, गूलर, चन्दन तथा स्पन्दन के वृक्ष शुभ होते हैं॥ ७८॥

विशेषकर फलदार वृक्षों के शयन तथा आसन शुभ होते हैं। इन सबके साथ यदि हाथीदाँत का उपयोग भी किया जाय तो शुभफलदायक होता है॥ ७९॥

अलङ्करादि के निर्माण हेतु चन्दन प्रशस्त होता है। उस शय्या के फलक के मूल में आसन तथा कोण का चिह्न होना चाहिये उसके जो पीठक आदि होते हैं, उनमें भी थोड़ा बहुत चिह्न आदि होना चाहिये तो अच्छा रहता है॥ ८०-८१॥

शुभाशुभ शकुन

श्रीवृक्षा वर्धमानैश्च ध्वजं छत्रं च चामरम्।
छेदे दृष्टे तु ह्यारोग्यं विजयं धनवृद्धिदम्॥ ८२॥
प्रहरणाभे जयो ज्ञेयो नन्द्यावर्त्ते लभेन्महीम्।
लोष्ठे तु लब्धपूर्वस्य देशस्याप्तिर्भविष्यति॥ ८३॥
स्त्रीरूपेऽर्थनाशः स्याद् भृङ्गराजे सुतस्य च।
लाभो कुम्भे निधिप्राप्तिर्यात्रा विघ्नश्च दण्डके॥ ८४॥

कृकलासभुजङ्गाभे दुर्भिक्षं वानरेण च।
गृध्रोलूकश्येनकाकसदृशो मकरो महान्॥ ८५॥
पाशे बाधक बन्धे वा मृत्युर्जनविपद् भवेत्।

श्रीवृक्ष तथा वर्धमान् वृक्ष के काष्ठ से ध्वज, छत्र तथा चामर बनवाना उत्तम होता है। इनके छेदन के समय यदि इनमें ध्वज, छत्र, चामर आदि का चिह्न अंकित दिखाई पड़े तो आरोग्य, विजय तथा धन की वृद्धि होती है। यदि शस्त्र का चिह्न दिखे तो जय होती है। नन्द्यावर्त्त का चिह्न होने पर स्वामी को पृथ्वी का लाभ होता है। यदि लोष्ठ का चिह्न दिखे तो देश की प्राप्ति (चुनाव आदि में विजय) होती है। स्त्रीरूप दिखने पर धन की हानि होती है। भृङ्गराज (गंगासागर या झारी) के आकार दिखने पर पुत्र का लाभ होता है। कुम्भ (घड़ा) दिखने पर निधि की प्राप्ति होती है। दण्डक (लाठी या डण्डा) का चिह्न दिखने पर यात्रा में विघ्न होता है। कृकलास (करकेंटा=गिरगिट) के दिखने पर तथा सर्पाकृति दिखने पर अथवा वानरादि की आकृति दिखने पर दुर्भिक्ष होता है। गीध, उल्लू, बाज, कौवा आदि के समान चिह्न दिखने पर, बड़े मगरमच्छ, पाश, बाधक (Bariate) तथा बन्ध (बांधन या बंधन) का चिह्न दिखने पर मृत्युभय एवं जनोपद्रव होता है॥ ८२-८५½॥

रक्तस्नुते च कृष्णे चाशावे दुर्गन्धिवान्भवेत्॥ ८६॥
शुक्लैः समैः सुगन्धैश्च स्निग्धैश्छेदः शुभावहः।
अशुभा च शुभाये च छेदास्ते शयने शुभाः॥ ८७॥

यदि शय्या के लिये काष्ठ का संग्रह करने पर रक्तस्नात, कृष्ण अथवा शवगन्धी काष्ठ हो तो अशुभ होता है।

यदि उसके काटने पर शुक्ल समान एवं सुगन्धित छेदन हो तो शुभ जानना चाहिये। इस प्रकार से शय्या के काठ की शुभाशुभ परीक्षा उसके चिह्नादि द्वारा करनी चाहिये॥ ८६-८७॥

शय्यापाद के काष्ठ के शुभाशुभ शकुन

ईशादिगो प्रदिक्षिण्यात् प्रशस्तमथवा तथा।
अपसव्ये दिक्त्रये च भयं भवति भूतजम्॥ ८८॥

काष्ठ का छेदन करते समय यदि ईशानादि दिशाओं में प्रदक्षिण क्रम से छेद या कष्ट हो जाय तब तो शुभ होता है, अन्यथा यदि छेद अपसव्यक्रम से हो तो भूतादि-जन्यभय होता है॥ ८८॥

एकेन वा विशरणे वैकल्यं पादतः शुभम्।
द्वाभ्यां न तीर्यते वातं त्रि चतुः क्लेशबन्धदौ॥ ८९॥
सुषिरे वा विवर्णे वा ग्रन्थौ पादे शरे तथा।
व्याधिः कुम्भेऽथवा पादे ग्रन्थिर्वदनरोगदा॥ ९०॥

कुम्भाद्यभागे जङ्घायां जङ्घारोगं तथा भवेत्।
तस्यश्चाधो पादाधो वा द्रव्यनाशकरः परः॥ ९१॥
सुरदेशे यदा ग्रन्थिः खुराणां पीडनं भवेत्।
शिराशीर्षत्रिभागसंस्थोऽपि न शुभप्रदः॥ ९२॥

यदि एक ही वार के कुल्हाड़ी के प्रहार से पाद निर्माण हेतु काष्ठ में विकलता हो जाये तो शुभ हो जाता है द्वितीय वार में कटने पर वायु का अनुलोमन उस शय्या पर शयन करनेवाले के शरीर में नहीं होता है। तीन से अधिक वार में पादहेतु काष्ठ कटकर अलग हो तो क्लेश तथा बन्धकारक होता है। यदि वह काष्ठ सुषिर (स्पंज की भाँति छेदवाला) हो अथवा गाँठदार या विवर्ण हो तो अथवा उस काष्ठ में कोई शर दिखाई पड़े तो वह पाद (चारपाई का पैर) अथवा कुम्भ रोगकारक होता है॥ ८९-९०॥

यदि कुम्भ के ऊपरी भाग या जंघा में छिद्र हो तो रोग होता है। यदि नीचे छिद्र हो तो धनहानि होती है। उसके खुर भाग (बिलकुल नीचे का भाग जो भूमि पर रखा रहता है) में ग्रन्थि हो तो शयनकर्त्ता के पैर के तलुवों में पीड़ा होती है। यदि शिरा (सिरहाने) के त्रिभाग में भी ग्रन्थि आदि हो तो भी शुभ नहीं होती है॥ ९१-९२॥

छिद्रों के भेद

निष्कुटश्चाथ कोलाख्यं धृष्टिनेत्रञ्च वत्सकम्।
कोलकं बन्धुकं चैव संक्षेपश्छिद्रकस्य तु॥ ९३॥
घटवत् सुषिरश्चैव सङ्कटाख्यश्च निष्कुटम्।
छिद्रं निःपावनीलश्च कोलाख्यं तद् बुधैः स्मृतम्॥ ९४॥
विषमं धृष्टिनयनं वैवर्ण्यं मध्यदीर्घकम्।
वामावर्त्ते च भिन्नञ्च यथावद् वत्सनाभकम्॥ ९५॥
कोलकं कृष्णवर्णञ्च बन्धुकं यद् भवेद् द्विधाः।
दारं सवर्णछिद्रञ्च तथा पापं प्रकीर्तितम्॥ ९६॥

निष्कुट, कोलाख्य, धृष्टिनेत्र, वत्सक, कोलक तथा बन्धुक—ये संक्षेप में काष्ठ में होनेवाले छेदों के भेद होते हैं॥ ९३॥

जो छेद घड़े-जैसे आकार का तथा सुषिर होता है, उसे सङ्कट तथा निष्कुट कहा जाता है। जो छिद्र अपवित्र तथा नीलवर्ण का होता है, उसे बुद्धिमान् जन कोलाख्य कहते हैं॥ ९४॥

जो छिद्र विषम होता है, उसे धृष्टिनेत्र (धृष्टि नयन) कहते हैं। जो विवर्ण तथा मध्य में लम्बा होता है तथा वामावर्त्त से भेदित हो, उसे वत्सक (वत्सनाभक) कहते हैं॥ ९५॥

कोलक नामक छिद्र कृष्णवर्ण का होता है तथा बन्धुक छेद दो प्रकार का होता है। एक तो काष्ठ के समान वर्ण का, उसे दार छिद्र कहते हैं। दूसरा कृष्णवर्ण का होने से पाप कहा जाता है॥ ९६॥

छिद्रों के पृथक्-पृथक् फल

निष्कुटे द्रव्यनाशः स्यात्कोलाख्ये कुलनाशनम्।
शस्त्राद् भयं शूकरे च वत्सनाभं गदप्रदम्॥ ९७॥
कालबन्धूकसंज्ञश्च कीटैर्वर्धनशोभनम्।

निष्कुट नामक छिद्र से द्रव्यनाश होता है, कोलाख्य से कुल का नाश, धृष्टिनेत्र (शूकर) से शस्त्रभय, तथा वत्सनाभ से रोग होता है। जो काल तथा बन्धू के नामक दो भेदों का छिद्र होता है वह कीटों की वृद्धि से बनता है तथा शुभ नहीं होता है॥ ९७-९७½॥

शय्यासनादि में लगे काष्ठ का फल

सर्वग्रन्थियुतं यच्च दारु सर्वत्र नो शुभम्॥ ९८॥
एकद्रुमेणधान्यं स्याद् वृक्षद्वयविनिर्मितम्।
धन्यं त्रिभिश्च पुत्राणां वृद्धिदं परिकीर्तितम्॥ ९९॥
अर्थं यशश्चतुर्भिश्च पञ्चत्वं पञ्चभिः स्मृतम्।
षट्सप्तरचिते काष्ठे कुलनाशो भवेद् ध्रुवम्॥ १००॥

यदि शय्या एवं आसन (तखत=Bed) में यदि पूरा काठ गाँठ-गठीला हो तो शुभ नहीं होता है॥ ९८॥

यदि एक वृक्ष का काष्ठ आसन या खाट में प्रयुक्त हो तो धान्यकारक, यदि दो वृक्षों की लकड़ी से पलंग का निर्माण हो तो वह धन्य होता है। तीन वृक्षों के काष्ठ से निर्मित पलंग पुत्रों की वृद्धि करनेवाला कहा गया है॥ ९९॥

चार प्रकार के काष्ठ से अर्थ तथा यश की प्राप्ति, परन्तु पाँच वृक्षों के काष्ठ से निर्मित खाट से पञ्चत्व (मृत्यु) तथा छह वृक्षों के काष्ठ से बने पलंग पर शयन करने से निश्चित ही कुल का नाश होता है॥ १००॥

वृक्ष शरीर के अंगों का कथन

शिरोमूलञ्च वृक्षाणां अग्रे पादा प्रकीर्तिताः।
अनारण्ये चन्दने तु यतो मूलं ततो शिरः॥ १०१॥
इति प्रोक्तं मया विप्राः शयनासनलक्षणम्।
भङ्गे च दोषाः कथिताः स्वामिना सहितेन च॥ १०२॥

वृक्षों के शरीर के अंगों को इस प्रकार जानना चाहिये। वृक्षों के ऊपरी भाग को शिर तथा उनकी मूल (जड़) को पाद (पैर) कहते हैं। परन्तु चन्दन की लकड़ी जो वन के बिना ग्राम या नगर में हो तो उसमें जहाँ शिर वहीं पाद भी मान लेना चाहिये। हे विप्रो! इस प्रकार मैंने शयन एवं आसन के लक्षण कहे तथा उनके भंग के दोषों का प्रभाव उनके स्वामी सहित क्या होता है, इसे कहता हूँ॥ १०१-१०२॥

शय्यासनादि के भङ्ग का फल

पादभङ्गे मूलनाशमरणौ धनसंक्षयः।
शीर्षे तु मरणं विद्यात् पार्श्वे हानिर्महान् भवेत्॥ १०३॥

यदि आसन या पलङ्ग के पैर टूट जायें तो मूल का नाश होता है। यदि अरणि (खड़ी लम्बाई में बीच का डण्डा) भंग हो तो धन की हानि होती है। शिरोभाग में भग्न होने पर मृत्युभय तथा पार्श्व भंग होने पर महान् हानि होती है॥ १०३॥

गृहप्रवेश में कुम्भचक्र का विचार

घटाकारं लिखेच्चक्रं रविधिष्ण्यक्रमेण च।
शुद्धे शुभदिने चैव तां निशि विन्यसेत्॥ १०४॥
मुखैकं दिक्षु चत्वारि सगर्भेऽग्नि गुदे गले।
एवं चक्रं समालेख्यं प्रवेशार्थं सदा बुधैः॥ १०५॥
अग्निनाशो मुखे प्रोक्तं उद्वासः पूर्वतो भवेत्।
दक्षिणे बहुलाभश्च श्रीलाभो पश्चिमे तथा॥ १०६॥
उत्तरे कलहश्चैव गर्भे सर्वविनाशनम्।
स्थिरता च गुदे कण्ठे कलशस्य परिकीर्तितः॥ १०७॥

सूर्य नक्षत्र से गृहप्रवेश हेतु चयन किये गये दिन नक्षत्र (चन्द्र नक्षत्र) तक कलश के आकार का एक चक्र बनाकर स्थापित करे। उसको किसी शुभ दिन की रात्रि में बनाकर रख देना चाहिये। कलश के मुख में एक नक्षत्र, पूर्व में ४, दक्षिण में ४, पश्चिम में ४, उत्तर में ४, गर्भ में ४, गुद (उदर) में २ तथा कण्ठ में ३। इस प्रकार सत्ताईस नक्षत्रों का न्यास करना चाहिये।

यदि प्रवेश का नक्षत्र कण्ठ में पड़े तो गृह में अग्निभय होता है। यदि पूर्व के नक्षत्रों में हो तो उद्वासन हो अर्थात् वह घर छोड़ना पड़ता है। यदि दक्षिण में हो तो लाभ होता है, पश्चिम में लक्ष्मीप्राप्ति, उत्तर में कलह, गर्भ में सर्वविनाश, उदर में स्थिरता तथा कण्ठ में भी स्थैर्य होता है॥ १०४-१०७॥

गृहप्रवेश कलश चक्र (सूर्य नक्षत्र से चन्द्रर्क्ष तक)

मुख	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	गर्भ	गुद या उदर	कण्ठ	**कलश के अंग**
१	४	४	४	४	४	३	३	**न्यस्त नक्षत्र संख्या**
अग्निभय	उद्वसन	बहुलाभ	श्रीलाभ	क्लेश कलह	विनाश	स्थिरता	स्थिरता	**गृहप्रवेश का फल**

सुगम रूप में कलश चक्र

सूर्य-नक्षत्र	कलश-चक्र में शुद्ध चन्द्र नक्षत्र													
१. अश्विनी	आर्द्रा	पुन.	पुष्य	श्ले.	म.	पू.फा.	उ.फा.	हस्त	श्रवण	धनि.	शत.	पू.भा.	उ.भा.	रेवती
२. भरणी	पुन.	पुष्य	श्ले.	मघा	पू.फा.	उ.फा.	ह.	चि.	धनि.	शत.	पू.भा.	उ.भा.	रेवती	अश्विनी
३. कृत्तिका	पुष्य	श्ले.	म.	पू.फा.	उ.फा.	ह.	चि.	स्वा.	शत.	पू.भा.	उ.भा.	रेवती	अश्विनी	भरणी
४. रोहिणी	श्ले.	मघा	पू.फा.	उ.फा.	ह.	चि.	स्वा.	वि.	पू.भा.	उ.भा.	रेवती	अश्विनी	भरणी	कृत्तिका
५. मृगशिरा	मघा	पू.फा.	उ.फा.	ह.	चि.	स्वा.	वि.	अनु.	उ.भा.	रेवती	अश्वि.	भरणी	कृत्तिका	रोहिणी
६. आर्द्रा	पू.फा.	उ.फा.	ह.	चि.	स्वा.	वि.	अनु.	ज्ये.	रेव.	अश्वि.	भर.	कृ.	रोहिणी	मृग.
७. पुनर्वसु	उ.भा.	हस्त	चि.	स्वा.	वि.	अनु.	ज्ये.	मू.	अश्वि.	भरणी	कृ.	रो.	मृग.	आर्द्रा
८. पुष्य	हस्त	चित्रा	स्वा.	विशा.	अनु.	ज्ये.	मूल	पू.षा.	भर.	कृत्तिका	रो.	मृग.	आर्द्रा	पुन.
९. श्लेषा	चित्रा	स्वा.	वि.	अनु.	ज्ये.	मू.	पू.षा.	उ.षा.	कृ.	रोहिणी	मृ.	आर्द्रा	पुन.	पुष्य
१०. मघा	स्वा.	विशा.	अनु.	ज्ये.	मू.	पू.षा.	उ.षा.	श्रव.	रोहि.	मृग.	आर्द्रा	पुन.	पुष्य	श्लेषा
११. पू.फा.	विशा.	अनु.	ज्ये.	मू.	पू.षा.	उ.षा.	श्रव.	धनि.	मृग.	आर्द्रा	पुन.	पुष्य	श्लेषा	मघा
१२. उ.फा.	अनु.	ज्ये.	मू.	पू.षा.	उ.षा.	श्र.	ध.	शत.	आर्द्रा	पुन.	पुष्य	श्लेषा	मघा	पू.फा.
१३. हस्त	ज्ये.	मूल	पू.षा.	उ.षा.	श्र.	ध.	शत.	पू.भा.	पुन.	पुष्य	श्ले.	मघा	पू.फा.	उ.फा.
१४. चित्रा	मूल	पू.षा.	उ.षा.	श्रवण	धनि.	शत.	पू.भा.	उ.भा.	पुष्य	श्लेषा	मघा	पू.फा.	उ.फा.	हस्त
१५. स्वाती	पू.षा.	उ.षा.	श्रवण	धनि.	शत.	पू.भा.	उ.भा.	रेव.	श्ले.	मघा	पू.फा.	उ.फा.	हस्त	चि.
१६. विशाखा	उ.षा.	श्रवण	धनि.	शत.	पू.भा.	उ.भा.	रेव.	अश्वि.	मघा	पू.फा.	उ.फा.	हस्त	चित्रा	स्वा.
१७. अनुराधा	श्रवण	धनि.	शत.	पू.भा.	उ.भा.	रेव.	अश्वि.	भरणी	पू.फा.	उ.फा.	हस्त	चित्रा	स्वा.	वि.
१८. ज्येष्ठा	धनि.	शत.	पू.भा.	उ.भा.	रेव.	अश्वि.	भरणी	कृत्ति.	उ.फा.	हस्त	चित्रा	स्वा.	विशा.	अनु.
१९. मूल	शत.	पू.भा.	उ.भा.	रेवती	अश्वि.	भर.	कृ.	रोहि.	हस्त	चित्रा	स्वाति	विशा.	अनु.	ज्ये.
२०. पूर्वाषा.	पू.भा.	उ.भा.	रेवती	अश्वि.	भर.	कृ.	रोहि.	मृग.	चित्रा	स्वाति	विशा.	अनु.	ज्ये.	मूल
२१. उ.षा.	उ.भा.	रेवती	अश्वि.	भर.	कृत्ति.	रो.	मृग.	आर्द्रा	स्वाति	विशा.	अनु.	ज्ये.	मूल	पू.षा.
२२. श्रवण	रेवती	अश्वि.	भर.	कृ.	रो.	मृग.	आर्द्रा	पुन.	विशा.	अनु.	ज्ये.	मूल	पू.षा.	उ.षा.
२३. धनिष्ठा	अश्वि.	भर.	कृत्ति.	रो.	मृग.	आर्द्रा	पुन.	पुष्य	अनु.	ज्ये.	मूल	पू.षा.	उ.षा.	श्रवण
२४. शतभिषा	भरणी	कृत्ति.	रोहि.	मृ.	आर्द्रा	पुन.	पुष्य	श्ले.	ज्ये.	मूल	पू.षा.	उ.षा.	श्रवण	धनि.
२५. पू.भा.	कृत्ति.	रोहि.	मृग.	आर्द्रा	पुन.	पुष्य	श्ले.	मघा	मूल	पू.षा.	उ.षा.	श्रवण	धनि.	शत.
२६. उ.भा.	रोहिणी	मृग.	आर्द्रा	पुन.	पुष्य	श्ले.	मघा	पू.फा.	पू.षा.	उ.षा.	श्रवण	धनि.	शत.	पू.भा.
२७. रेवती	मृग.	आर्द्रा	पुन.	पुष्य	श्लेषा	मघा	पू.फा.	उ.फा.	उ.षा.	श्रवण	धनि.	शत.	पू.भा.	उ.भा.

गृहप्रवेश के पूर्व गृहस्वामी का उपक्रम

स्नातः शुचिर्निराहारोऽलङ्कारेण विभूषितः।
पुत्रदारसमायुक्तः सामात्य स पुरोहितः॥ १०८॥
गन्धं पुष्पञ्च वस्त्रञ्च परिधाय पुनर्नवम्।
पुष्पमालान्वितं कार्यं रुचिरं चित्रचित्रितम्॥ १०९॥

राजा (गृहस्वामी) को प्रातःकाल निराहार रहकर स्नान करना चाहिये तथा पुत्र, पत्नी, मन्त्री (मुनीम, परामर्शदाता) आदि के साथ अलङ्कार एवं नववस्त्रों को धारण कर गन्ध पुष्पमाला आदि से सुसज्जित हो जाना चाहिये तथा गृह को भी चित्रादि से सजा देना चाहिये॥ १०८-१०९॥

प्राकारवेष्टन तथा मार्ग की सजावट

प्राकारं वेष्टयेत्तत्र मालया परिशोभितम्।
वस्त्रेणाच्छादितं मार्गं कृत्वा राजा सुखासने॥ ११०॥

फिर राजा या गृहस्वामी नवगृह या प्रासाद को सूत्र अथवा वस्त्रों से वेष्टित करा दे तथा मालाओं से सुशोभित कर दे। पश्चात् स्वयं सुखासन पर सुखपूर्वक बैठ जाय॥ ११०॥

पुराने गृह से नवीन गृह की ओर प्रस्थान

निवेश्याग्रे तथा राज्ञीं उपविश्य जितेन्द्रियः।
गीतोत्सवादिभिर्युक्तो गीतवाद्यादिसंयुतः॥ १११॥
अग्रेसु पूर्णान् कलशान् विप्रान् वेदविशारदान्।
गायकान् गणकांश्चैव सुवासिन्यो विशेषतः॥ ११२॥
व्यस्तैर्यात्रादिभिर्शकुनैर्द्वारमार्गेण भूपतिः।
वितानैस्तोरणैर्पुष्पैः पताकाभिर्विशेषतः॥ ११३॥

अपनी धर्मपत्नी को आगे करके जितेन्द्रिय होकर गाते-बजाते हुए चले। उसके आगे जलपूर्ण कलश तथा वेदों के विद्वान् स्वस्तिवाचन करते हुए चलें। गायक, नर्तकियाँ एवं सुवासिनी स्त्रियाँ भी मंगलगीत गाते हुए चलें। मार्ग में शुभ शकुनों को देखते हुए, पुष्प, वितान, तोरण आदि से अलङ्कृत होकर नूतन गृह के द्वार पर पहुँचना चाहिये॥ १११-११३॥

देहली पूजनादि

अलङ्कृत्य नवं गेहं देहलीं पूजयेत्ततः।
दिक्पालांश्च तथा क्षेत्रपालं ग्रामदेवताः॥ ११४॥
प्रणम्य विधिवत्पूज्य द्वारमार्गे विशेद् गृहम्।
पूजयेद् गणनाथञ्च मातृकाञ्च विशेषतः॥ ११५॥
वसोर्धारां पातयित्वा ग्रहांश्चैव तु पूजयेत्।
वास्तुनाथञ्च सम्पूज्य ब्राह्मणान्पूजयेत्ततः॥ ११६॥

अलंकृत नूतन गृह अथवा प्रासाद के द्वार पर जाकर गृहस्वामी को देहली का पूजन करना चाहिये। तदुपरान्त दिक्पाल, लोकपाल, क्षेत्रपाल, ग्रामदेवता, स्थानदेवता आदि सबको प्रणाम कर तथा उनकी विधिवत्पूजा करके प्रधान द्वार के मार्ग से गृह में

प्रवेश करना चाहिये। वहाँ भीतर गणेशजी सहित मातृकाओं का पूजनकर वसुधारा को गिराकर फिर नवग्रहों का पूजनकर अन्त में वहाँ उपस्थित सभी विद्वान् ब्राह्मणों का भी पूजन करना चाहिये॥ ११४-११६॥

दक्षिणा तथा दानादि

दक्षिणाञ्च तदो दद्याद् विद्वदभ्यो वित्तशक्तितः।
गोदानं भूमिदानं च कारयेच्च यथाविधिः॥ ११७॥

फिर उन सबको अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार दक्षिणा देकर गोदान, भूमिदान आदि कार्य भी उनके विधान को पूर्ण करते हुए करना चाहिये। (और यह भी ध्यान कर लें कि कोई सम्माननीय सम्मानित होने से वंचित न रहे)॥ ११७॥

पुरोहितादि तथा आप्त वर्ग की सन्तुष्टि

पुरोहितं च दैवज्ञं स्थपतीन् परितोष्य च।
दीनान्धकृपणेभ्यश्च दद्याद् दानञ्च भोजनम्॥ ११८॥
लिङ्गिनञ्च विशेषेण बन्धुवर्गाञ्च पूजयेत्।
दानमानैश्च तान्सर्वान् परितोष्य यथाविधिः॥ ११९॥

पुरोहित, ज्योतिषी तथा स्थपतियों (राजमिस्त्री, थवई, पत्थरशिल्पी, बढ़ई, लुहार आदि) को भी परितुष्ट करें। दीनों, अन्धों, कृपणों (दया के पात्रों) को भोजन तथा दान दें। लिगियों (नागा तथा संन्यासियों) को विशेषरूप से पूजित करें। अपने बन्धु वर्गों (बहन, बहनोई, भानजा आदि) को पूजित तथा दानमानादि से सम्मानित करें॥ ११८-११९॥

बन्धुवर्ग का भोजन तथा अन्तःपुर प्रवेश

भोजयेद् बन्धुवर्गांश्च स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः।
राजा चान्तःपुरे बध्वा स्त्रीजनैश्च समन्वितः॥ १२०॥
भोजयेत् शक्तिश्चान्तःपुरस्थानस्वजनांस्ततः।
विहरेच्च सुखं राजा स्वावासे भार्ययान्वितः॥ १२१॥

इति श्रीविश्वकर्मप्रकाशे वास्तुशास्त्रे गृहप्रवेशविधिर्नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

फिर बन्धु वर्गों को भोजन कराकर स्वयं गृहस्वामी भी मौन होकर भोजन करके अन्तःपुर में पत्नी सहित जाकर वहाँ सबको भोजन कराके अपने आवास में सपरिवार आनन्दपूर्वक वास प्रारम्भ करे॥ १२०-१२१॥

इस प्रकार श्रीविश्वकर्मप्रकाश वास्तुशास्त्र ग्रन्थ की महर्षि अभयकात्यायन-विरचित हिन्दी टीका का दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

एकादशोऽध्यायः

दुर्गनिर्माणाध्यायः

कोट-निर्माण विद्या का महत्त्व

अथातः शृणु विप्रेन्द्र दुर्गाणां करणं तथा।
येन विज्ञातमात्रेण अबलो सबलो भवेत्॥ १॥
यस्याश्रयबलादेव राज्यं कुर्वन्ति भूतले।
विग्रहश्चैव राज्ञान्तु सामान्यैः शत्रुभिः सह॥ २॥

हे विप्रेन्द्र! सुनो, अब मैं दुर्ग या कोट-निर्माण की विधि कहता हूँ; जिसके विज्ञान मात्र से निर्बल राजा भी सबल राजा हो जाता है; जिसके आश्रयरूपी बल से राजा लोग पृथ्वी पर राज्य करते हैं तथा सामान्य राजाओं एवं शत्रु राजाओं से विग्रह (युद्ध) करने में सफल होते हैं॥ १-२॥

विमर्श—देववाणी में कोट-दुर्ग तथा गढ़ शब्दों का प्रयोग पर्यायवाची के रूप में होता है। तुर्की भाषा में इसे क़िला कहते हैं। अंग्रेजी में इसे Fort कहते हैं। अंग्रेजी में यह लैटिन भाषा के Fortis शब्द का रूपान्तरण होकर बना है। जो कि देववाणी संस्कृत के पूर्त शब्द का अपभ्रंश है। जिसका अर्थ रक्षा किया गया अथवा रक्षित होता है। फोर्ट शब्द का अर्थ बल होता है, कोट राजाओं को बली बनाता है—यह बात ऊपर के श्लोक में कही गयी है।

दुर्ग-निर्माण हेतु उपयुक्त स्थल का चयन

विषमं दुर्गमं घोरं वक्रं भीरुं भयावहम्।
कपिशीर्षसमञ्चैव रौद्रादलकमन्दिरम्॥ ३॥
स्थानं विचिन्त्य विषमं दुर्गं तत्र प्रकल्पयेत्।

कोट-निर्माण के लिये जो स्थल विषम, दुर्गम, घोर तथा वक्र हो एवं भीरु लोगों को भयावह लगता हो, जो कपिशीर्ष के समान हो—ऐसे रौद्र स्थान में दुर्ग का निर्माण करना चाहिये॥ ३-३½॥

दश प्रकार के भयप्रद दुर्ग

प्रथमं मृण्मयं प्रोक्तं जलकोटं द्वितीयकम्॥ ४॥
तृतीयं ग्रामकोटञ्च चतुर्थं गिरिगह्वरम्।
पञ्चमं पर्वतारोहं षष्ठं कोटञ्च डामरम्॥ ५॥
सप्तमं वक्रभूमिस्थं विषमाख्यं तथाष्टमम्।
चतुरस्रं चतुर्द्वारं वर्त्तुलञ्च तथैव च॥ ६॥

कोटनिर्माणसम्बन्धी निर्देश

कारयेद् विषमे स्थाने पर्वते च विशेषतः।
बाह्ये च परिखा कार्या प्राकारं तस्य मध्यतः॥ २१॥
तन्मध्ये च पुनर्भित्ति भित्तिमध्ये गृहानपि।
गृहाणां मध्यभागे तु परिखां नैव कारयेत्॥ २२॥
पूर्ववत् कोणभागेषु गृहान्विन्यस्य पूर्ववत्।
त्रिपञ्च सप्त प्राकारान् कारयेन्मध्यमध्यतः॥ २३॥
तन्मध्ये तु महापद्मं पूर्ववत्परिकल्पयेत्।
तत्रैव स्थापयेद् वास्तुं कोटपालं तथैव च॥ २४॥

किसी भी दुर्ग का निर्माण किसी विषम (दुर्गम स्थान) में करना चाहिये। विशेषरूप से पहाड़ी उच्च भूमि इसके लिये उपयुक्त रहती है। दुर्ग के बाहर अत्यन्त गहरी खाईं (परिखा) बनाकर उसके मध्य में परकोटे (प्राकार) का निर्माण करना चाहिये। इनके भीतर पुनः एक भित्ति के मध्य में गृहों का निर्माण करना चाहिये, परन्तु यह ध्यान रखना आवश्यक है कि गृहों के मध्यभाग में परिखा का निर्माण न किया जाये॥ २१-२२॥

जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है कि कोण भाग में गृहों का निर्माण करना उचित होता है। इस प्रकार कोट में तीन अथवा पाँच अथवा सात परकोटा बनाना चाहिये। सबके मध्य में एक महापद्म का निर्माण करे तथा उसी के ऊपर, वास्तु तथा कोटपाल (देवता) की स्थापना करे॥ २३-२४॥

दुर्ग के आकार भेद से गृहों का निर्माण

दीर्घे दीर्घगृहान् कुर्यात् वृत्ते वृत्तास्त्रिकोणके।
त्रिकोणान् कारयेद् धीमान् स्वबुद्ध्या च तथैव च॥ २५॥
धनुषे धनुषाकारां गोस्तने गोस्तनाकृतिः।

१. यदि दुर्ग दीर्घाकार हो तो उसमें गृहों को भी दीर्घाकार में ही बनवाना चाहिये। २. यदि वृत्ताकार दुर्ग हो तो उसमें वृत्ताकार गृहों को बनायें। ३. त्रिकोणाकृति कोट में त्रिकोण गृहों का निर्माण करे। इस प्रकार बुद्धि से विचार करके गृहों का निर्माण बुद्धिमान् (राजा या स्थपति) को करना चाहिये॥ २५-२५½॥

दुर्ग में आकारानुसार द्वारों का निर्माण

त्रिकोणे छत्रखण्डे वा द्वारं पातालतो भवेत्॥ २६॥

त्रिकोण कोट में अथवा छत्रखण्ड के आकार के कोट में द्वार का निर्माण पाताल से अर्थात् नीचाई से किया जाता है॥ २६॥

कोट की रक्षा-व्यवस्था

प्राकारस्थो धनुर्धारी सर्वत्र अवलोकने।
तथाभित्तिः प्रकर्तव्या सुदृढा विस्तराः शुभा॥ २७॥

एवं मया विनिर्दिष्टान् कोटान् करोतु बुद्धिमान्।
कोटस्थान् बाह्यभागान् यः सर्वानवलोकते॥ २८॥

कोट की सुरक्षा के लिये प्रकार की भित्तियाँ चौड़ी तथा सुदृढ़ बनानी चाहिये, जिस पर बैठकर धनुर्धारी (बन्दूकधारी) योद्धा सब ओर देख सकें कि शत्रु का आगमन किस ओर से हो रहा है॥ २७॥

इस प्रकार से बुद्धिमान् (स्थपति एवं राजा) को कोटों का निर्माण इस प्रकार से करना चाहिये, जिससे प्रहरी जन उस पर बैठकर सब ओर से आये हुए संकट पर दृष्टि रख सकें॥ २८॥

पुरों का निर्माण

तादृक् पुराणि सर्वाणि कारयेत् स्थपतिः क्रमात्।

जिस प्रकार से सुरक्षित कोटों का निर्माण होता है तथैव पुरों का निर्माण भी इसी प्रकार से स्थपति को क्रमानुसार करना चाहिये॥ २८½॥

कोट तथा स्वामी से नक्षत्र से शुभाशुभ फल

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ब्रह्मयामले॥ २९॥
यदा कोटस्य नक्षत्रे स्वामि ऋक्षे तथैव च।
गोचराष्टकभेदेन स्तम्भानां भेदने तथा॥ ३०॥
पपाक्रान्ते मध्यकोटे जन्मर्क्षे ग्रहदूषिते।
वज्रास्त्र्याग्न्यादिदोषे च तथा भूकम्पदूषिते॥ ३१॥
कोणभे राहुणायुक्ते ग्रहणोत्पातदूषिते।
तत्र शान्तिः प्रकर्त्तव्या यथावद् विधिनोदितः॥ ३२॥

अब मैं जैसा कि ब्रह्मयामल ग्रन्थ में गोचर एवं अष्टकवर्ग का फल कहा है, उसे कहता हूँ॥ २९॥

जब कोट के नक्षत्र तथा स्वामी (राजा) के नक्षत्र का गोचर गणना में अथवा अष्टकवर्ग में एक ही हो। स्तम्भों का नक्षत्र, कोट मध्य का नक्षत्र पापग्रहों से आक्रान्त हो अथवा राजा का जन्म नक्षत्रग्रहों से दूषित हो अथवा उसमें बिजली आदि का निर्घात हो अथवा भूकम्पादि से दूषित हो। अथवा उस नक्षत्र से कोण का नक्षत्र राहुयुक्त हो तो इन उत्पातों से (जन्मनक्षत्र या कोटनक्षत्र) के दूषित होने पर आगे बतायी हुई विधि से शान्ति करनी चाहिये॥ ३०-३२॥

उत्पातादि शान्तिविधि में आठ कुम्भों की स्थापना

तत्पुरे मण्डपं कुर्यात् पताकाभिरलङ्कृतम्।
अष्टकुम्भांस्तत्र कुर्यात् सर्वौषधिभिरन्वितान्॥ ३३॥
सर्वबीजैः पञ्चरत्नैस्तीर्थतोयैश्च पूरितान्।
भूमिं चावाहयेत् पूर्वं द्वितीये नागनामकम्॥ ३४॥
तृतीये कोटपालञ्च स्वामिनञ्च चतुर्थके।
पञ्चमे वरुणञ्चैव षष्ठे रुद्रं तथैव च॥ ३५॥

भूमिखण्ड के नौ भाग पूर्वादि दिशाओं से करना चाहिये। उन नौ खण्डों में अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग, शवर्ग लिखें तथा मध्यभाग में 'हपय' इन तीन वर्णों को लिखना चाहिये॥ १२॥

१. यदि पृच्छक के मुख से प्रश्न का प्रथमाक्षर अवर्ग का हो तो भूखण्ड के पूर्वीभाग में शल्य होता है, वह मृत्युकारक होता है।

२. यदि अग्निकोण का अक्षर कवर्ग का हो तो अग्निकोण में दो हाथ नीचे खर शल्य होता है। वह राजदण्डकारक तथा मृत्युकारक होता है।

३. चवर्ग का अक्षर उच्चारित होने पर दक्षिण दिशा में नरशल्य होता है, जो कि मृत्युदायक होता है। इसमें गृहस्वामी के कटिभाग में कष्ट होता है॥ १३-१५॥

४. यदि टवर्ग का प्रश्नाक्षर हो तो नैर्ऋत्य दिशा में डेढ़ हाथ नीचे कुत्ते की हड्डी होती है। यह शल्य बालकों की मृत्यु करता है॥ १६॥

५. यदि प्रश्न का आद्यक्षर तवर्ग का हो तो पश्चिमदिशा के भाग में शिवा (लोमड़ी) की हड्डी होती है, जो कि डेढ़ हाथ नीचे होती है। वह गृहस्वामी का प्रवास निरन्तर कराती रहती है॥ १७॥

६. यदि प्रश्न का प्रथमाक्षर पवर्ग का हो तो वायव्यकोण में चार हाथ गहराई पर नरशल्य होता है, बुद्धिमान् पुरुष उस शल्य का अवश्य ही उद्धार करे; अन्यथा वह शल्य मित्रनाशक होता है॥ १८॥

७. यदि प्रश्न का आदि अक्षर यवर्ग का हो तो उत्तर दिशा में साढ़े चार हाथ नीचे गर्दभ की अस्थि होती है, वह पशुओं की नाशक होती है॥ १९॥

८. यदि प्रश्न का पहला अक्षर शवर्ग का हो तो भूमि में ईशानकोण में डेढ़ हाथ नीचे गाय या बैल की हड्डी होती है, वह गृहस्वामी के गोधन (गाय-बैल-भैंस) का नाश करती है॥ २०॥

९. यदि प्रश्न का आद्यक्षर ह-प-य इनमें से कोई हो तब भूखण्ड के मध्यभाग में मनुष्य की छाती के बराबर गहराई में केश, कपाल आदि मनुष्य के शल्य या लोहा होता है, जो कि मृत्युकारक होता है॥ २१॥

विमर्श—यहाँ श्लोक २१ में ह-प-य इन तीन अक्षरों को मध्य में बताया गया है। इसका अर्थ है कि—

१. पवर्ग में 'प' अक्षर को छोड़कर केवल फ-ब-भ-म को गिनें।

२. यवर्ग में 'य' को छोड़कर र-ल-व केवल तीन अक्षर लें तथा शवर्ग में केवल श-ष-स इन तीन अक्षरों को ग्रहण करते हैं तथा 'ह' अक्षर को नहीं लेते हैं।

इस प्रकार पवर्ग का 'प', यवर्ग का 'य' तथा शवर्ग का 'ह' मध्यभाग के लिये सुरक्षित कर दिया गया है। भ्रान्ति से बचने के लिये आगे दिये गये शल्योद्धार चक्र को देखना चाहिये। इसमें नौ खण्डों के अक्षर दिये गये हैं।

शल्योद्धार चक्र

वर्ग	वर्ग के अक्षर	दिशा	शल्य का प्रकार	गहराई	फल
अवर्ग	अ-इ-उ-ए-ओ	पूर्व	नरास्थि	डेढ़ हाथ-$\frac{३}{२}$	मृत्युकारक
कवर्ग	क-ख-ग-घ-ङ	आग्नेय	खरास्थि	दो हाथ-२	राज्यभय
चवर्ग	च-छ-ज-झ-ञ	दक्षिण	नरास्थि	दो हाथ-२	गृहेश मृत्यु
टवर्ग	ट-ठ-ड-ढ-ण	नैर्ऋत्य	श्वानास्थि	डेढ़ हाथ-$\frac{३}{२}$	सन्तति हानि
तवर्ग	त-थ-द-ध-न	पश्चिम	शिशुशल्य या शिवास्थि	डेढ़ हाथ-$\frac{३}{२}$	गृहवियोग
पवर्ग	फ-ब-भ-म	वायव्य	तुषाङ्गार	चार हाथ-४	दुःस्वप्नकारक
यवर्ग	र-ल-व	उत्तर	गर्दभशल्य या विप्रशल्य	दो हाथ-२	दरिद्रता
शवर्ग	श-ष-स	ईशान	गोशल्य	एक हाथ-१	गोधननाश
हपय	ह-प-य	मध्य	नृकपाल	तीन हाथ-३	कुल नाश

शल्यज्ञान हेतु मन्त्र जप

'ॐ ह्रीं कूष्माण्डि कौमारि मम हृदये कथय कथय ह्रीं स्वाहा।'

एकविंशतिवारे मनेन मन्त्रेणाभिमन्त्र्य प्रश्नमानयेत्।
अत्र दिशः सूर्योदयाद् गणनीयाः॥ २२॥

ॐ ह्रीं० इत्यादि मन्त्र का इक्कीस बार जप करके प्रश्न पूछना चाहिये तथा दिशा पूर्व से गणना करनी चाहिये। प्रदक्षिणक्रम से गिनें॥ २२॥

माप की इकाई

जलान्तं प्रस्तरान्तं वा पुरुषान्तमथापि वा।
क्षेत्रं संशोध्य चोद्धृत्य शल्यं सदनमारभेत्॥ २३॥

फिर जब शल्य का निश्चय हो जाय तब जो माप की इकाई ऊपर वर्णित है, उसके अनुसार उसे उतने हाथ या उतने पुरुष (जैसे कि डेढ़ हाथ या डेढ़ = १$\frac{१}{२}$ पुरुष) अथवा जहाँ तक भूमि खोदने पर जल निकल आये अथवा पत्थर निकल आये—उतनी गहराई तक खोदकर उस धातु-काष्ठ, हड्डी-केश-दाँत आदि के शल्य को निकालकर उस भूमि को शुद्ध तथा दोषरहित बना देना चाहिये तत्पश्चात् गृहारम्भ करना चाहिये॥ २३॥

शल्यों के भेद

शल्याऽनेकविधाः प्रोक्ता धातुकाष्ठास्थिसंस्थिताः।
तान् परीक्ष्य प्रकर्त्तव्यो गृहारम्भो द्विजोत्तम॥ २४॥

हे द्विजोत्तम! शल्य अनेक प्रकार के होते हैं। जैसे धातु (लोहा-कोयला-अंगार आदि) काष्ठ (लकड़ी) तथा अस्थि (हड्डी-दाँत-नख-केश)। इन सबकी परीक्षा कर उनको भूमि से निकाल लेना चाहिये॥ २४॥

फलविपाक से शल्य का ज्ञान

यदा न ज्ञायते शल्यं गृहारम्भणकर्मणि।
फलपाकेन शल्यं तज्ज्ञातव्यं कर्मवेदिभिः॥ २५॥

यदि पूर्वोक्त नवकोष्ठी यन्त्र से प्रश्नाक्षर द्वारा शल्य का ज्ञान न हो तो शल्य के कारण जो दुष्परिणाम (फलपाक) प्रकट हो, उसके द्वारा शल्य जानना चाहिये॥ २५॥

सशल्य वास्तुभूमि या गृह के फल पाक के लक्षण

सशल्ये वास्तुसदने पूर्वं वा दुःस्वप्नदर्शनम्।
हानिर्वारोगमतुलं धननाशस्तैव च॥ २६॥

जिस गृह में शल्य होता है, उस गृह में शयन करते ही पूर्व से ही बुरे-बुरे स्वप्न होते हैं अथवा बहुत हानि प्राप्त होती है। अपार रोग होता है तथा धनहानि भी खूब होती है॥ २६॥

शकुनों द्वारा शल्य का अनुमान

अन्यानि वास्तुशल्यानि कथयामि समासतः।
सप्ताहाद्वाधिके रात्रौ गौर्वा गोष्ठेऽथ बन्ध॥ २७॥
रोदन्ते वारणोऽश्वो वा श्वानो वा गृहमूर्द्धनि।
वन्यो वा प्रवेश्यद्यस्य निर्विशङ्कोऽथवा मृगः॥ २८॥
श्येनोवाऽथ कपोतो वा व्याघ्रो गोमायु वा तथा।
गृद्ध्रो वाप्यथवा सर्पो वाऽथ शुकोऽपि वा॥ २९॥
नरास्थीनि गृहीतश्च जाङ्गलोऽथ कारणात्।
वज्रेण दूषितं यच्च यच्च वाताग्निदूषितम्॥ ३०॥
यक्षो वा राक्षसो वापि पिशाचो वा तथैव च।
काको वा ताड्यते रात्रौ भूतो वापि गृहेऽथवा॥ ३१॥
कलहश्च दिवा रात्रौ योषितां युद्धमेव च।
तत्रापि शल्यं जानीयात् ये चान्ये गृहदोषकाः॥ ३२॥

काष्ठेऽपि शल्यं जानीयात् दारूणां व्यत्यये तथा।
गोशल्ये वान्यशल्ये वा शल्योद्धारं ततश्चरेत्॥ ३३॥
वंशादीनाञ्च यच्छल्यं यच्छल्यं द्वारमार्गतः।
बाह्यं वेधस्य यच्छल्यं तद् दोषञ्च विनाशयेत्॥ ३४॥
तस्मादनेक शल्यानां ज्ञानं नास्ति तदा नरैः।
अवश्यमेव कर्त्तव्यः शल्योद्धारो हितेप्सुभिः॥ ३५॥

अब मैं वास्तु के शल्यों का अन्य प्रकार से ज्ञान कहता हूँ। जिस घर में निरन्तर एक सप्ताह या अधिक समय तक रात्रि के समय गाय रँभाती हो या रँभाती रहे अथवा गोष्ठ (गोशाला) में बन्धकी (उल्लू) शब्द करे अथवा हस्तिशाला में हाथी चिंघाड़ते हों अथवा रात्रि में अश्वशाल में अश्व हिनहिनाते रहें अथवा घर के ऊपर रात्रि के समय कुत्ते रुदन करते हों। अथवा जिस घर में जंगली पशु निर्विशङ्क होकर प्रवेश कर जायँ॥ २७-२८॥

अथवा गृह में श्येन (बाजपक्षी), प्रविष्ट हो जाय अथवा कपोत (कबूतर जो कि जंगली हो, पालतू न हो) प्रवेश कर जाय। अथवा व्याघ्र (बाघ=Tiger) प्रवेश कर जाय, अथवा गोमायु (शृगाल=सिगाल=जिगाल=Jackal) घर में प्रवेश कर जाय। अथवा गृह में किसी गीध का प्रवेश हो अथवा काले साँप का प्रवेश हो जाय। अथवा घर के भीतर जंगली शुक (तोता) प्रवेश कर जाय॥ २९॥

अथवा कोई वन्यजीव या पक्षी मनुष्य की अस्थियाँ लेकर घर में प्रवेश कर जाय तथा उसका कोई हेतु भी न हो। अथवा जिस घर पर आकाशीय बिजली गिर जाय। अथवा जो घर आँधी या तूफान से अथवा अग्निदाह से दूषित हो जाय॥ ३०॥

अथवा जिस घर में किसी यक्ष, राक्षस, पिशाच का निवास हो तथा वह रात्रि में उत्पात करता हो। अथवा जिस घर में रात में कौवा शब्द करता हो अथवा कोई भूत-प्रेत शब्द करता हो॥ ३१॥

अथवा जिस घर में दिन रात कलह मचा रहता हो अथवा जिस घर में स्त्रियों में युद्ध होता हो अर्थात् सास-बहू, देवरानी-जिठानी, माता-पुत्री, ननद-भाभी आदि आपस में हिंसक झगड़ा करती रहती हों तो उस घर में भी घर को दूषित करनेवाला शल्य जानना चाहिये॥ ३२॥

वह शल्य तथा काष्ठ के दोषों को भी शल्य कहा जाता है। घर में लगी हुई लकड़ी यदि दोषयुक्त है तो वह भी शल्य ही होती है। गोशल्य हो अथवा अन्य शल्य हो उसका उद्धार अवश्य करना चाहिये॥ ३३॥

जो बाँस आदि का शल्य हो अथवा द्वार एवं मार्ग से कोई भी वेध दोष हो वह भी शल्य ही होता है, अतः वेधादि दोष को भी शल्य के समान दुःखदायक जानकर दूर कर देना चाहिये॥ ३४॥

अब जब शल्य अनेक प्रकार के होते हैं तो उन सबका ज्ञान मनुष्य को होना सम्भव नहीं है, अतः लक्षणों एवं फल पाक के द्वारा उनका उद्धार या निराकरण अपना हित चाहनेवाले गृहस्वामी को अवश्य ही करना चाहिये॥ ३५॥

विमर्श—यहाँ एक शंका उत्पन्न होती है कि इस ग्रंथ में पूर्व के अध्यायों में जब वास्तुपूजन का वर्णन कर दिया गया है तथा शिलान्यास का भी वर्णन कर दिया गया है, तब आगे इस अध्याय में पुनः शिलान्यास का क्यों वर्णन किया गया है? इसका हेतु है कि भूमि-परीक्षा-विधि के साथ पूर्व में शल्योद्धार का संकेतमात्र है, परन्तु इसके पश्चात् भी गृह निर्मित होने पर उसके दुष्परिणाम प्रकट होने लगे तब भी शल्योद्धार कराना आवश्यक होता है तथा शल्योद्धार के समय वास्तुपूजन की पुनः आवश्यकता होती है, अतः उसी की सांगता में यहाँ पर फिर से आधारशिला तथा नन्दादि पाँच शिलाओं का पूजन तथा न्यास इत्यादि कहा जा रहा है।

यह शल्योद्धार भी पञ्चांगशुद्धि के समय में तथा वास्तुपूजन के मुहूर्त में ही करना चाहिये। किसी भी अशुभ समय में शल्योद्धार नहीं करना चाहिये, अन्यथा कल्याणप्रद न होगा। आगे यही सब वर्णित है—

शल्योद्धारमुहूर्त

पञ्चाङ्गशुद्धिदिवसे गुर्वादित्यविवर्जिते।
वास्तुपूजाञ्च विधिवत् कारयेत् पूर्वके दिने॥ ३६॥

सुदिने शुभनक्षत्रे चन्द्रताराबलान्विते।
शुद्धे काले प्रकर्त्तव्यः शल्योद्धारो द्विजोत्तमैः॥ ३७॥

शल्योद्धार के पूर्व पञ्चांगशुद्धि दिवस में जब गुर्वदित्य आदि दोष न हो तब वास्तुपूजा कार्य सम्पन्न करा लेना चाहिये॥ ३६॥

सुदिन तथा शुभ नक्षत्र में जब कर्त्ता को चन्द्रमा तथा तारादि का बल प्राप्त हो तथा अन्य प्रकार से भी समय शुभ हो तब विद्वानों को शल्योद्धार कराना चाहिये॥ ३७॥

शिलानिर्माण

शिलां कुर्यात्समां श्लक्ष्णां हस्तमात्रां दृढां शुभाम्।
चतुरस्त्रां त्रिभागेन पट्टिकाभिर्विनिर्मिताम्॥ ३८॥

तावत्प्रमाणामाधारशिलां कृत्वा विधानवित्।

समान, चिकनी तथा एक हाथ की चौकोर सुन्दर तथा जिसकी लम्बाई की त्रिभाग ($\frac{1}{3}$) चौड़ाई हो, ऐसी शिलाएँ बनवाना चाहिये जो कि पट्टियोंवाली हों

अर्थात् मोटाई में पट्टियोंवाली होना चाहिये। पंचशिलाओं के समान ही आकार की (पाँच) आधार-शिलाओं को भी विधानवेत्ता वास्तुशास्त्री को बनवाना चाहिये॥ ३८-३८$\frac{1}{2}$॥

शिलाओं द्वारा वास्तुपुरुष के अंगों का कथन

नन्दायां मस्तकं प्रोक्तं भद्रायां दक्षिणः करः॥ ३९॥
रिक्ता वामकरे प्रोक्ता जयायां चरणौ तथा।
नाभिदेशे तथा पूर्णा सर्वाङ्गे वास्तुपूरुषः॥ ४०॥
सर्वदेवमयो पुंसां सर्वेषां शोभनो भवेत्।
तस्मान् मध्ये प्रदेशे तु शिलैकां स्थापयेद् बुधः॥ ४१॥
गृहमध्ये नाभिमात्रं गर्त्तं कृत्वा समन्ततः।
शिलामध्ये लिखेद्यन्त्रं स्वस्तिकाख्यं सुशोभनम्॥ ४२॥
खनित्वा स्थपतिस्तस्मिन् त्रिभागान् कारयेद् बुधः।
तन्मध्ये स्वस्तिकाकारां कारयेच्च समन्ततः॥ ४३॥

नन्दा नाम की शिला का न्यास वास्तुपुरुष के मस्तक (शिर) में करना चाहिये क्योंकि नन्दा वास्तु का मस्तक है। भद्रिका अथवा भद्रा उसका दक्षिण हस्त है। जया को वास्तुपुरुष का चरण तथा रिक्ता को उसका वामहस्त कहा गया है। पूर्णा शिला उसकी नाभि है, इस प्रकार पाँच शिलाओं से वास्तुपुरुष के सर्वाङ्ग का निर्माण होता है॥ ३९-४०॥

यह वास्तुपुरुष सम्पूर्ण देवताओं से युक्त है। यह सबसे सुन्दर तथा सुशोभित है। अतः वास्तुपुरुष के मध्यवर्ती (नाभि) प्रदेश में भी एक शिला (पूर्णा) को विद्वान् पुरुष को स्थापित करना चाहिये। इसके लिये घर के मध्यभाग में जो नाभि (केन्द्र)-स्थल है; उसमें गृहस्वामी के पैरों से नाभिपर्यन्त जो ऊँचाई हो, उतना ही गहरा एक गर्त्त (गड्ढा) खोदना चाहिये, उस गर्त्त के तीन समान भाग करके मध्य के भाग में स्वस्तिक (卐) को लिखना चाहिये। वह गर्त्त चौकोर होना चाहिये (अर्थात् जितना गहरा, उतना ही लम्बा तथा उतना ही चौड़ा भी)॥ ४१-४३॥

शेष चार शिलाओं की स्थापना

ईशानादिचतुष्कोणे शिलां सम्पूज्य वेदवित्।
ईशानकोणे नन्दायाः पूजनञ्चैव कारयेत्॥ ४४॥
आग्नेयकोणे भद्रान्तु नैर्ऋत्ये च जयां तथा।
रिक्तां वायव्यदिक्कोणे पूर्णां स्वस्तिकमध्यतः॥ ४५॥

ईशानादि चारो कोणों में नन्दादि शिलाओं की स्थापना तथा न्यास एवं पूजनादि वेदवेत्ता वास्तुशास्त्री को करना चाहिये। ईशानकोण में नन्दा का, अग्निकोण में भद्रा का, नैर्ऋत्य में जया का तथा वायव्य में रिक्ता नामक शिला का न्यास एवं पूजनादि करते हैं तथा मध्य में स्वस्तिक के ऊपर पूर्णा का पूजन किया जाता है॥ ४४-४५॥

नन्दादि शिला स्थापन का स्थान एवं दिशा का चक्र

शिला	नन्दा	भद्रा	जया	रिक्ता	पूर्णा
वास्तुपुरुष का अंग	शिर	दक्षिण हस्त	चरण	वामहस्त	नाभि
स्थान एवं दिशा	ईशान	अग्निकोण	नैर्ऋत्यकोण	वायव्यकोण	मध्यभाग

कुम्भस्थापन एवं पूजन

पूर्ववत् पूजयेत्तां तु क्रमेणैव विधानवित्।
चतूराशिपलं कुम्भं ताम्रोद्भूतं दृढं शुभम्॥ ४६॥
हस्तमात्रं भवेद्गर्भं मुखं स्याच्चतुरङ्गुलम्।
कण्ठे रसाङ्गुलं तस्य पिहितं वसुवर्चसम्॥ ४७॥
अष्टौ कुम्भाः बहिस्थाप्याः पूरयेद् भोजनौषधैः।
दिक्ष्वष्टसु क्रमेणैव दिक्पालानाञ्च मन्त्रकैः॥ ४८॥

विधानज्ञ आचार्य उसका पूजन क्रम से करें। फिर ८४ पल (लगभग दो किलो) भार ताम्रधातु का एक सुदृढ़ कलश बनवाये। उसके गर्भ (पेट) का व्यास एक हाथ (चौबीस अंगुल) का हो। उसका मुख चार अंगुल व्यास का तथा कण्ठ छः अंगुल होना चाहिये तथा उसे सुचारु रूप से ढक्कन से ढँक देना चाहिये। उस प्रधान कुम्भ के बाहर की ओर आठ अन्य कुम्भों को आठों दिशाओं में स्थापित कर दिक्पालों के मन्त्रों को उच्चारण करते हुए धान्य तथा औषधि द्रव्यों से पूरित कर देना चाहिये॥ ४६-४८॥

नव कुम्भों में पूरणीय सामग्री का कथन

तीर्थतोयेन सम्पूर्य तथा पञ्चनदीजलैः।
पञ्चरत्नैर्युतं तच्च सफलैर्बीजपूरकैः॥ ४९॥
कुङ्कुमञ्चन्दनञ्चैव कस्तूरीं रोचनान्तथा।
कर्पूरं देवदारुञ्च पद्माख्यं सुरभीन्तथा॥ ५०॥

अष्टगन्धं तथान्यानि गन्धान्यस्मिन् विनिक्षिपेत्।
वृषशृङ्गोद्भवा सिंहनखोद्भूता तथैव च॥ ५१॥
वराहवारणरदे लग्नाश्चाष्टमृदस्तथा।
देवालयद्वारमृदः पञ्चगव्यं समन्त्रितम्॥ ५२॥
पञ्चामृतं तथा पञ्चपल्लवं पञ्च वा त्वचा।
कषायान् पञ्च वा तस्मिन् कलशे तु विनिक्षिपेत्॥ ५३॥
त्रिमधुं च तथा सप्त धान्यान्यारदसम्वृतान्।

उन नौ कुम्भों (घड़ों = कलशों) को तीर्थों के जल से, पाँच नदियों के जल से, पञ्चरत्न से, फलों एवं नीबू के फलों से, कुंकुम, चन्दन, कस्तूरी, गोरोचन, कपूर, देवदारु, पद्माख, सुरभि (इत्र)—इन अष्टगन्ध के पदार्थों तथा अन्य गन्धों से पूरित कर देना चाहिये॥ ४९-५०½॥

उसी में बैल के सींगों से खोदी गयी मिट्टी, सिंह के नाखूनों में लगी मिट्टी, जंगली सूअर के दाँतों से खोदी गयी मिट्टी तथा अष्टमृत्तिकादिकों, देवालयों के द्वार की मिट्टी, पंचगव्य, पञ्चामृत, पञ्चपल्लव, पञ्चवल्कल तथा पञ्चकषायों को भी मन्त्रसहित उन कलशों में डालना चाहिये। उसी में त्रिमधु, सप्तधान्य तथा पारद भी डाले॥ ५१-५३½॥

देवपूजन तथा उसके मन्त्र

तत्रावाह्य गणेशादीन्लोकपालांस्तथैव च॥ ५४॥
वरुणञ्च गृहे स्थाप्य रायकं नागनायकम्।
आवाह्य वेदमन्त्रैश्च पूर्वोक्तेन विधानतः॥ ५५॥

वहाँ पर गणेश आदि पञ्च लोकपाल, दशदिक्पाल (वरुण सहित) घर में स्थापित करें। कुबेर तथा शेषनाग का आवाहन करें। इसमें वेदमन्त्रों का उपयोग पूर्वकथित विधानानुसार करें॥ ५४-५५॥

होमविधि का कथन

आगमोक्तैश्च मन्त्रैश्च मन्त्रैः पुराणसम्भवैः।
गायत्र्याष्टशतेनैव व्याहृत्यष्टा शतेन वा॥ ५६॥
त्रीणि पदेति शतधा तद्विप्रास इति वा तथा।
अतो देवा इति तथा दिव्यमन्त्रैः शतत्रयम्॥ ५७॥
हुत्वाग्नौ विधिवद् विप्रा वास्तुहोमं ततश्चरेत्।
अष्टाधिकं तथा होमं ग्रहहोमं तथैव च॥ ५८॥

गणपत्यादिमं लोकपालानां होममाचरेत्।
दिक्पालानां तथा क्षेत्रपालस्यापि विशेषतः॥ ५९॥
दिव्यान्तरिक्षहोमानां होमं मन्त्रश्च कारयेत्।

आगमोक्त मन्त्रों (तान्त्रिक मन्त्रों), पौराणिक मन्त्रों से, आठ सौ गायत्री मन्त्रों से, आठ सौ व्याहृति मन्त्रों से, 'त्रीणि पदे०' मन्त्र से एक सौ बार, 'तद् विप्रास०' इत्यादि मन्त्र से एक सौ बार अथवा 'अतो देवा०' मन्त्र से तीन सौ बार विधिपूर्वक अग्नि में हवन करके हे ब्राह्मणो! फिर वास्तुहोम करना चाहिये। वास्तुहोम के उपरान्त नवग्रहों के लिये भी प्रत्येक के लिये १०८ आहुति देना चाहिये। फिर गणपति इत्यादि पाँच लोकपालों तथा इन्द्रादि, दश दिक्पालों एवं क्षेत्रपाल का होना भी विधिपूर्वक करना चाहिये। फिर दिवि-भुवि एवं अन्तरिक्ष के लिये भी उनके मन्त्रों से होम करें॥ ५६-५९½॥

सुलग्न एवं सुमुहूर्त में शिलास्थापन

सुलग्ने सुमुहूर्त्ते तु शिलास्थापनमाचरेत्॥ ६०॥
तत्पश्चिमे महादीपं महाकुम्भशिरोपरि।
स्थापयेत्पूर्वभागे च शल्यमन्त्रानुदीरयेत्॥ ६१॥

फिर शुभलग्न तथा शुभमुहूर्त में शिलाओं का स्थापन करे। उन कुम्भों में जो महाकुम्भ (ताम्र कुम्भ) है, उसके शिर पर एक महादीपक पश्चिम भाग में रखकर उसके पूर्वभाग में शल्य मन्त्रों का पाठ करना चाहिये॥ ६०-६१॥

नन्दा शिला प्रार्थना

नन्दे नन्दय वासिष्ठे वसुभिस्सहितप्रजे।
तिष्ठाप्यस्मिन् गृहान्ते त्वं सर्वदा सुखदा भव॥ ६२॥

हे वसिष्ठपुत्री नन्दे! तू वसुओं के साथ इस प्रजा (सन्तान) की रक्षा करने के लिये इस गृह की आयुपर्यन्त इसमें विराजमान हो तथा सर्वदा सुख-कारिणी हो॥ ६२॥

भद्रा प्रार्थना

भद्रे त्वं भद्रदा पुंसां कुरु काश्यपनन्दिनी।
आयुरारोग्यमतुलं सर्वशल्यान्निवारय॥ ६३॥

हे भद्रे! तुम सदैव लोगों का कल्याण करो। हे काश्यप की पुत्री! तुम अतुल प्रमाण में आयु तथा आरोग्य देते हुए सभी शल्यों को दूर करो॥ ६३॥

जया प्रार्थना

जये भार्गवदायादे प्रजानां हितमावह।
स्थापयाम्यत्र देवि त्वां सर्वशल्यान्निवारय॥ ६४॥

हे भार्गवपुत्री जये! तुम प्रजा के हित का साधन करो। हे देवि! मैं तुम्हें इस गृह में स्थापित कर रहा हूँ। तुम इसके सभी शल्यों का निवारण करो॥ ६४॥

रिक्ता प्रार्थना

रिक्ते त्वं रिक्तदोषघ्ने सिद्धिदे सुखदे शुभे।
सर्वदा सर्वदोषघ्ने तिष्ठास्मिन्नत्रिनन्दिनी॥ ६५॥

हे रिक्ते! तुम रिक्तदोष (खालीपन या अभाव) को दूर करनेवाली, सभी दोषों को दूर करनेवाली तथा सब प्रकार की सफलता देनेवाली हो। तुम इस गृह में आनन्द देती हुई स्थित रहो, तुम अत्रि की पुत्री हो॥ ६५॥

पूर्णा प्रार्थना

अव्यङ्गे चाक्षते पूर्णे मुनेरङ्गिरसःसुते।
इष्टके त्वं प्रयच्छेष्टं शुभञ्च गृहिणां कुरु॥ ६६॥

हे पूर्णे! तुम व्यंगरहित तथा टूट-फूटरहित हो। तुम अंगिरस ऋषि की पुत्री हो। हे इष्टके! तुम इस गृह के निवासियों के मनोरथ पूरे करो तथा उनका कल्याण करो॥ ६६॥

ताम्रकुम्भ का निक्षेप

ताम्रकुम्भञ्च निक्षिप्य शिलां दीपं तथैव च।
गीतवादित्रनिर्घोषं कृत्वा तं पूरयेन्मृदा॥ ६७॥

फिर गड्ढे में ताम्रकुम्भ को डालकर उसी के साथ शिलादीप को भी रख दें तथा गीतवाद्य के साथ उसे मिट्टी से पूर देना चाहिये॥ ६७॥

वास्तुपुरुष प्रार्थना

हृदि कृत्य शिलाकुम्भं मन्त्रानेतानुदीरयेत्।
नमस्ते वास्तुपुरुष भूमिशय्यारत प्रभो॥ ६८॥
मद्गृहं धनधान्यादिसमृद्धं कुरु सर्वदा।
नागनाथ नमस्तेऽस्तु शल्योद्धरणे क्षम॥ ६९॥
वास्तुरूपो विश्वधारी प्रजानां हितमावह।
मम पूजा गृहाणेदं कल्याणं कुरु सर्वदा॥ ७०॥

शिलाकुम्भ का हृदय में ध्यानकर इन मन्त्रों (प्रार्थना) को पढ़ो—

हे वास्तुपुरुष! आपको नमस्कार है, आप भूमिशय्या पर शयनरत हैं। हे प्रभो! आप गृह को सदैव धन एवं धान्यादि से समृद्ध करते रहें। हे नागनाथ! आपको नमस्कार है, आप इस गृह की भूमि के शल्यों का निवारण करने में समर्थ हैं॥ ६८-६९॥

हे वास्तुरूप विश्वधारी! आप इन प्रजाओं (पुत्र-पौत्रादि) के हित का साधन करो, मेरी इस पूजा को स्वीकार करते हुए सदैव कल्याण करो॥ ७०॥

पृथ्वी पूजन तथा प्रार्थना

पृथ्वी त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वञ्च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्॥ ७१॥

हे पृथ्वी देवि! आपके द्वारा ये लोक धारित हैं और आप श्रीविष्णु के द्वारा धारित हैं। हे देवि! आप मुझे इस गृह के साथ धारण करते हुए इस आसन (स्थान) को पवित्र दोषरहित करने की कृपा करें॥ ७१॥

गणपति इत्यादि की प्रार्थना

गणपत्यादयोलोका देवा दिक्पालकास्तथा।
सायुधाः सगणोपेताः शुद्धं कुर्वन्तु मे गृहम्॥ ७२॥

हे गणेशादि लोकपालो, दिक्पालो! आप सब अपने आयुधों (अस्त्र-शस्त्रों) एवं गणों के साथ मेरे इस गृह को शुद्ध करें॥ ७२॥

बलिदान-विधान

इति मन्त्रान् पठित्वा तु दद्याद् बाह्यबलिं ततः।
राक्षसानां पिशाचानां गुह्यकोरगपक्षिणाम्॥ ७३॥
भूतानां च तथा यक्षगणानां ग्रामवासिनाम्।
पूर्वोक्तैरागमैः मन्त्रैः विधानेन विधानवित्॥ ७४॥
सङ्गृहणन्तु बलिं सर्वे तृप्ताः शल्यं हरन्तु मे।

ऊपर के मन्त्र को पढ़कर फिर बाह्यबलि का विधान करें। राक्षसों तथा पिशाचों, गुह्यकों, नागों, गरुड़ों, भूतों, यक्षों एवं ग्रामदेवताओं को पूर्वकथित तान्त्रिक मन्त्रों के विधान के साथ बलि देते हुए यह प्रार्थना करें—

हे सम्पूर्ण बलि के अधिकारी देवो! आप सब मेरी इस बलि को ग्रहण करें तथा इससे तृप्त होकर मेरे घर के शल्य का निवारण करें॥ ७३-७४½॥

आठ कुम्भों के जल से यजमान का अभिषेक

कुम्भानामष्टकानान्तु जलैस्तं गृहं चाभिषिञ्चयेत्॥ ७५॥

फिर जो आठ कुम्भ आठ दिशाओं में रखे गये हैं, उनके जल से घर एवं परिवार का अभिसिञ्चन करना चाहिये अर्थात् उस जल को छिड़कना चाहिये॥ ७५॥

शल्योद्धार कर्म का फल

भेदत्रयं तथोत्पाता ग्रहपीडाश्च दारुणाः।
ते सर्वे नाशमायान्तु शल्योद्धारे कृते गृहे॥ ७६॥

गृह का शल्योद्धार करने से तीनों प्रकार के उत्पात (दिव्य, भौम, अन्तरिक्ष), दारुण ग्रह पीड़ा—ये सभी नष्ट हो जाते हैं॥ ७६॥

आचार्यादि को दक्षिणादानादि

आचार्याय च गां दद्याद् ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां तथा।
दानमानेन सन्तोष्य दैवज्ञं स्थपतिं तथा॥ ७७॥
अन्यांश्च विधिवत्पूज्य दक्षिणाभिः स्वशक्तितः।
दीनान्धकृपणेभ्योऽपि लिङ्गिभ्योऽपि विशेषतः॥ ७८॥
गायकेभ्यस्तथान्येभ्योः नटेभ्यो दक्षिणां ततः।
दद्यात् स्ववेश्मनि यथा शक्तिं विप्रांश्च भोजयेत्॥ ७९॥

फिर आचार्य को गोदान एवं दक्षिणा दे। तत्पश्चात् ऋत्विजों को भी दक्षिणा दे। दैवज्ञ तथा स्थपति (कारीगर) को दानमान से सन्तुष्ट करे॥ ७७॥

अन्य अभ्यागतों को भी दक्षिणादि से सन्तुष्ट करे। दीनों, अन्धों एवं विकलांगों तथा भिक्षुओं (संन्यासियों) को विशेष रूप से दक्षिणा देनी चाहिये॥ ७८॥

फिर गायकों, नर्तकों आदि को भी दक्षिणा देकर अपने घर के भीतर ही ब्राह्मणादि को भोजन अपनी शक्ति के अनुसार कराये॥ ७९॥

स्वयं भोजनादि एवं समापन कर्म

भुञ्जीत बन्धुभिस्सार्धं विहरेच्च सुखं ततः।
एवं यः कुरुते विप्राः शल्योद्धारं स्व वेश्मनि॥ ८०॥
सश्रद्धया विधियुतो वित्तशाठ्यविवर्जितः।
सुखवान् दीर्घजीवी च पुत्रान्पौत्रांश्च विन्दति॥ ८१॥

इति श्रीविश्वकर्मप्रकाशे वास्तुशास्त्रे शल्योद्धारनिर्णयो नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

फिर स्वयं अपने बन्धु-बान्धवों के साथ भोजन करके गृहस्वामी सुखपूर्वक विहार करे। हे विप्रो! जो अपने घर में इस प्रकार श्रद्धायुक्त, विधानसहित तथा वित्तशाठ्य (कंजूसी) से रहित होकर शल्योद्धार करता है, वह सुखी, दीर्घजीवी होकर पुत्र-पौत्रादि को प्राप्त करता है॥ ८०-८१॥

इस प्रकार श्रीविश्वकर्मप्रकाश वास्तुशास्त्र ग्रन्थ की महर्षि अभयकात्यायन-विरचित हिन्दी टीका का बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

•

विवरान्तर्गतं वापि यच्च गोधाधिवासितम्।
तद्गृहे न वसेत् कर्त्ता वसन्नपि न जीवति॥ ४०॥

१. जो गृह अधित्यका (पहाड़ी भूमि) पर बना हो, अथवा पर्वत के नीचे हो अथवा जो पर्वत से सटा हुआ हो, अथवा घोर पत्थरों से युक्त जो गृह हो। २. जो गृह जलधारा के अग्रभाग में स्थित हो अथवा नदी के किनारे पर स्थित हो अथवा जो दो पर्वत शिखरों के बीच में स्थित हो अथवा जिसकी दीवालें दरारयुक्त हों तथा जिसके समीप ही जल भरा रहता हो। ३. जो गृह उदास-सा दिखाई पड़ता हो, जिसमें दरवाजा किवाड़ों के कारण शब्द करता हो अथवा जिसमें कौवे तथा उल्लुओं का निवास हो। ४. जो कपाटहीन हो तथा जिसमें रात्रि के समय खरगोश बोलते हों। ५. जिसमें अजगर रहता हो तथा जो बिजली गिरने से अथवा अग्निदाह से दूषित हो गया हो, जिस गृह में जल बहता रहता हो। ६. जो गृह कुब्ज, काण या बधिर हो, जिसमें उपघात (मारकाट) हुई हो अथवा जिसमें ब्रह्महत्या हुई हो। ७. जो गृह शालाविहीन अथवा शिखाविहीन हो। ८. जिस गृह की बाह्य भित्तियों के काष्ठ में रुधिर लगा हो अर्थात् कीड़ों-मकोड़ों ने खा लिया हो। ९. जो काँटों से युक्त बाड़ से चारो ओर से घिरा हो। १०. जो श्मशान से दूषित हो तथा जो किसी चैत्य (चौरा या देवस्थान) पर बना हो। ११. जिसमें कोई न रहा हो अथवा जिसमें म्लेच्छादि बसते हों। १२. जिसकी स्थिति विवरों के मध्य हो (बीहड़ में हो) अथवा जिसमें गोह का निवास हो, उस गृह में तथा ऊपर कहे दोषपूर्ण गृहों में निवास नहीं करना चाहिये। यदि निवास किया जाता है तो उसमें रहनेवाला जीवित नहीं रहता है अर्थात् उसकी दस प्रकार की मृत्युओं में एक मृत्यु अवश्य ही होती है॥ ३२-४०॥

विमर्श—शास्त्रों में मृत्यु के आठ प्रकार वर्णित हैं, जिनमें से किसी भी प्रकार की मृत्यु होना ही मरण कहा जाता है—

'व्यथा दुःखं भयं लज्जा रोगः शोकस्तथैव च।
मरणञ्चावमानञ्च मृत्युरष्टविधः स्मृतः॥'

—बृ०दै०रं० ३३। ७७

गृह-निर्माण-सम्बन्धी विशेष नियम

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वर्जयेन्मतिमान्नरः।
अन्यवेश्मस्थितं दारु नैवान्यस्मिन् प्रयोजयेत्॥ ४१॥
न गृहं कारयेद् धीमान् पुराणैर्न च दारुभिः।
कुर्वन्नाप्नोति मरणं सम्पदां नाशमेव च॥ ४२॥
जीर्णतो नूतनं शस्तं नो जीर्णे नूतनं शुभम्।
पूर्वोत्तरे नीचगता उच्चस्था दक्षिणेऽपरे॥ ४३॥

तिर्यग्गताः सर्वदिशा भागे पीडावहा गृहाः।
दक्षिणे योजनमुच्चं पश्चिमे चार्धयोजनम्॥ ४४॥
तदर्धमुत्तरे चैव तस्यार्धं पूर्वदिक्स्थितम्।
एतद् वेधं नृपाणाञ्च गृहाणां कथितं द्विजाः॥ ४५॥

इति श्रीविश्वकर्मप्रकाशे वास्तुशास्त्रे राजवेधकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

अतः गृह-सम्बन्धी दोषों को बुद्धिमान् मनुष्य को त्याग देना चाहिये। १. एक घर में लगी लकड़ी को दूसरे घर में नहीं लगाना चाहिये। २. पुरानी लकड़ी की वस्तुओं को नये घर में नहीं लगाना चाहिये, यदि लगाता है तो मृत्यु को प्राप्त होता है॥ ४१-४२॥

पुराने गृह में नया काष्ठ (किवाड़ आदि) तो लग सकता है, किन्तु नये घर में पुराना काष्ठ नहीं लगाना चाहिये। जो घर पूर्व तथा उत्तर में नीचा तथा दक्षिण-पश्चिम में ऊँचा हो (वह ठीक होता है)॥ ४३॥

जो गृह सब ओर से तिरछे हों, वे अशुभ होते हैं। जो गृह दक्षिण में ऊँचा पश्चिम में उसके आधे अनुपात में ऊँचा हो उसके आधे प्रमाण में उत्तर में ऊँचा हो तथा उससे आधी ऊँचाई पूर्व भाग में हो तो यह वेध हे द्विजो! राजाओं के लिये होता है॥ ४४॥

इस प्रकार श्रीविश्वकर्मप्रकाश वास्तुशास्त्र ग्रन्थ की महर्षि अभयकात्यायन-विरचित हिन्दी टीका का तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

●

चतुर्दशोऽध्यायः

द्विजातिवेधाध्यायः

द्विजातियों के लिये विशेष वेधों का कथन

विशेषेण द्विजातीनां प्रमाणं कथयाम्यतः।
पूर्वोत्तरे नीचभागे शतपदान्वितं तथा॥ १ ॥
दण्डानां पश्चिमे याम्ये द्विगतं सार्द्धसंयुतम्।
ऊर्ध्वीभूतः पुमान्यस्य गेहाद् गेहान्तरं यदि॥ २ ॥
दक्षिणस्थं प्रपश्येत तद्वेधं च विनिर्दिशेत्।
उच्चस्थोऽप्यथ नीचस्थः सदा याम्यगृहं त्यजेत्॥ ३ ॥
आयुःपुत्रकलत्राणि यतः शीघ्रं विनश्यति।
पूर्वोत्तरे गृहे नीचे भवेदादौ जलान्तिके॥ ४ ॥
मध्यभूमिर्नदोषाय यावद् दृष्टिपथेऽनयोः।
न चान्यजातीयजो नृपसद्मवसेन्नरः॥ ५ ॥

अब मैं विशेषरूप से द्विजातियों के गृहों के लिये वेधादि का प्रमाण कहता हूँ। जो गृह पूर्व तथा उत्तर दिशा के नीचेवाले भाग में २७० पदों में हो, जिसकी पश्चिम तथा दक्षिण में लम्बाई ढाई सौ हो, वह तथा जिस गृह में दूसरे गृह का व्यक्ति ऊँचाई से दूसरे गृह को देखे तो वह वेध होता है। उसमें भी यदि द्रष्टा गृह के दक्षिण भाग में दृष्टि गृह तो उसे त्याग देना चाहिये॥ १-३॥

यदि कोई गृह अन्य गृह के पूर्वी या उत्तरी भाग में तथा जल के समीप में स्थित हो तो वह आयु-पुत्र तथा कलत्र को नष्ट करनेवाला होता है। यदि मध्यवर्ती भूमि में स्थित गृह पूर्व या उत्तर से दृष्टिपथ में आता हो तो दोषपूर्ण नहीं होता है। राजा के गृह में अन्य जाति के मनुष्य को नहीं रहना चाहिये॥ ४-५॥

तुङ्गस्थे पूर्वदिग्भागे दण्डान् विंशतिसम्मितान्।
सौम्यभागे तथा त्रिंशत् चत्वारिंशत् च पश्चिमे॥ ६ ॥
याम्ये पञ्चाशत्संख्यानि दण्डानि नीचसंस्थितः॥ ७ ॥
प्रासादवीथी च तथा गृहञ्च
आग्नेयवायव्यतथेशरक्षे ।
त्रिकोणवेधः कथितः क्रमेण
सुतार्थिनाः तत्र विवर्जनीयाः॥ ८ ॥

यदि किसी अन्य जाति के गृह में राजा का गृह पूर्व में बीस दण्ड, उत्तर में तीस दण्ड, पश्चिम में चालीस दण्ड तथा दक्षिण में पचास दण्ड की दूरी पर नीचाई में हो तो वह भी वेध होता है तथा शुभ नहीं होता है॥ ६-७॥

इसी प्रकार से जिस गृह के ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य तथा वायव्य कोणों में प्रासाद, गली अथवा गृह स्थित हो तो वह भी वेध होता है, अतः यह त्रिकोण वेध भी पुत्रार्थी को प्रयत्नपूर्वक त्यागना चाहिये॥ ८॥

आग्नेयं दृष्टितो विद्धं वायो द्विगुणं भूमिषु।
नैर्ऋत्ये दृक्पथं यावदीशाने त्रिगुणं गृहात्॥ ९ ॥
एतन्नृपाणां कथितं वर्णानामनुपूर्वशः।
पूर्वाशादिक्रमेणैव ब्राह्मणादिक्रमेण च॥ १०॥

अग्निकोण का गृह दृष्टि से विद्ध होता है। वायुकोण का गृह द्विगुण भूमि से विद्ध होता है। नैर्ऋत्य का दृक्पथ से तथा ईशान का अपने से तिगुने ऊँचे गृह की दृष्टि से विद्ध होता है। इस प्रकार से अन्य वर्णों के गृह ब्राह्मणादि के क्रम से पूर्वादि दिशाओं से विद्ध होते हैं॥ ९-१०॥

पञ्चाशद् धनुषान्नीचैर्विधेयं द्विजमन्दिरात्।
तथा सौम्यजनो नीचो दण्डान् सप्ततिसम्मितान्॥ ११॥
जलाशासंस्थितोऽप्युच्चे प्रान्तदण्डान् हरेत् पुरात्।
याम्योच्चस्थो हरेद्गेहं दण्डान् विंशतिसम्मितान्॥ १२॥

द्विजातियों के गृहों से पचास धनुष की दूरी पर नीच जनों का घर होना चाहिये तथा सौम्य स्वभाव की नीच जातियों को सत्तर दण्ड की नीचाई पर घर बनाना चाहिये। पश्चिम दिशा में ऊँचे भवन से दक्षिणस्थ गृह बीस दण्ड की दूरी पर बनायें॥ ११-१२॥

शूद्रगृहों की दूरी

शूद्राणान्तु समासेन कथयामि पुरात्पुरम्।
दशदण्डानि पर्यन्तं प्रयान्ते पूर्व नीचगम्॥ १३॥
उत्तरे द्वादशं दण्डं नीचस्थानस्थितस्य तु।
पश्चिमे त्रिंशद् दण्डानि यदि चेदुच्च भूमिषु॥ १४॥
दक्षिणे शत दण्डानि गृहाणि परिवर्जयेत्।
वैपरीत्ये पादहीनान् दण्डान्सन्त्यज्य बुद्धिमान्॥ १५॥

मेखलासंस्थितं गेहं द्वारस्याभिमुखञ्च यत्।
तद्गृहं न शुभं प्रोक्तं यदि याम्योत्तरे स्थितम्॥ २८॥
दशहस्ता मेखला स्याच्चतुर्थांशेन वा गृहात्।
नगराद् द्विगुणा भूमिः परित्याज्या शुभेप्सुना॥ २९॥

उत्तर में नगर-ग्राम अथवा गृह के क्षेत्रफल से दुगुनी खाली भूमि, उसके उत्तर में उसी के बराबर क्षेत्रफल की उसके पूर्व दिशा में, पश्चिम में तिगुनी तथा दक्षिण में एक कोश (क्रोश) भूमि छोड़ देना चाहिये॥ २७॥

यदि इस (छोड़ी हुई) मेखला पर कोई घर बनाया जाय तो शुभ नहीं होता है यदि इस मेखला के द्वार के सामने कोई गृह स्थित हो तो वह भी शुभ नहीं होता है। जो गृह मेखला पर दक्षिणोत्तर में स्थित हो, वह भी शुभ नहीं होता है॥ २८॥

घर के चारो ओर की मेखला दश हाथ छोड़ना चाहिये, अन्यथा न्यूनतम ढाई हाथ ($\frac{१०}{४}$) की मेखला तो घर के आसपास अवश्य ही होनी चाहिये। नगर के क्षेत्रफल से दुगुनी भूमि उसकी मेखला के लिये चारो ओर शुभ चाहनेवाले नगर नियोजन करनेवाले को छोड़नी चाहिये॥ २९॥

नगरनिर्माण में वेधादि का विचार

नगरं कारयेच्चान्यत्तत्र वेधं विनिर्दिशेत्।
यस्मिन् मार्गे जनास्सर्वे मृता यान्ति पितृक्षयम्॥ ३०॥
मार्गः स एव विज्ञेयः शेषा देशान्तरं प्रति।
गृहभित्तिषु ये लग्नास्ते गृहा गृहिणां सदा॥ ३१॥
भयदाः पुत्रसन्तापकारकास्तत्र कारयेत्।
यथा याम्यं तथा वायुं यथा वायुं तथा उदक्॥ ३२॥
यथा उदक् तथा पूर्वं फलं साम्यं प्रकीर्तितम्।
आकर्षयेद्यथाचापमारुह्य भवनं नरः॥ ३३॥
विलोकयति वाणेन लक्ष्यवत्तं भिनत्ति सः।
मूलात्तदीशकाष्ठान्तं जलेनापूरितं स्थलम्॥ ३४॥
न विलीनं क्वचिद् रन्ध्रे तदन्तस्थं न दोषकम्।
कूपोद्यानप्रपावापीतडागे च जलाशये॥ ३५॥
मन्दिरे देवसदने चैत्ये प्राकारतोरणे।
सततं वसते वास्तु तन्मध्यस्थं गृहं शुभम्॥ ३६॥

जब नगर का निर्माण करे तब उस नगर या ग्राम का वेध श्मशान मार्ग से वेध न हो, यह ध्यान रखा जाय। उसी मार्ग का वेध विशेष है। शेषमार्ग तो देशान्तरों की ओर जानेवाले होते हैं॥ ३०-३०½॥

नगर के भीतर जिन गृहों की भित्तियाँ परस्पर मिली रहती हैं, वे गृह उनके निवासियों के लिये सदैव भयकारक, सन्तापकारक होते हैं॥ ३१॥

जिस प्रकार का गृह दक्षिण में बनाये, ठीक वैसा ही पश्चिम में भी बनाना चाहिये तथा वैसा ही उत्तर में एवं वैसा ही पूर्व में बनाये तो समता रहती है। मनुष्य भवन पर बैठकर जिस प्रकार धनुष को खींचकर बाहर के लोगों को देखते हुए जितनी दूरी तक स्पष्ट रूप से लक्ष्य का भेदन कर सके ईशानकोण में उतनी दूरी तक जलाशय हो अथवा कूपादि हो अथवा मन्दिर, देवालय, चैत्य, प्राकार आदि हो तो वह गृह शुभ होता है॥ ३२-३६॥

चतुष्पथसम्बन्धी विचार

दक्षिणोत्तरयोश्चैव तथा पश्चिमपूर्वयोः।
मार्गयोर्मेलनं यत्र तच्चतुष्पथमीरितम्॥ ३७॥
आदौ गृहे दक्षिणभागसंस्थं पश्चात्तयोत्तरम्।
मध्यस्थानगृहं गेहं न दुष्यति कदाचन॥ ३८॥
तथैव पश्चिमे पूर्वे कृते मध्यगते गृहम्।
तथैव सुखदं प्रोक्तं सदनं पश्चिमे स्थितम्॥ ३२॥

जहाँ दक्षिण से उत्तर तथा पूर्व से पश्चिम की ओर जानेवाले मार्गों का मेल होता है, उस स्थान को चतुष्पथ (चौराहा) कहते हैं॥ ३७॥

प्रथम गृह दक्षिण भाग में, द्वितीय गृह उत्तर भाग में, फिर मध्य भाग में गृह बनाये तो कोई दोष नहीं होता है। उसी प्रकार पश्चिम तथा पूर्व में गृह बनाकर फिर मध्य में बना हुआ गृह शुभ होता है। पश्चिम में स्थित गृह भी सुखद होता है॥ ३८-३९॥

विषम गृह में वेध का अभाव तथा दक्षिणस्थ कूपादि का फल

विषमे न भवेद् वेधं न वेधञ्च नतोन्नते।
गृहस्य दक्षिणे भागे कूपो दोषप्रदो मतः॥ ४०॥
अपत्यहानिर्भूनाशस्त्वथवा रोगमद्भुतम्।
अदर्शनेन दीपारे दूरे वा समभूमिषु॥ ४१॥
न वेधन्ते गृहास्सर्वे यथोक्त दिशि संस्थिताः।

विषम गृह में अथवा ऊँची नीची स्थिति में जो गृह होता है, उसमें वेध नहीं होता है। घर के दक्षिणी भाग में कूप (कुआँ) दोषप्रद होता है। सन्तानहानि, भूमिहानि अथवा अद्भुत रोग उत्पन्न होता है। यदि जहाँ से दीपक की पंक्तियों के दर्शन न होते हों तो समभूमि पर स्थित गृह भी वेधोक्त स्थानों पर स्थित होने पर वेधित नहीं होते हैं॥ ४०-४१½॥

अश्वत्थादि गृहों के वेध

अश्वत्थश्च प्लक्षवटोदुम्बराश्च क्रमेण च॥ ४२॥
पूर्वादि दिक्षु वेधः स्यात् सर्वेषां प्राक्तना विदुः।
राजवृक्षं तथा निम्बं चाग्रकं कदलीफलम्॥ ४३॥
पूर्वादिक्रमयोगेन वेधयन्त्येतद् द्रुमांस्तथा।
आग्नेयादिक्रमेणेव क्षीरिणोऽथ कदम्बकाः॥ ४४॥
कण्टकाः कदलीस्तम्भाः वेधन्ते च फलद्रुमाः।

१. पूर्व दिशा में पीपल तथा राजवृक्ष, २. दक्षिण में पाकर तथा नीम, ३. पश्चिम में वटवृक्ष तथा आम्रवृक्ष, ४. उत्तर में गूलर तथा केला के वृक्ष वेध करते हैं। अग्निकोण में दूधिया वृक्ष, नैर्ऋत्य में कदम्ब, वायव्य में काँटेदार वृक्ष तथा ईशान में कदली स्तम्भ (बिना फलवाले केले) वेधकारक होते हैं॥ ४२-४४½॥

दिशानुसार अन्य प्रकार के वेध

विवरं पूर्वदिग्भागे दक्षिणे मठमन्दिरम्॥ ४५॥
पश्चिमे पौष्करं तोयं खातमुत्तरसंज्ञके।
पूर्वेण फलिनो वृक्षाः क्षीरिवृक्षाश्च दक्षिणे॥ ४६॥
पश्चिमे जलजा वृक्षा रिपुतो भयदायकाः।
क्षीरिणश्चार्थनाशाय फलिनो दोषदा स्मृताः॥ ४७॥
दशदण्डपर्यन्तं पीड्यन्ते पुरवासिनाम्।
कलहश्चाक्षिरोगश्च व्याधिशोकं धनक्षतिः॥ ४८॥

यदि घर के पूर्व दिशा में भूमि में कोई विवर (गहरा गड्ढा) हो, दक्षिण में कोई मठ या मन्दिर हो, पश्चिम में जलाशय हो तथा उत्तर दिशा में खाईं हो। तथैव पूर्व में फलदार वृक्ष, दक्षिण में दूधिया वृक्ष, पश्चिम में जलज वृक्ष शत्रु से भय देते हैं। क्षीरीवृक्ष अर्थनाश करते हैं। फलदार वृक्ष दोष उत्पन्न करते हैं। ये सब दशदण्ड की दूरी तक गृह के निवासियों को पीड़ित करते हैं तथा कलह, नेत्ररोग, व्याधि, शोक एवं धन की हानि करते हैं॥ ४५-४८॥

वेध के परिहार

वीथ्यन्तरेण दोषः स्यान्नदोषं मार्गमध्यगम्।
विदिक्स्थं नैव वेधं तु न वेधं दूरतः सदा॥ ४९॥
नीचस्थाने भवेद् वेधः कोणवेधस्तथैव च।
भित्यन्तरे न दोषः स्यान्नदोषश्चैत्यमध्यमे॥ ५०॥
न दोषः पुष्करान्तस्थं न दोषो वाणघातके।
न दोषं तु विकोणे तु न दोषं फलवृक्षके॥ ५१॥
न दोषं नीचजातेषु न दोषं भग्नमन्दिरे।
चतुष्पथान्ते न भवेद् वेधो जीर्णगृहान्तरे॥ ५२॥
अत्युच्चमतिनीचञ्च मध्ये विषमलङ्घनम्।
अन्तर्जलाद्रिपतने वेधदोषो न विद्यते॥ ५३॥
अन्तरारोपितावृक्षा बिल्वदाडिमकेसराः।
न तत्र वेधदोषः स्यात् सत्यं ब्रह्ममुखाच्छ्रुतम्॥ ५४॥

यदि वीथी (गली या मार्ग) के भीतर दोष हो तो वेध होता है, परन्तु मार्ग के उस पार यदि वेध की वस्तु स्थित है तो दोष नहीं होता है। जो वेध विदिशाओं में तथा दूर स्थित हो वह भी दोषकारक नहीं होता है। नीचे के स्थान में वेध होता है तथा कोण एवं भित्ति मध्य में दोष नहीं होता है। चैत्य के मध्य में भी दोष नहीं होता है।

कमलों के मध्य में तथा वाण पहुँचने की दूरी तक दोष नहीं होता है। नीच जातियों के गृहों में भी दोष नहीं होता है। टूटे-फूटे मन्दिर का भी दोष नहीं होता है। चौराहे के अन्त पर भी दोष नहीं होता है। इसी प्रकार जीर्ण गृह में भी दोष नहीं होता है। जो दोषकारक अत्यन्त ऊँचे या नीचे पर हो अथवा जिसके तथा वेधित भवन के बीच में कोई लंघन हो (आना-जाना) तो उसमें भी दोष नहीं होता है। जिसके मध्य में जल तथा पर्वत हों उसका भी दोष नहीं होता है।

जिस भवन के भीतर अनार-बेल-केसर आदि लगे हों, वे भी दोषकारक नहीं होते हैं—ऐसा मैंने ब्रह्माजी के मुख से सुना है॥ ४९-५४॥

वेध के फल की अवधि

षड्वर्षे म्रियते स्वामी गतश्रीर्नवमे भवेत्।
चतुर्थे पुत्रनाशः स्यात् सर्वनाशः तथाष्टमे॥ ५५॥
पक्षेण मासेन ऋतुत्रयेण
सम्वत्सरेणापि फलं विधत्ते।
शुभाशुभं क्षेममिदं बुधैस्तु
नातः परं तत्र विचारमस्ति॥ ५६॥

दीर्घद्वार द्वयाक्रान्तं त्रिकोणमेकमार्गकम्।
वृत्तदीर्घं चतुर्द्वारं अर्धचन्द्रं तथैव च॥ ७ ॥
गोस्तनञ्च चतुर्द्वारं धानुषं मार्गकण्टकम्।
पद्मपत्रनिभं चैव च्छत्राकारं तथैव च॥ ८ ॥
दशप्रकाराणि मया प्रोक्तानि द्विजपुङ्गव।

प्रथम प्रकार का कोट मिट्टी से बनता है, उसे मृण्मयकोट कहते हैं। दूसरा जलमय कोट होता है। तीस ग्रामकोट, चौथा गिरिगह्वर कोट, पाँचवाँ पर्वतारोह कोट, छठवाँ डामरकोट, सातवाँ वक्रभूमिस्थ, आठवाँ विषम कोट, जो कि १. चौकोर तथा चार द्वारोंवाले, २. वृत्ताकार, ३. दो दीर्घ द्वारोंवाले, ४. त्रिकोण एक द्वारवाले, ५. वृत्तदीर्घ चार द्वारवाले, ६. अर्धचन्द्राकार, ७. गोस्तनाकार चतुर्द्वार से युक्त, ८. धनुषाकार, ९. कटीले द्वारवाले, १०. कमलपत्र के समान आकारवाले अथवा ११. छत्राकार—ये ग्यारह प्रकार के द्वार होते हैं। हे द्विजपुंगव! ये मेरे द्वारा कहे गये हैं॥ ४-८॥

प्रत्येक दुर्ग के भयों का कथन

मृण्मये खननाद् भीतिं जलस्थे मोक्षबन्धनात्॥ ९ ॥
ग्रामदुर्गेऽग्निदाहञ्च प्रवेशाद् गह्वरस्य च।
पर्वते स्थानभेदाच्च डामरे भूबिलाद् भयम्॥ १०॥
वक्राख्ये वियोगाच्च विषमे स्थायिनां तथा।
बलाऽबलाद्यापदं पुनरन्यत्प्रवच्म्यहम्॥ ११॥

मिट्टी के दुर्ग में उसे खोदे जाने का भय रहता है। जलमयदुर्ग में उसके बाँध को तोड़कर (शत्रुद्वारा) पानी बहा दिये जाने का भय बना रहता है। ग्राम दुर्ग में अग्निदाह का भय रहता है। गिरि के गह्वर में बने दुर्ग में शत्रु के ऊपर से प्रवेश कर जाने का भय रहता है। पर्वत कोट में सुरंग लगाकर शत्रु प्रवेश कर सकता है। डामर कोट में पृथ्वी में बिल बनाया जा सकता है। वक्र नामक कोट में उसके तोड़े जाने का भय बना रहता है। विषम दुर्ग में स्थायी राजा को बली एव निर्बल शत्रु राजाओं का भय रहता है। अत: इन असुरक्षित कोटों के अतिरिक्त मैं अन्य सुरक्षित प्रकार के दुर्गों का वर्णन करता हूँ॥ ९-११॥

सुदृढ़ दुर्गों के अंगों का कथन

अतिदुर्गं कालवर्णं चक्रावर्त्तञ्च डिम्बरम्।
नालावर्त्तञ्च पद्माक्षं पक्षभेदञ्च सर्वतः॥ १२॥
कारयेत् प्रथमं राजा पश्चाद् दुर्गं समाचरेत्।
प्राकारे विन्येसेदादौ बाह्यस्थान योजयेत्ततः॥ १३॥

परिखाश्च ततः कृत्वा तन्मध्ये चेततः पुनः।
सव्यापसव्यमार्गेण मार्गं तस्य प्रकल्पयेत्॥ १४॥
गृहाणि बाह्यसंस्थान् कोणे कोणेषु विन्यसेत्।
कोणस्थान् बाह्यतो गेहान् विषमान् कारयेत्ततः॥ १५॥
प्रतोलिं पत्रकालाख्यां परिख्या कालरूपिणीम्।
यन्त्रं रमणिकं कुर्यात् शकलीय यन्त्रमण्डितम्॥ १६॥

दुर्ग रचना में अति दुर्ग, कालवर्ण, चक्रावर्त्त, डिम्बर नालावर्त्त, पद्माक्ष, पक्षभेद, इनको सब ओर से पहले बनवाकर फिर दुर्ग का निर्माण करवाना चाहिये। प्रारम्भ में उसका बाहरी परकोटा बनवा लेना चाहिये, फिर उसके बाहर परिखा बनवाकर उसके मध्य में भूल-भुलैयोंवाला मार्ग बनवाना चाहिये। कोट के बाहरी घरों को कोणों में बनवाना चाहिये उन्हें विषम अर्थ अप्रवेश्य बनाये॥ १२-१५॥

कोट को प्रतोली, पत्रकाल, कालरूपिणी परिखा, रमणिक यन्त्र तथा शकलीय यन्त्र से सुसज्जित करना चाहिये॥ १६॥

दुर्ग में स्थापित करने योग्य यन्त्र

मुशलैर्मुद्गरैः प्रासैर्यन्त्रैः खड्गैर्धनुर्धरैः।
संयुतं सुभटैः शूरैः संयुक्तानि च कारयेत्॥ १७॥
तन्मोक्षोऽन्त्रपुरानोहान्कोणे कोणे प्रदापयेत्।
तद्बाह्ये परिखाकारा कालरूपा सुविस्तरा॥ १८॥
समे प्रदेशे मध्ये तु महागेहानि कारयेत्।

दुर्ग को मुशल, मुद्गर, प्रासयन्त्र, खड्ग तथा धनुष—इन अस्त्रों सहित तथा इन्हें चलानेवाले योद्धाओं के सहित संयुक्त करना चाहिये॥ १७॥

दुर्ग के कोणों तथा भित्तियों में उन अस्त्रों के चलाने के लिये अन्त्रपुर (छेद) बनवाये, जिनसे बाण आदि को फेंका जा सके। बाहरी परकोटे के बाहर कालरूपिणी परिखा (गहरी खाईं) बनवाये। दुर्ग के मध्यवर्ती समतल प्रदेश में बड़े गृह बनवाना चाहिये॥ १८-१८½॥

दुर्ग हेतु वास्तुपूजन

तत्र सम्पूजयेद्वास्तुं कोटपालञ्च पूजयेत्॥ १९॥
क्षेत्रपालञ्च विधिवत् पूर्ववत् तं प्रपूजयेत्।
एतद् विधानं सर्वेषु दुर्गेषु च विधानतः॥ २०॥

सर्वप्रथम वास्तुपूजन करके कोटपाल तथा क्षेत्रपाल को पूजकर फिर विधिपूर्वक क्षेत्रपाल का पूजन पूर्व के अध्यायों में वर्णित विधि तथा मन्त्रों के अनुसार करना चाहिये। यह विधान सभी प्रकार के दुर्गों के लिये है॥ १९-२०॥

सप्तमे चण्डिकादेवीं मातृभिः सप्तभिर्युताम्।
अष्टमे सुरनाथञ्च तत्तन्मन्त्रैश्च पूजयेत्॥ ३६॥

उस पुर या कोट में जिसकी उत्पातादि शान्ति करनी हो उसमें पताका आदि से अलङ्कृत मण्डप का निर्माण करना चाहिये। उस मण्डप में आठ कलशों की स्थापना करनी चाहिये। उन कलशों को सर्वबीज, सर्वौषधि, पञ्चरत्न तथा तीर्थों के जल से भरना चाहिये।

उन आठ कलशों में प्रथम (पूर्व) कलश पर भूमि का आवाहन करना चाहिये। द्वितीय कलश पर शेषनाग (नागनाथ), तृतीय पर कोटपाल का, चौथे पर स्वामी (कार्तिकेय) का, पाँचवें पर वरुण का, छठे पर रुद्र का, सातवें पर चण्डिका देवी का सप्त मातृकाओं सहित तथा आठवें कलश पर इन्द्रदेव का आवाहन करें, फिर उन देवताओं के मन्त्रों से पूजन भी करना चाहिये॥ ३३-३६॥

८. सरनाम (इन्द्र)	१. भूदेवी (पृथ्वी)	२. नागनाथ (शेषनाग)
७. चण्डिका (सप्तमातृका सहित)	अष्टकलश पर देवताओं का आवाहन तथा पूजन	३. कोटपाल
६. रुद्र	५. वरुण	४. स्वामी (कार्तिकेय)

शान्तिकर्म में वास्तुपूजा

वास्तुपूजां ततः कुर्याद् ग्रहमण्डलगान् ग्रहान्।
गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैः कर्पूरसम्भवैः॥ ३७॥
नैवेद्यैश्चापि भूयिष्ठैः फेणिकैः पूरिकादिभिः।
शष्कुलीभिस्सखर्जूरैर्लड्डुकैर्मोदकैस्तथा ॥ ३८॥
नानाविधैः फलैश्चापि विधिवत्तोषयेत् सुरान्।
द्वाराग्रे भैरवं देवं विधिवत्पूजयेत्ततः॥ ३९॥

फिर वास्तुपूजा करने के उपरान्त नवग्रहपीठ के ग्रहों की पूजा करनी चाहिये। पूजा में गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, कर्पूर, अनेक प्रकार के नैवेद्य को जिसमें फेनी, पूड़ी, कचौड़ी, पूआ, खजूर (बर्फी), लड्डू, पेड़ा तथा अनेक प्रकार के फलों को शामिल करना चाहिये। उससे देवताओं को तृप्त करना चाहिये। द्वार के अग्रभाग में भैरवजी की पूजा भी विधिवत् करना चाहिये॥ ३७-३९॥

दिक्पालादि पूजन तथा होम

दिक्पालान् पूजयेद् बाह्ये क्षेत्रपालञ्च मध्यतः।
होमं कुर्याद् ग्रहाणान्तु स्वशास्त्रोक्तविधानतः॥ ४०॥

वास्तुहोमं ततः कुर्याद् भूम्यादीनां तथैव च।
भैरवी भैरवाः सिद्धिग्रहा नागा उपग्रहाः॥ ४१॥
भैरवस्य समीपस्थान् सम्पूज्य यथाविधिः।
क्षेत्रपालस्य मन्त्रेण होमं कुर्याद् विधानतः॥ ४२॥

दिक्पालों का पूजन बाह्यभाग में करें तथा क्षेत्रपाल का पूजन मध्यभाग में करना चाहिये तथा अपनी वेदशाखा के अनुसार विधिपूर्वक होम करना चाहिये॥ ४०॥

फिर वास्तुहोम तथा भूमि आदि (आठ कलशों पर स्थापित देवताओं) के लिये भी उनके नाम मन्त्रों से हवन करें। भैरवी, भैरव, सिद्ध, ग्रह, उपग्रह आदि के लिये भी होम करना चाहिये॥ ४१॥

भैरव के समीपवर्ती गणों की भी विधिपूर्वक पूजा करके फिर क्षेत्रपाल के मन्त्र से उनके लिये होम करना चाहिये तथा होम के विधान का पालन करना चाहिये॥ ४२॥

वास्तु होमपूर्वक अन्य होम

होमान्ते पञ्चभिर्बिल्वैर्बिल्वबीजैस्तथापि वा।
वास्तुहोमं प्रकुर्वीत कोटपालस्य नामतः॥ ४३॥
स्वामिनामस्य मन्त्रेण प्रणवाद्येन वै द्विज।
भूर्भुवस्वरिति पूर्वेण पूजां वा होममेव च॥ ४४॥
दुष्टग्रहाणां मन्त्रैश्च हुनेदष्टत्तरं शतम्।
प्रत्येकं जुह्याद् विद्वान् तिलैर्वाथ घृतेन वा॥ ४५॥
उष्ट्रिमन्त्रं जपेन्मध्ये सहस्त्रेण शतेन वा।
अष्टोत्तरशतं हुत्वा बलिं दद्यादतः परम्॥ ४६॥

होमों के अन्त में पाँच बेलफलों से अथवा बेल के बीजों से वास्तुहोम करना चाहिये। फिर कोटपाल के नाम मन्त्र से ('ॐ कोटपालाय स्वाहा') हवन करे। फिर स्वामी कार्तिकेय के नाम मन्त्र ('ॐ भूर्भुवः स्वः स्कन्दाय स्वाहा') अथवा ('ॐ भूर्भुवः स्वः कुमाराय स्वाहा') से हवन करे। इन मन्त्रों में प्रणव के साथ 'भूर्भुवः स्वः' भी लगाना चाहिये। पूजा भी इसी प्रकार करें॥ ४३-४४॥

जो ग्रह दूषित हों, उन ग्रहों के नाम मन्त्रों से पूजन तथा हवन करें। प्रत्येक दूषित ग्रह के लिये १०८ आहुतियाँ देनी चाहिये। हवन-सामग्री में तिल अथवा घृत का उपयोग करे॥ ४५॥

उष्ट्रि मन्त्र का जप भी मध्य में १०१ अथवा १००१ की संख्या में करना चाहिये॥ ४६॥ (उष्ट्री मन्त्र आगे श्लोक ५६ में देखें।)

बलिदान

पूरिकाया बलिं पूर्वे दक्षिणे कृशरं ततः।
पश्चिमे पायसं दद्यादुत्तरे घृतपायसम्॥ ४७॥

दिक्पालानां बलिञ्चैव क्षेत्रपालबलिं ततः।
कोटपालबलिञ्चैव कोटस्वामि बलिं ततः॥ ४८॥
पुरोपरि पशुन्दद्यात् द्वाराग्रे महिषं ततः।
यमश्लोकं जपेत्पूर्वे सहस्रस्य प्रमाणतः॥ ४९॥

कोट की अथवा पुर की पूर्वदिशा में पूड़ी की बलि, दक्षिण में खिचड़ी की बलि, पश्चिम में पायस (खीर) की बलि तथा उत्तर दिशा में घृतपायस की बलि देना चाहिये॥ ४७॥

फिर दिक्पालों की बलि करने के पश्चात् क्षेत्रपाल को बलि देना चाहिये। फिर कोटपाल की बलि तथा कोटस्वामी (स्कन्द) के निमित्त बलिदान करें॥ ४८॥

पुर के ऊपर पशुबलि करें, फिर यमश्लोक का एक सहस्र की संख्या में जप करने के पश्चात् द्वार के आगे भैंसे की बलि देना चाहिये॥ ४९॥

पूर्णाहुति तथा ब्राह्मण-भोजन

पूर्णां दत्त्वा विधिवत् स्वशक्त्या दक्षिणां चरेत्।
ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात् ततः सिद्धिर्भविष्यति॥ ५०॥

फिर पूर्णाहुति (एवं वसुधारा होम) करके अपनी सामर्थ्य के अनुसार दक्षिणा दे। होम के अन्त में ब्राह्मण भोजन करायें ऐसा करने से सिद्धि (उत्पातों तथा दुष्टग्रहों की शान्ति) हो जाती है॥ ५०॥

सन्ध्याकाल में पुर कर्म

पुरः कर्म ततः कृत्वा सन्ध्याकाले च नैर्ऋते।
बलिं दद्याद् विधानेन मन्त्रान् पूर्वोदितान् पठेत्॥ ५१॥

फिर पुरकर्म करके सन्ध्याकाल में नैर्ऋत्य कोण में बलि देकर पूर्वकथित मन्त्रों को पढ़ना चाहिये॥ ५१॥

नैर्ऋत्य कोण से मांसौदन बलि

मांसोदनबलिञ्चैव मन्त्रमेतदुदीरयेत्।
मन्त्रः—'ॐ ह्रीं सर्वविघ्नानुत्सारय नननननन न
मोहिनि स्तम्भिनि मम शत्रुं मोहय मोहय
स्तम्भय स्तम्भय
अस्य दुर्गस्य रक्षां कुरु कुरु स्वाहा'॥ ५२॥

फिर मांस तथा भात की बलि (नैर्ऋत्य के कोण में) अग्रलिखित मन्त्र (ॐ ह्रीं सर्वविघ्नानुत्सारय० इत्यादि) से दे॥ ५२॥

दुष्ट नक्षत्रेश ग्रह के लिये बलिदान

बलिं दत्त्वा ह्यनेनापि कृतकृत्यो भवेन्नरः।
दुष्टऋक्षस्य यः स्वामी तन्मन्त्रेण च कारयेत्॥ ५३॥

ऊपर लिखे मन्त्र से बलिदान करने पर मनुष्य के (राजा के) सभी मनोरथ सफल हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त दुष्ट नक्षत्र का स्वामी जो ग्रह हो उसके मन्त्र से भी बलिदान करना चाहिये॥ ५३॥

दुर्गमध्य में खदिर कील का रोपण

खादिरस्य च कीलं तु द्वादशाङ्गुलमानतः।
मृत्युञ्जयेन मन्त्रेण अभिमन्त्र्य सहस्रधा॥ ५४॥
स्थिरलग्ने स्थिरांशे च सुलग्ने सुदिने ततः।
रोपयेद् दुर्गमध्ये तु ततः सिद्धिर्भविष्यति॥ ५५॥
सर्वदा सुखभागी च कोटपो भवति ध्रुवम्।
सुखशान्तिः भवेद् दुर्गे धनधान्यञ्च जायते॥ ५६॥

खदिर वृक्ष की एक बारह अंगुल माप की कील बनवाकर मृत्युञ्जय मन्त्र से एक सहस्र बार अभिमन्त्रित करना चाहिये॥ ५४॥

फिर उस अभिमन्त्रित कील को स्थिर लग्न के स्थिर नवांश में शुभ समय तथा शुभ दिन में दुर्ग के मध्यभाग में गाड़ देने से दुर्ग सफल हो जाता है और दुर्ग के निवासियों को सर्वदा सुख की प्राप्ति होती है। दुर्ग में सुखशान्ति बनी रहती है तथा धनधान्य की प्रचुरता बनी रहती है॥ ५५-५६॥

उष्ट्री मन्त्र

'ॐ ह्रीं उष्ट्रि विकृतदंष्ट्रानने त्रुं फट्'॥
उष्ट्रीमन्त्रं दशसहस्राणि जपित्वा घृतमधुना पुष्पैः।
सहस्रमेकं यजेत्ततः सिद्धिर्भविष्यति॥ ५७॥

ऊपर लिखे उष्ट्री मन्त्र को दश सहस्र (१०,०००) की संख्या में होम करने से अभीष्ट सिद्धि होती है॥ ५७॥

यमश्लोक जप

यमश्लोकं द्वात्रिंशाक्षरं द्वात्रिंशत्सहस्राणि जपेत्ततः सिद्धो भवति॥ ५८॥
तथा पूर्वविधिना शतशतानि होमयेत्ततः सिद्धो भवति।
तत्तत् सकलं कर्म करोति॥ ५९॥

बत्तीस अक्षरों वाले यम श्लोक को बत्तीस सहस्र की संख्या में जप करने से वह सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार से पूर्वकथित अन्य मन्त्र भी जप करने से सिद्ध हो जाते हैं, इनके द्वारा एक सौ-एक सौ होम करना चाहिये तो वे सिद्ध होकर अपना-अपना कर्म करने में समर्थ होते हैं॥ ५८-५९॥

वज्रार्गल विधान

द्वादशारं लिखेच्चक्रं वृत्तत्रयविभूषितम्।
उष्ट्रिमन्त्रस्य तद्बाह्ये यमश्लोकौ च मध्यतः॥ ६०॥
वज्रार्गलविधानन्तु कर्त्तव्यं दुर्गरक्षणे।
भञ्जने यमराजाख्यं इत्युक्तं ब्रह्मयामले॥ ६१॥

तीन वृत्तों से युक्त द्वादशार चक्र बनाये। उस चक्र के बाहर उष्ट्री मन्त्र लिखे तथा उसके मध्य में यमश्लोक लिखना चाहिये। यह वज्रार्गल विधान कहा जाता है, इसे दुर्ग की रक्षा के लिये करना चाहिये तथा दुर्गभञ्जन के लिये 'यमराजाख्य' विधान ब्रह्मयामल ग्रन्थ में कहा गया है॥ ६०-६१॥

मृत्युंजय मन्त्र

ॐ जूं: सः॥

इति श्रीविश्वकर्मप्रकाशे वास्तुशास्त्रे कोटवास्तुकरणं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

विमर्श—ऊपर श्लोक ५६-५६ में पुर तथा दुर्ग के निर्माण के समय कील गाड़ना बताया गया है। किंवदन्ती है कि राजा अनङ्गपाल ने जब पुरी बसाई तो विधान के अनुसार पुरी एवं दुर्ग-मध्य में बारह अंगुल प्रमाण का खदिर शंकु (कील) को गाड़ा गया। वह कील ठोंकने पर शिथिल (ढिल्ली) रही, अतः उस कील के ढीली रहने के कारण नगरी का नाम ढिल्लिका अथवा ढिल्ली पड़ गया। उसी का घिसा हुआ रूप डिल्ली-दिल्ली अथवा देहली है। इसके अनुसार भारत की वर्तमान राजधानी दिल्ली के नाम की यही व्युत्पत्ति है।

इस ग्रन्थ का यह अध्याय विस्तार के साथ दुर्ग-निर्माण की कला को बता रहा है। इससे यह सिद्ध है कि ईसवी सन् के प्रारम्भ के सहस्रों वर्ष पूर्व भारतीयों को दुर्ग एवं पुर के निर्माण की कला का विशाल ज्ञान प्राप्त था। वास्तुशास्त्र के उपलब्ध अन्य ग्रन्थों में भी इस विद्या का साङ्गोपाङ्ग विवेचन मिलता है, कतिपय इतिहासकारों ने दिल्ली के रक्तदुर्ग को कहीं तैमूर लंग का बनाया हुआ, कहीं शेरशाह सूरी का बनाया हुआ लिख दिया है। यही स्थिति आगरा आदि के किलों की है।

जबकि अनेक इतिहासकार और पुराविद् ताजमहल को प्राचीन शिवमन्दिर मानते हैं। उनके अनुसार ताजमहल केवल इसलिये कहा जाता है कि शाहजहाँ ने उस पर अरबी-फारसी में लिखवाकर कुछ पत्थर बाहर की ओर चिपकवा दिये हैं। यही बात दिल्ली-फतेहपुर सीकरी आदि के अनेक प्राचीन भवनों की है, जिन्हें प्राचीन हिन्दू राजाओं ने बनवाया था और ये इतिहासकार मनगढ़न्त आधार पर इनको इस्लामी इमारतें कह रहे हैं। जबकि वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों की प्राचीनता के अनुसार भारत में दुर्ग-निर्माण की कला अत्यन्त प्राचीनकाल से विकसित थी।

इस प्रकार श्रीविश्वकर्मप्रकाश वास्तुशास्त्र ग्रन्थ की महर्षि अभयकात्यायन-विरचित हिन्दी टीका का ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

द्वादशोऽध्यायः

शल्यनिर्णयाध्यायः

गृहारम्भ में शल्यज्ञान का प्रयोजन

अतः परं प्रवक्ष्यामि शल्यज्ञानविधिं पुनः।
येन विज्ञानमात्रेण गृहेशः सुखमाप्नुयात्॥ १॥

अब इसके पश्चात् गृहार्थ निश्चित भूमि में शल्य (अस्थि आदि) के ज्ञान की विधि को कहता हूँ, जिसके जान लेने से गृहस्वामी को सुख प्राप्त होता है॥ १॥

यजमान के अंगस्पर्श से शल्यज्ञान

गृहारम्भे कण्डूयति स्वाङ्गं यत्र प्रवर्त्तते।
शल्यमासादयेत्तत्र प्रासादे भवने तथा॥ २॥
सशल्यं भयदं यस्मादल्पसिद्धिप्रदायकम्।
कारयित्वा नमस्कारं यजमानं परीक्षयेत्॥ ३॥

यजमान से इष्टदेव को प्रणाम करने के लिये कहें। तत्पश्चात् यह देखें कि यजमान अपने शरीर के किस अंग को स्पर्श करता है। यह अपने शरीर के जिस अंग का स्पर्श करता है, उस भूमि में वास्तुपुरुष के उसी अंग में शल्य होता है॥ २॥

शल्य भूमि में निर्मित गृह भयकारक तथा अल्प सफलतादायक होता है (अतः शल्य को हटाना चाहिये)॥ ३॥

अंगस्पर्श का फल

यदङ्गं संस्पृशेत् कर्त्ता तस्य तं शल्यमुद्धरेत्।
अष्टतालादधस्तस्मिन् तत्र शल्यं न संशयः॥ ४॥
नासिकास्पर्शने कर्त्तुर्वास्तोः शल्यं तदल्पकम्।
स्थितं विनिश्चितं ब्रूयात् तल्लक्षणमथोच्यते॥ ५॥
शिरसः स्पर्शने वास्तोः सार्द्धहस्तादधो स्थिताम्।
मौक्तिकं तु करत्रेण मुखस्पर्शे तु देहिनः॥ ६॥
वाजिदन्तं महाशल्यमुद्धरेत् वास्तुतन्त्रवित्।
करस्पर्शे करे वास्तोः खट्वांगे च करादयः॥ ७॥

कर्त्ता यजमान अपने शरीर के जिस अंग का स्पर्श आठ ताली बजाने के समय के भीतर करता है, तभी शल्य होता है अन्यथा नहीं। उस अंग के शल्य का उद्धार करना चाहिये॥ ४॥

यदि नाक का स्पर्श करे तो अल्प शल्य होता है तथा वह अल्प दुःखप्रद होता है। इस प्रकार जब शल्य के अधिक कष्टप्रद होने का निश्चय हो जाये तब उसका उद्धार करे। अब आगे अन्य अंगों के स्पर्श का फल कहा जा रहा है॥ ५॥

यदि पृच्छक यजमान अपने शिर का स्पर्श करता है तो वास्तुपुरुष के शिर स्थान में भूमि में डेढ़ (१½) हाथ नीचे शल्य होता है। यदि अपने दाँत का स्पर्श करे तो वास्तुपुरुष के दन्तस्थल में अश्वदन्त का दुःखकारक शल्य होता है, अतः इसका उद्धार करना चाहिये। यदि हाथ का स्पर्श करे तो उस हाथवाले अंग में शल्य होता है तथा पैरों का स्पर्श करे तो पैरोंवाले अंग में (घुटनों में) शल्य जानना चाहिये॥ ६-७॥

षड्गुणसूत्र से भूमि का शोधन

अथापरमपि ज्ञानं कथयामि समासतः।
षड्गुणीकृतसूत्रेण शोधयेद् धरणीतले॥ ८ ॥

अब अन्य प्रकार के उपयोगी ज्ञान को भी साररूप में कहता हूँ। षड्गुणीकृत सूत्र (छह गुने सूत्र अथवा छह लड़ीवाले सूत्र) से भूमि का शोधन करना चाहिये॥ ८॥

षड्गुणीकृत सूत्रधारण के समय लंघनादि का फल

सुधृते समये तस्मिन् सूत्रं केनापि लङ्घयेत्।
तदस्थिं तत्र जानीयात् पुरुषस्य प्रमाणतः॥ ९ ॥
आसक्तो दृश्यते यस्माद् दिशं शल्यं समादिशेत्।
तस्यामेव तदस्थीनि सप्तत्यङ्गुलमानतः॥ १०॥
सूत्रिते समये यत्र आसनोपरिसंस्थितः।
तदस्थि तत्र जानीयात् क्षितौ क्षणे न संशयम्॥ ११॥

यदि उक्त षड्गुण सूत्र से भूमि की पैमाइश करते समय कोई प्राणी इस सूत्र को लाँघ जाय तो जिस स्थान पर भूमि का लंघन उस प्राणी के द्वारा हो, उसी स्थान पर उस प्राणी की अस्थि एक पुरुष गहराई (साढ़े तीन हाथ) पर होती है॥ ९॥

यदि भूमि के किसी भाग में ऊपर कोई अस्थि कुछ गड़ी हुई-सी दिखे तो उस भाग में भी शल्य होता है। और जो हड्डी ऊपर मिलती है वही उस स्थान के नीचे सत्तर अंगुल की गहराई पर भूमि में होती है, उसे निकाल लेना चाहिये॥ १०॥

यदि सूत्र प्रसारण के समय कहीं उस भूभाग में आसन पर मनुष्यादि बैठे हों तो उस भाग में भूमि के नीचे उन्हीं (मनुष्य आदि) की अस्थियाँ होती हैं, इसमें कोई संशय नहीं है॥ ११॥

शल्यज्ञान की अन्य विधि

नवकोष्ठीकृते भूमिभागे प्राच्यादितो लिखेत्।
अकचटतपयशान् क्रमाद् वर्णानिमानि च॥ १२॥
प्रारम्भः स्याद्यति प्राच्यां नरशल्यं तदा भवेत्।
सार्द्धहस्तप्रमाणेन यच्च मानुष्य मृत्यवे॥ १३॥
अग्नेर्दिशि च कः प्रश्ने खरशल्यं करद्वयोः।
राजदण्डो भवेत् तस्मिन् भयश्चैव प्रवर्तते॥ १४॥
याभ्यां दिशिकृते प्रश्ने नरशल्यमधो भवेत्।
तद् गृहस्वामिनो मृत्युं करोत्याकटिसंस्थितम्॥ १५॥
नैर्ऋत्यां दिशितः प्रश्ने सार्धहस्तादधस्तले।
शुनोऽस्थि जायते तत्र डिम्भानाञ्जनयेन्मृतिम्॥ १६॥
प्रश्ने पश्चिमायान्तु शिवशल्यं प्रजायते।
सार्द्ध हस्ते प्रवासाय सदनं स्वामिनः पुनः॥ १७॥
वायव्यां दिशि तु प्रश्ने नराणां व चतुष्करे।
शल्यं समुद्धरेद्धीमान् करोति मित्रनाशनम्॥ १८॥
उत्तरस्यां दिशि प्रश्ने गर्दभास्थि न संशयः।
सार्द्धहस्तचतुष्के च पशुनाशाय तद्भवेत्॥ १९॥
ईशानदिशि यः प्रश्नो गोशल्यं सार्द्धहस्ततः।
तच्च गोधननाशाय जायते गृहमेधिनः॥ २०॥
मध्यकोष्ठे च यः प्रश्नो वक्षोमात्रादधस्तदा।
केशाः कपालं मर्त्यास्थि भस्मलोहञ्च मृत्यवे॥ २१॥

त्रयोदशोऽध्यायः

राजभवनवेधनिर्णयाध्यायः

सभी गृहों के अन्धादि वेधों का कथन

अतः परं प्रवक्ष्यामि गृहाणां दोषनिर्णयम्।
अन्धकं रुधिरञ्चैव कुब्जं काणं वधीरकम्॥ १ ॥
दिग्वक्त्रं चिपिटञ्चैव व्यङ्गजं मुरजं तथा।
कुटिलं कुट्टकञ्चैव सुप्तञ्च शङ्खपालकम्॥ २ ॥
विकटञ्च तथा कङ्कं कैङ्करं षोडशं स्मृतम्।

अब मैं गृहों के दोषों का निर्णय करना बताता हूँ—

१. अन्धक, २. रुधिर, ३. कुब्ज, ४. काण, ५. बधिर, ६. दिग्वक्त्र, ७. चिपिट, ८. व्यङ्गज, ९. मुरज, १०. कुटिल, ११. कुट्टक, १२. सुप्त, १३. शङ्खपाल, १४. विकट, १५. कङ्क तथा १६. (सोलहवाँ) कैङ्कर—ये गृह-निर्माण के दोष सोलह प्रकार के वेध कहलाते हैं॥ १-२½ ॥

अन्धकादि वेधों के लक्षण

अन्धकं छिद्रहीनञ्च विच्छिद्रं दिशिकाणकम्॥ ३ ॥
हीनाङ्गं कुब्जकञ्चैव पृथ्वीद्वारं वधीरकम्।
रन्ध्रं विकीर्णं दिग्वक्त्रं रुधिरञ्चाविपद्गतम्॥ ४ ॥
तुङ्गहीनञ्च चिपिटं व्यङ्गञ्चानर्थ दर्शनम्।
पार्श्वोन्नतञ्च मुरजं कुटिलं तालहीनकम्॥ ५ ॥
शङ्खपालं जङ्घहीनं दिग्वक्रं विकटं स्मृतम्।
पार्श्वहीनं तथा कङ्कं कैङ्करञ्च हलोन्नतम्॥ ६ ॥

१. जिस घर में कोई छिद्र (झरोखा-रोशनदान-खिड़की आदि) न हो, उसको **अन्धक** गृह अथवा अन्धकवेध कहते हैं। २. जिसमें कोनों में छिद्र (झरोखे) हों अथवा यहाँ-वहाँ छिद्र हों तो वह **काणगृह** कहलाता है। ३. जो गृह हीनांग हो अर्थात् जिसकी कोई दीवाल अनावश्यक ऊँची तथा दूसरी अनुपातहीन नीची हो, वह **कुब्जक** गृह होता है। ४. जिस गृह का द्वार पृथ्वी में (नीचे धँसा हुआ) हो, उसे **बधिर** कहते हैं। ५. जिसमें सभी दिशाओं में अनेकों छिद्र हों, उसे **दिग्वक्त्र** अथवा दिङ्मुख गृह कहते हैं। ६. जिस गृह में अनेक प्रकार की चोट लगनेवाली रचनाएँ हों अथवा कूड़ा-कर्कट हो, उस गृह को **रुधिर गृह** कहते हैं। ७. जो गृह बहुत कम

ऊँचाईवाला हो, उसे **चिपिट** कहते हैं। ८. जिस गृह का स्वरूप अशुभ हो उसे **व्यङ्ग** कहते हैं। ९. जिसके पार्श्वभाग अधिक ऊँचे हों उसे **मुरज** कहते हैं। १०. जो गृह तालरहित (टेढ़ा-मेढ़ा) होता है, उसे **कुटिल** गृह कहा जाता है। ११. जो गृह जंघारहित हो अर्थात् जिसका फर्श मार्ग से ऊँचा न हो तो उसे **शङ्खपाल** कहते हैं। १२. जो गृह चारो दिशाओं में टेढ़ा हो अथवा जिसकी दीवालें दिशाओं के सापेक्ष (सदिक्) न हों उसको **विकट** कहा जाता है। १३. जिसके पार्श्व नहीं होते हैं, उस घर को **कङ्क** कहते हैं। १४. जो हलके समान ऊँचा हो उसे **कैङ्कर** कहते हैं॥ ३-६ ॥

कुट्टक तथा सुप्त के लक्षण

शिरं स्फुटति यद् द्वारे कुट्टकं तं प्रकथ्यते।
निम्नं तथातिलम्बञ्च सुप्तमित्युच्यते बुधैः॥ ७ ॥

१५. जिस गृह का द्वार इतना नीचा है कि प्रवेश एवं निर्गम के समय सिर फूटता हो उसको **कुट्टक** कहते हैं। १६. जिसकी ऊँचाई कम हो तथा जो लम्बाई में अधिक हो उसके **सुप्त** कहा जाता है॥ ७॥

इन सोलह अधम गृहों के फल

इत्येतेऽधमाः प्रोक्ता वर्जनीया प्रयत्नतः।
अन्धके रोगमतुलं रुधिरेऽतिसारजं भयम्॥ ८ ॥
कुब्जे कुष्ठादिरोगश्च काणेऽन्धत्वं प्रजायते।
पृथ्वीद्वारं सर्वदुःखं मरणं वा प्रजायते॥ ९ ॥
दिग्वक्त्रे गर्भनाशः स्याच्चिपिटे नीचसङ्गतिः।
व्यङ्गे च व्यङ्गता नैःस्वं मुरजे कुटिले क्षमः॥ १०॥
कुट्टके भूतदोषः स्यात् सुप्ते गृहपतेः क्षयः।
शङ्खपाले कुरूपं स्यात् विकटेऽपत्यनाशनम्॥ ११॥
कङ्के शून्यं कैङ्करे च स्त्रीहानिः प्रेष्यता भवेत्।

ये सभी गृह अधम (निन्दित या अशुभ) होते हैं, अतः इन्हें प्रयत्नपूर्वक त्यागना चाहिये; क्योंकि अन्धक गृह में निवास करने से अनेकों रोग उत्पन्न होते हैं तथा असाध्य हो जाते हैं। रुधिर गृह में अतिसार या संग्रहणी रोग का भय रहता है। कुब्जगृह में कुष्ठादि रोग होते हैं। काण गृह में अन्धता (नेत्ररोग) होते हैं। पृथ्वीद्वार में सर्वदुःख अथवा मरण होता है। दिग्वक्त्र में गर्भनाश (गर्भविकृति), चिपिट गृह में नीचों की संगति, व्यङ्ग में व्यङ्गता, कुट्टक में भूतदोष, सुप्त में गृहपति का क्षय, शंखपाल में कुरूपता तथा विकट में सन्तति का नाश होता है। कङ्क में शून्यता, कैङ्कर में स्त्रीहानि तथा प्रेष्यता होती है॥ ८-११½ ॥

गृह के षोडश दोषप्रदर्शक चक्र

गृहदोष	फल
अन्धक	अतुलरोग
रुधिर	अतिसार
कुब्ज	कुष्ठादिरोग
काण	अन्धत्व
बधिर	सर्वदुख/मरण
दिवक्र	गर्भनाश
चिपिट	नीच संगति
व्यंगज	व्यङ्गता
मुरज	धनहीनता
कुटिल	क्षय
कुट्टक	भूतदोष
सुप्त	गृहपति की हानि
शंखपाल	कुरूपता
विकट	सन्ततिहानि
कङ्क	शून्यता
कैङ्कर	स्त्रीहानि

गृह के काष्ठ के दोष तथा उनका फल

कुलिशेनाहते दारौ गृहान्तस्थे मृतिर्भवेत्॥ १२॥
वह्निदग्धे निर्धनत्वं अपत्यादिक्षयो भवेत्।
विरूपाः जर्जराः जीर्णा अग्रहीनाऽर्द्धदग्धिताः॥ १३॥
अङ्गहीनाश्छिद्रहीनाश्छिद्रयुक्ताश्च वर्जयेत्।
वक्रे च परदेशः स्याच्छुष्कार्द्धे स्वामिनो भयम्॥ १४॥
व्यङ्गे रोगभयं घोरं सर्वच्छिद्रे मृतेर्भयम्।

जो काष्ठ बिजली गिरने से आहत हो गया हो, उसे घर के भीतर रखने से मृत्यु होती है। यदि अग्नि से काष्ठ जल जाय तो उस काष्ठ के घर में लगे रहने से निर्धनता तथा सन्तान की हानि होती है। इसी प्रकार घर में विरूप, जर्जर, जीर्ण, अग्रहीन, अर्धदग्ध, अंगहीन, छिद्रहीन (गाँठदार), छिद्रयुक्त ये सभी काष्ठ त्याग देना चाहिये। (इनका उपयोग किवाड़, चौखट, आलमारी, पर्णतौर्य=फर्नीचर आदि में न करे) टेढ़े काष्ठ में विदेशवास तथा अर्धशुष्क काष्ठ स्वामी को भयकारक होता है। जिस काष्ठ में व्यंग हो वह रोगभयकारक तथा जिसमें सभी जगह छिद्र हों तो मृत्युभय उत्पन्न होता है॥ १२-१४½॥

गृह में पाषाण का फल

पाषाणान्तर्गतं गेहं शुभं सौख्यविवर्धनम्॥ १५॥
गेहमध्यस्थितं यच्च सर्वदोषकरं भवेत्।

जो घर पत्थरों के मध्य बना हो तो वह सभी सुखों को बढ़ानेवाला होता है। परन्तु जिस घर के मध्य में पत्थर (पहाड़) हो, वह सब प्रकार से अशुभ होता है॥ १५-१५½॥

गृह के विस्तार आदि का शुभत्व

विस्तीर्णमानं यद् गेहं तदूर्ध्वं परिकीर्तितम्॥ १६॥
शेषाश्चैव त्रिभागं तु तद्गृहं चोत्तमं स्मृतम्।
तुङ्गमूनाधिकं रोगभयं करोति विस्तृतम्॥ १७॥

घर के भीतर की जो चौड़ाई होती है, प्रायः उसके अनुपात से उसकी ऊँचाई (ऊर्ध्व) होना चाहिये। जिस गृह की ऊँचाई उसके सम्पूर्ण (क्षेत्रफल) भूमि के त्रिभाग ($\frac{1}{3}$) होती है, उस घर को उत्तम कहते हैं। इससे न्यूनाधिक होना रोग को उत्पन्न करता है॥ १६-१७॥

त्रिकोण आदि गृहों का फल कथन

त्रिकोणं निधनं शीघ्रं गृहं दीर्घं निरर्थकम्।
अथान्यान्दशवेधांश्च कथयामि बहिःस्थिताम्॥ १८॥

१. त्रिकोणाकृति गृह में रहने से शीघ्र ही निधन होता है।

२. जो गृह अतिदीर्घ (अधिक लम्बा) होता है, वह निरर्थक (धन एवं साधनहीन अथवा व्यर्थ) होता है।

३. अब आगे गृहों के अन्य दश बाह्यस्थित वेधों को भी कह रहा हूँ॥ १८॥

गृहों के बाह्यस्थित दस वेधों का कथन

कोणदृक् क्षुद्रछायोक्षऋजुवंशाग्रभूमिकाः।
सङ्घातदन्तयोश्चैव वेधाश्च दशधा स्मृताः॥ १९॥

१. कोण, २. अर्धकोण वेध, ३. दृग्वेध, ४. क्षुद्रवेध, ५. छायावेध, ६. ऋजुवेध, ७. वंशवेध, अग्रवेध, ८. भूमिवेध ९. दन्तवेध तथा १०. संघात—ये दस प्रकार के बाह्यवेध होते हैं॥ १९॥

कोणवेध तथा दृष्टिवेध के फल

कोणाग्रे वान्यगेहे च कोणात् कोणान्तरं पुरः।
तथा गृहार्धसंलग्नं कोणं न शुभदं स्मृतम्॥ २०॥
कोणवेधे भवेद् व्याधिर्धननाशोऽरिविग्रहः।
एकं प्रधानद्वारस्याभिमुखेऽन्यत् प्रधानकम्॥ २१॥
द्वारं गृहाच्च द्विगुणं तद् दृग्वेधः प्रचक्षते।
दृष्टिवेधे भवेन्नाशो धनस्य मरणं ध्रुवम्॥ २२॥

यदि किसी गृह के कोने के ठीक सामने किसी अन्य ग्रह की भित्ति तथा गृह के अर्धभाग से मिला हुआ किसी अन्य गृह का कोना हो तो उसे कोणवेध कहते हैं। कोणवेध होने पर व्याधि होती है तथा धन का नाश एवं शत्रुओं से झगड़ा भी होता है॥ २०-२०½॥

यदि गृह के प्रधान द्वार के सामने ही किसी अन्य गृह का मुख्य द्वार हो तो वह दृष्टिवेध होता है। यह दृष्टिवेध धननाशकारक होता है तथा निश्चित ही मृत्युतुल्य दुःख देता है॥ २१-२२॥

समक्षुद्रं क्षुद्रवेधे पशुहानिकरं परम्।
द्वितीये तृतीये यामे छाया यत् पतेद् गृहे॥ २३॥
छायावेधं तु तद्गेहं रोगदं पशुहानिदम्।
आदौ पूर्वोत्तरा पंक्तिः पश्चाद् दक्षिणपश्चिमे॥ २४॥
वास्त्वन्तरे भित्तिसमं शुभदं तत् प्रकीर्तितम्।
विषमे दोषबहुलं ऋजुवेधं प्रजायते॥ २५॥
ऋजुवेधे महात्रासो जायते नात्र संशयः।
वंशाग्रे चान्यवंशः स्यादग्रे भित्ति बाह्यगाः॥ २६॥
तद्वंशे वेधयेद् गेहं वंशहानिः प्रजायते।
उक्षयोर्यत्र संयोगो यूपाग्रेषु प्रजायते॥ २७॥
उक्षवेधं विजानीयाद् विनाशः कलहो भवेत्।

गृह के समक्ष यदि दूसरा अन्य छोटा गृह बना हो तो उसे क्षुद्रवेध कहते हैं, वह पशुओं के लिये हानिकारक होता है। यदि किसी अन्य गृह की छाया दिन के द्वितीय या तृतीय प्रहर में गृह पर पड़ती हो, तब उसे छायावेध कहते हैं। वह भी पशुओं की हानि करनेवाला तथा रोगकारक होता है।

जिस गृह में गृहों (कमरों)की प्रथम पंक्ति पूर्व या उत्तर दिशा में हो तथा पिछली पंक्ति दक्षिण या पश्चिम में हो तथा मध्य में वास्तु के भीतर समान भित्तियों के कक्ष निर्मित हों, वह गृह शुभ होता है।

जो गृह विषम (एक ओर दीर्घ तथा दूसरी ओर ह्रस्व हो, तबा वह ऋजुवेध कहलाता है। वह दोषकारक होता है तथा उसमें महान् त्रास होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

यदि किसी गृह के वंश (बाँस) के आगे अन्य गृह का वंश हो तथा भित्ति के आगे अन्य भित्ति हो तो यह वंशवेध तथा अग्रवेध कहा जाता है। यह वेध वंशहानिकर होते हैं। जहाँ गृह के उक्षों का संयोग यूपाग्र में होता हो, उसे उक्षवेध कहते हैं। इसमें विनाश तथा कलह होता है॥ २३-२७½॥

पूर्वोत्तरे वास्तुभूमौ विपरीतेऽथ निम्नका॥ २८॥
उच्चवेधो भवेन्नूनं तद्वेधं न शुभप्रदम्।
द्वयोर्गेहान्तरगतं गृहे तच्छुभदायकम्॥ २९॥
गृहोच्चादर्धसंलग्ने तथा पाराग्रसंस्थितम्।
संघातमेलनं यत्र गेहयोर्भित्तिरेकतः॥ ३०॥

विधिवश्यं शीघ्रमेव मरणं स्वामिनोर्द्वयोः।
पर्वतान्निःसृतं चाश्मदन्तवद् भित्तिसम्मुखम्॥ ३१॥
दन्तवेधमित्याहुः शोकं रोगं करोति तत्।

जिस गृह के पूर्व तथा उत्तर दिशा की विपरीत अर्थात् ऊँची हो तथा गृह नीचे में स्थित हो, वह उच्चवेध (भूमिवेध) होता है वह शुभफल नहीं देता है (क्योंकि उसमें सूर्य के प्रकाश तथा वायु का अवरोध होता है) दो गृहों के अन्तर्गत भी जो गृह होता है वह भी शुभदायक नहीं होता है। जिस भवन की ऊँचाई से आधे भाग पर अन्य गृह हो तथा उसी प्रकार गृह पाराग्र में स्थित हो और दोनों की भित्तियों का जहाँ संघात हो अथवा दोनों गृहों की भित्तियाँ एक हों तो यह संघात दोष (वेध) होता है, इस प्रकार के जुड़वा गृहों के निर्माण के उपरान्त शीघ्र ही दोनों के स्वामियों का मरण होता है। तात्पर्य यह है कि दो मकानों की एक ही भित्ति होना अथवा दोनों का सटा हुआ होना बहुत अशुभ होता है।

जिस गृह की भित्ति के सम्मुख किसी पर्वत से निकला हुआ खण्ड दाँत के समान आगे को हो तो उसे दन्तवेध कहते हैं, वह दन्तवेध रोग तथा शोककारक होता है॥ २८-३१½॥

स्थिति के अनुसार गृहों के अन्य दोष

अधित्यकासु यद्गेहं यद्गेहं पर्वतादधः॥ ३२॥
यद् गेहञ्चाश्मसंलग्नं घोरं पाषाणसंयुतम्।
धाराग्रसंस्थितं वापि संलग्नान्तरपर्वते॥ ३३॥
नदीतीरस्थितं वापि शृङ्गान्तरगतं तथा।
भित्तिभिन्नं तु यद्गेहं सदा जलसमीपगम्॥ ३४॥
रुदन्तं द्वारशब्दार्थं काकोलूकनिवासितम्।
कपाटहीनञ्च रात्रौ तथा शशनिनादितम्॥ ३५॥
स्थूलसर्पनिवासञ्च यच्च वज्राग्निदूषितम्।
जलस्रवान्वितं भीरु कुब्जं काणं वधीरकम्॥ ३६॥
यच्चोपघातादि भवं ब्रह्महत्यान्वितं तथा।
शालविहीनं यच्चापि शिखाहीनं तथैव च॥ ३७॥
भित्तिबाह्यगतैर्दारुकाष्ठैरुधिरसंयुतम्।
कृतं कण्टकिसंयुक्तं चतुष्कोणं तथैव च॥ ३८॥
श्मशानदूषितं यच्च यच्च चैत्यनिकास्थितम्।
वासहीनं तथा म्लेच्छचाण्डालैश्चाधिवासितम्॥ ३९॥

शतं दण्डानि पर्यन्तं पीड्यते पुरवासिनाम्।
समभूमिषु सन्त्याज्यो वेधोऽयं द्विजपुङ्गवैः॥ १६॥

अब द्विजातियों के पुर से शूद्रों के पुर की दूरी आदि संक्षेप से कहता हूँ। पूर्वभाग में दशदण्ड की नीचाई, गृह के उत्तर में स्थित गृह की बारह दण्ड, पश्चिम में तीस दण्ड तथा दक्षिण में एक सौ दण्ड होनी चाहिये। इतनी दूरी तक गृहों की दूरी द्विजातियों को रखनी चाहिये॥ १३-१४½ ॥

विपरीत स्थिति होने पर बुद्धिमान् मनुष्य ऊपर कही दूरी या नीचाई में एक चौथाई की कमी कर सकता है। समभूमि में द्विजों के गृह से एक सौ दण्ड की दूरी पर शूद्रों के गृह एवं पुर को बसाना चाहिये॥ १५-१६॥

प्रेक्षत्व में आनेवाले दक्षिणी गृहों का फलकथन

दक्षिणेऽन्तो दिग्विषये भवनवरेऽर्थक्षयोऽङ्गनादोषाः।
सुतमरणं प्रेक्षत्वे भवति सदा तत्र वासिनां पुंसाम्॥ १७॥
गृहं गृहार्धञ्च तथा चतुर्थी
भावो भवेद् दिग्विषये स्थितो वा।
ऊर्ध्वञ्च नीचे यमदिक्स्थितस्य
गेहञ्चाग्रे प्रभवेच्च दोषः॥ १८॥
अमावस्योद्भवा कन्या पितृहा योगतः सुतः।
तथा याम्यगृहं त्याज्यं नरेण भूतिमिच्छता॥ १९॥
रक्तकेशी च लम्बोष्ठी पिङ्गाक्षी कृष्णतालुका।
भर्त्तारं हन्ति सा क्षिप्रं तथा याम्यगृहात् पुरम्॥ २०॥
आलस्येन यथा देहं कुपुत्रेण यथा कुलम्।
दरिद्रेण यथा जन्म तथा याम्यगृहात्पुरम्॥ २१॥
उदीचीं विन्यसेदादौ पश्चाद् याम्यं तु विन्यसेत्।
तद्गृहं विद्यते तत्र पुत्रदारादिनाशनम्॥ २२॥

जिस श्रेष्ठ भवन का निर्माणकार्य अन्त में दक्षिण दिशा में समाप्त हो अर्थात् जिसका दक्षिणी भाग सबसे अन्त में बनाया जाय तो उस गृह की स्त्रियों में दोष (कलंक) लगता है, ऐसे भवन के दक्षिणी भाग में अथवा भवन में अन्य भवन से दृष्टि (प्रेक्षत्व) होता हो तो उसमें पुत्रों की मृत्यु होती रहती है। पूर्णगृह अथवा गृह का आधा भाग अथवा चतुर्थ भाग अन्य दिशाओं में बना हो तथा दक्षिणी भाग में ऊँचा अथवा नीचा अन्य गृह भाग बना हो तो दोषपूर्ण होता है॥ १७-१८॥

जिस प्रकार अमावस्या तिथि में जन्मी कन्या तथा पुत्र पिता के लिये हानिकर होते हैं, वैसे ही दक्षिणी गृह उसके स्वामी के लिये हानिकर होते हैं, अतः कल्याणकामी को उसे त्याग देना चाहिये॥ १९॥

जिस प्रकार से लाल बालोंवाली, लम्बे ओठोंवाली, पिङ्ग नेत्रोंवाली, कृष्ण तालुवाली स्त्री अपने पति के लिये घातक होती है, वैसे ही दक्षिण में स्थित गृह अपने वास करनेवाले को मारता है॥ २०॥

जिस प्रकार आलस्य से शरीर, कुपुत्र से कुल तथा दरिद्रता से जन्म व्यर्थ हो जाता है, उसी प्रकार दक्षिण के घर से पुर या व्यक्ति का नाश होता है॥ २१॥

जिस गृह का उत्तरी भाग पहले तथा दक्षिणी भाग पश्चात् में बनता है तो वह गृह पुत्र तथा स्त्री का नाशक होता है॥ २२॥

ग्राम में संकर जातियों का नगर के कोणों में निवास

ईशाने विन्यसेच्छागं न छागः सिंहभक्षकः।
आग्नेयस्थं गृहं काकं वायव्यस्थञ्च श्येनकम्॥ २३॥
काकञ्च भक्षेयेदादौ पश्चान्नैर्ऋत्यादिक्कृतम्।
छागसदृशमीशाने सिंहनाम्ना तु नैर्ऋते॥ २४॥
सिंहो भक्षयते श्येनं न काकः श्येनभक्षकः।

ईशानकोण में गृह बनाये, वह छाग के समान होता है। छाग सिंह का भक्षण नहीं कर सकता है। अग्निकोण में गृह बनाये, वह काक के सदृश होता है। वायव्य के श्येन गृह का निर्माण करे फिर नैर्ऋत्यकोण में निर्माण करे। ईशान छागसदृश तथा नैर्ऋत्य सिंह नामक होता है। न तो सिंह श्येन को खा सकता है और न काक श्येन को खाता है॥ २३-२४½ ॥

आग्नेयादिक्रमेणैव अन्त्यजा वर्णसंकराः॥ २५॥
ज्ञातिभ्रष्टाश्च चौराश्च विदिक्स्थानदोषदाः।
वैपरीत्येन वेधः स्यात् तद्गृहाणां विरोधतः॥ २६॥

अग्निकोण में अन्त्यजों (काकाः) को, नैर्ऋत्य में वर्णसंकरों, वायव्य में जातिभ्रष्टों तथा ईशान में चोरों को बसाये तो दोष नहीं होता है। इन्हें विपरीत क्रम से वेध होता है, अतः दोषकारक होते हैं॥ २५-२६॥

गृह से चारो ओर खाली भूमि छोड़ना

उत्तरे द्विगुणा भूमिः समा भूमिः च पूर्वके।
पश्चिमे त्रिगुणा भूमिः क्रोशमेकं तु दक्षिणे॥ २७॥

वेध होने पर छठे वर्ष के भीतर स्वामी की मृत्यु होती है। अथवा नौ वर्ष में लक्ष्मीविहीन हो जाता है अथवा चौथे वर्ष में पुत्रनाश होता है अथवा आठवें वर्ष के भीतर सर्वनाश होता है। पक्ष या मास या छह मास अथवा सम्वत्सर में भी फल होता है, अतः विद्वानों को गृह के शुभ-अशुभ क्षेम का विचार करना चाहिये॥ ५५-५६॥

आयों का विभिन्न दिशाओं में फल

मातङ्गो दक्षिणे भागे पूर्वे पश्चात्तथोत्तरे।
सिंहो विधत्ते मरणं पुत्राणां दोषदं महत्॥ ५७॥
पूर्वे वृषं तथा तोये ध्वजं दोषकरं महत्।
इति कण्ठीरवौ गेहौ याम्यपश्चिमदिक्स्थितौ॥ ५८॥
पूर्वोत्तरे ध्वजोक्षाणां महापीडाकरौ मतौ।

दक्षिण में गज आय तथा पूर्व-पश्चिम-उत्तर दिशाओं में सिंहनामक आय के घर बनाना महान् दोषकारक तथा पुत्रों की मृत्यु करता है। पूर्व दिशा में वृष आय, पश्चिम में ध्वज आय अति दोषकारक होते हैं। इसी प्रकार सिंह आय के गृह दक्षिण-पश्चिम में भी शुभ नहीं होते हैं। पूर्व तथा उत्तर दिशा में ध्वज आय के गृह वृषभों एवं गायों के लिये महान् पीड़ाकारक होते हैं॥ ५७-५८½॥

गृह के समीप शुभ वृक्ष

जम्बीरैः पुष्पवृक्षैश्च पनसैर्दाडिमैस्तथा॥ ५९॥
जातीभिर्मल्लिकाभिश्च शतपत्रैश्च केसरैः।
नालिकेरैश्च पुष्पैश्च कर्णिकारैश्च किंशुकैः॥ ६०॥
वेष्टितं भवनं नृणां सर्वसौख्यप्रदायकम्।
आदौ वृक्षाणि विन्यस्य पश्चाद् गेहानि विन्यसेत्॥ ६१॥
अन्यथा यदि कुर्यात्तु तद्गृहं नैव शोभनम्।
नगरं विन्यसेदादौ पश्चाद् गेहानि विन्यसेत्॥ ६२॥
अन्यथा यदि कुर्वाणस्तदा न शुभमादिशेत्॥ ६३॥

नीबू, पुष्पवृक्ष, कटहल, अनार, चमेली, मल्लिका, गुलाब, कमल, केसर, नारियल पुष्प, कनेर तथा पलाश आदि से घिरे हुए जो गृह होते हैं वे मनुष्यों को सुखदायक होते हैं। प्रथम वृक्षों को लगाये, पीछे से गृह-निर्माण करे तब शुभ होता है, अन्यथा नहीं। नगर का विन्यास पहले करना चाहिये, पश्चात् गृह बनाना चाहिये अन्यथा शुभ नहीं होता है॥ ५९-६३॥

गृह एवं नगर के चारो ओर पताकाओं के वर्ण

पीताऽथ पूर्वे कपिला हुताशे
याम्ये च कृष्णा निर्ऋतौ च श्यामा।
शुक्ला प्रतीच्यां हरिताऽथ वायौ
श्वेताऽथ सौम्ये धवला च ईशे॥ ६४॥
ईशानपूर्वयोर्मध्ये श्वेता पश्चिमनैर्ऋते।
तयोर्मध्ये रक्तवर्णा पताका परिकीर्तिता॥ ६५॥

पूर्व में पीतवर्ण, आग्नेय में कपिलवर्ण, दक्षिण में कृष्णवर्ण, नैर्ऋत्य में श्याम-वर्ण, पश्चिम में श्वेतवर्ण, वायव्य में हरितवर्ण, उत्तर में श्वेतवर्ण, ईशान में धवलवर्ण, ईशान तथा पूर्व के मध्य में श्वेतवर्ण तथा पश्चिम एवं नैर्ऋत्य के मध्य में रक्तवर्ण की पताका कही गयी है॥ ६४-६५॥

मध्य में स्तम्भ के ऊपर सर्ववर्णध्वज

सर्ववर्णा तथा मध्ये पताका किङ्किणीयुता।
बाहुप्रमाणकर्त्तव्या स्तम्भं बाहुप्रमाणकम्॥ ६६॥
यद्द्वारमार्गे पूर्वे तु ध्वजः षोडशहस्तकः।
स्तम्भोऽस्य विधिवत् स्थाप्यः सघण्टाभरणीकृतः॥ ६७॥

फिर (नगर के) मध्य में एक सर्ववर्ण पताका किंकिणी से संयुक्त करके एक हाथ के स्तम्भ पर हो उसे एक हाथ के प्रमाण में बनाना चाहिये। जो द्वारमार्ग में पूर्व दिशा में सोलह हाथ का ध्वज (पंचवर्ण अथवा भगवावर्ण) विशाल स्तम्भ को बनाकर उस पर स्थापित करना चाहिये, उसे घण्टा एवं आभरणों से युक्त करके लगाना चाहिये॥ ६६-६७॥

दक्षिणी द्वार में स्तम्भस्थापन

पुष्पमालान्वितः स्थाप्यो द्वारमार्गेऽथ दक्षिणे।

पुष्पमालाओं से अलंकृत एक स्तम्भद्वार मार्ग में दक्षिण में स्थापित करना चाहिये॥ ६७½॥

वास्तुशास्त्र की परम्परा

इति प्रोक्तं वास्तुशास्त्रं पूर्वं गर्गाय धीमते॥ ६८॥
गर्गात्परा शरः प्राप्तः तस्मात् प्राप्तो बृहद्रथः।
बृहद्रथाद् विश्वकर्मा प्राप्तवान् वास्तुशास्त्रकम्॥ ६९॥
स विश्वकर्मा जगतीहितायाकथयत् पुनः।
वासुदेवादिषु पुनर्भूलोके भक्तितोऽब्रवीत्॥ ७०॥

इदं पवित्रं परमं रहस्यं यः पठेन्नरः।
स्यात्तस्था वितथ वाणी सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ ७१॥

अथ सुविमलविद्यो विश्वकर्मा महात्मा
सकलगुणवरिष्ठः सर्वशास्त्रार्थवेत्ता।
सकलसुगुणानां सूत्रधारः कृतात्मा
भवननिवसतां शास्त्रमेतच्चकार॥ ७२॥

इति श्रीविश्वकर्मप्रकाशे वास्तुशास्त्रे चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

इस वास्तुशास्त्र को पूर्व में (ब्रह्मा ने) बुद्धिमान् गर्गाचार्यजी से कहा, फिर गर्गजी ने पराशर से, पराशर ने इसे बृहद्रथ से कहा तथा बृहद्रथ से इसे विश्वकर्मा ने प्राप्त किया॥ ६८-६९॥

उन विश्वकर्मा ने संसार के हित के लिये वासुदेव आदि को कहा। वासुदेव आदि ने इसे पृथिवी के निवासियों में प्रकट किया॥ ७०॥

इस परम गुह्य विज्ञान को जो मनुष्य पढ़ता एवं लिखता है, उसकी वाणी भी मिथ्या नहीं होती है—यह मैं सत्य कहता हूँ॥ ७१॥

वे महात्मा विश्वकर्मा इस निर्मल विद्या (वास्तुशास्त्र) में पारंगत थे। वे सम्पूर्ण शास्त्रों के तत्त्ववेत्ता, सम्पूर्ण गुणीजनों में वरिष्ठ, सभी शिल्पकलाओं के सूत्रधार तथा पुण्यात्मा थे, जिन्होंने इस वास्तुशास्त्र को संसार में प्रत्यक्ष किया॥ ७२॥

युगाब्दे पञ्चसाहस्रे एकादशोत्तरे शते।
मार्गशुक्ले पञ्चदश्यां रोहिण्यां बुधवासरे॥
कात्यायनाऽभयेन बरहाग्रामनिवासिना।
विश्वकर्मप्रकाशस्य हिन्दीव्याख्यां सुपूर्णता॥

इस प्रकार श्रीविश्वकर्मप्रकाश वास्तुशास्त्र ग्रन्थ की महर्षि अभयकात्यायनविरचित 'अभया' हिन्दी टीका का चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः॥

●